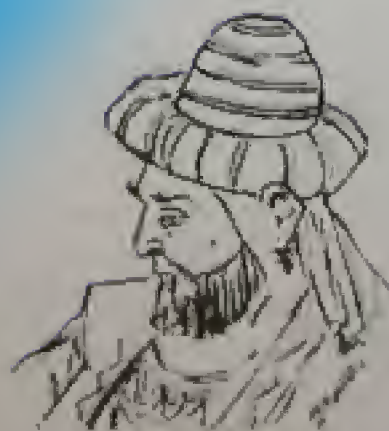


भारत में मुस्लिम सुल्तान

1

पुरुषोत्तम नागेश ओक



लेखक की रचनाएँ—

कौन कहता है अकबर महान था ?

विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय

भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें

ताजमहल मन्दिर भवन था

भारत में मुस्लिम सुलतान-१

भारत में मुस्लिम सुलतान-२

लखनऊ के इमामबाड़े हिन्दू भवन हैं

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास-१

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास-२

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास-३

वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास-४

दिल्ली का लाल किला लाल कोट था

फल ज्योतिष (ज्योतिष विज्ञान पर अनूठी पुस्तक)

फतेहपुर सीकरी हिन्दू नगर है

भारत में मुस्लिम सुलतान

[भाग १]

लेखक

पुरुषोत्तम नागेश ओक

अध्यक्ष

भारतीय इतिहास पुनर्लेखन संस्थान

अनुवादक

जगमोहनराव भट्ट

हिन्दी साहित्य सदन

नई दिल्ली-११०००१

© लेखकाधीन

मूल्य : 70.00

प्रकाशक : हिन्दी साहित्य संघ

2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 देशबन्धु गुप्ता रोड

करोल बाग, नई दिल्ली-110 005

फोन : 51545969, 23553624

फैक्स : 011-23553624

email : indiabooks@rediffmail.com

संस्करण : 2005

मुद्रक : अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-32

अनुक्रम

	पृष्ठ
दो शब्द	७-१६
१. मुहम्मद बिन कासिम	२१
२. महमूद गजनवी	५६
३. मुहम्मद गौरी	६१
४. बख्तियार खिल्जी	१०६
५. कुतुबुद्दीन ऐबक	१२३
६. अल्लमश	१४०
७. रजिया	१६०
८. अन्य 'गुलाम' सुलतान	१७२
९. बलबन	१८२
१०. जलालुद्दीन खिल्जी	२०८
११. अलाउद्दीन खिल्जी	२२३
१२. कुतुबुद्दीन खिल्जी	२४५
१३. गियासुद्दीन तुगलक	२६१
१४. मुहम्मद तुगलक	२८१
१५. फिरोजशाह तुगलक	३०५
१६. तैमूर लंग	३२५
१७. खिज्र खां	३४३
१८. बहलोल लोदी	३६४
१९. सिकन्दर लोदी	३८४

दो शब्द

ईसा की सातवीं शताब्दी में जब अरब तथा उसके पड़ोसी देशों से असभ्य तथा बर्बर लोगों के गिरोह भारत में आने शुरू हुए थे तब से लेकर उस समय तक के भारत के इतिहास का अध्ययन—जबतक देश-भक्ति की भावना से पूर्ण शक्तियों ने उन्हें अन्ततः निश्चल तथा निर्वीर्य न बना दिया—बड़ा विषादपूर्ण और बीभत्स है।

भारत में प्रवेश कर ये बर्बर गिरोह दीमक तथा टिड्डी-दल के समान इस देश को चट कर गए। वहाँ के राजप्रासादों तथा सुरम्य भवनों में दूध और शहद की नदियाँ बहती थीं और जो स्वर्ण तथा हीरे-मोतियों से सुसज्जित तथा प्रकाशवान थे, उस देश को इन्होंने खुली नालियों, झोपड़ियों, और कच्चे मकानों वाली गन्दी बस्ती में परिवर्तित कर दिया।

भारतीय इतिहास के कपटवेश में इस काल के जो वृत्तान्त विश्वभर के स्कूलों, कालिजों और शोध-संस्थाओं में पढ़ाए जाते हैं वे तब जले पर और भी नमक छिड़कते हैं जब उनमें इस सहस्राब्दी को इस आधार पर स्वर्णयुग बताया जाता है कि तब अरबी और फारसी संस्कृतियों का भारतीय संस्कृति (एवमेव) के साथ यशस्वी (एवमेव) संयोजन हुआ था।

वस्तुतः नृशंस तथा क्रूर जत्थों द्वारा हिंसात्मक व्यवहारों और ध्वंसों, हत्याओं और सामूहिक नरसंहारों, अपहरण, लूटमार और चोरियों, बलात्कारों और डाकों, यातनाओं तथा क्रूर पीड़ाओं का ७वीं शताब्दी से १८वीं शताब्दी ईसा तक का यह १००० वर्षों का समय बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण था। पर यह चित्रण तब और भी भ्रष्ट हो जाता है जब इस युग को भारत का सौभाग्य बताया जाता है।

हमने उपर्युक्त इस दावे के समर्थन के पक्ष में आतुरता से साक्ष्यों की

खोज की पर महान् आश्चर्य है कि उन विदेशी चापलूस द्वारा लिखे गये पक्षपात युक्त वृत्तों में भी हमें एक भी साक्ष्य न मिला, जिन्होंने विदेशियों द्वारा किए गये पापों और अपराधों की लूट में दिल खोलकर भाग लिया था। इन वृत्तों में तो मात्र शराब के नशे में चूर और अफीम के नशे में धुत ऐशाशों का सिंहासन पर कब्जा करने वाले बहुरूपियों को थैलियों में कटे हुए सिर पेश करने का, हर युद्ध और विद्रोह के बाद सामूहिक नर-संहार में काटे गये सिरों की मीनारों का, हरमों और वेश्यागृहों में जहाँ हजारों की संख्या में स्त्री और पुरुष गुलाम रहते थे, कामुकतापूर्ण रंगरेलियों और अप्राकृतिक व्यभिचार का, दानवीय यातनाओं द्वारा हत्या तथा अर्धे फोड़ने का, छुरे या गम सलाखों के बल पर बलात्कार का भय दिखाकर सामूहिक धर्म परिवर्तन का, घूसखोरी और भ्रष्टाचार का, चोरी और डकैती का, और भारत की सम्पदा लूटकर अरब, अबीसीनिया, इराक, फारस, अफगानिस्तान और तुर्की ले जाने का और हिन्दुओं के घोड़े की सवारी करने पर रोक लगाने का, अपने वस्त्रों पर एक अपमानजनक रंगीन धब्बा लगाकर चलने को बाध्य करके उन्हें उनकी अपनी ही मातृभूमि में तिरस्करणीय गुलाम और गुंडों के रूप में दागने का, उनकी स्त्रियों और बच्चों के अपहरण और हजारों की संख्या में गुलामों के रूप में बेचे जाने का और इसी तरह हथियाई गई सम्पत्ति और मनुष्यों का विदेशी जत्थों के नेताओं और उनके अनुचरों के मध्य १ : ५ और ४ : ५ के अनुपात में विभाजन का वर्णन है।

जिन लोगों को यह सब वर्णन बड़ा कठोर, अतिवादी और एक-पक्षीय लगे उन्हें हम यह बताना चाहेंगे कि अपने समस्त वर्णन में हमने एक भी उपाख्यात को अतिरंजित करने की या तथ्यों को घटाने-बढ़ाने की कोई चेष्टा नहीं की है। भारत में मुस्लिम युग का इतिहास इतना रक्तरंजित है कि कोई इतिहासकार उसे 'रंगना' भी चाहे तो ऐसा करने की कोई गुंजाइश नहीं है। हर शासन ऐसा पागलखाना था और विभिन्न शासनों के मध्यवर्ती कालों में जो हो-हुल्लड़ था वह इतना पाण्डित्यपूर्ण था कि सर्वाधिक कल्पनाशील लेखक को भी भारत में विदेशी कुशासन के इन १००० वर्षों के किसी भी वर्णन में इससे अधिक अशुभ घटनाओं को जोड़ने अथवा उनकी कल्पना करने की गुंजाइश ही नहीं है।

वास्तव में एवम घटनाएँ स्वयं में इतनी नृशंस, असंख्य और सुदीर्घ

थीं और विदेशी वृत्तकार इतने पक्षपाती थे कि हमारे पास तक पहुँचने वाले विवरण उस दुर्भाग्य के, जो हिन्दुत्व को उन लोगों के हाथ १००० वर्षों के दौरान भोगना पड़ा, मात्र नमूने हैं। इन लोगों का तो अन्धविश्वास था कि इस्लामी जन्नत प्राप्त करने का एकमात्र रास्ता यही था कि इसी भूमि पर हिन्दुओं के लिए नरक बना दिया जाये।

मध्यकालीन मुस्लिम वृत्त-लेखकों की तथ्य-गोपन तथा अपकथन या मिथ्या मुझाबों की प्रवृत्ति इतनी पूर्णता को पहुँची हुई थी कि महान् ब्रिटिश इतिहासकार सर एच० एम० इलियट को बाध्य होकर उनका मूल्यांकन निर्लज्ज, ढीठ और पक्षपातपूर्ण कपट के रूप में करना पड़ा। फिर भी हमने अपने आपको उनके अपने ही धर्म-ग्रन्थों के तत्कालीन काले कारनामों का वर्णन करने के लिए विदेशी पक्षपाती वृत्त-लेखकों के ही उद्धरणों का हवाला देने तक सीमित रखा है। हम इसके अतिरिक्त और कुछ कर भी नहीं सकते थे, कारण उस समय हम स्वयं तो उपस्थित थे नहीं। इससे पाठक को आश्वस्त हो जाना चाहिए कि वह जो कुछ अगले पृष्ठों में पढ़ेगा वह भारत में मध्ययुगीन विदेशी शासन के सर्वेक्षण के बेतरतीब नमूने मात्र और न्यूनोक्ति होगी और किसी भी रूप में उस समय के यन्त्रणापूर्ण दिनों के संश्रुति और आतंक का विस्तृत विवरण न होगा।

यदि पाठक को विभिन्न अध्यायों में "हत्या, बलात्कार और नर संहार" जैसे शब्द बार-बार दोहराए गये मिलें तो इसका कारण यह है कि १००० वर्षों की इस अवधि में नृशंस आक्रांताओं के दर्ज़ों ने इन निन्दनीय कृत्यों को बार-बार दोहराया।

मनुष्य की वाणी उस समय की असीम यातना और दुर्भाग्य का वर्णन करने में असमर्थ है। उस समय शासन तथा धर्म के संरक्षण में बर्बरता असंख्य रूपों में छाई हुई थी।

चापलूस वृत्त-लेखकों ने अपने यदा-कदा प्रत्येक विदेशी बदमाश के—जिसने राजा या दरबारी के रूप में कपट वेश धारण किया—प्रशंसा के पुल बाँधकर और उसे "न्यायप्रिय बुद्धिमान तथा दयालु" कहकर अपने रक्तरंजित विवरणों को नया मोड़ देने का ध्यान रखा है। यह धर्म और प्रशस्तिवादी अन्ध देशभक्तिपूर्ण, धर्मन्धि, पक्षपाती और धिंधियाने वाली भ्रष्टांजलियों से अधिक कुछ नहीं है। इसका स्पष्ट प्रमाण इस तथ्य से

मिलता है कि यह वर्णन करने के बाद वृत्त-लेखक उस विभीषिकापूर्ण नाटक का वर्णन करने लगते हैं जिसका आयोजन विदेशी आक्रान्ता अपूर्व सफलता तथा जोश से करते थे।

विश्व भर में भारतीय इतिहास का पठन-पाठन करने वाले सभी व्यक्तियों का आज एक महान् उत्तरदायित्व है। उन्हें भारतीय इतिहास की गन्द-भरी अश्वशाला को पक्षपात, झूठ, न्यूनोक्तियों, विकृतियों, दमन और भ्रामकता की गन्दगी हटाकर स्वच्छ बनाने का दुष्कर कार्य करना है। यह कार्य कितना ही कष्टदायक क्यों न हो और इतने लम्बे समय के बाद इस कड़े सत्य को स्वीकार करने का कर्तव्य ही पिछड़ापन समझा जाये पर इतिहास के अभिलेखों को ठीक रखने के लिए यह कार्य करना ही होगा।

आधुनिक भारतीय लेखकों ने भारतीय इतिहास की घटनाओं को जिस खूबी से तोड़-मरोड़कर बर्बर कृत्यों को 'गौरव' का परिधान पहनाया है, उससे स्पष्ट होता है कि ये लेखकगण प्रशासक, राजनीतिज्ञ और साम्प्रदायिक व्यक्ति थे। वे इतिहासकार न थे क्योंकि उनका कार्य तो सच्चाई, पूर्ण सच्चाई और सच्चाई के अतिरिक्त और कुछ नहीं—का लेखा-जोखा करना होता है। वे "साम्प्रदायिक एकता और सद्भाव", "बीती ताहि बिसार दे" और "भूल जाओ और क्षमा करो" के बुलन्द नारों से गुमराह हो गये थे। पर यह नहीं भूलना चाहिए कि इतिहासकार न महात्मा होता है न राजनीतिज्ञ। इतिहासकार का काम तो अतीत को जोदना है और इसलिए एक सच्चे और ईमानदार इतिहासकार का कर्तव्य है कि तथ्यों तथा घटनाओं का उसी रूप में उल्लेख करे जैसी वे घटित हुई हैं। उसे न रक्त-रंजित घटनाओं का गौरव गान करना चाहिए और न ही देशभक्तिपूर्ण व्यवहार की अवमानना करनी चाहिए। उसे अपने ऊपर इतिहास के माध्यम से साम्प्रदायिक सद्भाव बनाए रखने की विशेष जिम्मेवारी नहीं धोपनी चाहिए।

असुविधाजनक घटनाओं को छद्मावरण में प्रस्तुत करने के लिए अथवा उनका बिल्कुल सफाया करने को इतिहासकार को गुमराह करने के लिए बहकाने वाले नारों को सिद्धान्त बनाना इतिहास का कला देवी को साम्प्रदायिक और राजनीतिक उद्देश्यों रूपी वेश्या के स्तर तक गिरा देता है।

हम दिल से चाहते हैं कि भारत के सभी नागरिक, चाहे वे किसी भी धर्म को मानते हों, भारत के राष्ट्रीय सम्प्रदान में अपने को अनुपयुक्त मानने की बजाए भारतीय संस्कृति में संघटित हों तथा उससे तादात्म्य स्थापित करें। पर इस उद्देश्य की पूर्ति इतिहास के उन रक्त-रंजित पैरों को मात्र रफू करके, अथवा मध्ययुगीन इतिहास के सन्दर्भ में अन्य दिशा निर्धारित करके अथवा यह ठोंग रचते हुए नहीं की जा सकती कि मध्य-युगीन काल शान्ति, समृद्धि और आदर्श न्यायप्रियता का काल था। इन सभी प्रयत्नों ने विभिन्न भारतीय सम्प्रदायों की बरार को केवल स्थायी करने का काम किया है। साम्प्रदायिक सौहार्द के निर्माण के लिए एक अधिक सहनशील, निश्चित और ईमानदार रास्ता यह है कि इसकी नींव मध्ययुगीन इतिहास के वास्तविक तथ्यों पर रखी जाये।

सबसे पहली और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वर्तमान पीढ़ी के भारतीय मुसलमानों को उन विदेशी लुटेरों से, जिन्होंने १००० वर्ष तक कुकृत्य किए अपना सम्बन्ध या रिश्ता जोड़ने की आवश्यकता नहीं है। इसके तीन कारण हैं—१. जिन विदेशी बर्बरों ने भारत पर आक्रमण किया उन और इन मुसलमानों के बीच कई पीढ़ियों का अन्तर है, २. एक ही धर्म से सम्बन्ध रखने का अर्थ यह नहीं है कि कुकृत्यों में भागीदार बनने की इच्छा महसूस की जाए। उदाहरण के लिए हमारे ही समय में अनेक मुसलमान अपराधी जेलों में पड़े हैं। क्या न्यायप्रिय मुस्लिम नागरिकों का यह कर्तव्य है कि वे धर्म के नाम पर इनसे सम्बन्ध या रिश्ते का दावा करें और जब इन्हें सजा मिले तो दुःख अनुभव करें। ३. आज के अधिकांश मुसलमानों का हिन्दुओं से धर्म-परिवर्तन हुआ है। अतः पुनः उन्हें उन विदेशी आक्रान्ताओं और शासकों से तादात्म्य स्थापित करने के लिए बाध्य महसूस करने की आवश्यकता नहीं है, जिन्होंने शताब्दियों पूर्व भारत में आतंक मचाया था।

हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का सर्वश्रेष्ठ तरीका—यद्यपि यह इतिहास-लेखक अथवा अध्यापक के कार्यक्षेत्र में नहीं आता—यह है कि मध्ययुगीन इतिहास की सभी रक्त-रंजित तथा दारुण घटनाओं का यथातथ्य उल्लेख हो ताकि वर्तमान और भावी पीढ़ियों को आगाह किया जा सके कि वे इन दुष्कृत्यों की पुनरावृत्ति न करें। वस्तुतः इतिहास की

शिका का प्रमुख उद्देश्य यही है कि मानवता अतीत से भविष्य के लिए सबकुछ ले सके। वह उद्देश्य उस समय बिल्कुल असफल हो जाता है जब इतिहास को सूठा और अयथार्थ रूप दिया जाता है। ऊपर से लीपा-पोती किया गया और मुलम्मा चढ़ाया गया इतिहास केवल याददास्त पर एक रिक्तदन्ती ही नहीं बनता वरन् खतरनाक भ्रान्तियों और गतों को छिपाने के मार्ग पर अग्रसर करता है।

हिन्दू-मुस्लिम दरार के विरुद्ध शेषचिल्ली के समान विचारों और चेष्टाओं के बावजूद यह दरार बनी ही रही क्योंकि भारतीय इतिहास को प्रशासकों, राजनीतिज्ञों और साम्प्रदायिक लोगों की सनक पूरी करने के लिए अयथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस अयथार्थ रूप में प्रस्तुतीकरण का परिणाम यह हुआ कि दोनों ही सम्प्रदायों ने अपनी ऐतिहासिक ग्रन्थियाँ बनाए रखा। एक ओर तो मुसलमानों को अरब और अबीसीनिया, कुबाकिस्तान और उजबेकिस्तान, तुर्कों और ईरान तथा अफगानिस्तान और इराक़ से आए विदेशी आक्रान्ताओं से तादात्म्य स्थापित करने को बाध्य किया गया और दूसरी ओर गैर-मुसलमानों के प्रति उनके द्वारा किए गये कुल वंद के लिए गर्व महसूस कराया गया। उन्हें यह विश्वास दिलाया गया कि उन विदेशी सहधर्मियों की करतूतों से मात्र गौरव की वर्षा होती है। अतः उनके मस्तिष्क में अवचेतन में एक ग्रन्थि निर्मित होती है कि उन्हें यत्नस्वी (एवमेव) हिंसात्मक व्यवहार और ध्वंस के उस कीर्तिमान की मात्र पुनरावृत्ति और अनुकरण ही नहीं करना अपितु उसे मात करना है। इस प्रकार पूर्ण सद्भावनाएँ रखते हुए भी इतिहास को अयथार्थ रूप में प्रकट करने वाले लोग न मुसलमानों के दोस्त हैं, न हिन्दुओं के। इतिहास को अयथार्थ रूप में प्रकट करने से, हालाँकि वह ऐसा अच्छी-से-अच्छी भावनाओं से करते हैं, वे इस ग्रन्थि को स्थायी और पुष्ट करने में सहायता देते हैं कि एक 'मच्छा' मुसलमान बनने के लिए हर किसी आदमी को हिन्दुओं से घृणा करना तथा इराक़, ईरान, तुर्कों और अरब को मूल देश मानना आवश्यक है।

उसी प्रकार हिन्दू भी अपनी ग्रन्थि संजोए रहता है जो उसे गुप्त फोड़े की भाँति पीड़ित करती है। प्रशासकों, राजनीतिज्ञों अथवा सम्प्रदायवादीयों द्वारा यह अन्धविश्वास करने के लिए बाध्य किए जाने पर कि

भारत में विदेशी शासकों द्वारा अपनाया गया मध्ययुगीन कुल वंद हिन्दुओं की भलाई के लिए ही था, हिन्दू नागरिक को इस बात पर बड़ा आश्चर्य होता है कि यदि लूट-खसोट, कोड़े लगाकर दासता स्वीकार कराना, अमानवीय धन्यणा, पूर्ण अव्यवस्था, अराजकता, बलात्कार, नर-संहार और ध्वंस की इन करतूतों को गौरवपूर्ण कृत्य मानना है तो वास्तविक दुष्कृत्य क्या होंगे!

अपने दैनन्दिन व्यवहार में हम जानते हैं कि यदि किसी व्यक्ति ने जानबूझकर और बार-बार अन्य व्यक्ति के साथ अनुचित व्यवहार किया है तो उन दोनों में सौहार्द स्थापित करने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि गलती करने वाला साहस के साथ अपनी गलतियाँ कबूल करे और भविष्य में उनकी पुनरावृत्ति न करने की कसम खाए। यदि गलती करने वाला दम्भ में लगातार यह मना करता रहे कि उसने कोई गलती नहीं की है या उस पर मुलम्मा चढ़ाता रहे तो वह दूसरे में अपने प्रति न प्रेम उपजा सकता है, न विश्वास। यही बात हिन्दू-मुस्लिम एकता पर भी लागू होती है। आज के मुसलमानों को पुराने समय के विदेशी दुराचारियों से सम्बन्ध स्थापित करने का दावा बिल्कुल नहीं करना चाहिए, यद्यपि यह दुराचार इस्लाम के नाम पर किए गए थे। यदि भारतीय मुसलमान विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं के सम्बन्धी होने का दावा करते हैं तो उन्हें दुष्कृत्यों के लिए उन आक्रान्ताओं की भत्सना करनी चाहिए और उनसे गौरवान्वित होने का विचार छोड़ देना चाहिए।

लेकिन यदि ऐसा कोई मुसलमान या हिन्दू है जो विदेशी मध्ययुगीन बर्बरता पर गौरव अनुभव करता हो तो वह स्वतः ही भत्सना का पात्र है।

उपर्युक्त अनुरूपता केवल आधुनिक साम्प्रदायिक सम्बन्धों पर आंशिक रूप से लागू होती है क्योंकि हम यह बिल्कुल सुझाना नहीं चाहते कि २०वीं शताब्दी के मुसलमानों ने हिन्दुओं के साथ बुराई की है। हम कहना चाहते हैं कि यदि वे विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं से कोई भी सम्बन्ध स्थापित करने का दावा करते हैं तो उन्हें कम-से-कम उनके कारनामों के लिए उनकी भत्सना करनी चाहिए और उन्हें गौरवान्वित करना छोड़ देना चाहिए।

भारत के मध्ययुगीन मुसलमान राजा और दरबारी मारे समय दूसरे

की गर्दन काटने और अपनी गर्दन बचाने के चक्कर में ही पड़े रहे। जिन पुस्तकों में उस समय के महान् आदर्शवाद, जनकल्याण की कामना, न्याय के लिए आदर्श प्रशासनिक व्यवस्था, राजस्व संग्रह की सुगम व्यवस्था का वर्णन है वे मात्र शैक्षिक कपट-जाल हैं। उनमें यह बताने का प्रयास किया गया है कि महान् जन-संहार करने वाले मोहम्मद कासिम, गजनी, गौरी, बाबर, हुमायूँ, अकबर और औरंगजेब जैसे अशिक्षित और शराब तथा अफीम के नशे में धुत रहने वाले पश्चिम एशिया का लम्बा रास्ता तय कर भारत इसलिए आए थे कि वे अपनी आदर्श शासन-व्यवस्था का परिचय दे सकें।

भारतीय इतिहास की पाठ्य-पुस्तकें ऐसी अनेक असंगतियों से भरी हैं कि एक सच्चा इतिहासकार उन्हें छूना भी पसन्द न करेगा।

परीक्षा-पत्र बनाने वालों की भारत में विदेशी मध्ययुगीन शासकों की जनकल्याण प्रयोजनाओं और काल्पनिक आर्थिक सुधारों पर प्रश्न देने वन्द कर देने चाहिए। ईमानदारी से तो वे विद्यार्थियों से मात्र यह पूछ सकते हैं कि प्रत्येक शासक ने किस सीमा तक प्रजाजन और अपने सम्बन्धियों को यन्त्रणा दी, नरसंहार किया और उनकी खाल उधेड़ी। विद्यार्थियों को मध्ययुगीन मुस्लिम शासन की कुछ काल्पनिक अच्छाइयों का विशद् वर्णन करने को कहना उनसे अभिप्रेरित झूठ को दोहरवाना है।

जनकल्याण पर आधारित प्रशासन की केवल पृथ्वीराज चौहान, राणा प्रताप तथा शिवाजी जैसे देशज शासकों से ही आशा की जा सकती है क्योंकि वे यहाँ की जनता के प्रति उत्तरदायी थे न कि दमिश्क के खलीफा या मक्का के मुल्ताओं के प्रति। देशभक्त शासकों के जो भी उदार दान होंगे उनका विभाजन भारतीयों में होगा, न कि विदेशियों में। इतिहास की परीक्षाओं में, उदाहरण के तौर पर, यह पूछा जाना चाहिए कि पृथ्वी-राज चौहान, राणा प्रताप या शिवाजी ने विदेशी दसतुओं के विरुद्ध युद्ध करने के लिए किस प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था की; भारत कब से और क्यों दूध और सहूद का देश न रहा; एक विशिष्ट काल में भारत से मक्का, बनदाट, दमिश्क, समरकन्द, बुखारा, गजनी और काबुल ले जाई गई सम्पत्ति का मूल्य कितना था; कितने कस्बों, नगरों तथा किलों का सफाया किया गया; मध्ययुग में वर्तमान भवनों को कब और किस प्रकार मकबरों और मस्जिदों में परिवर्तित किया गया।

पर इसकी बजाय इतिहास की परीक्षाओं में प्रायः केवल मोहम्मद तुगलक, बाबर, शेरशाह और अकबर तथा ब्रिटिश गवर्नर जनरलों जैसे विदेशियों पर ही प्रश्न पूछे जाते हैं। इस प्रकार के व्यवहार से भारतीय इतिहास की परीक्षाएँ मात्र ढोंग बन गई हैं क्योंकि जो कुछ विद्यार्थी सीखते हैं वह न 'भारतीय' है, न ही 'इतिहास'।

भारतीय इतिहास का पठन-पाठन करने वाले संभवतः एक अन्य भयंकर भूल से अपरिचित प्रतीक होते हैं। मध्ययुगीन भवनों पर अरबी तथा फारसी में उत्कीर्ण लेखों में यदि किसी मुस्लिम बादशाह अथवा दरबारी द्वारा उन भवनों के स्वामित्व अथवा निर्माण का दावा किया गया है तो उस पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए। इन दावों पर विश्वास करने से पूर्व इनकी सावधानी से जाँच की जानी चाहिए तथा अन्य पुष्ट तथा अविवादग्रस्त साक्ष्यों से इनका मिलान किया जाना चाहिए। यह स्वाभाविक मानव स्वभाव है कि किसी भवन पर बलात् कब्जा करने वाला भागे हुए स्वामी का साइनबोर्ड हटाकर अपना साइनबोर्ड लगा देता है। मध्ययुगीन भवनों पर अरबी तथा फारसी उत्कीर्ण लेख उसी श्रेणी में आते हैं।

उदाहरण के लिए आगरे की तथाकथित जामा मस्जिद पर लगी पटिया में कहा गया है कि यह (जामा मस्जिद) शाहजहाँ की कुमारी कन्या जहाँआरा द्वारा बनाई गई थी जो बुर्क की एकान्त विविक्षित में अकिंचनता और अप्रसिद्धि का जीवन बिताती थी। इस कथन को इसी रूप में सच नहीं मानना चाहिए। वास्तविक शोध से सिद्ध होगा कि यह लेख किसी हथियाए गए हिन्दू महल अथवा मन्दिर पर उत्कीर्ण कर दिया गया है। भवन में जनाने कमरे हैं और एक विशाल तहखाना है जो इसकी गैर-मस्जिद जैसी विशेषताओं के कुछ उदाहरण हैं।

नीचे हम तारीख १३ जून, १९६७ के स्टेट्समेन, कलकत्ता, डाक संस्करण में छपी एक समाचार कथा दे रहे हैं जिससे प्रकट होगा कि सावधानी से जाँच करने के बाद प्रत्येक मध्ययुगीन अरबी तथा फारसी उत्कीर्ण लेख अविश्वसनीय सिद्ध हो जाता है। इस समाचार अंश का शीर्षक है "आगरे में खजाने की खोज—हमारा की दीवारों में मुगल सिक्के छिपे बताए गये हैं।" साथ ही छीपीटोला में छोटी ईंटों और मोटे पलस्तर वाली

इमारत की फोटो भी है। आजकल इस भवन में शहर की सबसे बड़ी सज्जी-मण्डी है। सूचना में कहा गया है कि यद्यपि यह भवन अलीवर्दी खाँ के हमाम (स्नानगृह) के नाम से प्रसिद्ध है पर किसी भी तत्कालीन विवरण में ऐसा कोई संदर्भ नहीं मिलता कि यह हमाम अलीवर्दी खाँ ने बनाया था। यद्यपि हमाम के प्रवेश द्वार पर अभी तक उसका नाम खुदा हुआ था।

इस जानकारी का पता लगाने के बाद भी उस समाचार-पत्र का संवाददाता अपनी भुगत-भीति से ऊपर न उठ सका और इस सच्चाई पर पहुँचने की बजाय कि वह भवन हड़पा हुआ एक मुस्लिम-पूर्व हिन्दू राज-महल था, संवाददाता ने ताहक निराधार अटकलें लगाना शुरू किया है कि इससे सन्देह होता है कि यह हमाम संभवतः मुमताज महल के पिता और शाहजहाँ के वजीर प्रसिद्ध आसफखाँ का था। ऐसा सोचने का एक पुष्ट आधार जहाँगीर के अपने राज्य के १६वें वर्ष के संस्करण है जिनमें कहा गया है कि "शाहरीवार की पहली तारीख को आसफखाँ की प्रार्थना पर मैं उसके घर गया और उसके द्वारा हाल ही में बनाए गये हमाम (स्नानगृह) में नहाया।"

स्पष्टतः जिस संवाददाता ने स्टेट्समैन समाचार-पत्र को यह समाचार-अंश दिया उसे पर एच० एम० इलियट द्वारा जहाँगीर के संस्मरणों के प्रसिद्ध अध्ययन की जानकारी न थी। इसमें हर पृष्ठ पर भण्डाफोड़ किया गया है कि यह इतिवृत्त किस प्रकार उन सफेद और सोद्देश्य झूठों का जाल है जिनमें हथियाए गये हिन्दू किलों, नगरों और भवनों का निर्माता होने का आरोपण बड़ी मौज से अपने पिता अकबर पर, अपने पर और विभिन्न मुस्लिम दरबारियों पर किया गया है।

पर एच० एम० इलियट द्वारा जहाँगीर के मूल्यांकन को पढ़े बिना भी उस समाचार-कथा में उल्लिखित इतिहास में इन्दराज की सूक्ष्म जाँच से जहाँगीरनामे की असमर्थता का पता चल सकेगा।

पहली विचारणीय बात है कि संस्थलीय परम्परा वाले मुसलमानों ने कभी हमाम (स्नानगृह) बनाए ही नहीं। दूसरी बात यह है कि यह पता लगाने के लिए कि आया उसके पास आगरे में कुछ चीज बनाने के लिए, और वह भी हमाम जैसी विलास-वस्तु बनाने के लिए—पर्याप्त समय, धन, शान्ति, सुरक्षा और स्वायत्तता था या नहीं, आसफ खाँ के जीवन और

उसकी वित्तीय स्थिति की सतर्कतापूर्ण जाँच आवश्यक है। ऐसा करना इसलिए और भी आवश्यक है कि वह इच्छा होते ही पास बहती यमुना नदी में आसानी से बिना एक पैसा भी खर्च किए डूबकी लगा सकता था।

एक अन्य प्रश्न यह है कि क्या 'हमाम' इतना बड़ा था कि आगरे जैसे भरे-पूरे आधुनिक नगर की सबसे बड़ी सज्जी मण्डी के लिए उसमें पर्याप्त स्थान उपलब्ध था?

एक अन्य विचारणीय बात यह है कि यदि इसका निर्माण आसफ खाँ ने किया था तो उत्कीर्ण लेख में इसके निर्माण का श्रेय अलीवर्दी खाँ को क्यों दिया गया है? क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मध्यकालीन मुसलमान परस्पर एक-दूसरे के विरुद्ध भी अपना झूठा दावा पेश करने के लिए जाली लेख खुदवा देते थे? फिर क्या आश्चर्य है कि उन्होंने उन भवनों के पूर्व-मुस्लिम-पूर्व हिन्दू स्वामियों, निर्माताओं के विरुद्ध भी वैसे ही किया होगा।

अन्य बात यह है कि अलीवर्दी खाँ का झूठा दावा पेश करने वालों को इसकी प्रेरणा इस बात की जानकारी के आधार पर ही मिल सकती थी कि आसफ खाँ ने भी पहले इसे अनधिकृत रूप से ग्रहण करके ही इसपर अपना कब्जा जमाया था।

विवेकशील इतिहासकार को यह प्रश्न भी करना चाहिए कि सम्राट् होते हुए भी जहाँगीर एक दरबारी के घर में स्नान करने क्यों गया? क्या सम्राट् का अपना कोई हमाम न था और यदि सम्राट् के पास कोई हमाम न था तो एक दरबारी ही उसे कैसे रख सकता था?

अन्य विचारणीय बात यह है कि जैसा अक्सर होता है, जहाँगीर का वर्णन भी संदिग्ध है। वह कहता है कि वह आसफ खाँ के घर गया और हमाम में स्नान किया जिसका उसने हाल ही में निर्माण कराया था। इसमें प्रश्न उठता है कि आसफ खाँ ने वास्तव में घर बनाया था या हमाम। यदि उसने घर बनाया था तो उस हमाम को, जो उसका एक भाग मात्र था, इतना तूल क्यों दिया गया? यदि उसने बाद में मात्र हमाम बनाया था तो प्रश्न यह है कि कौन भवन किसकी सम्पत्ति था और यदि यह किसी और की सम्पत्ति था तो क्या इसमें पहले स्नान-गृह था ही नहीं?

यदि इतिहासकार अथवा साधारण लोग भी इन दावों की बुद्धिमत्ता-

पूर्ण समीक्षा करने का ध्यान रखें तो मध्यकालीन भवनों पर ऐसे फर्जों दावों की वास्तविकता का पता लगाना कठिन नहीं है, हालाँकि आज इन्हें मकबरों तथा मस्जिदों के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है।

सच्चे इतिहासकार को सच्चाई का हिमायती होना चाहिए। उसे साम्प्रदायिकता की भावना के आधार पर अपनी खोज या शोध रोकनी नहीं चाहिए अथवा समझौता नहीं करना चाहिए। अबतक भारतीय इतिहास के विद्वान् अधिकांशतः इस प्रमुख कर्तव्य से विमुख रहे हैं। बहुत ही कम विद्वानों ने इतिहास के सम्बन्ध में कोई मूल अथवा स्वतंत्र दृष्टिकोण अपनाया है। उनमें से अधिकतर विद्वान् काफ़ी समय से प्रचलित उन परम्परागत पक्षपातपूर्ण धारणाओं को स्वीकार करने और उन्हें उसी रूप में दुहराने अथवा उनकी खिचड़ी बनाने में भी संतुष्ट रहे। स्वर्गीय सर एच० एम० इलियट और कीने सच्चे इतिहासकारों के कुछ ज्वलन्त उदाहरण हैं। सही अर्थों में शोध करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का सूक्ष्म अध्ययन करना चाहिए कि सर एच० एम० इलियट और कीने ने किस प्रकार मध्यकालीन मुस्लिम वृत्तों में वर्णित प्रत्येक विवरण को तोलने, उसकी जाँच करने अथवा उसका मूल्यांकन करने में अपनी विवेकशील क्षमता जागरूक रखी।

पर उनकी भी अपनी सीमाएँ हैं। हम मध्यकालीन मुस्लिम वृत्तों के अध्ययन में सर एच० एम० इलियट के एक दोष की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे। उन्होंने इन वृत्तों के आठ सप्तीय अध्ययन का नाम रखा है "भारत का इतिहास—उसके अपने इतिहासकारों द्वारा लिखित"। हमारे विचार से यह भयंकर भूल है। हजारों काल्पनिक घोड़े दौड़ाने के बाद भी जहाँगीर, बाबर, तैमूरलंग, बदार्युनी और अबुल फ़जल किसी भी प्रकार 'भारतीय' नहीं हो सकते क्योंकि उन्होंने 'भारतीयों' को सदैव कुत्ते, गुण्डे, चोर, ठगईगीर, गुलाम, डाकू, और निकृष्टतम व्यक्ति कहा है। यदि वे भारतीय होते तो उनके वृत्तों में हिन्दुओं के विरुद्ध तुर्कों, अफगानों, अबीसीनियाइयों, अरबों, ईरानियों और मंगोलों का पक्ष न लिया गया होता। उन्होंने हिन्दुओं का बहुत अपमान किया है। उन्होंने हिन्दू विजयों को पराजयों के रूप में और मुस्लिम पराजयों को विजयों के रूप में वर्णित किया है। हिन्दू मन्दिरों के ध्वंस और हिन्दू स्त्रियों के अपहरण पर वे

मोहित न होते। उनका ध्यान सदा मक्का-मदीना की ओर केन्द्रित रहता है। उनका वर्ण्य-विषय विदेशी दरबारी परिषदें ही हैं जो भारत की लूट पर निर्भर रहती थीं। क्या ऐसे वृत्तों को "भारतीय इतिहास" और इसके लेखकों को "भारतीय" कहा जा सकता है?

यदि सर इलियट इस विषय में जागरूक रहते कि मध्यकालीन मुस्लिम वृत्त विदेशियों द्वारा भारतीय कलाकृतियों के ध्वंस की क्षमा-याचना माँग रहे हैं और वे उन लोगों द्वारा लिखे गए हैं जो इन कुकर्मों में सक्रिय भागीदार थे और कलाकृतियों के ध्वंस और लूट में उन्हें भी हिस्सा प्राप्त हुआ था तो उन्हें ऐसी कई अन्य सच्चाइयों का भी पता चलता जो उनके ध्यान में अब न आईं। तथापि सर इलियट ने स्वयं को महान् इतिहासकार सिद्ध किया है, कारण उनमें पहचानने की कि मध्यकालीन मुस्लिम वृत्त घृष्ट तथा पक्षपातपूर्ण कपट थे बिरली अंतर्दृष्टि तथा महान् साहस था।

हम आशा करते हैं कि इस पुस्तक से पाठकों को मध्यकालीन इतिहास पर पुनर्विचार करने की प्रेरणा मिलेगी, इसकी परम्परागत धारणाओं की पुनः जाँच करने का प्रोत्साहन और तर्क समस्त परिणामों पर पहुँचने का साहस मिलेगा।

एन० १२८, गटर कैलाश I,
नयी दिल्ली-११००४८

—पी० एन० घोष

मुहम्मद बिन कासिम

मध्य युग के भारतीय इतिहास का वह अंश यदि आप पढ़ें जिसमें लोलुप, अंधविश्वासी अरब इस्लाम का प्रचार करने के बहाने, घरती को रौंदते और खून की नदियाँ बहाते हुए, चारों ओर बिखर रहे थे तो आप भय से कांप उठेंगे।

ये आदारा, खानाबदोश और नैतिकता से हीन लोग हर जगह गए, हर घर में घुसे। उनके एक हाथ में खून से भीगी तलवार थी, दूसरे में जलती मशाल। ये व्यवित्यों को काटते थे, चीखती-चिल्लाती स्त्रियों और बच्चों को व्यभिचार और गुलामी के लिए घसीटते थे। किसी भी धर्म और जाति का यह रूप एक ऐसा कलंक है जिसकी कालिमा शैतान को भी मात करती है।

भारत उन देशों में से एक था जो बुरी तरह जले-झुलसे थे, चीरे-फाड़े गए थे, कुचले-मसले गये थे, पंगु और अपंग बने थे, बन्दी-कैदी बनाए गये थे। भारत ने इनसे अति-मानवीय सामना किया था। ये खूँखार हजार वर्षों के लम्बे अरसे से सागर-तरंगों की भाँति बराबर आ रहे थे। ये दरिन्दे तब तक आते रहे जबतक कि इनके अन्तिम मुसलमान शासक को १८५८ ई० में रंगून की कब्र में सुला नहीं दिया गया।

अबीसीनिया, इराक, ईरान, अफगानिस्तान, कजाकिस्तान, उजबेकिस्तान के बलपूर्वक बनाये गये मुसलमानों के गिरोह ने डाका और खून-खराबी के जीवन में अरबों का साथ दिया था।

इस खूनी गिरोह का एक कुख्यात सरदार था, हरी आँखों वाला १६ वर्षीय शैतान लुटेरा मुहम्मद कासिम। यह अर्धचन्द्र अंकित हरे झंडे को उड़ाता हुआ आया था। सिन्धु नदी के दोनों ओर जिस प्रलय की वर्षा उसने की वह वास्तव में शैतानियत का नंगा नाच ही था।

मगर जोध ही उसे ग्रहण भी लग गया। उसने दो किशोरी हिन्दू बालाओं का अपहरण किया। उन्होंने अपने बुद्धि बल से उसे—“जिस अवस्था में और जहाँ कहीं भी वह था”—घसीटकर सेना से दूर करवा दिया। ताजे साँठ के चमड़े में उसे सी दिया गया। दम घुटकर वह एक दर्दनाक मौत मरा। वह आतंककारी, नर-भक्षी और नारी-व्यभिचारी उन बालाओं के चरणों पर ठण्डा हो गया। अपने विश्वसनीय जल्लाद को मौत के घाट उतारने वाला खलीफा वालिद सदमे से मर गया। परवर्ती खलीफा सुलेमान की उन्हें भोगने की बड़ी प्रबल अभिलाषा थी। पर प्राणों के भय से वह उनकी इज्जत से खेलने का साहस ही नहीं जुटा सका। अपने क्रोध की विवशता में, शैतानहन्ता उन वीर बालाओं को उसने भयंकर यातनाएँ दीं। इस नारकीय, दुःखान्त दुःख का उपसंहार भी हुआ। सुलेमान ने उन वीरांगनाओं को घोड़ों की पूँछ से बाँधकर दमिश्क की सड़कों पर घसीटने की आज्ञा दी। उनका कमनीय तन चियड़े-चियड़े हो गया। आत्मा अनन्त में समा गई। परन्तु फिर भी उन्हें इस बात का पूर्ण सन्तोष था कि बालाएँ होते हुए भी, आसुरी पंजों में जकड़े जाने के बावजूद भी, प्रतिकूल परिस्थितियों में उलझने के बाद भी, वे अपने देश और धर्म की रक्षा में अटल रही। उन्होंने बहादुरी का बेहतरीन नमूना दिखाकर अपने शत्रुओं से पूरा-पूरा प्रतिशोध लिया था।

वर्षों के लम्बे प्रयास के बाद ही कासिम का शैतानी प्रवेश भारत में हो सका था। अरबों ने भारत को लूटने की बीमत्स योजना अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर ६ठी शताब्दी में बनाई थी। अनेक शताब्दियों तक अरब-बासी टिहरी दल की तरह भारत में प्रविष्ट होकर आतंक फैलाते रहे और इसकी उपजाऊ भूमि को चूसते रहे। इतिहास ही नहीं, भूगोल के साथ भी उन्होंने व्यभिचार और खिलवाड़ ही किया। पुष्ट, दुष्ट, कामी, अनपढ़, बेकार, अधम और नीच अरब बुराई में बह गए, नशाखोरी में डूब गए। व्यभिचार, बलात्कार और लूट में लिप्त हो गए। इस्लाम धर्म के नाम पर यह एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की सुसंगठित डकैती थी। यह काम था एक शैतान का, पर उसने धर्म की चादर ओढ़ रखी थी।

अरबी इतिहासकार ‘तारिखी मासूमी’, ‘मुजामलुत तवारिखी’, और ‘अब्बिनादुरी’ की ‘फुतुहुल् बुलदन’ के अनुसार दमिश्क के धार्मिक मुख्यालय

के भौतिक प्रधान खलीफा ने इराक़ स्थित बग़दाद के उपप्रधान की सहायता से इन लूट-पाट के कार्यक्रमों को नियोजित किया था।

६३६ ई० में खलीफा उमर ने भारत पर प्रथम आक्रमण करवाया था। परन्तु वह स्वयं दूर ही एक सुरक्षित स्थान पर रहा। गिरोह के जंगी नेता का नाम भी उमर ही था। उसके गिरोह ने बम्बई के समीप याना पर झपट्टा मारा। मगर भारत की प्रतिरक्षा प्रबल थी। एक भी शत्रु वापिस नहीं लौट सका।

कुछ वर्षों के बाद दूसरे लुटेरे गिरोह को ‘ओच’ भेजा गया। उनके हाकिम की हिम्मत यहाँ भी साथ आने की नहीं हुई। प्रायः सभी लुटेरे मारे गए।

भारत की सुरक्षा को भेदता हुआ एक दूसरा अरबी गिरोह उत्तर की ओर बढ़ा। इसने देवालय अर्थात् देवालयपुर पर धावा किया। इसे आज-कल कर्ची कहते हैं। यहाँ सुरक्षा के देवता का विशाल गुम्बद वाला एक मन्दिर था। इसीलिए इसे देवालयपुर कहते थे। इसके ऊँचे स्तम्भ पर लहराता भगवा-ध्वज मीलों दूर से दिखाई देता था। झूठे लड़ाकू दावे की परम्परा के साथ-साथ चलते हुए अरबी इतिहास ‘फुतुहुल् बुलदन’ ने दावा किया है कि डकैतों के गिरोहपति मुघीरा ने “शत्रु” (हिन्दू) का सफ़ाया कर दिया। इसके बाद विस्तृत वर्णनों (लूट-पाट का पूरा विवरण) का अभाव रहा। साथ ही एक परवर्ती भेदिये का कांपता बयान हिन्दुओं के सफ़ाये के इस दावे को झूठा प्रमाणित करता है। पहले के दो अभियानों की भाँति यह अभियान भी पूर्ण रूप से विफल रहा। आक्रमणकारियों को पीस दिया गया।

इस समय तक खलीफा की गद्दी पर उसमान आ चुका था। उसने अब्दुल्ला को इराक़ का शासक नियुक्त किया। आक्रमण का खतरा न उठा, उसने अब्दुल्ला को भारतीय सीमा पर जासूसों की टोली भेजने का आदेश दिया। पूर्वाक्रमणों में हाकिम भी था, अतएव इस टोली का नेता भी उसे ही बनाया गया। स्पष्ट है कि हाकिम को चौकस हिन्दू पहरेदारों ने बन्दी बना लिया। उसे कड़ा दंड भी दिया गया था क्योंकि वापिस लौटने पर वह पूर्ण रूप से असन्तुलित था। उससे बारम्बार और तरह-तरह से उसट-पुलट कर प्रश्न पूछे गए, पर खलीफा के सामने वह बार-बार यही

रहता रहा—“पानी का पूर्ण अभाव है, फल इसके-दुक्के होते हैं, डाकू (हिन्दू) बहुत बहादुर हैं। अगर थोड़ी सेना भेजी जाएगी तो वह मार दी जाएगी। अधिक भेजी जाएगी तो वह खुद भूखों मर जाएगी।” बात साफ है कि हिन्दुओं ने हाकिम में अल्लाह का भय कूट-कूटकर भर दिया था। इसी कारण उसने खलीफा के सामने भारत का बड़ा अवसादपूर्ण चित्र अंकित किया। निराश और हताश होकर इस खलीफा ने और आक्रमण करने का विचार ही त्याग दिया।

कामुकता का दृश्यन्त्र—अब अली खलीफा बना। उसने इस दिशा में पुनः विचार किया। भारत की सुन्दर नारियों का लुभावना रूप और धन-वैभव, ये दो ऐसे प्रबल आकर्षण थे जिसे लोलुप अरबवासी अधिक दिनों तक रोक न सके।

इनकी आक्रमण-पद्धति एक संचे में डली हुई थी। जल हो या थल, अरबी लुटेरों की बस एक ही पद्धति थी। शहरों पर घावा करना, मनुष्यों को मार देना, स्त्रियों का अपहरण करना, बच्चों को उड़ा लाना, भवन, ग्राम और जहाजों को जला देना, सारी सम्पत्ति छीन लेना, हिन्दू मन्दिरों को मस्जिद बना देना और सभी मनुष्यों को मार-पीट, धमका-डराकर मुसलमान बना लेना या फिर मार देना।

यह एक सनक थी। मगर धन और औरतों की अपनी प्यास बुझाने का यह तरीका आसान था। अली ने ६५६ ई० में अब्दी के साथ एक शक्तिशाली गिरोह घावा करने के लिए भेजा। इतिहासकार कहते हैं—“अब्दी विजयी हुआ। लूट का धन पाया, लोगों को बन्दी बनाया और एक दिन में १ हजार सिरों को (हिन्दुओं के सिरों को) काटकर बिखेर दिया। कुछ लोगों को छोड़कर वह अपने सारे साथियों समेत कीकण में (खुरासान की सीमा पर, सिन्ध के निकट) ६६२ ई० में मारा गया।”

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि अरबी का गिरोह प्रायः तीन वर्ष तक, भारत की सीमा पर निरपराध निहत्थे नागरिकों का खून बहाता रहा। कुछ को गुलाम बनाकर बेचने के लिए उड़ा लिया गया। उनके घरों को उजाड़, सारी सम्पदा को लूट, वह भयंकर अत्याचार करता रहा। अन्त में, भारत के सीमा रक्षकों ने किसी प्रकार इस लुटेरे को समाप्त कर ही दिया।

इसके बाद खलीफा मुआविया ने पुनः एक दूसरे लुटेरे गिरोह को भारत भेजा। प्रत्येक बार लुटेरे गिरोह की संख्या बढ़ती ही गई। इसी अनुपात में उनके कुकर्मों और विनाश का क्षेत्र भी बढ़ता गया। मुहम्मद का गिरोह इतना बड़ा था कि उसे एक पंक्ति में खड़ा करने पर सीलें लम्बी कतार बन जाती थी। उसके गिरोह का एक भाग बन्ना (सम्भवतः बन्नू) तक और दूसरा अलहवार (लाहौर नहीं, जैसा कि कुछ लोगों ने समझा है) तक आ पहुँचा जो मुलतान और काबुल के बीच में है। मगर उसे भी सीमा रक्षकों ने उसके सहयोगियों समेत गाजर-मूली की तरह काट दिया।

भारतीय सलकार को स्वीकार करने की बारी अब अब्दुल्ला की थी। खलीफा और बग़दाद के शासक ने इसका निर्वाचन किया था। हिन्दू तलवार का स्वाद अब उसे चखना था। उसने कीकण में लड़ाई मोल ली। फिर प्राणभय से भागकर खलीफा की गोद में जा छिपा। पुचकारकर, बहला-फुसलाकर उसे वापस भेजा गया। खून चाटने वाले अरबों को भारतीय गुलाम और लूट के धन की बड़ी आवश्यकता थी। अब्दुल्ला भारत की सीमा पर वापस लौटा और यहीं खत्म हो गया।

अब सीनान सीना ताने आया। अल् बिलादुरी फ़रमाते हैं—“यह बहुत ही अच्छा, भला और नेकगुण सम्पन्न व्यक्ति था। यह पहला आदमी था जिसने अपने सभी सैनिकों को अपनी पत्तियों से तलाक़ दिला दिया” और उन्हें इस बात की गारण्टी दी कि भारत की सीमा पर उनको मजे लूटने के लिए सैकड़ों की संख्या में हिन्दू स्त्रियाँ प्राप्त होंगी। मगर दुःख है कि उसका यह कामुक स्वप्न चूर-चूर हो गया।

इधर इन हाँकों का कोई अन्त नहीं था। प्रत्येक अरबी एक कूर लुटेरा था। विक्रमादित्य और परवर्ती हिन्दू शासकों ने इनमें हिन्दू संस्कृति का प्रचार किया था। जब से ये अरबवासी हिन्दू संस्कृति से दूर हो गये, चीखती-चिल्लाती अबलाओं पर अत्याचार करना और अबोध बालकों को सतााना ही इनका धर्म हो गया था। और कुछ करने के योग्य ये थे भी तो नहीं।

फिर ज़ियाद आया। वीर जाटों और मेदों से तलवार बजाता यह भी मारा गया। इधर सीनान भी अपने लुटे-पिटे मान-सम्मान को खोजने लौटा। भारत की सीमा पर वह लुटेरी दृष्टि डालता हुआ मँडराता रहा।

घावा करने का साहस वह नहीं बटोर सका। तब इसकी मर्दानगी को धिक्कारता, आग उगलता, ज़िबाद का वेटा अम्बाद आया। इसने अपना मार्ग बदल अफ़ग़ानिस्तान पर घावा बोल दिया। उस समय अफ़ग़ानिस्तान हिंदू साम्राज्य का ही एक अंग था। अल्लु विलादुरी कहते हैं—“वह वहाँ के नागरिकों से लड़ा” मगर “बहुत से मुसलमान मारे गए”। वहाँ के लोग नुकीली पगड़ियाँ पहनते थे। अम्बाद को यह टोपी काफ़ी पसन्द आई। मार काकर जब वह लोटा तो अपने साथ इन टोपियों को भी बाँध लिया। उसने उस टोपी का काफ़ी प्रचार किया और इसका नाम ‘अम्बादिया टोपी’ रक्खा।

अब भीमा का हाकिम अल्लु मनज़र उर्फ़ अबुल्ल अशास बना। नूकण और कीकण पर उसने घावा किया। गाँवों में आग लगा दी। उसने स्त्रियों और बच्चों का अपहरण कर लूट की सम्पत्ति के साथ भागने का प्रयास किया। पूर्ववर्ती लोगों की अपेक्षा उसने बर्बादी कुछ अधिक ही की। मगर अपने पाप की फ़सल लेकर वह लोट नहीं सका। कुजदर में इसे घेरकर मार दिया गया।

बग़दाद की गद्दी पर अब उबयदुल्ला आसीन हुआ। हिन्दू घरों को जलाने, हिन्दू नारियों का अपहरण करने, बच्चों को सताने और लोगों को मुसलमान बनाने का भार उसने ‘इल्बघरी अल्बवाली’ को सौंपा। इसका अन्त अज्ञात है। इसे भी शायद शर्मनाक मौत ही मिली होगी, क्योंकि न तो किसी ने इसके गीत गाये और न ही कोई इसकी मौत पर रोया।

इसके बाद बग़दाद की गद्दी पर एक क्रूर और भयंकर व्यक्ति बैठा। इसका नाम था हज़्ज़ाज़। भारत पर पाप का धर्म-युद्ध छेड़ने के लिए इसने पहले सईद और बाद में मुज्ज़ा को भेजा। मुज्ज़ा एक वर्ष के भीतर ही मकरान में मारा गया।

अब भारत के भाग्य में एक नया मोड़ आया। अबतक अरबी लुटेरे एक पशु-सा आचरण करते थे। वे सिर्फ़ एक अवरोध के समान ही थे जो भारत की सीमा को नोचते-कमोचते थे। वे गाँव जलाते, खड़ी फ़सल नष्ट करते, झीलों में विष मिलाते, नहरों को नष्ट करते, पुलों को तोड़ते, स्त्रियों पर अन्याचार करते और लोगों को गुलाम बनाकर बग़दाद तथा दमिश्क के बाज़ारों में बेच देते थे।

ये थे लूट-पाट के ७५ वर्ष। अपराधी अरबी गिरोह भारत की सीमा पर पंजे मारते रहे। किसी भी शासक ने इस अरबी पशु को उसकी मोद तक नहीं खदेड़ा। किसी ने भी इस पशु का अन्त नहीं किया।

हिन्दुओं की यह एक पुरानी और परम्परागत बीमारी है, पर है बड़ी बुरी बीमारी। हम शत्रु को उसके घर तक खेद कर नहीं मारते। आज भी हमारी आँखें नहीं खुली हैं। आज भी हम ऐसा नहीं कर रहे हैं।

सीमा पर मँडराते शत्रु निहत्थे नागरिकों को सता-सताकर मुसलमान बना रहे थे। उन्हें अपने ही भाइयों से अलग कर, अपने ही भाइयों का, अपने ही खून का शत्रु बना रहे थे। इस प्रकार आक्रमण की सीढ़ी पर वे एक-एक पग धरते-धरते शनैः-शनैः आगे बढ़ रहे थे।

परिणाम सबके सामने है। एक छोटा-सा उपद्रवी पशु शैतान मुहम्मद कासिम के रूप में जवान हो गया। इस १७ वर्षीय शैतान ने अत्याचार की ओघी चला दी। “१ लाख हिन्दू स्त्रियों को कैद कर लिया, सिन्ध के ७० उप-शासकों (राणाओं) का पतन हो गया,” मीनार और मंच बनाकर मंदिरों को मस्जिद बना दिया, अतुलनीय सम्पदा लूट ली, आगजनी और लूट-पाट के अनाचार से सारा सिन्ध बंजर हो गया।

लूट-पाट की जो ठोस नींव मुहम्मद कासिम ने डाली, वह नींव हजार वर्षों तक फलती-फूलती रही। अब भारत के गले में यह एक स्थायी फाँसी का फन्दा बन गया है। फाँसी का यह फन्दा दिन-प्रतिदिन कसता ही चला जा रहा है और भारत अभी तक धर्म-निरपेक्षता की काल्पनिक और ठंडी छाँव में गहरी नींद सोया हुआ है। क्या मजाक है?

बबर, कुतुब अरबवासियों ने भारत में लूटने, जलाने, सताने, हरण करने, मुसलमान बनाने, व्यभिचार करने और गुलाम बनाने का जो आसुरी जाल फैलाया था वह दो प्रकार का था। एक ओर घोड़े, भाले, बरछे, तलवार, धनुष, तीर और मादक द्रव्यों से सुसज्जित बबर अरबी-गिरोह को भारत भेजा जाता था; दूसरी ओर पाप की फ़सल दमिश्क और बग़दाद के बाज़ारों भेजी जाती थी। अपहृत हिन्दू स्त्रियों और बालकों, लूटी हुई सोने-चाँदी की ईंटों और जवाहरातों, हिन्दू सरदारों के रक्त-रंजित सिरों, भग्न देव-प्रतिमाओं और हजारों मन्दिरों के ख़जानों के वहाँ ढेर लग रहे थे।

इस प्रबन्ध के अध्यक्ष खलीफा थे। वे इस व्यवस्था का संचालन करते थे। बीच में बैठा था उनका सहकारी, बगदाद का शासक। इस छोर पर सँहराता या लूटेरों का नायक जो भारत की सीमा पर चक्कर काटता था, लूट-पाट करता था और पाप की पैदावार को अपने खलिहान में भेजता था।

कराची से बगदाद और दमिश्क जाने वाली सड़क पर हिन्दू स्त्रियों, बच्चों और मनुष्यों की हड्डियाँ बिखरी पड़ी हैं। अनन्त यातनाओं से उनके प्राण लिये गए हैं। पाशविक लिप्ता, खूनी अत्याचार और अमानवीय यातनाओं ने उन्हें चूर-चूर किया है। इस मार्ग से अनेक जालाएँ, अनेक पग-इण्डियाँ भी निकली हैं। इन पगइण्डियों पर स्थित गृहों और भवनों में भारत की लूटी सम्पदा बिखरी पड़ी है। यह है उनकी हजार वर्षों की लूट। खलीफा की सभ्यता और आचरण को नापते हैं। श्री इलियट और डाउसन (ग्रन्थ १, पृष्ठ ४३६) — "सिन्ध-विजय के भी पूर्व हम प्रथम मुआविया (खलीफा) के अनुयायियों को मिस्र के शासक की लाश को मध्रे की नाश में भरकर और उसे जलाकर राख करते हुए पाते हैं। जब मूसा ने स्पेन जीता था उस समय खलीफा सुलेमान था। यह वही क्रूर पिशाच था जिसने सिन्ध विजेता को हत्या की थी। उसने मूसा को अपने देश से निर्वासित कर दिया था। वह अपने मक़द के दिन मक़का में व्यतीत कर रहा था। उसने उसके पुत्र की 'कोरडोवा' में हत्या करवा दी। उसका सिर काटकर मँगवाया और इसके पैरों पर फिकवा दिया। निराशा और पीड़ा से पागल पिता पर इस पिशाच के दूत ही-ही कर हँसते और ताने-कमते रहे।"

खलीफा की क्रूरता के ये उदाहरण हम नहीं, अरबी इतिहासकार प्रस्तुत कर रहे हैं। अरबी इतिहासकार इसी नैतिक नीचता के भी उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। वे क्यास्थान आपको प्राप्त होंगे।

खलीफा का सहकारी इराक-शासक भी अपने उस्ताद का एक ही चेला था। पृष्ठ ४२ पर सर एच० एम० इलियट हज्जाज का चरित्र-वर्णन करते हैं। इराक के सभी शानकों से ही नहीं बरन् लूटपाट और बलात्कार की मशीन चलाने वाले सभी व्यक्तियों से भी अनोखा इसका चरित्र था। वे कहते हैं— "क्रूर अत्याचारी हज्जाज नाम से तो इराक का शासक था पर वास्तव में वह उन सभी स्थानों पर शासन करता था जो प्राचीन परशिया के अन्तर्गत थे। इसके मन में और देशों की जीतने की लालसा जगी। उसने आज्ञा दी

और कुतइबा एक सेना लेकर काशगर तक घुस आया। ... यहाँ पर चीनी दूतों ने उन लूटेरों से एक समझौता किया ... ठीक यही घटना आज फिर घट रही है।

'बायोग्राफीकल डिक्शनरी' के 'अल् हज्जाज' शीर्षक निबन्ध में 'पेसक्यूअल डी गयानगोस' लिखते हैं— "कहा जाता है कि इस पागल नर-पिशाच ने अपने आदमियों द्वारा एक लाख बीस हजार लोगों को कटवाकर फिकवा दिया था। उसकी मृत्यु के बाद उसके अनेक जेलखानों में ३० हजार पुरुष और २० हजार स्त्रियाँ बन्द पाई गईं। यह निष्कर्ष पारसी स्रोत से है। इधर सुन्नी लेखक, उसकी इस निर्दयता के बावजूद भी, उसे न्यायी और निष्पक्ष ही बतलाते हैं।"

खलीफा का प्रमुख कर्ता-धर्ता इराक का शासक था। भारत पर उत्पात करने वाले बर्बर गुण्डों की लगाम इसीके हाथ में थी। इसके बारे में श्री एच० एम० इलियट कहते हैं— (पृष्ठ ४३३) — "इन क्रूर धर्मोन्मादी लोगों ने खुले आम अपना लम्पट जीवन विलासिता और कामुकता में होम किया था तथा इसी प्रकार के धर्म (मुसलमान) का इन्होंने चारों ओर प्रचार किया।"

स्पष्ट है कि इस विशाल बीभत्स मशीन को चलाने वाले सभी व्यक्ति वास्तव में असभ्य और जंगली ही थे। वे दिन-रात लूट, बलात्कार, यंत्रणा, नर-संहार और क्रूर-कर्मों में आसक्त रहा करते थे।

लूट और लम्पटता का विभाजन— इस बर्बर सेना का नायक लूटी हुई स्त्रियों और सम्पत्ति का पाँचवाँ भाग अपने पास रख सकता था। बाकी भाग उसे अरब भेजना पड़ता था। इसका विभाजन इराक के शासक और दमिश्क के खलीफा के बीच होता था।

पाप की पैदावार इस लूट और बलात्कार की भारतीय फसल को नियमानुसार १/४ एवं ४/५ भागों में बाँटने की मुसलमानी लूटेरों की यह परम्परा भारत में मुस्लिम शासन के अन्त तक चलती रही। विदेशी म्लेच्छ लूटेरों की दरवाजा तोड़कर भारत में प्रविष्ट होने और दिल्ली-आगरा आदि शहरों में अपनी स्थिति दृढ़ कर अत्याचारों की वर्षा करने की इस धातक प्रणाली की प्रशंसा में आधुनिक इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों के पन्ने-पर-पन्ने रंगे गए। इसे भारतीय एवं अरबी-फ़ारसी सभ्यता का अभूतपूर्व

और आश्चर्यजनक सम्मिश्रण माना गया है। कैसी अद्भुत सभ्यता है जो विश्वासपात, नूट, चोरी, आपजनी, बलात्कार, अप्राकृतिक सम्भोग, विनाश और नर-संहार को बढ़ावा देती है। मन्दिरों को मस्जिद बनाने में और लोगों को मार-मारकर मुसलमान बनाने में अपना गौरव मानती है।

बार-बार यह तर्क दिया जाता है कि भारत में रहने के कारण अरबी, पठान, बलोचीनियाई, पारसी, उजबेक और कज्जाक अवश्य ही अपने आप को भारतीय मानने लगे होंगे। ये लोग यह अनुभव नहीं करते हैं कि अपने आपको भारतीय मानना तो दूर रहा, इनके संक्रामक और धर्म-परिवर्तन-कारी स्वभाव ने विशुद्ध भारतीय लोगों की राज और देश-भक्ति की धारा को ही अपने भाइयों और देश के नाश के लिए मोड़ दिया है। वे स्वयं विदेशी बन बैठे हैं। यही कारण है कि धर्म-परिवर्तित भारतीयों का अधिकांश भाग आज भी तुर्कों, पाकिस्तान, ईरान और अरब को भारत की अपेक्षा अधिक निकट समझता है, यद्यपि भारत के प्राचीन पालने पर ये झुंते हैं। इसी ने इन्हें खिलाया है, सहारा दिया और बड़ा किया है।

यातना से धर्म-परिवर्तन कर हिन्दुओं के विशाल जन-समूह को धर्म-परिवर्तन के जादू से उन्हें उनके ही देश का द्रोही बना देने वाली अनोखी प्रणाली की यदि खोज करनी है तो हमें उस नर-पिशाच हज्जाज की माँद तक जाना ही पड़ेगा।

खलीफा और हज्जाज की कामुक लिप्सा के लिए लंका और भारत की नारियों का, भेड़-बकरियों की तरह बाँधकर, निर्यात किया जाता था। अरबी इतिहासकार बतलाते हैं कि ६११ ई० में लंका से एक जहाज चला। इसमें मृत व्यापारी तथा अन्य लोगों की अनाथ 'मुसलमान' स्त्रियाँ भरी हुई थीं। देवालय जाने देवालयपुर (कराँची का पूर्ववर्ती नाम) के निकट इस जनमान पर समुद्री डाकुओं ने हमला कर दिया। अभागी युवतियों का यह पार्सल अपने गन्तव्य स्थान तक नहीं पहुँच सका। खलीफा और हज्जाज बड़े निराश हो गये। इस बहाने की आड़ में हज्जाज ने दाहिर के पास एक घुष्ट और अपमानजनक पत्र भेजा। स्त्रियों के इस पार्सल का उत्तरदायी ठहरे सिन्ध के राजा को ठहराया। दाहिर का उत्तर था कि दूर समुद्र के हमले से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था।

यह अरबी वर्णन है। अरबी वर्णनों पर झूठ की कम ही सफेदी पोंती

हुई रहती है। इन पंक्तियों से प्रकट होता है कि लंका और भारत की अभागी अबलाओं को खरीदकर चुपचाप दमिश्क भेजा जा रहा था। मार्ग में इस जलपोत ने भारतीय वन्दरगाह पर लंगर डाला। आदत से लाचार अरबी लुटेरों ने कुछ और हिन्दू युवतियों को घेर-घारकर उठाने का प्रयास किया। इस अपमान से सीमा रक्षक उत्तेजित हो उठे और अपराधी अरबी गिरोह पर टूट पड़े। अपराधियों को मार-मारकर इन बेबस युवतियों का उद्धार किया। मगर हज्जाज, दाहिर के इस न्याय और मानवता के कार्य से जल उठा।

तत्कालीन अरबी लोगों की कामुक और विलासी दृष्टि लंका पर थी। अरबी इतिहासकारों के वर्णन इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। वे कहते हैं कि अरबी लोग द्वीप की नारियों के सौंदर्य के कारण लंका को जवाहरातों का द्वीप कहकर पुकारते थे। १२०० वर्षों तक उन्होंने भारतीय ललनाओं पर जो जुलूम ढाया वह इस बात को प्रमाणित करने के लिए काफी है कि भारतीय नारियों के प्रति भी उनका कामुक आकर्षण कम नहीं था।

(परवर्ती घटना-कम का वर्णन करने के पूर्व हम पाठकों को सावधान करना चाहते हैं कि भारतीय नगरों, मनुष्यों, नारियों और एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी के वर्णन के साथ अरबी इतिहासकारों ने खिलवाड़-सा किया है। अपनी अज्ञानता और कामुक ओछेपन के कारण इन्होंने उच्चारण और अक्षर-विन्यास पर कोई ध्यान नहीं दिया। अतः भारतीय शहरों और नगरों के नाम अरबी इतिहास में अजीब से हो गए हैं। शंका होती है कि दाहिर नाम उन्होंने गढ़ा है या यह मूल नाम का ही अपभ्रंश है। यही हाल उनके पिता के साथ भी हुआ है जिसे वे 'चाच' कहते हैं। संस्कृत में ऐसे नाम नहीं हैं। जब भारत का असली इतिहास लिखा जायेगा तब हमें इनके मूल नामों की गवेषणा करनी होगी। तबतक हमें इन्हीं नामों से काम चलाना होगा जिसे तोड़-मरोड़कर ये प्रस्तुत करते हैं।)

दाहिर की राजधानी अजोर थी। यह सिन्ध का एक प्रसिद्ध शहर था। इसका विशाल राज्य सारे सिन्ध में छाया हुआ था। वह चार शासकीय विभागों में बँटा हुआ था। पहले विभाग में नीरून, देवालयपुर (कराँची), लोहाना, लक्खा और सम्मा थे। इसके शासक बरहमनाबाद में रहते थे। (स्पष्टतः इसे ब्राह्मणपुर होना चाहिये) बुद्धपुर जनकन और

राजहून की पहाड़ियों से मकरान तक की देखभाल दूसरा शासक शिवस्थान से करता था। तीसरा शासक तलवादा एवं चाचपुर यानी क्रमानुसार अक्षतन्दा और पाबिया का नियंत्रण करता था। चौथे विभाग की राजधानी मुलतान (मूलस्थान) थी। बहापुर, कहर, आशाहर और कुम्बा इसके अधीन थे। इसकी सीमा काश्मीर तक थी। दाहिर स्वयं अलोर से करवान, कैकानस और बनारस (सिन्धु का अटक-बनारस) का शासन देखता था।

दाहिर एक न्यायी और शक्तिशाली हिन्दू राजा के रूप में विख्यात था। सिंध आज रेगिस्तान है। पर दाहिर के उदार और परोपकारी शासन-काल में यह अपनी सुन्दर झीलों, नहरों और उर्वरा भूमि के कारण विख्यात था। उसके सीमा-रक्षक लुटेरे अरबों गिरोह पर तीक्ष्ण दृष्टि रखते थे। वे उपद्रवियों की दण्ड भी देते थे। इससे हज्जाज को क्लेश होता था। क्योंकि अरबों दल भारतीय नागरिकों के शव पर उन्मुक्त नृत्य नहीं कर सकता था। इसलिए उसने भयंकर प्रतिशोध की सौमन्ध खाई थी।

अपने पूर्ववर्ती सरदारों से वह निराश हो चुका था। वे उसकी भयंकर काम-लिप्सा और लोभ की उत्तुंग ज्वाला को शान्त नहीं कर सके थे। अतएव उसने अपने रिश्ते के भाई और दामाद मुहम्मद कासिम को उस लुटेरी सेना का सरदार नियुक्त किया, जो भारत के सीमा मन्दिरों को मसजिद बना रही थी।

कासिम की उम्र तब सिर्फ १७ वर्ष की थी। इस छोटे शैतान की बातों और वायदों से उसके समुद्र को विश्वास हो गया कि वह सामूहिक व्यभिचार और बलात्कार की आशा अपने दामाद पर बाँध सकता है। अभाग्यो हिन्दू स्त्रियों के बड़े-बड़े वंडल भेजने की इसने शपथ खाई। लूट के बंटवारे का आधार भी १/५ और ४/५ निश्चित हो गया था।

बहते उबैदुल्ला फिर बुंदेल को देवालयपुर पर धावा करने भेजा गया। दोनों ही वही समा गये और उनके सिर वहीं दफन हो गये। ये दोनों ही अभियान समाप्त हो गए। उनकी जल सेना बिखर गई।

ठीक इसी समय बालिद खलीफा बने। हज्जाज के कहने पर उसने कासिम की सिंध की सीमा पर नियुक्त किया।

पैदाश और बुझसवारों की विशाल सेना लेकर कासिम सिराज की ओर बढ़ा। यहाँ उसने अनुरा अलबाद जान की प्रतीक्षा की। असंख्य लुटेरों की

एक बड़ी टोली लेकर वह कासिम से आ मिला। बड़े परिश्रम और बड़ी सूझ-बूझ के साथ इस अभियान की तैयारी की गई थी। छोटी-छोटी बातों का भी विशेष ध्यान रक्खा गया था। यहाँ तक कि प्रत्येक व्यक्ति को मूर्ई और धागा तक दिया गया था।

ऐसा ज्ञात होता है कि इस अभियान पर हज्जाज और बालिद के बीच एक सीधा-सादा व्यापारिक समझौता हुआ था। भारतीय धन और स्त्रियों की लूट के इस व्यावसायिक अभियान का ध्येय खलीफा करेंगे। बदले में उन्हें दुगुना प्राप्त होगा। शेष हज्जाज को मिलेगा। हज्जाज ने इन शर्तों को अविलम्ब स्वीकार कर लिया। उसे विश्वास था कि उसका शैतान दामाद अपनी लुटेरी सेना की सहायता से असीम सम्पत्ति बटोर लाएगा।

जान और कासिम की संयुक्त सेना मकरान होकर आगे बढ़ी। उस समय अफ़ग़ानिस्तान भारत का ही भाग था। इसका संस्कृत नाम अहिम-स्थान है। अतएव कासिम अफ़ग़ानिस्तान की ओर बढ़ा। पहला धावा कन्नाजुर पर हुआ। फिर ये अरमेल पर टूटे। हत्या और बलात्कार के 'छीन-झपट व्यापार' में भाग लेने एक-दूसरा लुटेरा दल ताबड़-तोड़ इनसे यहाँ आ मिला। इस दल का नेता भी एक मुहम्मद ही था। यह हाहून का पुत्र था। मगर भारतीय सीमा-रक्षकों ने इसे मार-काटकर धूल में मिला दिया। कम्बालि में उसे दफनाया गया। भारतीय कीड़े-मकोड़ों ने इसकी हड्डियाँ तक चट कर दीं।

विजित भूभाग के हिन्दुओं की भाँति-भाँति की पीड़ाएँ दी गईं। उन्हें मुसलमान बनाया गया। अपनी टुकड़ी में उन्हें भरती किया गया। उनको यह धमकी दी गई कि यदि उन्होंने दाहिर से लड़ाई नहीं की तो उनकी पत्नियों और पुत्रों को समाप्त कर दिया जाएगा। इन शैतानों ने खड़ी फसल जला दी, झीलों में विष घोल दिया। स्त्रियों से बलात्कार कर घरों को मटिया-मेट कर दिया। गाँवों में आग लगा मन्दिरों को मस्जिद बना दिया। रातों-रात मन्दिरों के ब्राह्मण पुजारी मुल्ला बन गये और कोड़ों की छाँव में उन्होंने कुरान पढ़ी। जहाँ वे पूजा किया करते थे वहीं अब वे नमाज पढ़ने लगे। इसलिए यह कटु सत्य है कि भारत और पाकिस्तान के प्रायः सभी मुल्ला और मौलवी परिवर्तित हिन्दू सन्तान हैं। आज जहाँ वे नमाज पढ़ते हैं, वहीं उनके पूर्वज पूजा किया करते थे।

कायर पुजारी—जलपौतों और सीमा निवासियों को अपने अधिकार में कर, कासिम देवालयपुर (कराची) की ओर बढ़ा। एक टुकड़ी ने आगे बढ़कर विशाल दुर्ग को घेर लिया। रसद-प्राप्ति में बाधा डालने के लिए स्थल मार्ग बन्द कर दिया गया। दुर्ग के मध्य में एक विशाल गुम्बदवाला मन्दिर था। उसके ऊँचे स्तम्भ पर गड़े लम्बे ध्वज-दण्ड के सहारे लहराता भगवा ध्वज मीलों दूर से दिखाई देता था। विशाल यंत्रों से दुर्ग पर अग्नि गोलों और पत्थरों की वर्षा प्रारम्भ कर दी गई। हिन्दू ध्वज-दण्ड टूटकर चूर-चूर हो गया। असंतुलित युद्ध के कारण हिन्दू सैनिकों ने दुर्ग त्याग दिया और मुसलमानों के व्यूह को चीरकर दूसरी ओर निकल गए।

तूफान की भाँति कासिम दुर्ग में प्रविष्ट हुआ। लूट, बलात्कार और हत्या का नंगा नृत्य प्रारम्भ हो गया। तीन दिन और तीन रात रक्त की धारा बहती रही। सारा दुर्ग ही मानो एक बृहत् बन्दीगृह हो गया हो। इसके सारे बन्दियों को निर्ममतापूर्वक पंगु कर दिया गया। उनके मद्दलों पर मुसलमानों ने अपना अधिकार कर लिया। प्रमुख मन्दिर जामा मस्जिद बन गया। अब उस ऊँचे स्तम्भ के ध्वज-दण्ड पर भगवा ध्वज के बदले अर्धचन्द्रयुक्त हरी पताका फहराने लगी थी।

फिर तो यह उनका स्वभाव ही हो गया। जहाँ कहीं भी ये मुस्लिम लुटेरे गए, प्रमुख मन्दिर को जामा मस्जिद में बदल दिया और मुख्य पुजारी को मुख्य मुल्ला बना दिया। अरबी इतिहासकारों की लेखनी के अनुसार यह कार्य बड़ी आसानी से हो गया था। उन्हें सिर्फ़ दो कार्य करने पड़े थे—
१. देव-प्रतिमाओं को चूर-चूर करना ; २. मीनार और मंच बना देना।

शाह हज्जाज खलीफा वालिद के पास विजय की सूचना भेज दी गई। वे दोनों हषबिग से झूम उठे। उन्होंने अपने युवा गिरोहपति को बधाई और आशीर्वाद भेजा कि सामूहिक नर-संहार और थोक कत्लेआम में खुदा तुम्हारी मदद करे। दोनों बड़े ही उत्साहित और आनन्दित थे। लाभ की मोटी रकम की राह में वे आँखें विछाए बैठे थे। पर यह लाभ की रकम भी क्या ? बन्दी युवतियाँ, अपटे हुए आभूषण और क्षत-विक्षत शरीर।

डकैती के इस घणित प्रयास के महत् लाभ की पहली क्रिष्ट ७१२ ई० में बसराद और दमिश्क के मार्ग पर थी। भारत के दुर्भाग्य का वह पहला वर्ष था। तब से निकर हजार वर्षों तक भारतीय सम्पत्ति और युवतियों का

बराबर निर्यात होता रहा। वीर मराठों ने विदेशी मुसलमान नासकों को जब तक निर्बीय नहीं कर दिया तबतक निर्यात का यह क्रम चलता ही रहा।

नये मुसलमानों की भरती से तरोताजा होकर, लूटी सम्पत्ति के साथ भयभीत-पीड़ित व्यक्तियों को हाँकता-बटोरता, कासिम का विशाल दल सिन्धु की ओर आगे बढ़ा। छः दिन की यात्रा के बाद वे नीरून पहुँचे। कुछ समय पूर्व ही नीरून-निवासियों ने बुदेल के अरबी दल का मलीदा बनाया था। उस समय हज्जाज को सन्धि करनी पड़ी थी। हार की लाज को अरबी छाती में छिपाए कासिम के झुण्ड ने नीरून को घेर लिया। नीरून निवासी इस टिड्डी दल को देखकर घबरा गए। नये मुसलमान तलवार की छाया में इस दल का मार्ग-निर्देश करते थे। इस दल की संख्या दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही थी। नीरून-निवासी भयभीत हो उठे। उन्होंने हज्जाज के पास अपना प्रतिनिधि मंडल भेजा। उसे सन्धि के नियमों का स्मरण दिलाया गया। पर नीचता के कीड़े हज्जाज ने इस मण्डली को बन्दी बना लिया। अत्याचारों और यातनाओं की आँधी में उन्हें मुसलमान बनाया गया और सैनिकों की निगरानी में कासिम के सेमे में भेज दिया गया।

कासिम की सेना नीरून से १ मील दूर मैदान में बुरी अवस्था में पड़ी हुई थी। न पीने को पानी था, न खाने को अन्न। बड़ी सफलता के साथ दुर्ग की सेना ने इन लुटेरों के रसद-मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था। ठीक इसी निर्णयात्मक घड़ी में नीरून का आतंकित प्रतिनिधि मण्डल अभाग्य कैदियों की भाँति कासिम के सामने उपस्थित हुआ। कासिम ने तुरन्त योजना बनाई। प्रतिनिधि मण्डल के ये नये मुसलमान अपने दुर्ग में वापिस लौटेंगे। सन्धिवार्ता की आड़ में कासिम के विश्वस्त कर्मचारी भी चुपचाप इनके साथ प्रविष्ट होंगे और अँधेरी रात में दुर्ग-द्वार खोल दिया जाएगा। इस मंडल के लोगों को बुरी तरह धमकाया गया। उनकी आँखों के सामने अन्य हिन्दुओं को ऐसी-ऐसी पाशविक और बीभत्स यन्त्रणाएँ दी गईं कि इनका रोम-रोम काँप उठा। इनका मानसिक सन्तुलन बिगड़ गया। दुस्वप्न की-सी स्थिति में उन्होंने दुर्ग-द्वार खोलना स्वीकार कर लिया। मध्य रात्रि में निश्चित समय पर कासिम की सेना दुर्ग में प्रविष्ट हुई।

एक ही अपर्यट्टे में दुर्ग-सेना का सकाया हो गया। निश्चित जीद में लीन नागरिकों को एकाएक घेर लिया गया। अब इस्लाम की मशीन चली। वही हुआ जो होना चाहिए था। जो मुसलमान नहीं बने उन्हें रात में नहला दिया गया। मुख्य मन्दिर जामा मस्जिद हो गया। सारा नगर इस्लाम के कसते हुए दृढ़ पंजे में तड़फड़ाकर शान्त हो गया। यह है मुसलमानों से ज्ञान्त-मन्त्रिवार्ता करने का परिणाम।

अब कासिम शिवस्थान की ओर मुड़ा। यह एक प्रमुख तीर्थस्थान था। यहाँ भगवान् शिव का एक विशाल मन्दिर था। सूदृढ़ और समृद्ध नगर से यह मन्दिर आवेष्टित था। नीरून के नये मुसलमानों की भरती से कासिम का दल और विशाल हो गया था। अब वे इस दल का मार्ग-निर्देश कर रहे थे। साथ ही कासिम के लुटेरों के साथ मिलकर इन्हें लड़ना भी था। मार्ग में बज्रदुर्ग पड़ता था। दाहिर बंशीय बज्र (बज्रसेन) इसका शासक था। नीरून के नये मुसलमानों को कासिम ने आज्ञा दी कि वे जाकर बज्रसेन को सूचित करें कि कासिम का क्रोध भयंकर है। लूट-पाट और नर-संहार के लिए यदि वह अपने शहर का समर्पण नहीं करेगा तो उसकी भी वही दशा होगी जो तुम लोगों की हुई है। मगर बज्रसेन को कहने की आवश्यकता नहीं थी। इस्लामी उन्माद में उफनते अनेक अरबी लुटेरों के कुकर्मों को उसने देखा-सुना था।

गुप्तचरों ने कासिम को सूचित किया कि बज्रसेन संग्राम के लिए तत्पर है। नगर के एक ओर मरुभूमि थी। घिर जाने के भय से कासिम ने उसी में तम्बू तान दिए। उसके पड़ाव के उत्तर में सिन्धु बहती थी। दोनों सेनाओं की छुट-पुट लड़ाई ने शीघ्र ही संग्राम का भीषण रूप धारण कर लिया। प्राचीनावेष्टित नगर में कासिम के यन्त्र अग्नि, गोले और पत्थर उगलने लगे। एक मप्ताह के बाद सहायता लाने के लिए बज्रसेन गुप्त रूप से दुर्ग त्यागकर सिन्धु से उस पार चला गया।

बज्रसेन बुधिया दुर्ग पहुँच प्राचीर के बाहर अपनी सेना सहित ठहर गया। अनुमान था कि कासिम पीछा करते हुए आएगा। दुर्ग-शासक एवं बज्रसेन ने निश्चय किया कि बाहर से बज्रसेन कासिम की सेना से युद्ध करेंगे और भीतर से उसे बराबर सहयोग और सहायता दी जाएगी।

इसी बीच कासिम ने बज्रनगर (बज्रर) एवं शिवस्थान को नष्ट-

भ्रष्ट कर दिया। नागरिक लूटे गए। भवनों में आग लगा दी गई। बन्दियों को मार दिया गया। स्त्रियों और बच्चों का हरण हो गया। सोने-चांदी की ईंटों, जवाहरातों और नकदी के ढेर लग गए। असीम सम्पत्ति लूटी गई।

इस समय तक कासिम की सेना विद्रोह की स्थिति तक पहुँच गई थी। क्योंकि कासिम का गिरोह अब विभिन्न विरोधी तत्त्वों का मिश्रण बन चुका था। इस गिरोह का एक बड़ा भाग उन नये मुसलमानों का था, जिन्हें अपना पवित्र, साधु और शान्त हिन्दू धर्म ही त्यागना नहीं पड़ा था वरन् अपने ही भाइयों को लूटना पड़ा, अपना ही खून बहाना पड़ा।

इन विगड़े सैनिकों को बहलाने, फूसलाने, पुचकारने और घूस देने के लिए कासिम ने लूट की खुली छूट दे दी। जो जितना धन और जितनी स्त्रियाँ लूट सके, लूट ले और अपने पास रख ले। यह लूट उनकी अपनी ही रहेगी। छीनने-अपटने की किलकारियाँ भरते और विनाश का कोलाहल मचाते हुए ये असभ्य जंगली कई दिन तक हाहाकार में ही-ही करते रहे। तब कासिम ने पुनः इन छुटे पशुओं की नाक में नकेल बाँधी और सारे क्षेत्र की बची-खुची सम्पदा लूट लाने का आश्वासन दिया। एक झाड़ू-सी सारे क्षेत्र में फेर दी गई और कासिम के पास पुनः 'अपार सम्पत्ति' एकत्रित हो गई। इस्लाम की रक्तिम-विजय और हिन्दूओं पर किए गये अमानुषिक अत्याचार का एक लम्बा चिट्ठा लिखकर कासिम ने हज्जाज के पास भेजा। साथ ही १/५ तथा ४/५ के अनुसार लूट का भाग भी हजारों हिन्दू स्त्रियों, बालकों और पुरुषों सहित, सूदृढ़ सुरक्षा में भेजा गया।

अब कासिम अपने लुटेरों के साथ सीरशाम (सीसम) की ओर चला। कुछ राजपूत शासकों के साथ बज्रसेन उसका मार्ग रोकने आगे बढ़ा। सीसम के मार्ग पर सिन्धु की सहायक नदी कुम्भ के तट पर नील्हम नगर था। नगर को बरबाद कर, सारे खाल पदार्थ लूटकर, नगरवासियों को भूखे मरने के लिए छोड़ दिया गया।

इनके अत्याचारों की भयंकरता देखकर एक जाट मुखिया काका कोतल के रोंगटे खड़े हो गए। कुछ व्यक्तिगत लाभ, बचाव और सहूलियत के लिए उसने कासिम के साथ सहयोग करना स्वीकार कर लिया। उसे कासिम के बराबर में आसन और प्रतिष्ठा का परिधान प्राप्त हुआ। कासिम ने उसके मस्तक पर पगड़ी बाँधी। काका कोतल के सहयोग का

परिणाम वही हुआ जो होगा था। उसे इस्लाम के खूनी दलदल में फँसाकर, उसकी आँखों के सामने ही, उसके भाइयों का संहार कर, उनकी स्त्रियों को लूट लिया गया और देखते-देखते नील्हम को तहस-नहस कर दिया गया। एक अरबी इतिहासकार ने लिखा है कि डाकुओं को इस लूट में इतने बस्त्र, एक अरबी इतिहासकार ने लिखा है कि डाकुओं को इस लूट में इतने बस्त्र, पशु, गुलाम और खाद्य पदार्थ प्राप्त हुए कि पड़ाव में गौ-मांस भरपूर हो गया।

अब कासिम ने गिरोह को सीसम-उर्फ 'सीरशाम' की ओर हाँका। दो दिन तक भयंकर युद्ध होता रहा। बखसेन ने अपने राणाओं के साथ वीर-शक्ति प्राप्त की। अब निःशस्त्र नागरिकों का संहार प्रारम्भ हुआ। फिर कुक्यों की बारी आई। कुछ लोग भागने में सफल भी हुए। उन्होंने सैलज और कन्धानेन के मध्य में स्थित बहिलपुर दुर्ग में शरण ली।

कुछ मुखिया इस नर-संहार और गौ-विनाश की भयंकरता सुनकर ही घरा गए। उन्होंने कासिम को एक हजार दिहरम वज्रन की चाँदी देनी स्वीकार की। बन्धक और जमानत के रूप में उन्होंने अपने आदमियों को शिवस्थान भेज दिया।

मन्दिर मस्जिद बन गए—इसी समय कासिम को हज्जाज का पत्र मिला। इसमें उसने उसे नील्हम लौटकर और सिन्ध पार करके दाहिर से युद्ध करने का आदेश दिया था।

उत्तर में कासिम ने लिखा—“सर्वाधिक रहमदिल अल्लाह ! के नाम पर, संसार के तेजस्वी और प्रतिष्ठित दरबार को, धर्म के सरताज, आजम और हिन्द के रत्न, युसुफ के पुत्र हज्जाज को विनयी दास कासिम का अभिवादन। अभिवादन के बाद निवेदन है कि उसका मित्र अपने सभी अधिकारियों, अनुचरों, गुलामों और मुसलमानों के साथ अच्छी तरह से है। काम सजी-भौति चल रहा है। मौज का दरिया बराबर बह रहा है। आपने तेजस्वी बिजेक को यह मालूम हो कि रेगिस्तान की रौदते, खतरनाक मोहों की पार करते हुए मैं सिन्ध में सीहून (सिन्ध नदी) के उस स्थान पर आ पहुँचा हूँ जिसे मिहरान कहते हैं। बुधिया के समीप, बघर (नील्हम) के ठीक विपरीत मिहरान का भाग ले लिया है। प्रतिरोधियों को बन्दी बना लिया गया है। बाकी भय से भाग गए हैं। अमोर हज्जाज का आदेश पाकर हम नील्हम लौट आए हैं। यह राजधानी के काफी समीप ही है। हमें आशा

है कि अल्लाह की अनुकम्पा, शाही सहयोग और तेजस्वी शाहजादे के सौभाग्य से काफ़िरो के सुदृढ़ दुर्गों को जीता जाएगा, नगरों पर अधिकार किया जाएगा और हमारे खजाने लबालब भरकर छलक जाएंगे। शिव-स्थान और सीसम दुर्ग ले लिये गए हैं। दाहिर के भतीजे, अधिकारियों और सैनिकों में कुछ को मार दिया गया है या फिर भगा दिया गया है। काफ़िरो को या तो मुसलमान बना लिया गया है या फिर खत्म कर दिया गया है। देव-प्रतिमाओं को चूर-चूर कर मन्दिरों के बदले मस्जिद आदि बना दिए गए हैं, मीनार खड़े किए गए, खूतबा पढ़ा गया, अज्ञान-मंच बनाया गया ताकि निदिष्ट समय पर भक्ति प्रदर्शित की जा सके। प्रति प्रातः-सायं सर्वशक्तिमान की तक्रबीर और नमाज पढ़ी जाती है।”

पत्र से दो बातें स्पष्ट हैं—(१) मुसलमान इतिहासकार जब यह दावा करते हैं कि इस्लामी विजेताओं ने मस्जिदों का निर्माण किया तो इसका मतलब सिर्फ़ यही होता है कि पूर्ववर्ती मन्दिरों में मीनार और चबूतरा आदि बना दिया गया, अज्ञान दे दी गई और मस्जिद का निर्माण हो गया। इसलिए हमारे इतिहासकारों को यह अनुभव करना चाहिए कि प्रत्येक मध्ययुगीन मस्जिद हकीकत में एक पूर्ववर्ती मन्दिर है। (२) कासिम ने दाहिर की सेना के साथ सीधी लड़ाई नहीं की। हमेशा सीधी लड़ाई से उसने कन्नी काटी है ताकि देश को कुचल सके, फसल जला सके, असहाय जनता को लूट सके, उन्हें मुसलमान बनाकर अपने गिरोह में मिला सके, उनकी पत्नी और सन्तानों को गुलाम बनाकर वेश्यावृत्ति के लिए बेच सके। इस प्रकार उसने सारे देश को चूसकर, सुखाकर, निचोड़कर दाहिर से सामना किया था।

अपने अत्याचारी अभियान को चालू रखते हुए कासिम एक असुरक्षित बिसय (ज़िला) के प्रमुख नगर पर टूट पड़ा। इसका प्रमुख मुखिया (मुख्या) कहलाता था। उसे, पूर्ण परिवार सहित, बीस अन्य मुखियों के साथ हाथ-पैर बाँधकर, कासिम के सामने प्रस्तुत किया गया। इस्लाम के कोड़े मार-मारकर, रोमांचकारी यातनाएँ दे देकर उन्हें पहले मुसलमान बनाया गया फिर कासिम के साथ सहयोग करने पर विवश किया गया। अब वे हिन्दुओं के शत्रु थे और अपने ही राजा दाहिर के विरोध में खड़े थे। बिसय मुखिया को कासिम ने बैत का राजा घोषित कर दिया। 'बैत'

दाहिर की राज्य सीमा में था। वही अरबों की युद्ध-कला थी। एक हिन्दू को दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर कायर का पक्ष ले लो, उसे इस्लाम का सहायक घोषित करो। सबसे पहले उसे तलवार की नोक पर मुसलमान बना लो। जीत की सारी भूमि उसे उपहार में दे देने का लालच दो। नीच-से-नीच कुकर्मों की सहायता के लिए उसकी पीठ पर रहो। इस प्रकार हिन्दुओं को आपस में ही लड़ाकर मरवा डालो। फायदा होता था इन विदेशी अपहरण-कारी मुसलमानों को। वे हिन्दू या नये मुसलमानों को बहकाकर छल-कपट से जीती हुई जमीन का एक बड़ा भाग अपने अधिकार में कर लेते थे। पहले या पीछे हर हालत में मुसलमानों के सहायक हिन्दू को भी मुसलमान बनना ही पड़ता था। दूसरे के पद, अधिकार और राज्य को किसी अनधिकारी हिन्दू का घोषित कर, हिन्दू के विरोध में हिन्दू को खड़ा करने की नीति का पालन अकबर, औरंगजेब, शाहजहाँ आदि सभी मुसलमान शासकों ने समान रूप से किया था।

अब 'विसय' मुखिया और इस्लाम का एक ही ध्येय और लक्ष्य हो गया। इसीलिए उसे मोर चित्रित छत्र, एक लाख दिहराम, एक आसन और एक सम्मानित परिधान दिया गया। ठाकुरों को सम्मानित परिधान और सजे-सजाए अस्त्र दिए गए।

इस प्रकार हिन्दुओं को धूस देकर, हिन्दू नाविकों को डरा-धमकाकर उन्होंने सिन्धु नदी पार की।

देवालयपुर (करांची) के पतन के बाद बन्दरगाह, दुर्ग-स्थित मन्दिर एवं वहाँ का शासक तीनों कासिम के चंगुल में फँस गये। वहाँ के शासक को मार-मारकर मुसलमान बनाया गया। कुछ ही दिनों में वह एक पक्का उद्घाट मुसलमान बन गया। नाम भी उसने अपना बड़ा आसान रखा। मौलाना इस्लामी। अर्थकर कट्टरता में उसने कासिम के गिने-बुने लुटेरों को भी साथ दे दी। उसपर कासिम का पूर्ण विश्वास हो गया था। कासिम ने इसे एक सीरियस के साथ दूत बनाकर दाहिर के पास भेजा।

दाहिर के दरबार में यह भूतपूर्व हिन्दू राजा के सम्मान में झुका तक नहीं। अब वह एक विदेशी मुसलमान मौलाना इस्लामी जो हो गया था। अपने धर्म से ही नहीं, शाधारण शिष्टाचार से भी इसने हाथ धो लिये थे। उसके व्यवहार से इतिहासकारों को यह मान्यता असत्य प्रमाणित

होती है कि भारतीय नगरों में स्थायी रूप से निवास करने के कारण अकबर, औरंगजेब, यहाँ तक कि बहादुरशाह जफर भी अपने आपको भारतीय कह सकते हैं। नहीं, इनमें से प्रत्येक विदेशी है। क्योंकि वे मक्का, ईरान और तुर्की को ही अपना देश और अपनी मातृभूमि मानते हैं। वहाँ के लोग इनके देशवासी और भाई हैं। यहाँ के हिन्दुओं और मन्दिरों को वे घृणा और द्वेष की दृष्टि से देखते हैं। अपने आपको भारतीय मानना तो दूर रहा, इन विधर्मियों के स्पर्श ने ही उन्हें अपने देश से छीनकर पराया बना दिया। अपनी ही मातृभूमि में वे अपने आपको विदेशी मानने लगे। मौलाना इस्लामी का निन्दनीय व्यवहार अपने आपमें इसका स्पष्ट उदाहरण है। ऐसे उदाहरण एक नहीं अनेक हैं, जबकि वह नीच कुछ मास पूर्व दाहिर का देश-भाई ही नहीं, उसका तुच्छ सेवक और अनुचर भी था।

दाहिर ने इस नवीन अर्धचन्द्री मौलाना को हुस्कार दिया। अपने आपको इस्लाम की लुटेरी सेना के सामने समर्पण करने की माँग दाहिर के सामने इन दूतों ने रखी थी। इस धृष्ट और अपमानजनक माँग के उत्तर में दाहिर ने सिर्फ उन्हें दरबार से बाहर निकाल दिया। जबकि हज्जाज ने न्यायोचित माँग के उत्तर में प्रतिनिधि मण्डल की भरपूर हज्जामत की थी।

हज्जाज की बुरी नज़र दाहिर के अन्तःपुर की ओर भी थी। कासिम पर वह बड़ी आशा भी लगाए हुए था। उसने कासिम की सहायता के लिए लुटेरों की एक और नई टुकड़ी भेज दी।

कासिम ने सिन्धु पुल के दूसरे छोर की निगरानी के लिए नीरूम के नये-मुसलमान विसय मुखिया, मुसाब, भट्टी ठाकुर, धर्म-त्यागी और अफगानी जाटों को नियुक्त किया ताकि दाहिर-पुत्र अपने दुर्ग से दाहिर की सहायता के लिए न आ सके।

इधर कासिम ने कई बार सिन्धु पर नावों का बेड़ा बनाने का प्रयास किया। पर हर बार दाहिर की सेना ने इसे सफल नहीं होने दिया। बाणों, पत्थरों और अग्निगोलों की वर्षा नावों के वेड़े को बनने के साथ-साथ ही छिन्न-विच्छिन्न कर देती थी।

दाहिर का अन्तिम युद्ध—बारम्बार इन प्रयासों के विफल होने पर कासिम ने एक दूसरा तरीका अपनाया। सिन्धु-पाट जितना विस्तृत नावों का पूरा बेड़ा उसने अपनी ओर के नदी के तीर पर निर्मित कर लिया और

फिर उसे नदी की धार में बहा दिया। उपाय सफल हुआ। अटपट दूसरे तट पर कीले ठोक नावों और बेड़ों का पुल बना लिया गया। घमासान संग्राम छिड़ गया। अत्यल्प संख्या में होने के कारण अन्ततः दाहिर-सेना को पीछे हटकर दुर्ग में शरण लेनी पड़ी।

इधर दाहिर का एक मन्त्री भयभीत हो उठा। उसने दाहिर को हर हासत में सन्धि करने की सलाह दी। इस कायरतापूर्ण उपदेश पर दाहिर सिह-सा दहाड़ उठा। उसने अपने सारे क्षेत्र को ही समरांगण में परिणत कर दिया। हिन्दुस्तान की शीरता उसके रोम-रोम में लहरा रही थी। अपनी मातृभूमि के सम्मान की इस निर्णायक घड़ी में छाती तानकर खड़े होने में अक्षम इस मन्त्री को उसकी कायरता का पुरस्कार दिया गया। दाहिर ने उसका सिर उतार लिया।

जंगली चीतों से आवृत एकाकी हाथी की भाँति दाहिर जूझ रहा था। उसकी अपनी ही प्रजा और सैनिक सामूहिक रूप से मुसलमान बनाए जा रहे थे। नये धर्म के नियमों ने उन्हें रातों-रात देशद्रोही बना दिया था।

क्रासिम बंट दुर्ग की ओर बढ़ा। यहाँ दाहिर के दो पुत्र जयसिम्हा और फूकी थे। दुर्ग से सुरक्षित दूरी पर क्रासिम ने खाई खोद उसमें अपना धन रखवा दिया। दाहिर का नदी-रक्षक पकड़ा गया था। भयंकर यातनाओं ने उसे भी मुसलमान बना दिया था। अब वह क्रासिम के लुटेरों का मार्ग-दर्शक था। 'बंट' दुर्ग से क्रासिम 'रावर' दुर्ग की ओर बढ़ा। मार्ग में उसने जयपुर में पूर्ण विनाश का खेल खेला, मन्दिरों को मस्जिद और लोगों को मुसलमान बना, स्त्रियों और बच्चों को बन्दी कर बाज़ी को काटकर फेंक दिया गया।

जयपुर के मध्य में एक सरोवर था। यहाँ दाहिर की जन-रक्षक टुकड़ी रहती थी। शत्रु-गति की गुप्त सूचनाएँ दाहिर को देना इनका कार्य था।

अपने सैनिकों की मुख्य सेना के साथ दाहिर सरोवर के दूसरी ओर कार्यरत में थे। क्रासिम की सेना सरोवर के इस ओर थी। नए मुसलमान रासिद की निगरानी में उन्होंने तीन मार्गों से घुसपैठ का प्रयास किया। कार्यरत के पीछे हिन्दवादी बसा हुआ था। इसे अपने अधिकार में कर लेने की सलाह उसने क्रासिम को दी। क्रासिम के पहुँचने के साथ ही हिन्दवादी मुस्लिमवादी में परिणत हो गया। सदा की भाँति लूट, हत्या और बलात्कार का बाजार गर्म हो उठा।

अब क्रासिम का विशाल गिरोह दो भागों में विभक्त था। एक भाग बाघवा नदी के तट पर स्थित जयपुर में था। दूसरा भाग या हिन्दवादी में। बीच काजीतात में थे दाहिर। उनके पुत्र उनसे दूर बंट दुर्ग में थे। सामरिक महत्त्व के सभी मार्गों पर क्रासिम की हेवान सेना का भयंकर आतंक छाया हुआ था। जिनके लिए न्याय, धर्म और इन्सानियत का कोई अस्तित्व ही इस संसार में नहीं था। लूट और बलात्कार के नीच-से-नीच कुकर्म भी उनके लिए महान् आदरणीय और अनुकरणीय उदाहरण थे।

संकट की भीषणता से राजा दाहिर का एक दूसरा मन्त्री भी भयभीत हो उठा। साहस के अवतार दाहिर ने उसे सचेत किया कि राजा और मन्त्री शान्तिकाल में विशेष सुविधा एवं अधिकार प्राप्त प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हैं। सिर्फ इसीलिए कि वे अपने देश, अपनी सम्पत्ति और अपने धर्म की रक्षा के लिए शत्रु से आमरण संग्राम के लिए तत्पर रहें।

दाहिर ने उसे बताया—“यह बड़े अपमान की बात है कि तुम शान्ति-सन्धि की बातें करते हो। यह शान्ति कैसी शान्ति होगी जबकि तुम्हारे शत्रु तुम्हारी स्त्रियों को लूटना, उन्हें गुलाम बनाकर अरब में बेचना, तुम्हारे महलों को नष्ट करना, तुम्हारे मन्दिरों को मस्जिद बनाना, और तुम्हें मुसलमान बनाकर तुम्हारे हिन्दुत्व को मिटाना चाहते हैं।”

दाहिर के ओजस्वी वचनों ने मन्त्री की बोलती बन्द कर दी।

निर्णायक युद्ध की तैयारी में दाहिर ने अपने सभी आश्रितों, स्त्रियों और बच्चों को रावर दुर्ग भेज दिया। क्रासिम की सेना से कुछ ही मील दूर अपना खेमा भी गाड़ दिया। पाँच दिन तक घमासान युद्ध होता रहा। एक के बाद दूसरी क्रासिम की सेना आती रही और दाहिर की सेना उसे मसलती रही। समय था जून, ७१२ ई० और स्थान था—बाघवा और सिन्धु का मध्यभाग।

अपने इस अभियान की सफलता के लिए क्रासिम ने कोई भी तरकीब उठा नहीं रखी। हिन्दू सेना को पथभ्रष्ट करने और बहकाने के लिए, स्त्रियों को मार-मारकर राजी किया गया। एक अरबी इतिहासकार के अनुसार—“जब इस्लाम की सेना ने घावा किया तब अधिकांश काफिर मार डाले गए। एकाएक सेना के बाईं ओर काफ़ी होहल्ला होने लगा। दाहिर ने सोचा कि यह शोर उसकी अपनी सेना में हो रहा है। उसने जोरों

से चीककर कहा—'इधर आओ, मैं यहाँ हूँ।' स्त्रियों ने तब अपनी बुलन्द आवाज में कहा—'हे राजा, हम आपकी प्रजा हैं। हम लोग इन अरब लोगों के बंगुल में फँस गई हैं। इन्होंने हमें बन्दी बना लिया है।' दाहिर दहाड़ के उठे—'भेरे जीवित रहते किममें इतना साहस है कि तुम्हें बन्दी बना सके' और उसने अपना हाथी 'मुत्तुमान' सेना की ओर हाँक दिया। कासिम ने जन्म-मोते फँकने वाले से कहा कि अब तुम्हारी बारी है। एक शक्तिशाली विस्फोट ने आदेश पाकर दाहिर के होदे पर अग्नि-गोला फँक दिया। होदे में आग लग गई। हाथी पानी की ओर भागा। बाणों और भालों की वर्षा, मुसलमानी तलवारबाजों के गर-संहार से सुरक्षार्थ अंग-रक्षकों ने दाहिर के चतुर्दिक एक घेरा डाल दिया। महावत ने किसी प्रकार अग्नि शान्त कूर, हाथी को बग में कर उसे एक बार फिर शत्रु की ओर हाँका। दाहिर हाथी के होदे पर से उतर एक थोड़े पर सवार हो भयानक रूप से तलवार का चार करते हुए, शत्रु-सेना को चीरते हुए भीतर प्रविष्ट हो गए। सहायकों से दूर, चतुर्दिक मतवाले अरबों से आवृत्त, देशभक्ति के आवेग में संग्राम करते हुए दाहिर ने शत्रु का भारी संहार किया।

राजा दाहिर अब थककर चूर हो चुके थे। उनके प्रत्येक अंग से रक्त की धारा बह रही थी। अन्ततः वीर शिरोमणि दाहिर समर-भूमि में सो गए। तलवार के चारों ने उनके मस्तक को खण्ड-खण्ड कर बिखेर दिया था। ७१२ ई० के जून महीने के बृहस्पतिवार को सूर्यास्त के समय हिन्दुत्व का गौरवशाली देवकी सूर्य अपनी पूर्ण गरिमा के साथ सिन्धु के पावन तट पर अस्त हो गया। इस वीर पुत्र को अपने अंक में लेने के लिए भारतमाता ने सिन्धु-तट को स्वच्छ एवं पवित्र करने के लिए अपनी लहराती लहर को भेजा। दूसरी लहर ने बड़े प्यार से दाहिर के शव को स्वच्छ किया। उसका रक्त जल में विलीन हो गया। आत्मा असौम में समा गई।

भारत ने अपने एक साहसी वीर पुत्र दाहिर को खो दिया। ७५ वर्षों के निरन्तर अरबी-युद्धों का यह परिणाम था। प्रत्येक बार लोगों ने सिर्फ यही सोचा कि ज़मीन ही तो ज़मीन गई है, थोड़े से ही तो मन्दिर मस्जिद बने हैं, कुछ ही हजार व्यक्ति तो इस्लाम में लुप्त हुए हैं। 'जरा', 'थोड़े' और 'कुछ' की इस सामान्य महनशीलता का पालन-पोषण ही हमारी एक भयंकर और घातक भूल थी।

जौहर—युद्ध अभी चल रहा था। दाहिर की अवशिष्ट सेना लड़ते हुए, अपना मार्ग बनाती हुई प्राचीरावेष्टित नगर रावर की ओर पीछे हट रही थी। अब कासिम की नज़र रावर पर थी। दाहिर-पत्नी रानी बाई ने जयसिम्हा के साथ रावर भी त्याग दिया। वे 'ब्रह्मनवादी' उर्फ 'बरहमनावाद' चले गए। दाहिर की दूसरी पत्नी मैनाबाई ने १५ हजार सैनिकों की सहायता से रावर की रक्षा का भार संभाला। दाहिर की बची हुई सेना भी इनसे आकर मिल गई थी।

कासिम बराबर रावर पर दबाव दे रहा था। उसने अपनी सेना को दो भागों में विभक्त कर दिया था। वे दिन-रात प्राचीरावेष्टित रावर पर पत्थरों और अग्नि-पिण्डों की वर्षा कर रहे थे। रक्त-पिपासु अरबों के हाथों में पड़ने के बदले अब मैनाबाई ने हिन्दू स्त्रियों के साथ जौहर का व्रत लिया। लकड़ी, रुई और तेल की एक विशाल चिता प्रज्वलित की गई—मुसलमानों के सहस्रवर्षीय शासनकाल में यह कहानी सैकड़ों बार दुहराई गई है। मुस्लिम पशुओं के लोलुप और कामुक स्पर्श के बदले हिन्दू वीर-गनाओं ने अग्नि का आलिगन करना ही उत्तम समझा।

कासिम शहर में प्रविष्ट हुआ। छः हजार हिन्दुओं को उसने मौत के घाट उतार दिया। प्रमुख मन्दिर मस्जिद बन गए। कुछ अवशिष्ट स्त्रियों और बच्चों को उसने बन्दी बना लिया। ३० हजार बन्दियों में दाहिर के दरबारी और सेवकों की सिर्फ ३० पुत्रियाँ थीं। दाहिर की नातिन जयश्री भी इनमें से एक थी। इन सभी को हज्जाज के पास बग़दाद भेज दिया गया।

दाहिर का राज-छत्र, लूटी सम्पदा और निर्यातित बन्दियों को हज्जाज ने खलीफ़ा के पास भेज दिया। एक निर्लज्ज अरबी इतिहासकार लिखता है—“बालिद ने अल्लाह का शुक्र अदा किया। कुछ हिन्दू स्त्रियों को उसने बेच दिया। कुछ उनके अनुचरों के बीच बाँट दी गईं। जब उसने दाहिर-पुत्री (नातिनी) को देखा तो वह उसके सौन्दर्य और आकर्षण से स्तब्ध रह गया। विस्मय से अभिभूत हो उसने अपनी अंगुली को दाँतों से काटा। अब्दुल्ला ने उसे पाने की इच्छा की। मगर खलीफ़ा ने कहा—‘हे मेरे भतीजे, मैं इस लड़की को अत्यन्त पसन्द कर रहा हूँ। मैं इससे इतना प्रभावित हूँ कि इसे मैं अपने लिए ही रखना चाहता हूँ।’ इसी लम्पटता की

प्रशंसा भारतीय इतिहासकार बड़े नींठे-मीठे स्वर में करते हैं। क्या मजाक है कि इसे वे अरबी और भारतीय सम्मता का बड़ा ही शिष्ट संगम मानते हैं।

तूट की इस कित्त के बाद ही कासिम का रावर-ख्वंस का समाचार भी आया। हज्जाज ने उत्तर दिया—“काफ़िरी को ज़रा भी मौका मत देना। तुरन्त ही उनके सिर कलम कर देना” यह अल्लाह का हुक्म है।” क्या यह एक विनिष्ट वंशित नहीं है? इसे अरबी इतिहासकारों ने लिखा है। इस एक वंशित ने हिन्दुत्व और हिन्दुस्तान के प्रति उनकी घृणित और कुत्सित मनोवृत्ति और खूनी षड्यन्त्र का पर्दा फ़ाश कर दिया है और हम आँखें बन्द किये बैठे रहे।

अपने बीर और देशभक्त पिता के छिन्न-विच्छिन्न और बरबाद राज्य को देखकर दुःखी और अनाथ जयसिम्हा ने अपने हृदय को पाषाण-सा बना लिया। उसने ख़ोर में अपने भाई फूफी, मटिया में चाच और बैकानन के शासक घबल के पास संवाद भेज दिया। पर ये स्थान एक दूसरे से काफ़ी दूर थे। साथ ही मार्गों पर शत्रुओं का आतंक छाया हुआ था। उस पर उन्हें स्वयं अपने नगरों और नागरिकों की रक्षा भी करनी थी—नर-संहारों से, बलात्कारों से, क्रूर अत्याचारों से और धर्म-परिवर्तनों से।

ब्रह्मनावाद को तहस-नहस करने की पूरी तैयारी कासिम ने कर ली। वह रावर से निकला। मार्ग में दो उपनगर थे, बहूर और दहलीला। दोनों उपनगरों पर वह दो महीने तक घेरा डाले पड़ा रहा। दिन-रात हमले होते रहे। अन्ततः दोनों उपनगर टूट गए। “सिर पर कफ़न बाँध, शरीर पर सुगन्धित द्रव्यों का लेप कर” दोनों टूट पड़े। तबतक जोहर की ज्वाला में मर चुके हिन्दू स्त्रियाँ मुस्लिम कसाइयों के पंजों से परे पहुँच चुकी थीं। उपनगरों को छानकर कासिम ने लूटी सम्पदा और गुलामों को नियमानुसार विभाजन कर बग़दाद और दमिस्क भेज दिया।

ब्रह्मनावाद की ओर बढ़ते हुए कासिम ने सिन्ध के सभी हिन्दू शासकों को धमकी भरा पत्र भेजा। उसने इस्लाम के सामने समर्पण करने की माँग की। दाहिर के पुत्रपूर्व सलाहकार शशिदेवर ने, कासिम के अत्याचारों और कगई कभी से भयभीत हो, आत्मसमर्पण कर दिया। धर्म त्यागकर वह मुसलमान बन गया। उपहार में उसे शत्रु नेता कासिम के सलाहकार

की प्रतिष्ठित पदवी प्राप्त हुई। दूसरे हिन्दू राजकुमार धारण के पुत्र नूबा को दहलीला में बन्दी बना लिया गया। फिर मुसलमान बनाकर उसे उसी स्थान का शासक भी घोषित कर दिया गया। फिर समवर्ती स्थानों पर आतंक फैलाने, असहाय नागरिकों से जज़िया वसूल करने, और उन्हें मौत को भी भात करने वाली पीड़ा देकर मुसलमान बनाने के लिए कासिम ने सेना की एक टुकड़ी को आगे ब्रह्मनावाद की ओर भेजा।

अब कासिम की सेना ने ब्रह्मनावाद को घेर लिया। नगर के चार द्वार थे। नगर का पूर्ण नियन्त्रण दाहिर-पुत्र बीर जयसिम्हा के हाथ में था। उसके प्रभावशाली निर्देशन में हिन्दू सेनाएँ प्रतिदिन चारों द्वारों से बाहर निकलकर विदेशी मुसलमानी गिरोह पर धावा करती थीं।

जयसिम्हा के गुरिल्ला युद्ध ने कासिम का रसद-मार्ग बन्द कर दिया था। इस संकट में कासिम ने विषय मुखिया को कुमुक और खाद्य-पदार्थ भेजने का समाचार दिया। नये मुसलमान विषय मुखिया अन्तर-मन से कभी पूर्ण हिन्दू था मगर इस्लाम के धर्म परिवर्तन की जादुई हड्डी ने उसे देशद्रोही बनाकर ही छोड़ा।

रक्तशुद्धि की उचित एवं रुढ़िवादी परम्परा के प्रति अन्धी-भक्ति होने के कारण हिन्दू महा-विनाश से भी शिक्षा नहीं ले सके कि नियम-कानून को ताक पर रखने वाले ये शत्रु उनकी कड़ियों को कमजोर कर रहे हैं। यदि उन्होंने इन अभागों हिन्दुओं को वापिस अपनी गोद में ले लिया होता, एक लुप्त हिन्दू के प्रतिशोध में कम-से-कम १० शत्रुओं का सफ़ाया कर दिया होता, तो भारत कभी भी अपनी स्वतन्त्रता नहीं खो सकता था और शत्रु को ‘जैसे-को-तैसा’ उत्तर मिल जाता।

छः महीने तक शहर पर घेरा पड़ा रहा। बाहर मुस्लिम सेना ने सारी खड़ी फ़सल जला दी। जलाशय विषाक्त कर दिए। अतएव चारों ओर से घिरे हुए नागरिक बड़ी संकटापन्न अवस्था में हो गए। परिस्थिति की गम्भीरता को देखकर, काश्मीर के राजा से सहायता की याचना के लिए जयसिम्हा ने कुछ अंगरक्षकों के साथ चुपचाप नगर त्याग दिया।

जयसिम्हा की अनुपस्थिति में कासिम ने नगर-व्यापारियों को आश्वासन और धूस देकर अपनी ओर मिला लिया। षड्यन्त्र में यह तय हुआ कि नित्य की लड़ाई से वापिस लौटने पर वे जब्तवादी द्वार में आँगन नहीं

लगाएँ। जहाँ कासिम का उन्मादी रोष एक छेद भी नहीं कर सका वहाँ बिस्वासघात फलीभूत हुआ। 'अल्ताह ओ अकबर' का गर्जन करता कासिम का लुटेरा गिरोह अबतवादी द्वार से अचानक उन पर टूट पड़ा। कासिम के भयंकर नरसंहार और पाशाविक व्यभिचार से धयासम्भव बचने के लिए नगर-निवासियों ने नगर का पूर्वी द्वार खोलकर स्त्रियों और बच्चों को भगा दिया।

इस बिस्वासघात का समाचार सुन दाहिर की दूसरी पत्नी ने ललकार कर अपनी सेना को नियन्त्रित करने का प्रयास किया। उन्हें अपने परिवार और अपने देश की सुरक्षा के पवित्र कर्तव्य का स्मरण दिलाया।

अल्ताह के नाम पर किए जाने वाली पाशाविक क्रूरता की आरी से बचने के लिए नगर की अधिकांश नारियों ने अपने आपको अग्नि की लपटों में समर्पित कर जोहर का पवित्र कर्तव्य निभाया। जोहर की इस ज्वाला में लादी और उसकी दो पुत्रियाँ भी समा गईं। सम्भवतः कासिम के संकेत पर ही अरबी इतिहासकारों ने यह गढ़कर लिखा है कि दाहिर की दो पुत्रियाँ सूर्यदेवी और परिमलदेवी बन्दिनी बना ली गईं। मगर क्यों?

नगर पर छोड़े से अधिकार करने से पूर्व कासिम की अवस्था बहुत ही खस्ता हो चुकी थी। वही कासिम एक अरबी इतिहासकार के अनुसार "निर्दयता के आसन पर बैठ गया और १६ हजार व्यक्तियों के खून से डमोम लाल हो गई।"

खून से भीगी घरती को देखकर सूर्य ने भी अपनी आँखें बन्द कर लीं। लाशों से पटे मन्दिर मस्जिद बन गए। नगर की सारी गोओं को काटकर उनका मांस कासिम के सर्वभक्षी गिरोह को परोस दिया गया।

सारा शहर छाना गया। पर दाहिर के परिवार का पता न चला। दूसरे दिन १ हजार व्यक्ति कासिम के सामने लाए गये। इनकी बड़ी-बड़ी दाढ़ियाँ थीं। सिर के केश मुँहे हुए थे। उनसे दाहिर के परिवार का पता पूछा गया। एक शब्द-उच्चारण करना भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उन्हें अमानवीय और पाशाविक पीड़ाएँ दी गईं। एक अरबी इतिहासकार के अनुसार उन पर "पैगम्बर साहब के कानून के आधार पर" भयंकर टैंकस लगाया गया और "जो मुसलमान बन गए उन्हें गुलामी, सम्पत्ति-कर और प्राण-कर से मुक्त कर दिया"। शेष लोगों से, जिनका घर पहले से ही

बुरी तरह लूट लिया गया था, उनकी भूतपूर्व स्थिति के अनुसार भारी टैंकस वसूल किया गया। अरब लुटेरे प्रत्येक घर में दल-ब-दल घुस गए। उन्होंने गृहपति को आज्ञा दी कि "प्रत्येक स्वस्थ अतिथि का एक दिन और एक रात तथा प्रत्येक बीमार अतिथि का तीन दिन और तीन रात मनोरंजन किया जाए।"

हज्जाज के आदेश पर कासिम की सेना एक नगर से दूसरे नगर को नष्ट करती, एक शहर से दूसरे शहर को लूटती, हिन्दू युवतियों पर बलात्कार कर उनका हरण करती, प्रत्येक घर को लूटकर उसमें आग लगाती, नरसंहार करती, लोगों को गुलाम और मुसलमान बनाती सारे सिन्ध पर छा गई।

दाहिर की राजधानी अलोर में उन्हें पुनः प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा। वहाँ दाहिर पुत्र फूफी का नियन्त्रण था। निराशा का एक शब्द भी कोई उच्चारण नहीं कर सकता था। कोई नहीं बोल सकता था कि दाहिर वीर गति प्राप्त कर उन्हें रक्षा-विहीन कर गए हैं। फूफी अपने पिता की ही भाँति वीर, दृढ़ और अटल था।

कासिम के गिरोह के ५० हजार गुण्डों ने अलोर के बाहर तम्बू तान दिए। नगर के बाहर एक रमणीय उपवन में एक उत्तम सरोवर और एक सुन्दर मन्दिर था। कासिम ने इसे तहस-नहस कर दिया। इधर अलोर के रक्षकों ने कासिम को विवेक से काम लेकर लौट जाने की चेतावनी दी।

कई महीने तक बेवस कासिम घेरा डाले पड़ा रहा। अलोर की जनता चट्टान-सी अटल रही। तब कासिम ने एक स्त्री को लादी जैसे वस्त्र पहनाए और उसे एक काले ऊँट पर बैठाया जैसाकि लादी का अपना व्यवहार था। फिर कुछ सैनिकों के साथ उसे नगर-प्राचीर के पास भेज दिया। वहाँ उसने ऊँची प्रावाज में कहा—“हे नगर वासियो! मुझे तुमसे कुछ आवश्यक बातें कहनी हैं। मेरे पास आकर सुनो।” प्राचीर पर कुछ प्रमुख व्यक्ति आए। उस स्त्री ने तब परदा उठाकर कहा—“मैं दाहिर पत्नी लादी हूँ। राजा मारा गया है और उनका सिर काटकर दमिश्क भेज दिया गया है। राज-ध्वज और राज-छत्र भी भेजा जा चुका है। अपने आपको बरबाद मत करो।” (क्या सुन्दर प्रलोभन है जिसमें हम आज तक फँसते चले आ रहे हैं) इतना कहकर वह चीख पड़ी और जार-जार रोकर शोक-भीत गाने लगी।

प्राचीर के व्यक्तिमों ने वीरता से उत्तर दिया—“तुम झूठ बोलती हो। इन चाण्डालों और गो-भक्षियों से मिलकर तुम एक हो गई हो। हमारे राजा जीवित है... तुमने अपने आपको इन अरबों से अपवित्र करा लिया है। हमारे राजा को अपेक्षा तुमने उनकी सरकार को पसन्द किया है।”

मगर विश्वासघात ने पुनः अपना सिर उठाया। ५०० अरबी लोगों के साथ एक अरबी अस्त्राफ्री बहुत दिनों से दाहिर की सेना में नौकरी कर रहा था। एक रात उसने कासिम के लिए नगर-द्वार खोल दिया और नगर काशिम के कब्जे में चला गया। इस प्रकार अपनी भलाई करने वाले हिन्दू की पीठ में एक अरब मुसलमान ने छुरा घोंप दिया। सम्य और सीधे-सादे हिन्दुओं ने कभी यह नहीं सोचा था कि उनकी सेना में एक भी मुसलमान का होना देशद्रोह और विश्वासघात के साँप को दूध पिलाना होगा।

कासिम तीन वर्ष तक लगातार सिन्ध को रौंदता रहा। उसकी मुलतान (मूलस्थान) की लूट काफ़ी सफल रही। यहाँ एक विख्यात सूर्य-मन्दिर था। जहाँ सोने से भरपूर ४० घड़े थे। इनका वजन १३,२०० मन था। सूर्य की प्रतिमा रश्मि स्वर्ण की बनी हुई थी। आँखें लाल चमकीले रत्नों की थीं।

इसके अतिरिक्त मोतियों की झालरें, अन्य बहुमूल्य हीरे, रत्न, जवाहरात और बेहिमाब खजाना प्राप्त हुआ। अरेबियन नाइट की अली-बाबा, कासिम, चालीस घड़े और चोरों की कहानी कासिम की मुलतान की लूट और अन्त में खलीफ़ा की आज्ञा से कासिम की मृत्यु पर ही आधारित है। इस लूट के बाद कासिम के पास हज्जाज का पत्र आया कि इस अभियान पर खलीफ़ा ने ६० हजार दिहराम खर्च किए हैं। वादे के अनुसार उसे इसका दुगुना खलीफ़ा को देना है। सूदखोरों की यह साधारण और सर्व-विदित बात है। मूलधन को वे चालाकी से खूब बढ़ा-चढ़ा देते हैं। सिन्ध की सम्पदा को लगातार लूट-लूटकर कासिम ने मूलधन का कई गुना अधिक मुलतान कर दिया था। इसके बावजूद तीन वर्ष के बाद भी धूर्त सूदखोरों की मूर्ख हज्जाज की रकम कासिम के जिम्मे सूद सहित बाकी थी। धन और शक्ति की निष्ठा के अनुरूप इन पिशाचों का लेखा-जोखा बराबर बढ़ता रहता था।

हज्जाज के पत्र में यह रहस्योद्घाटन होता है कि किस प्रकार भारत

के मन्दिरों को मस्जिदों में बदला गया है। यह पत्र उसने कासिम को भेजा था। सर एच० एम० इलियट ने अपने ग्रंथ के भाग १, पृष्ठ २०६-२०७ पर इस पत्र को उद्धृत किया है। हज्जाज लिखते हैं—“जहाँ कहीं भी प्राचीन महल, नगर, शहर हो वहाँ मस्जिद, मीनार और अज्ञान-मंच (धर्मोपदेश-मंच) बनाकर कुतबा पढ़ा जाना चाहिए।”

ब्रह्मनावाद की लूट की उथल-पुथल में एक स्त्री को आसानी से धन प्राप्त करने का एक अवसर मिला। कासिम के आदमी दाहिर-पुत्रियों की खोज बड़ी सरगमी से कर रहे थे। इस पर पुरस्कार भी था। राजा दाहिर की पुत्रियाँ सूर्यदेवी और परिमल देवी कहकर इसने वी युवतियों को कासिम के आदमियों के हाथ में सौंप दिया।

यह चारा कासिम के मनोनुकूल भी था। खलीफ़ा को यह कहने का साहस उसे नहीं था कि वह दाहिर परिवार को पकड़ने में सफल नहीं हो सका है। स्पष्ट है कि दाहिर-पत्नी लादी पकड़ी नहीं गई थी। अलाउ के नागरिकों ने उस स्त्री के छद्मवेश का पर्दाफ़ाश कर ही दिया था। आगे स्पष्ट हो गया है कि सूर्यदेवी नामी उस लड़की का नाम वास्तव में जानकी था। ये हिन्दू लड़कियाँ चाहे वे किसी भी परिवार की हों, प्रातः स्मरणीय हैं। अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करने में, अपने अधिक का सिर कुचलने में इन्होंने बड़ी वीरता और अनोखी प्रतिभा का परिचय दिया था। घोड़ों की पूंछ में बँधी कण्टदायक मृत्यु का इन वीरांगनाओं ने हँसते-हँसते आलिंगन कर अपना और हिन्दुत्व के अनादि गौरव का सिर ऊँचा किया।

लूट और गुलामों के झुण्ड के साथ ये वीर बालाएँ दाहिर की पुत्री के भ्रम में दमिश्क पहुँचीं। मार्ग में मुरझाई वीर बालाओं की सेवा शुश्रूषा कर उन्हें पेशी-योग्य बनाया। एक अरबी इतिहासकार के अनुसार, खलीफ़ा ने इन्हें अपने हरम में भिजवा दिया।

दो महीने के बाद इन्हें खलीफ़ा के सामने पेश किया गया। अगम मार्गों को पार कर हजारों मील दूर तक विदेशी राज्य में इन्हें पसीटकर लाया गया था। मार्ग की कठिनाइयों, गुण्डों की भीड़ और छीन-झपट ने इन्हें एक-दम असंतुलित कर दिया था। यह बात दो महीने के लम्बे समय से ही स्पष्ट हो जाती है।

ग्रंथ १ में पृष्ठ २०१ पर सर एच० एम० इलियट कहते हैं कि खलीफ़ा

बालिद ने दुभाबिए से बड़ी-छोटी का पता लगाने को कहा ताकि बड़ी का भोग पहले और छोटी का बाद में हो सके। बड़ी को अपने पास रखकर खलीफ़ा ने छोटी को बापिस हरम में भेज दिया। इतिहासकार के अनुसार, "खलीफ़ा उसकी सुन्दरता से मुग्ध हो गया था। उसने उसके कमनीय शरीर पर अपना हाथ रख, उसे अपनी ओर खींचा।"

वीर बाला की आँखों में खून उतर आया। रोष और प्रतिशोध की आग छधक उठी। उसकी इच्छात खतरे में थी। वह उस शतान के खेमें में थी जहाँ युवतियों के कौमार्य से खेला जाता था। उसका नाम जानकी था। मगर उसे दाहिर पुत्री सूर्यदेवी का रोल करना था। विश्वासघात, धोखे और कायरता से ब्रह्मनाबाद के पतन पर, दाहिर की वीर पुत्रियाँ अपनी वीर जननी के संग जौहर में अमर हो चुकी थीं।

विद्युत् गति से जानकी खड़ी हो पीछे हट गई। एक बाण से अपने दोनों गाल कासिम और खलीफ़ा का संहार करने पर वह तुली हुई थी। परिस्थिति को नापते हुए जानकी ने खलीफ़ा से पूछा—“यह कैसा बीभत्स नियम आप लोगों में है जिसके आधार पर आपके पास भोजने के पूर्व कासिम ने मुझे तीन रात अपने पास रखा। सम्भवतः अपने नौकरों की जूठन खाने का ही रिवाज आप लोगों में है। शायद इसी में ही आप लोग आनन्दित होते हैं।”

इन तीक्ष्ण शब्दों ने कामुक खलीफ़ा के हृदय को वेध दिया। विवेक को कामुकता के धूर्ने ने पहले ही धुंधला कर दिया था। वह इस अनजान युवती के तीक्ष्ण शब्दों से क्षण-भर में ही विवर्तित हो गया। “धैर्य की बागडोर उसके हाथ में छूट गई।” एक इतिहासकार ने टिप्पणी की।

उसी क्षण खलीफ़ा ने स्पाही और सेखनी मंगाकर एक आज्ञा-पत्र लिखा कि जहाँ कहीं जिस अवस्था में भी कासिम हो उसे ताजे काटे हुए साँड़ के चमड़े के भीतर सीकर तावड़-ताँड़ दमिश्क लाया जाए।

बहुत से अरब कासिम से जलते थे। अपने उद्दण्ड अपराधी जीवन में कासिम ने अपने शत्रु और मित्र की प्रतिष्ठा, प्रतिदि और जीवन को बिना मेदमाय के समान रूप से नष्ट किया था। उसकी मृत्यु के इस परवाने का पालन करने के लिए वे सभी उत्सुक थे।

उस समय कासिम बीकानेर के उत्तर में उधवपुर (उदयपुर) में था।

मृत्यु-दूत वहाँ जा पहुँचे। खलीफ़ा की अपनी पावितशाली टुकड़ी उस विशिष्ट संवाद-वाहक के साथ आज्ञा-पूर्ति के लिए थी। खलीफ़ा का आदेश-पत्र पढ़कर कासिम स्तम्भित रह गया। ऊँचे आसन से नीचे बसीटकर हाथ-पैर बाँध उसे साँड़ के कच्चे चमड़े में सी दिया गया। वह खूनी बण्डल पेटी में बन्द कर दमिश्क लाया गया। कासिम की लाश के पहुँचने की सूचना खलीफ़ा को दी गई। उसने अपने दरबारियों के साथ उन दो वीर बालाओं को भी बुलवाया जिनके संकेत पर पाप के अवतार शतान को अनन्त यात्रा पर भेजा गया था।

खलीफ़ा के हाथ में उस समय एक हरा पैघा था। पेटी खोली गई। कासिम के ठण्डे शरीर की ओर पैघे से संकेत करते हुए खलीफ़ा ने बड़े घमण्ड से लड़कियों को कहा—“मेरी पुत्रियों, देखो! किस प्रकार मेरे आदमियों ने मेरी आज्ञा का पालन किया है” चमड़े में बन्द कासिम घुट-घुटकर दो दिन में मरा था। यह क्षण उन दो हिन्दू बालाओं की महान् विजय का क्षण था। उनका जल्लाद उनके चरणों पर पसरा पड़ा था। पर उन्हें एक बार और करना था।

हृत्प्रभ खलीफ़ा को जानकी उर्फ सूर्यदेवी ने कहा—(पृष्ठ २११, इलियट और डाउसन)—“निस्सन्देह आपकी आज्ञा की पूर्ति हुई। पर आपका मस्तिष्क न्याय और विवेक से एकदम खाली है। साधारण समझ भी आप में नहीं है। कासिम ने हमारा स्पर्श तक नहीं किया था। मगर उस शतान ने हमारे राजा की हत्या की, हमारे देश को तहस-नहस कर दिया, हमारे सम्मान को नष्ट कर हमें गुलामी के दलदल में धकेल दिया। इसी-लिए प्रतिशोध और बदले के लिए हमने सूठी अफ़वाहों का सहारा लिया। उसने हमारे जैसी १० हजार स्त्रियों को बन्दी बना अपवित्र किया था, ७० शासकों को मौत के घाट उतार कर, मन्दिरों के बदले मस्जिद, मीनार और भाषण-मंच (Pulpit) बना दिये थे।”

खलीफ़ा बालिद सुन्न हो गया। इतिहासकार कहते हैं कि शोक की तीव्र लहर में खलीफ़ा ने अपनी हथेली काट लाई। वह अत्यन्त मूख बन गया था। शर्म, शोक और गलती का उसे इतना कठोर घाघात पहुँचा कि अन्ततः जनवरी ७१५ ई० में मर गया।

हज्जाज अपने भाईजान और दामाद की इस दर्दनाक मौत के सदमे से

६ महीने पूर्व ही जून ७१४ ई० में मर चुका था। हज्जाज पर खलीफा ने यह इल्जाम लगाया था कि उसी के कारण कासिम ने उन बालाओं को अपवित्र किया था।

कासिम, हज्जाज और खलीफा के तिहरे पतन पर परवर्ती खलीफा सुलेमान हतप्रभ हो चुका था। भयंकर परिस्थितियों में जकड़ी इन वीर हिन्दू बालाओं की अनोखी प्रतिभा, मानसिक-सन्तुलन, अदम्य साहस और महान् गौरव की भावना से वह घबरा उठा। उसने इन चमत्कारिक बालाओं से अपना कोई भी सम्बन्ध न रखने का निर्णय कर लिया। इसी-लिए उसने इन हिन्दू बालाओं को ढोड़ों की पूँछ से बाँध, दमिश्क की सड़कों पर घसीटकर मार देने की आज्ञा दे दी।

ऐतिहासिक शिक्षा—तत्कालीन अरबी इतिहास भ्रमात्मक हैं। नियमानुसार न तो उनके लेख ही स्पष्ट हैं न उन्होंने कोई तिथि ही दी है। यह भी निश्चित नहीं है कि वे दमिश्क की सड़कों पर घसीट कर मार डाली गई या दीवार में चिनवा दी गई। कुछ के अनुसार वालिद ने नहीं वरन् सुलेमान ने ही कासिम को पकड़वा कर मँगवाया और मरवाया था। इन सभी विरोधात्मक विवरणों को पढ़कर यही पता लगता है कि वालिद ने ही अपने अपमान का उत्तरदायी हज्जाज और कासिम को माना था। मगर सच्चाई के ज्ञान ने उसकी जान ले ली। परवर्ती खलीफा ने भयभीत हो इन वीर बालाओं को मरवा दिया।

इस बीभत्स, भयंकर और दुःखान्त विवरण में दाहिर का परिवार हिन्दुत्व और हिन्दुस्तान के वीर देशभक्तों के रूप में आकाश गंगा की भाँति चमकता है। अलौकिक विवेक जैसा चमत्कारी प्रदर्शन इन वीर बालाओं ने किया है वह संसार के इतिहास में बेजोड़ है। कृतज्ञ देश अपने इन वीरों और वीर-बालाओं को अवश्य स्मरण रखेगा।

शोक का विषय है कि इन वीर बालाओं के नामों को भी अरबी इतिहासकारों ने छुप करके ही प्रस्तुत किया है। दाहिर का भी संस्कृत नाम कुछ और होता चाहिए।

मुहम्मद कासिम की तीन वर्षों की विनाश-लीला में सारा सिन्ध बरबाद हो गया। अजोर, देवासपुर (कराची), बहानाबाद, बुधिया, नीरून, कीरान, शिव-न्याय, निरुम, मौलज, बहिलनूर, कन्ध-बेल, बैत, सागर,

रावेर, जयपुर, नारायणी, काजीजात, बहूर, दहलीजा, चानीर, बतिया, जालावती, मुलतान, महल सबन्धी, दन्दा करवाहा, बहरावर, लोहाना, मिहटा, ब्रह्मपुर, अजताहद, करूर, रोरी और उधवपुर आदि फलते-फूलते नगरों को जलाकर धुआँ देने वाले खण्डहर बना दिया गया। हरे-भरे खेतों, रमणीय झीलों से परिपूर्ण जगमगाते प्रान्त को कासिम की ऐतिहासिक गुण्डागर्दी ने रेगिस्तान बना दिया। आबादी के एक बड़े भाग को उनके देश और भाइयों से छीन कर मुसलमान बना दिया गया। नगर और दुर्ग राख हो गए। मन्दिर मस्जिदों में बदल गए।

इस भयकारी नाटक का गौरवशाली भाग वही है जिसमें भारत की दो वीर बालाओं ने इस नाटक के खेल-नायकों को पवित्र भारत-भूमि और इसके धार्मिक निवासियों पर शैतानी-चक्र चलाने के अनुरूप उचित दण्ड दिया। हमारे इस कृतज्ञ राष्ट्र को इन वीर बालाओं की याद सर्वदा रखनी चाहिए।

भारत को अपनी अभागी स्थिति और सिन्ध-विनाश से सबक सीखना है कि वह सीमा पर खड़े शत्रु को कभी भी सहन नहीं करेगा। मुसलमानी आक्रमण से हमें सीखना है कि संग्राम पूर्णरूप से संग्राम है और जो देश नर-संहार का नर-संहार से, पीड़ा का पीड़ा से, धर्म-परिवर्तन का धर्म-परिवर्तन से, नाखून का नाखून से और दाँत का दाँत से प्रतिशोध नहीं लेगा वह देश अपनी भूमि और अपनी जनता को खो देगा।

सबसे बढ़कर हमें अरबी फौजी अफसर अफ्रीफ को स्मरण रखना है जिसने अपने हिन्दू शरणदाता की पीठ में छुरा धोपा। अगर भारत को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में पनपना है तो दाहिर वाली भूल दुहराई नहीं जानी चाहिए।

(मदर इण्डिया, अगस्त १९६६)

महमूद गजनवी

तीन वर्ष तक लगातार सिन्ध पर अत्याचार करने वाले मुहम्मद कासिम का दर्दनाक अन्त देखकर पश्चिम एशिया के दुष्टों के होश फाख्ता हो गये थे। हाई सौ वर्ष तक उन्होंने अपने हृदय में हिम्मत और साहस का संग्रह किया और तब वे पुनः भारतीय सीमा पर पाशविक उत्पात मचाने के लिए तैयार हुए।

उन दो बौर हिन्दू बालाओं ने शैतान लुटेरे मुहम्मद कासिम से पाई-पाई बदला चुकाया था। “जैसा और जहाँ कहीं भी वह था” उसे ताजे सौदे के चमड़े में लीकर भारत से दमिष्क की कन्न में पार्सल कर दिया गया था। भारतीय सीमा रक्षक भी पीछे नहीं रहे। प्रायः सारी भूमि को उन्होंने फिर से अपने अधिकार में कर लिया। मगर अपहृत स्त्रियों, बच्चों और मृत मनुष्यों का एक लूनी-चिह्न भी कासिम अपने पीछे छोड़ गया था। इनके जीवित भाई-बन्धु न इधर के रहे न उधर के। कोड़े मार-मारकर, तलवार की धार के नीचे उन्हें मुसलमान बनाया गया था। एक ओर वे नए इस्लाम धर्म से घृणा करते थे, दूसरी ओर हिन्दू धर्म के मूल रूढ़िवादी ठेकेदारों ने उनके हिन्दू धर्म में वापिस लौटने का मार्ग ही बन्द कर रखा था। अपने और अपने पूर्ववर्ती भाइयों के बीच उन्होंने खाई-सी खोद दी थी। वे भाई विदेशी मुस्लिम बर्बरता के शिकार थे। उन्हें सहानुभूति होकर उन्हें भारत के शत्रुओं का पक्ष लेना पड़ा। शत्रुओं की संख्या और भी बढ़ गई। शान्तिप्रिय, धर्म-जीव और देश-भक्त भारतीय लुटेरे हो गए। उन्होंने जिस भी का दूध पिया था उसी का खून चूसने लगे। जिस घरती पर उन्होंने अपना सीसा था, उसी को वे कुचलने लगे।

अलप्तगीन के समय ६६१-६६६ ई० में पश्चिम एशिया के दुष्ट पुनः भारत को नोचने-खसोटने लगे। वह समानिद शासक के अधीन खुरासान प्रान्त का शासक था। समानिद राजा क्षत्रिय जाति के थे। इस्लाम के जहर ने इनके हिन्दुत्व को नष्ट करके उन्हें मुसलमान बना दिया था। अलप्तगीन के आठ वर्ष के शासन काल में उसके तुर्की सेनापति सुबुक्तगीन ने सीमा को नोचने, फसल को जलाने, असहाय रोती हुई स्त्रियों का हरण करने, और बिलखते बच्चों का हरण करके उन्हें नए मुसलमानी देशों के नए पतपते गुलामों के बाजारों में बेचने का भार लिया। तुर्किस्तान के बाद हिन्दू-अफ़ग़ानिस्तान का एक-एक टुकड़ा धीरे-धीरे इस्लाम के पेट में समा रहा था। इससे पहले ईरान, इराक़ और अरबस्थान आदि हिन्दू देश इस्लाम के पेट में हज़म हो चुके थे।

पंजाब और अफ़ग़ानिस्तान के एक भाग के शासक जयपाल को इस नए शत्रु का सामना करने में बड़ी कठिनाई हो रही थी। वे सेना के सामने न आकर चारों ओर लुटेरों की भाँति गाँवों को लूटकर, मन्दिरों को बरबाद कर, असहाय नागरिकों का हरण कर और खड़ी फसलों को जला कर अत्याचार के अनोखे उदाहरण प्रस्तुत कर रहे थे।

पिता अपने पुत्रों को गुणवान और चरित्रवान बनने की शिक्षा देते हैं। अपनी दुष्टता के अनुरूप सुबुक्तगीन अपने पुत्र को छोटी अवस्था से ही लूटमार की शिक्षा दे रहा था।

इन अपराधियों को दण्ड देने के लिए जयपाल ने अपनी सेना लामा-धन भेजी। इधर सुबुक्तगीन गजनी से चला। साथ में लायक पुत्र महमूद भी था। वह डकैती की शिक्षा में अभी तक ग्रेजुएट नहीं हुआ था। सदा की भाँति खान-पान का मार्ग बन्द कर दिया गया। युद्ध के सभी नियमों को तोड़ दिया गया। कोई नीच उपाय बाकी नहीं रहा। प्रदेश में जीवन-यापन असम्भव हो गया। मगर इस बार भयंकर पाला पड़ा। पाले की सर्दों ने दोनों पक्षों को शान्त कर दिया। उन्हें अपने-अपने स्थानों को लौटना पड़ा।

शीत-काल के बाद सुबुक्तगीन ने धूर्तता की। उसका एक प्रतिनिधि-मण्डल जयपाल के दरबार में लाहौर आया। अपनी कैद में पड़े हिन्दू नागरिकों को सता-सताकर मार देने की धमकी देते हुए उन्होंने जयपाल

से युद्ध का हरजाना भौंठा। सुबुक्तगीन की बर्बरता के उत्तर में जयपाल ने इस घृष्ट-मण्डल को सींखियों में बन्द कर दिया।

रस दूसरे युद्ध की शुरुआत हो गई। इसे तो सिर्फ एक जरा-सा बहाना ही चाहिए था। सुबुक्तगीन की सेना लामाघन के असहाय नागरिकों पर टूट पड़ी। दुर्ग, खेत और खलिहानों को जला दिया गया और सारी सम्पत्ति भाड़-पोछकर लूट ली गई।

दिल्ली, अजमेर, कन्नौज और कालिंजर के राजाओं ने संकट को धरखा। जयपाल की सहायता के लिए उन्होंने अपनी सैन्य-टुकड़ियाँ भेजी। कुछ धार्मिक सहायता भी दी। यह संयुक्त सेना लामाघन घाटी की ओर बढ़ी। इस सेना की राजभक्ति बिखरी हुई थी। सभी अपना-अपना प्लान प्रस्तुत कर रहे थे। उधर सुबुक्तगीन का पूर्ववर्ती विध्वंस मुंह फाड़े हुए था। दोनों ने इस सेना को प्रभावहीन कर रखा था। सुबुक्तगीन की १०० घुड़सवार सेना अत्याचारों की वर्षा कर रही थी। हिन्दू सेना को पीछे हटना पड़ा। पेशावर शत्रुओं के जाल में फँस गया। आज तक हिन्दू पेशावर का उद्धार नहीं कर सके।

मुस्लिम शब्दकोश में क्रतुह का अर्थ है—निर्धन नागरिकों को निचोड़ना। सुबुक्तगीन ने दो हजार सैनिकों के साथ टैंक्स कलक्टरों को पेशावर में नियुक्त किया। लूट की मीठी जबान है कर-वसूली। मुस्लिम राज्य में उस मीठी जबान की भाड़ में कोड़ों से मार-मारकर हाथ-पैर तोड़े गए और तब उन्हें सिक्कों की सघुर भनकार सुनाई दी।

२० वर्ष तक कर्मठ डाकू का जीवन व्यतीत करने के बाद ६६७ ई० में सुबुक्तगीन बलब लौट गया। पाप के दलदल और क्रूरता के खूनी कोषट में पलता-मूलता महमूद अपने बाप की भी भाड़ देता था। इस लिए उसने गद्दी की बसीपत अपने छोटे बेटे इस्माइल के नाम कर दी। जो दुराकाशी महमूद अपने पिता को धासन करते देखकर सुलगता रहता था, वह क्या कभी अपने अनुज की गद्दी पर देखकर सिर झुका सकता था? वह मैनापुर से गजबो करता। इस्माइल बलब से लौटा। भयंकर झड़पें हुई और इस्माइल बुरखन दुर्ग में बन्दी बन गया।

३० वर्ष की उमर में महमूद अन्तराष्ट्रिय चोर-दल का नेता हो गया। वह सिर्फ नाम मात्र की ही गजबो के राजाओं के अधीन था।

बेचक-चिह्नों से कुरूप महमूद साधारण ऊँचाई का था। स्थियों और बन्धों के रक्त से खड्ग रँगने वाला यह क्रूर कसाई एक बार दर्पण में अपना चेहरा देख भयभीत हो उठा। उस दिन के बाद से उसने कभी दर्पण में अपना मुँह नहीं देखा।

साम्प्रदायिक मुस्लिम इशतहारों ने इसे साहित्य और कला के महान् रक्षक और शिल्पी के रूप में चित्रित किया है।

पक्का मुसलमान—“गजनी का सुलतान महमूद” शीर्षक पुस्तक में अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के प्राध्यापक मुहम्मद हबीब इस दावे का खण्डन करते हुए लिखते हैं—“धन और शक्ति के लोभ से ही उसने भारत पर घावा किया था।” सुलतान का जीवन साफ़-साफ़ बतलाता है कि वह चाहे जो भी हो, भले गुणों का आदर्श रूप कदापि नहीं था, जैसाकि धर्मोन्मादी मुसलमानों ने उसे चित्रित किया है। उसका नैतिक चरित्र परवर्ती शासकों के समान ही था; न अच्छा, न बुरा। शराब, साकी और संग्राम में वह उन्हीं की श्रेणी का था। तुर्की गुलामों को अपने अधीन रखने के लिए वह उन्हीं के समान अपने अधीन अफसरों से छीना-भपटी करता रहता था। उसकी अनेक अनैतिक सन्तानें भी थीं (लाहौर का परवर्ती सेनाधिकारी अहमद—नियालतिजिन, मसूद आदि)।”

महमूद के बेलतुभोगी इतिहासकार अल-बरूनी ने लिखा है—“महमूद ने देश की प्रगति का सत्यानाश कर दिया था। नानी की कहानियों की भाँति उसने ऐसे-ऐसे चमत्कार दिखाए कि हिन्दू चूर-चूर होकर धूल के कणों की भाँति चारों ओर बिखर गए। उनके बिखरे हुए टुकड़ों ने मुसलमानों से घृणा करने की एक ऐसी प्रवृत्ति को जन्म दिया है जो कभी समाप्त नहीं होगी। इसी कारण जिन प्रदेशों को हम ने जीता है, उन देशों से बहुत दूर काश्मीर, बनारस आदि स्थानों में, अपने ज्ञान-विज्ञान के केन्द्रों को वे उठाकर ले गए। राजनीतिक और धार्मिक कारणों से इनमें और विदेशियों में बैर-भाव बढ़ता ही रहा है।”

हिन्दुओं के प्रति उसकी घृणा का कारण बलिन के स्वर्गीय विद्वान् डॉ० एडवर्ड साचू बतलाते हैं—“महमूद के लिए सारे हिन्दू काफ़िर हैं। वे सभी जहन्नुम भेजने योग्य हैं क्योंकि वे लूटने से इंकार करते हैं।” प्रो० हबीब के अनुसार महमूद भारत के किसी भी मुस्लिम राजा से

अलग नहीं था। इससे साफ है कि हिन्दू पसीने को पीने और हिन्दू धरती पर मोटे होने वाले इन सभी मुस्लिम राजाओं ने (प्रकबर तक) हिन्दुओं को इस्लामी अहन्तुम पहुँचाने में कोई भी कोर-कसर उठा नहीं रखी। सिर्फ़ इसीलिए कि हिन्दुओं ने अपना धन, अपनी प्रतिष्ठा, अपनी भूमि और अपने धर्म को लुटवाना स्वीकार नहीं किया।

यह साम्प्रदायिक दावा एकदम झूठा है कि महमूद साहित्य और कला का पोषक था। डॉ० साबू कहते हैं कि—“हाथी के पैरों से कुचलकर मरने से बचने के लिए, अपनी जान लेकर प्रेमर फिरदौसी को वेष बदलकर भागना पड़ा था।” प्रल-बहनी की अवस्था भी कोई अच्छी नहीं थी। महमूद के हाथों कहीं वह मसला न जाए इसलिए उसे सदा चाक-चौकन्ना रहना पड़ता था। इनके प्रतिरिक्त प्रमाणों को देखकर आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं कि डाकुसों का वह दलपति, जिसने जीवनभर सभ्यता और संस्कृति को पैरों से रौंदा है, क्या कभी साहित्य और कला का पोषक हो सकता है? इन विध्वंसकारियों के चारों ओर खुशामदी और चापलूस एकत्रित थे। इनाम के लालच ने प्रत्याचारों और अनाचारों को जादुई कविता का जामा पहना दिया और गंगा उलटी बहने लगी। साम्प्रदायिक मुसलमानों ने तान छोड़ी है कि मुस्लिम इतिहास के ये तमाम चापलूस मुस्लिम दरबार के महान् कवि और महान् इतिहासकार हैं।

प्रो० हबीब कहते हैं—“शेख सादी और उनकी गुलिस्ताँ के बारे में महमूद के विचार बड़े नीचे थे।” वे आगे लिखते हैं कि, “सुलतान महमूद की बड़ाई की अधिकांश कहानियाँ, दिल्ली और दौलताबाद के अर्ध-तुर्की शासनकाल में बड़ी गई थीं। इस्लामी “फतुह-अस-सुलतान” की ऊल-जलूल बकवासों में इन कहानियों का एक अच्छा उदाहरण पाया जाता है।”

सालनों लोभों की भाँति महमूद का विध्वंस कार्य भी अपने घर से ही प्रारम्भ हुआ। अपने पिता की अन्तिम इच्छा को ठुकरा, भाई को बन्दी कर, वह ‘समानंद’ शासक की ओर झुका। अन्तीय शासक के रूप में इसने समानंद शासन के प्रति राजभक्ति की शपथ खाई थी। अब उत्तराधिकार के सपने की आह में वह इस वंश को नष्ट-भ्रष्ट करने पर तुल गया। यदवत में काशगर के खान को मिलाया। लूटा हुआ राज्य दोनों चोरों के बीच बँट गया। सोमसय नदी, जिसका संस्कृत नाम अश्वक

नदी है, ६६६ ई० में विभाजक रेखा बनी और विजित राज्य टूटकर उनकी सीमाओं में जुड़ गया।

खलीफ़ा इस उगते काले सूरज की दोस्ती का इच्छुक था। उसने एक पाक-परिधान और अनेक उपाधियाँ इसे भेजीं—“सुलतान-अमीन-उल्-मिलमत यामिनुद्दीलाह” आदि। खलीफ़ा की आध्यात्मिक छत्रछाया में समानंद शासकों के स्थान पर अब महमूद बैठा था। प्रो० हबीब अब उसके नए इस्लामी कर्तव्यों पर ध्यान देते हैं (पृष्ठ २३)। “महमूद गज़नवी ने प्रतिज्ञा की कि वह प्रत्येक साल हिन्दुओं पर ‘जिहाद’ का कुठार चलाएगा। ३० वर्षों की लुटेरी जिन्दगी में उसने १७ बार हिन्दुओं पर धावा किया। तीस बार की सारी कसर उसने १७ बार में ही निकाल ली। इसलिए यह सत्य है कि उसने अपनी प्रतिज्ञा शत-प्रतिशत पूरी की।”

कासगर के खान और महमूद के बीच में फँसे हुए थे हिन्दू तातार। अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करने का बड़ा सुनहरा अवसर था। चक्की के दो दुष्ट पाटों ने उनके हिन्दू विश्वास को पीस डाला। जो मुसलमान नहीं बने वे नरक की भट्टी में जीवित ही भोंक दिए गए।

पहला डाका—दूसरे साल से महमूद ने भारत पर डाका डालने की शुरुआत की। इसके हाथों गुण्डागर्दी भी एक कला बन गई थी। चोरी, डकैती, लूटमार और गुण्डागर्दी को अन्तर्राष्ट्रिय स्तर पर पहुँचाने का सम्मान इसे अवश्य ही मिलना चाहिए।

१००० ई० में विशाल लुटेरे गिरोह ने सिन्धु नदी पार की। देहाती नगरों और असुरक्षित दुर्गों को लूटकर बन्दी स्त्रियों और बच्चों की एक फौज लेकर वह लौटा। हिन्दू बच्चों को मुस्लिम लूट की शिक्षा देनी थी ताकि बाद में वे अपने ही भाइयों को मार, अपनी बहनों की नूद में हाथ बँटा सकें। जिस भारतीय प्रदेश को इसने रौंदा वह रेगिस्तान बन गया। खून के दरिया में तैरकर वे ही जीवित रह सके जिन्होंने इस्लाम स्वीकार किया। सारे हिन्दू मन्दिर मस्जिद बन गए।

इस माल को पचाकर, नर-भक्षी महमूद १००१-२ ई० में पुनः लौटा। इस्लामी शपथ उसे पूरी करनी थी। पेशावर से थोड़ी दूर उसने अपना तम्बू तान दिया। २८ नवम्बर, १००१ ई० को मुस्लिम हमलावरों और जयपाल में संग्राम हुआ। हिन्दू सेना के १५ क्षत्रिय राजकुमार नर-राक्षसों

के हाथ पड़ गए। समर भूमि में पाँच हजार हिन्दुओं ने वीर-मति प्राप्त की। मालूम होता है कि यहाँ महमूद को निश्चित और निर्णयात्मक विजय प्राप्त नहीं हुई क्योंकि उसे सभी बन्दी हिन्दू राजकुमारों को मुक्त कर देना पड़ा। मुसलमानी विजय, अपवित्रीकरण और पीड़ामय खतरे से अपनी हिन्दू प्रजा को सुरक्षित रखने के ईश्वर-प्रदत्त कर्तव्य का पालन करने में अपने आप को असफल होता देख, पश्चात्ताप की पीड़ा से उदास जयपाल ने सच्ची क्षमि परम्परा के अनुसार अपने आप को अग्नि की चिता में समर्पित कर दिया।

इसके बाद दो वर्ष तक महमूद राज्य के पश्चिम भागों के विप्लव को दबाने और सिसतान (शिवस्थान) को अपने अधिकार में करने में ही व्यस्त रहा। महमूद ने अपना भारत के विरुद्ध जिहाद सदा शीतकाल में ही छोड़ा था। इससे वह अपने देश के कड़ाके की सर्दों से बचकर, भारत की गरम जलवायु में तपने आ जाता था।

१००५ ई० की शरद ऋतु में सिन्धु पार कर वह जेहलम में भेदा के सामने आया। यहाँ के राजा विजयपाल ने न तो कभी सुवृत्तगीत की चिन्ता की थी, न जयपाल की ही। सलाम करना तो दूर की बात थी, तीन दिन तक डटकर संग्राम चलता रहा। यह राक्षस-दल एक कोने में कस-कसा-या गया। चौथे दिन की दोपहर तक संग्राम अनिर्णीत ही रहा। भरता क्या न करता, महमूद ने सेना संचालन की बागडोर अपने हाथ में ली और दल की जोरों से हाँका। हिन्दुओं की सेना बीच से दो भागों में टूट गई। बची-खुची सेना ने प्राचीर के भीतर नगर में शरण ली। दुष्टों ने सारे अग्नि प्रदेश को कुचल डाला। जो मिले वे मारे गए या मुसलमान बना लिये गये। (भेदा नमकीन क्षेत्र के भीतर जेहलम के पश्चिमी तट पर है। प्राचीन कण्ठहर यहाँ दूर-दूर तक फैले हुए हैं। दूसरी ओर बुरारी के कण्ठहर हैं।) मध्य रात्रि में विजयपाल ने अन्तिम प्रयास किया और वीरमति पाई।

सफल डाकुओं की भाँति उसने सर्वदा नयी-नयी दिशाओं में ही डाका डाला था। शताब्दियों के परिश्रम और पसीने की जोड़ी हुई कमाई को वह हिन्दुओं से एक ही मटके में छीनता रहा। १००५-१००७ के जाड़े में वह सिन्ध पर लपका। प्रायः तीन शताब्दियाँ पहले मुहम्मद कासिम ने

सिन्ध को अधमरा कर ही दिया था। प्राचीन जनसंख्या को उसने मुसलमान बना दिया था। इस बार इस्लामी हमलावर मुल्तान की ओर मुड़े। यहाँ एक भूतपूर्व हिन्दू, दाउद के नये नाम से गद्दी पर था। महमूद ने प्राचीर से घिरे नगर को घेर लिया। फिर उसके क्रूर जबड़ों ने आस-पास के क्षेत्रों को चबाना प्रारम्भ कर दिया। विवश दाउद की बन्धकी के रूप में २०,००० दिहराम देने को तैयार होना पड़ा। मगर सन्धि-पत्र के पूर्ण होने से पूर्व ही महमूद को ताबड़तोड़ वापिस भागना पड़ा। उसे समाचार मिला कि उसका भूतपूर्व सहायक और कानूनी भाई ईसाक खान अश्वक सीमा पारकर उसके क्षेत्र में घुस आया है।

१००१-२ ई० के पेशावर-संग्राम में महमूद ने जयपाल के पौत्र, आनन्दपाल के पुत्र सुखपाल को बन्दी बना लिया था। नियमानुसार मार-मारकर इसका भी खतना कर दिया गया था। बाद में भेदा को जीतकर महमूद ने सुखपाल को भेदा का शासक नियुक्त कर दिया और उसका नाम शाह रखा। अपने परिवार पर हुए अत्याचारों के कारण सुखपाल इन असुरों से बहुत घृणा करता था। उसने अपने आपको हिन्दू घोषित कर दिया। महमूद के अफसरों ने सुखपाल को घोखे से बन्दी बना, महमूद के सामने प्रस्तुत कर दिया। डाकुओं की शिष्ट परम्परा के अनुसार सुखपाल के परिवार को लूटा गया और उसे जीवन भर जेल में सड़ा दिया गया।

भेदा को अपने खूनी पंजों में दबाए महमूद दक्षिण मुल्तान पर और इससे पहले आनन्दपाल पर धावा कर सकता था। हिन्दुस्तान का द्वारपाल अब आनन्दपाल था। यह महमूद से घृणा करता था। इस नर-राक्षस ने उसके पिता, पुत्र और प्रजा नृशंसता पूर्वक को चबा डाला था। कुछ अरबी इतिहासकारों ने एक बड़ी ही मजेदार कहानी लिखी है कि ई-लाक-खान की बढ़ती सेना से टकराते हुए महमूद की परिस्थिति बड़ी चिन्ताजनक हो गई थी। तब आनन्दपाल ने अपने इस शत्रु-लुटेरे महमूद की सहायता के लिए हिन्दू सेना की एक टुकड़ी भेजी। उन लोगों के अनुसार आनन्दपाल न उसे लिखा कि "मैं तुम्हें पराजित होते नहीं देख सकता। तुम्हारे हाथों पराजय की पीड़ा का मैं भुक्तभोगी हूँ। इसलिए तुम्हारी सहायता के लिए मैं अपनी सेना की शक्तिशाली टुकड़ी भेज रहा हूँ।" बाद की घटनाओं को जब हम तराजू पर तोलते

है तब ऐसा प्रतीत होता है कि अरेबियन नाइट के गल्पियों ने इस उल्हटी-सीधी कहानी को मनमाने ढंग से गढ़ा है। आगे आनन्दपाल ने महमूद का मुकाबला दूढ़ता से किया था। फिर भी कुछ देर के लिए यह मान भी लिया जाए कि उसने यह पत्र लिखा था तो यह बिना मतलब, एक गलती के लिए उदार बन जाने की हिन्दुओं की कमजोरी को ही दर्शाता है कि उन्होंने खून का बदला खून से और पत्थर का जवाब पत्थर से न देने की भयंकर भूल की।

क्रूर भाग्य—पृष्ठ २८ पर प्रो० हबीब कहते हैं, कि “सतलुज पार के एक मन्दिर में हिन्दुओं ने पीढ़ियों से धन चढ़ाया था। इस पंजाबी कोष और फलती-फूलती जमीन को अपने अधिकार में करने के लिए आनन्दपाल को हराता आवश्यक हो गया था।” इसी बीच हिन्दुस्तान के राज्यों ने आनन्दपाल के रुकावट डालने के महत्त्व को समझा। ऐसा प्रतीत होता है कि भेदा के ‘विजीराय’ कुछ अभिमानी और अमिलनसार स्वभाव के थे। इसी कारण महमूद की चढ़ाई के समय हिन्दुस्तान के राजा उस की सहायता के लिए नहीं दौड़े। धर्म-त्यागी, नए मुसलमान होने के कारण सुलतान के शासकों की सहायता के लिए कोई भी पड़ोसी राजा नहीं आया। सिर्फ आनन्दपाल ने ही महमूद का मार्ग रोकने का प्रयास किया था क्योंकि उसकी राज्य-सीमा सिन्ध में भी थी।

१००८ ई० की वर्षा ऋतु के बाद आनन्दपाल ही महमूद का शिकार बना। यह देखकर उज्जैन, कालिंजर, ग्वालियर, कन्नौज, दिल्ली और घग्घेर के राजाओं ने आनन्दपाल की सहायता के लिए सैन्य-टुकड़ियाँ भेजी। भारत पर कभी समाप्त न होने वाले अपने विध्वंसकारी आक्रमणों के निशाचरी अभियान पर एक बार फिर डाकू, चोर और अन्तर्-गोष्ठि लुटेरा महमूद चुपचाप निकला। उत्तरी भारत में चारों ओर डर की घंटी बज गई। गवखर जाति भी इस सामूहिक संकट का सामना करने को पंक्तिबद्ध हो पाई। प्रो० हबीब लिखते हैं कि सामूहिक संकट और आपसी सम्बन्धों की ऐसी विजली कौंधी कि “हिन्दू स्त्रियों ने अपने आभूषणों को बेचकर दूर-दूर से विक्रय-राशि भेजी। देश की गरीब बहनों ने बजार में भी खर्च चलाकर, मजदूरी करके देश की सुरक्षा में योगदान दिया।”

दुर्भाग्य से विभाजित राजभक्ति की खिचड़ी सेना कदम मिलाकर न चल सकी। आनन्दपाल अगुवा अवश्य था पर इतना प्रभावशाली नहीं था कि अपनी आज्ञा मनवा सके। मुस्लिम लुटेरों के प्रहार से उसका परिवार चूर-चूर हो गया था। सम्भवतः दुःख की इस परिपक्व अवस्था ने उसके प्रभाव को कम कर दिया था।

आनन्दपाल बाहिन्द उर्फ उन्द की ओर एक विशाल सेना के साथ बढ़ा। सेना की संख्या देख, महमूद लामने आने का साहस न कर सका। अपने पड़ाव के चारों ओर उसने खाई खुदवा दी। ४० दिन तक वह प्रतीक्षा करता रहा। इधर आनन्दपाल की सेना बढ़ती रही। नयी सैन्य टुकड़ियाँ आ-आकर मिलती रहीं। जिसने भी मुस्लिम लुटेरों के संकट को सुना, हिन्दुस्तान की सदा सिकुड़ती सीमा पर आ खड़ा होना उसने अपना कर्तव्य समझा।

हिन्दू सेना के इस विस्तार से आतंकित हो महमूद ने भिड़ने की ठानी। एक हजार धनुष-धारियों को उसने हिन्दू सेमों पर बाणों की वर्षा करने की आज्ञा दी। नंगे सिर और नंगे पैर हजारों वीर गवखरों ने समर-ध्वनि की गूँज से आकाश को वेध दिया, और मुस्लिम पड़ाव से जा टकराये। खाइयों को फाँद, तम्बुओं को पारकर वे मुस्लिम घुड़सवारों पर टूट पड़े। घोड़े और जिहादी सिपाही इस प्रकार गाजर-मूली की तरह कटने लगे कि देखते ही देखते, एक इतिहासकार के शब्दों में, “तीन से चार हजार मुसलमानों ने शहीदी शराब पी ली।”

ठीक उसी समय सदा की भाँति भाग्य ने अपना क्रूर और कपटो मुँह दिखाया। पश्चिमी एशिया के लुटेरों के हाथों दासता, हीनता और लूट के प्रहारों को सहते हुए हिन्दुस्तान ने लम्बी शताब्दियाँ व्यतीत की थीं। अब यह एक सुनहरा समय था जब डाकू सरदार अपनी पीठ पर लाठियाँ खाता हुआ भागता और उसके ऊँटों की पीठ हिन्दुस्तान की विजयी सेना पूरी तरह से तोड़ देती। मगर ऐसा होना नहीं था। गवखरों के सामूहिक आक्रमण के समय आनन्दपाल एक हाथी पर था। हाथी को छूते हुए एक अग्नि-पिंड विस्फोट कर उठा। पीड़ा से हाथी तड़पा, चीखा और भागा। सैन्य टुकड़ियाँ विभिन्न प्रदेशों से आई थीं। उनके अधिकारी मामूली पद के थे। भागते हाथी को देख, उन्होंने सोच लिया कि आनन्दपाल उन्हें

छोड़कर भाग रहा है। मतलब बिना किसी कारण के उन्होंने अपनी सैन्य दृष्टियों को पीछे हटने की आज्ञा दे दी। बड़ी उमंग से सामूहिक जमाव हुआ था। बड़े आराम से सामूहिक पलायन हो गया। जीतते-जीतते हिन्दू के हाथ हार गई। यह विजय एक महान् गौरवशाली विजय होती जो सम्भवतः इन दुष्टों को जड़-भूल से ही साफ कर देती।

लुटेरों के बचने हिन्दू सेना ही सिर पर पाँव रखकर भाग खड़ी हुई। महमूद ने जो भरकर इन भूखों को खदेड़ा। लगातार दो दिन और दो रात बर-बहार होता रहा। हिन्दू रक्त-धारा बहती रही। स्वप्न अच्छा है कि जब हिन्दू खून खत्म हो जाएगा तब ये आप ही भूखों मर जाएंगे। यह अन्तिम संयुक्त हिन्दू विरोध था। एक छोटी-सी भूल ने महमूद को दत्ता निषा।

यह महमूद नगरकोट के सम्पन्न और प्रसिद्ध मन्दिर की ओर दौड़ा। वह कोट काँगरा और भीमदुर्ग के नाम से विख्यात है। उत्तरी व्यास के तीर की एक पहाड़ी पर यह स्थित है। नगर सैनिकों से शून्य था। सभी कीमा पर खड़े होने चले गए थे। नगर का घिराव हो गया। नगरवासियों के साहस को तोड़ने के लिए, घातपात के क्षेत्रों और निवासियों को इस्लाम के नाम पर नष्ट किया गया। फिर भी नगर पर अधिकार करने में सात दिन लग गए।

दो सम्पत्ति महमूद को मन्दिर से मिली वह कहानियों की बात है। सन्तानियों से अपना पसीना बहाकर हिन्दुओं ने इसे जमा किया था। मुस्लिम शासकों ने उसे गजनों की राह पर बहा दिया। एक हजार ऊँटों को मन्दिर के बाहर खेनोबद्ध सड़ा किया गया और ढो-ढोकर हिन्दुओं का धन उन पर लादा गया। ओ० हबीब लिखते हैं कि यह महमूद की पहली शक्ति थी। स्वाभावतः उसकी भूख और विकराल हो गई। इस मन्दिर में महाभारत काल से ही धन एकत्रित होता आ रहा था। सात लाख सोने की दीवार, सात सौ मन सोने-चाँदी के पात्र, दो सौ मन चाँदी और बीस मन बहुमूल्य रत्नों को वह ढो ले गया।

महिन्द की इस दूसरी लड़ाई ने आनन्दपाल की प्रतिष्ठा को चूर-चूर कर दिया। फिर भी वह दृढ़ था। बिना उसे जीते महमूद का मार्ग दिशाहीन नहीं था। दूसरे वर्ष १००६-१० ई० में भारत की लूट को

हजम कर महमूद, पश्चिम एशिया के किराए के सिपाही और दुष्टों के विशाल दल को लेकर फिर आ घमका। उन्हें बहकाया-फुसलाया गया था कि जवाहरात, शराब, गुलाम और खूबसूरत औरतों में वे चुन कर खेलेंगे। जो चाहें सो करेंगे। कोई माई का जाल रोकने वाला नहीं होगा। इस बार भयंकर युद्ध सामने नहीं था। उन्हें सिर्फ हिन्दुओं का कत्ले-आम करना था; चाहे जहाँ कहीं भी मिलें। हिन्दुस्तान की सदा सिंकुड़ती सीमा पर स्थित एकान्त देहातों में मिलें या भीड़ भरे नगरों में। हिन्दू राजाओं को एक नए ढंग का वैरी मिला। वह स्त्रियों और बच्चों के संहार और बलात्कार पर विश्वास करता था। यह एक ऐसा प्रमोष हथियार था जो विशाल सुसज्जित सेना से भी हथियार रखवा लेता था। उनकी आँखों के सामने उनके सम्बन्धियों पर पाशविक प्रत्याचार होते थे। अपनी प्यारी असहाय प्रजा का हाहाकार आनन्दपाल से नहीं देखा जा सका। प्रतिवर्ष 'दो हजार गुलाम और ३० हाथी' पर उसने सन्धि कर ली।

महमूद के क्रूर दमन के विरोध में १०१० ई० में जंगली जाति, घोर ने विद्रोह कर दिया। पहाड़ी गुफाओं में डटकर मुकाबला हुआ। वहाँ चूँकि वे अजेय थे, महमूद बहाना बनाकर पीछे भागा। विजयोल्लास से घोरों ने पीछा किया। मैदान में कसाई-दल मुड़ा। एक-एक को चुन-चुन कर काट डाला गया। कुछ बन्दी भी बनाए गए। एक बन्दी का नाम सूरी था। उसके सामने बाक़ी बन्दियों पर ऐसे-ऐसे पाशविक प्रत्याचार किए गए, ऐसी भीषण यन्त्रणायें उन्हें दी गईं कि सूरी सह नहीं सका। विषाक्त हीरा चूस कर महमूद के सामने उसने अपने प्राण दे दिए।

१००५-६ ई० के घावे में उसे मुलतान को निचोड़ने का अवसर नहीं मिला था। ई-लाक-खान के कारण उसे सरपट वापिस आना पड़ा था। फिर कभी इतमीनान से इसे लूटने का उसने निर्णय किया था।

सोने की नगरी—मुलतान में एक प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिर था। हजारों वर्षों से दूर-दूर के तीर्थयात्री यहाँ श्रद्धांजलि अर्पित करने आते थे। इस प्रकार मुलतान के मन्दिर में कुबेर का धन एकत्रित हो गया था। मुलतान सोने की नगरी के रूप में विख्यात था। मगर अफ़सोस! महमूद गजनवी तीन सौ वर्ष देर से पहुँचा। पहले लुटेरे किये

ले लाती ही कर दिया था। इसका परवर्ती मुसलमान शासक (भूतपूर्व हेन्दू) इस लूटे देवस्थान का दोहरा उपयोग करता था। सर्वप्रथम यह देवस्थान बल्लूनी संताने का चारा बन गया। दूर-दूर के तीर्थयात्री यहाँ आकर अपनी थोड़ी धपित करने थे। वहाँ का शासक अब मूर्ति-रक्षक नहीं, मूर्ति-ध्वजक था। दूसरा उपयोग काक-भगोड़े का-सा था। जब भी शासपास के हिन्दू-शासक मुलतान को पुनः हिन्दुस्तान में मिलाने के लिये सैन्य का संघर्ष करते थे, वह देव-प्रतिमा को चूर-चूर कर देने की धमकी दे देता था। इस कोरे सहम जाते थे।

सन् १०१०-११ ई० में महमूद के दुष्ट दल ने मुलतान को एक बार फिर लूटा। घनाचार के मूल्य पर नगर बिक गया। कहा जाता है कि— "धनार्त्थियों (मुसलमानों) को सिर्फ प्रसन्न करने के लिए ही कुछ लोगों के हाथ-पैर काटकर फेंक दिए गए और बाकी लोगों को चीर-फाड़ दिया गया।" स्पष्ट है कि मध्य युग में भारतीयों को भीषण यन्त्रणा दे कर रक्तोन्मत्त बनाया जाता था।

सन् १०११-१२ ई० में पंजाब में स्थानेश्वर तीर्थयात्रियों का एक प्रमुख देवस्थान था। यहाँ चक्रधारी विष्णु का एक प्राचीन 'चक्रस्वामी' मन्दिर था। घायाचार की पराकाष्ठा से आनन्दपाल महमूद का गुलाम-सा हो गया था। एक इतिहासकार के अनुसार महमूद ने आनन्दपाल को स्थानेश्वर की लूट का प्रबन्ध करने की आज्ञा दी कि गुण्डे गिरोह के कष्ट निवारणार्थ मार्गों पर दुकानें लगाई जाएँ। खान-पान की पूरी व्यवस्था हो। स्वयं आनन्दपाल का भाई मार्ग-निर्देश करे। अनुमान लगाए कि इन स्वागतकर्ता व्यापारियों और दुकानदारों पर क्या बीती होगी। इस कड़ाई-गिरोह के लिए संसार की कोई भी क्रूरता, पीड़ा और यन्त्रणा साधारण बात थी, और बिना कारण भड़कना उनका स्वभाव था। दो हजार अंगरक्षकों के साथ आनन्दपाल का भाई उनके साथ हुआ। राग का कैसा कठोर खेल था! मगर भाग्य को दोष क्यों दिया जाए? भाग्य तो हमारे ही अपने कर्मों का परिणाम है। जैसा कर्म वैसा फल। हमारे अनेक कर्मों में तो एक कर्म "अहिंसा परमोधर्मः", स्वादू में मोठी पर अन्धकार में कड़वी दवा सिद्ध हुआ जिसके कारण वीर प्रसू भारत में नपुंसक पैदा होने लगे। फिर भी वची-बुची वीरता के रूप अभी भी

हमें देखने को मिल जाते हैं। शक्ति का सिद्धान्त सनातन है। दुर्बल शरीर को रोग नष्ट कर देता है। वे भारतीय पहरेदार जिन्हें मुस्लिम लुटेरों से भारत की रक्षा करनी थी, अन्तर्दृष्टि लुटेरों के गाइड थे ताकि वे पूर्ण सुरक्षित होकर भारत को जी भर लूट सकें, छीन सकें, और भारत की इज्जत से मनमाना खेल खेल सकें।

मुलतान के सूर्य मन्दिर की भाँति स्थानेश्वर का चक्र-स्वामी मन्दिर भी कुद्वेर-गृह ही था। शताब्दियों से तीर्थयात्री वहाँ धन बरसाते रहे थे। कोषागारों की परखने की महमूद की दृष्टि चोर-डाकुओं के समान ही पੈनी थी। स्थानीय दुर्ग-रक्षकों ने उसका दृढ़ विरोध तो किया मगर मुस्लिम यन्त्रणा की ताड़ ने उन्हें उल्लाड़ फेंका। मन्दिर को भाड़-पोंछकर लूटा गया। असीम धन के साथ चक्रपाणि की मूर्ति को भी महमूद गजनवी ने गया। आज भी वह प्रतिमा गजनवी के घुड़दोड़ मैदान में खड़ी पड़ी है। "कभी गजनवी प्राचीन हिन्दू सभ्यता का केन्द्र था। आज वह विख्यात हिन्दू देव-प्रतिमाओं की कब्रगाह है।

हमारे विदेशी राजदूतों का यह सांस्कृतिक कर्तव्य है कि वे इन बहु-मूल्य प्राचीन कलाकृतियों को खोजकर उन्हें वापिस भारत लाएँ।

रत्नों, मोने-चाँदी की ईंटों और बहुमूल्य वस्त्रों के अतिरिक्त महमूद के साथ "नौकरों और गुलामों की बड़ी भारी भीड़ भी" गई। कोई भी आसानी से अनुमान लगा सकता है कि 'भीड़' की इन अभागि स्त्रियों और लोगों को न जाने कितनी यन्त्रणाएँ, पीड़ा, निरादर, अपमान और निराशा का सामना कर पश्चिम एशिया के दास-बाजारों में सामानों की भाँति बिकना पड़ा होगा।

आनन्दपाल, उसका भाई और अनुचर वर्ग भीतर ही भीतर सुलग रहे थे। उनकी आँखों के सामने ही उनके भाइयों की यन्त्रणा और अपमान के ऊखल में कूटा गया था। उस दबी आग की झलक हमलावरों को भी मिल रही थी। क्योंकि जब सफलता के आनन्द और आवेग के हवाई घोड़े पर सवार हो महमूद ने पूरब की ओर कूच कर लूट बटोर लाने की ठानी तो मुस्लिम अफसरों ने उसे समझाया की कि वे दूर पूरब की ओर बढ़ेंगे तो उन्हें आनन्दपाल तथा अन्य हिन्दू राजाओं की दया पर निर्भर होना पड़ेगा। अनिच्छापूर्वक महमूद ने बिन-लूटे भारतीय कोशों की ओर

नीलुप दृष्टि डाली, एक लम्बी ठंडी साँस लीची और पीठ फेर ली।

सन् १०१२-१३ ई० : इस बार अपनी छीन-भपट यात्रा में भारत की ओर नज़र न फेर महमूद ने बरीचिस्तान को धर दबाया। फिर इस्लाम के आध्यात्मिक और भौतिक प्रधान खलीफ़ा से खुरासान के उन ज़िलों का अधिकार माँगा जो खलीफ़ा के अधिकार में थे। सूद के रूप में प्रसिद्ध राजनगर समरकन्द की भी माँग की। खलीफ़ा घोर में नहीं आया, प्रसिद्ध राजनगर समरकन्द की भी माँग की। खलीफ़ा घोर में नहीं आया, तो महमूद उबल उठा। उसने समाचार भेजा—“क्या आप चाहते हैं कि मैं एक हजार हाथियों को लेकर आपकी राजधानी में प्रवेश करूँ?” उस समय शक्तिशाली भारतीय हाथी मुस्लिम हृदय को घरा देते थे। इन हाथियों के नाम से ही खलीफ़ा के छक्के छूट गए। अपनी छीन-भपट यात्रा में महमूद इन हाथियों को भारत से हाँक लाया था। खलीफ़ा ने चुपचाप इसकी माँग पूरी कर दी। तब इसने अपने धर्म-प्रधान खलीफ़ा के पास समा-याचना का एक टुकड़ा कागज़ भेज दिया।

स्थानेश्वर की लूट से आनन्दपाल को गहरा सदमा पहुँचा। मुसलमानों से शान्ति-सन्धि का उसे प्रच्छा सबक मिला था। महमूद की पवित्र स्थानों की वार्षिक लूट से नष्ट होते हुए भारत की रक्षा करने में अपने को धर्मसे था, वह दुःख, पीड़ा, और सदमे से मुक्त हो गया। आनन्दपाल की मृत्यु ने महमूद के एक विनीत सहायक को छीन लिया। उसका पूरा प्लान गड़बड़ा गया। आनन्दपाल का पुत्र त्रिलोचन पाल दुर्बल मस्तिष्क का व्यक्ति था। अपने प्राणों के मूल्य पर वह महमूद की सहायता के लिए राजी था। मगर भारतीय नागरिकों और शासकों ने मुस्लिम शान्ति-सन्धि का प्रत्यक्ष प्रतिफल भोग लिया था। उन लोगों ने अब विरोध का ही निर्णय किया। अतः त्रिलोचनपाल के बदले शासन की बाग-और उसके पुत्र भीमपाल के हाथों में दे दी गई।

और भीमपाल—भीमपाल ने आनन्दपाल की नीतियों को उलट दिया। उन सभी अपमानजनक सन्धियों को उसने तोड़ दिया जिन्हें उसके दास ने विवश होकर माना था। महमूद को उसने खुले खेल के लिए ललकाया। टेम्पु भेजना बन्द कर दिया। अधीनता के शारे चिह्नों को उखाड़ फेंका। अपने राजपरिवार की खोई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने और अपने देश के सम्मान पर लगे कर्ज को अपनी रक्त-धार से धोने-

पोंछने के लिए वह कटिबद्ध हो गया। लाहौर के इस गवैले हिन्दू शिशु शासक को कुचलना महमूद के लिए आवश्यक हो गया था।

१०१३ ई० के शरदकाल में महमूद गज़नी से चला। मगर सर्दों की भयंकरता के कारण उसे रुक जाना पड़ा।

१०१४ ई० की वसन्त ऋतु में हमलावरों का विशाल दल भारत की ओर बढ़ा। महमूद के बढ़ने को रोकने के लिए भीमपाल ने मार्गसा घाटी को उचित समझा। यह घाटी जेहलम के तट पर बालानाथ की पहाड़ियों में थी। इसकी ठाल खड़ी और गहरी थी। मार्ग संकीर्ण था। चुनाव उत्तम था।

भीमपाल के प्रोजेक्सी नेतृत्व से प्रभावित होकर कुछ हिन्दू राजाओं ने अपनी सैन्य टुकड़ियाँ भी भेजीं। मुस्लिम छल-कपट से अनजान भीमपाल ने तब महमूद के दुष्ट दल से खुले मैदान में न्याय-युद्ध करने का निर्णय कर लिया। मूर्ख हिन्दू यह भूल गए कि काँटे से काँटा निकलता है। जैसे को तैसा उत्तर देने की वैदिक परम्परा के त्यागने से ही आज यह दुर्दशा हुई। मुसलमान गिरोह ने हिन्दू विरोध को विफल कर दिया। भागती सेना का एक भाग बालानाथ पहाड़ियों के निम्न दुर्ग में जा छिपा। दूसरा भाग भीमपाल के साथ काश्मीर की ओर भाग गया। निम्न दुर्ग का घिराव हुआ। रसद मार्ग बन्द हुए। दुर्ग समर्पित हुआ। नागरिक संहार की रक्तिम गाथा, दुर्ग-रक्षकों का कल्लेआम, धर्म-परिवर्तन, मस्जिदीकरण, बलात्कार, व्यभिचार, अनाचार, अत्याचार, हाहाकार और उन्मादी नारे दुहराए गए। मुसलमान लूटते रहे, हिन्दू लूटते रहे। अब महमूद भीमपाल की खोज में चला। पर उसने सघन-वन में मार्ग भूल जाने और लूट जाने का खतरा मोल नहीं लिया। इस बार भीमपाल का पीछा छूट गया।

भीमपाल से महमूद की हार—१०१५ ई० की सदियों में महमूद ने भीमपाल को लूटने से इन्कार करने की सजा देने के लिए पुनः प्रयाण किया। ऐसी बात नहीं थी कि उसने अपनी धन-लिप्सा, मूर्ति भंजन और क्रूर मैथुन पर विजय प्राप्त कर ली थी। उसे अनुभव हो गया था कि जिस ओर भी वह निकलेगा उसे धन के ढेरों की प्राप्ति होगी। इस बार उसने भीमपाल को बंदी बनाने और काश्मीर की देव-प्रतिमाओं को लाने

का निश्चय किया।

इस बार उसने मोहाकोट दुर्ग के समीप, काश्मीर घाटी से होकर निश्चयने का प्रयास किया। मगर तूफान-वर्षा ने राह रोक दी। नगरों के अधाव में लूटे क्या और खाएँ क्या? प्रकृति ने सफल घिराव कर दिया। मोहाकोट दुर्ग से लगातार दूधों और पत्थरों की वर्षा हो रही थी। भारतीय धर्म को हजम करके मोटे होने वाले इस खूंखार मुस्लिम डाकू को अपने जूते ही खाने पड़े। इस बार हिन्दू सेना ने उसे पीछे धकेल दिया। अपने प्रयत्न में असफल होकर चुपचाप खाली हाथ उसे गजनी लौटना पड़ा।

सन् १०१६ ई० : इस हार की क्षति-पूर्ति के लिए उसने इस बार ख्वाराज्म पर दाँत गड़ाया। ख्वाराज्म का शासक उसका बहनोई था। नाने मुस्लिम शासक अपनी कूरता, सम्भोग-वृत्ति और व्यभिचार के लिए विख्यात और घृणा के पात्र है। यही हाल ख्वाराज्म के शासक अब्दुल-अब्बास मामुन का था। निकाह के बाद साल भर में ही वह एक उपद्रव में मारा गया। उपद्रव को कुचलने के वहाने महमूद ने कूच किया। हजार-अस्य दुर्ग में कुछ हुआ। ख्वाराज्म उनके राज्य में मिला लिया गया। उसकी बहन मँह देखती रह गई।

स्पष्ट है कि हजार-अस्य संस्कृत शब्द सहस्रअस्य का ही बिगड़ा रूप है।

सन् १०१८ ई० : मौनसून का अन्त था। भीमपाल को सजा देनी थी। लूट की प्यास भी तेज हो गयी थी। गिरोह को विशालतम होना चाहिए। अतएव नाने पश्चिम एशिया में ढोल पीट दिया गया कि इस बार महमूद ने उपजाऊ जमीन को बंजर करने और उन मन्दिरों को लूटने की योजना बनाई है जिनके स्वप्न वह बराबर देखता आ रहा था। लूटेरों में हलचल मच गई। भारत को लूटने की सुनहरी आशा से खुरासान में लेकर तुर्किस्तान तक के बीस हजार बंजर जंगली और अपराधी जमा हो गए। भारत के विनाश, लूट, ध्वंस, और नरसंहार में एक लाख छोमोन्मादियों की सहायता करने थे २० हजार भी महमूद के हरे भंडे के नीचे कतार बाँधकर खड़े हो गए। इनके चेहरों पर सब प्राचीन हिन्दू संस्कृति का एक चिह्न भी बाकी नहीं था।

त्रिलोचनपाल और भीमपाल अभी तक महमूद से जहाँ-तहाँ तलवार बजा उठते थे। लगातार मुस्लिम हमलों ने उनकी सेना को बुरी तरह मथ दिया था। मुस्लिम ललकार से लोहा बजाने के लिए अब सेना की भरती पुनर्विभाजन, पुनर्गठन और प्रशिक्षण अनिवार्य हो गया था।

महमूद के दुष्टदल और उसकी आतंक कला से भयभीत होकर काश्मीर के राजा ने शान्ति-सन्धि कर ली। महमूद के लूटेरे दल की अग्रिम टुकड़ी को सकुशल गंग-सिन्धु के मैदान में उतार दिया गया। सारे क्षेत्र को कुचलते, बरबाद करते, लूटते, पाटते मुपतखोरों के इस टिहूरी दल ने २ दिसम्बर, १०१८ को यमुना पार की। बुलन्दशहर का घिराव हो गया। स्थानीय शासक राय हरदत्त ने एक हजार लोगों के साथ आत्मसमर्पण कर खतना करवा लिया। बुलन्दशहर के एक-एक मन्दिर को मस्जिद बना दिया गया और लूट की सम्पत्ति को ऊँटों पर लाद दिया गया।

अब महमूद महाबन की ओर बढ़ा। यहाँ का राजा राय कुलचन्द कठोर धातु का बना हुआ था। धने-बन के बीच वह दुष्टों के सामने आ डटा। डटकर मुकाबला हुआ। आत्म-समर्पण और धर्म-परिवर्तन से मृत्यु को श्रेयस्कर समझ, अपनी पत्नी और पुत्र के साथ उसने अपनी छाती में कटार भोंक ली।

मथुरा का मसौदा—यमुना के दूसरी ओर पवित्र प्राचीन नगरी मथुरा थी। इसके चारों ओर पत्थर की प्राचीर थी। दो द्वार नदी की ओर खुलते थे। नदी के दोनों ओर एक हजार मन्दिर थे। सभी लोहे की कीलों से जकड़े हुए थे। नदी के किनारे-किनारे धारा में भाँकते विशाल, भव्य, ऊँचे, कई मंजिले महल चौड़े और ठोस खम्भों के सहारे खड़े थे। नगर के मध्य में सभी महलों से बड़ा और मजबूत एक विशालकाय मन्दिर था। मुस्लिम इतिहासकार इसकी भव्यता का “न तो वर्णन करने में समर्थ है न खाका खींचकर पेश करने में ही। जनसंख्या और भवनों की भव्यता में मथुरा नगर अद्वितीय था। मानव वाणी इसके ऐश्वर्य का वर्णन करने में असमर्थ थी।” शोक! आज मथुरा एक भग्न प्रेतिमा है। महमूद और परवर्ती शासकों ने इसे इतना लूटा, चूसा और निचोड़ा कि इसका सारा वैभव सूख गया।

प्रत्येक विदेशी मुस्लिम शासक ने एक शहर से दूसरे भारतीय शहर को लूटने के इतिहास और कुछ भी नहीं किया, फिर भी, इतिहास की बर्तमान पाठ्य-पुस्तकों ने उन्हें भारत में शहरों, मस्जिदों और असंख्य मकबरों के निर्माण का खेव दिया है।

मथुरा सुरक्षित था। पड़ोस की सारी सेनाएँ या तो काटकर फेंक दी गई थीं या उन्हें बन्दी कर लिया गया था। कोई विरोध नहीं था। उस समय नगर में लाखों नागरिक और हजारों तीर्थयात्री थे। अपनी लूट-खसोट के लिए महमूद मुक्त था। उसने आज्ञा दी कि प्रत्येक मन्दिर लूट-खसोट के लिए महमूद मुक्त था। उसने आज्ञा दी कि प्रत्येक मन्दिर की अग्निपिण्डों और मशालों से जलाकर राख कर दिया जाए। प्रो० हबीब कहते हैं, "मालूम होता है कि ईश्वरों से महमूद का माथा पागल हो गया था।"

महमूद ने शबरी में अपने दरबारियों को समाचार भेजा। एक समाचार में वह लिखता है—“शहर में हजारों गुम्बद वाले महल हैं। अधिकांश विशाल मकबरों के बने हुए हैं। मन्दिर इतने अधिक हैं कि उन्हें गिना नहीं जा सकता। यदि इनमें से एक महल को भी कोई बनाना चाहे तो उसे एक लाख दीनार खर्च करने पड़ेंगे और कुशल कारीगरों को दो सौ वर्षों तक परिश्रम करना होगा।”

मथुरा को तल्लूरी से लूटा गया। ८८००० मिसकवाल स्वर्ण-प्रतिमाएँ उन्हें मिलीं। चाँदी की २०० प्रतिमाएँ इतनी विशाल थीं कि बिना तोड़े उन्हें नापना उनके लिए असम्भव था। ५००० दीनार मूल्य के दो बड़े लाल रत्न, ४५० मिसकवाल का एक नीलम, और इसी प्रकार अन्य बहु-मूल्य रत्नों को लूटा गया जो मथुरा जैसे सम्पन्न नगर में ही प्राप्त हो सकते थे। भगवान् कृष्ण के जन्म-स्थान पर निर्मित भव्यतम मन्दिर को बर्बाद बना दिया गया। आज तक उस मस्जिद को फिर से मन्दिर बनाकर हिन्दुओं के साथ न्याय नहीं किया गया है। मथुरा का तलपट तक लूटकर महमूद मथुरा के समीप भगवान् कृष्ण के बाल-झोड़ा स्थल वृन्दावन की ओर चला। इस खूबसूरत नगरी में सात दुर्ग थे। थोड़े से दुर्ग-रक्षकों की थे जो महमूद का मुकाबला करने योग्य नहीं थे। वृन्दावन की भी भव्य-शक्ति लूटकर सारी सम्पत्ति इकट्ठी कर ली गई। गंगा नदी के तीरे फ़तहपुर के समीप राय चान्दस और का अस्ति दुर्ग था। कन्नौज

के राजा से इसका बैर था। अपने पड़ोसी से तो संघाम करने में वह प्रायः डटा ही रहता था पर वैसे ही दृढ़ विरोध का प्रदर्शन इसने महमूद के सामने नहीं किया। निर्मम शत्रु के सामने वह मित्र-विहीन था। मुस्लिम इतिहासकार के अनुसार आगत-आतंक के दुःस्वप्न से जागकर चान्दल राय अस्ति से भाग गया। रक्षकों को मार, नागरिकों को काट, मन्दिर को मस्जिद बना अस्ति को लूटा गया।

अब महमूद दक्षिण, मुंजदुर्ग (मुम्बैन) की ओर बढ़ा। अस्ति के विपरीत मुंज दुर्ग ने तलवार बजा दी। भीषण भार-काट मची। अल्प दुर्ग-रक्षकों की स्त्रियों और बच्चों ने शत्रु के हाथों अपमानित होने की अपेक्षा अग्नि का आलिङ्गन कर लिया। जब से मुस्लिम आक्रमणों का प्रारम्भ हुआ, अभागी असहाय स्त्रियों और बच्चों को बार-बार जौहर का व्रत करना पड़ा। अपनी स्त्रियों और बच्चों को अग्नि-देव के चक्र में सुरक्षित रखकर मुंज-रक्षकों ने रक्त की अन्तिम बूंद तक शत्रु का संहार किया।

महमूद का दूसरा शिकार सर्वा का शासक चान्दराय था। मुस्लिम दलों के पिछलग्गू अरबी इतिहासकारों और चापलूसों ने जो विलक्षण और असत्य विवरण लिख छोड़ा है उसके लिए वे उस प्रशंसा के पात्र नहीं हैं, जो आज उन्हें मिल रही है। पाप की उपज के भागीदार होने के तालच में उन्हें अपने स्वामियों की डींग हाँकनी थी। अतएव महत्त्वपूर्ण तिथियाँ देना तो दूर की बात है, उन्होंने भारतीय नामों को ही बिगाड़ दिया है। इसलिए हम नहीं बता सकते कि सर्वा से उनका क्या अभिप्राय था। यह सर्वा कालिंजर और बन्दा के बीच केन नदी तट का 'सिउरा' भी हो सकता है या फिर कुन्ब के समीप पहोज तट का श्रीवागढ़ भी।

सर्वा का राजा अपने पूर्व में स्थित लाहौर-शासक अभागे त्रिलोचनपाल को परेशान करता रहता था। अब महमूद ने पश्चिम से इस पर दबाव डाला। इस बैर-भाव को समाप्त करने के लिए त्रिलोचनपाल ने अपने पुत्र भीमपाल का विवाह भी सर्वा-शासक की पुत्री से कर दिया था। फिर भी तनाव बना ही रहा। एक बार भीमपाल अपनी पत्नी को लाने सर्वा गया। वहाँ उसे रोक लिया गया। मगर अब संकट दोनों पर था जिसने दोनों में समझौता करा दिया।

धिराज में भूजे पर आत्म-समर्पण कर देने की आशा का से चाँदराय ने गर्वा दुर्ग त्याग दिया। सर्वा पर अधिकार कर महमूद चाँदराय के पीछे चला। ६ जनवरी, १०१६ को संग्राम हुआ। चाँदराय के कुछ हाथियों को पकड़कर महमूद गजनी चला गया।

इस्लाम का कलंक—महमूद के अन्तर्राष्ट्रिय डाकू-चरित्र की सफलता से खलीफा फूला नहीं समा रहा था। उसने एक विशिष्ट दरबार का आयोजन किया। भारतीय स्त्रियों और बच्चों के अपहरण और बलात्कार से प्रतिबन्ध गजनी में बरसती अमीम सम्पत्ति के विस्तृत विवरण और हर्कती पर महमूद के निबन्धों को खलीफा ने सादर ग्रहण किया और बड़े गौरव ने उसे दरबारियों को सुनाया।

प्रो० हबीब कहते हैं—(पृष्ठ ४४)—महमूद "अमीम सम्पत्ति में लोटता था। भारतीय उसके धर्म से घृणा करने लगे। लुटे हुए लोग कभी भी इस्लाम धर्म को अच्छी नजर से नहीं देखेंगे—जबकि इसने अपने पीछे लुटे मन्दिर, बरबाद शहर और कुचली लाशों की सदा जीवित रहने वाली कहानों को ही छोड़ा है। इससे धर्म के रूप में इस्लाम का नैतिक पतन ही हुआ है, नैतिक स्तर उठने की बात तो दूर रही। उसकी लूट ३०,००,००० दिहराम आंकी गई है।"

हजारों की संख्या में साधारण समुदाय भारतीय कृषक, डोम, स्त्रियों, बच्चों को गजनी तक घसीटकर ले जाया गया था। उनका मूल्य बाजारों में दो-तीन दिहराम था। अतएव मोहरों, सोने-चाँदी की ईंटों, रत्नों, जवाहरातों की लूट के प्रतिरिक्त हजारों की संख्या में भारतीय बन्धियों की गुलामों के बाजारों में बेचकर कई मिलियन (१० लाख का १ मिलियन) बनाया। अमीम लूट लेकर डाकू महमूद के वापिस लौटने का समाचार बिजुल-सा चारों ओर फैल जाता था और भावार्त्तन, नाहर, इराक, खुरामान आदि दूर-दूर स्थानों से भुण्ड-के-भुण्ड मुसलमान चटपट वहाँ पहुँच जाते थे।

कैला और विक्ता के बीच की छीना-भपटी में तड़फड़ाती मछलियाँ और फड़फड़ाते पक्षियों के समान भारतीय नर-नारियाँ और बच्चे इधर-उधर घसीटे जाते थे। उन्हें पिंजरों में बन्द कर, पशुओं की भाँति बाँध-कर लकड़ियों की नौक से कुरेदा जाता था। उसके बाद कैला तिरछी

नजरो से उन्हें देख, उनके भावी उपयोगों को तोलते थे कि वे उसकी वासनापूर्ति में आनन्ददायक होंगे या पशुओं की तरह उपयोग में लाये जा सकेंगे। फिर मोल भाव होता था। काले हों या गोरे, अमीर हों या गरीब, छोटे हों या बड़े, उस मेले का एक ही मापदण्ड था। उन सबकी एक ही श्रेणी थी। वे सभी गुलाम थे।

बिना समझे-बूझे या जाँच-प्रमाण के गजनी में एक मस्जिद और एक विद्यालय बनाने का श्रेय महमूद को दिया जाता है। महमूद इतना मूर्ख और इतना उदार नहीं था कि वह किसी भवन-निर्माण पर एक पैसा भी व्यय करे। उसके पास इतना फ़ालतू समय भी कहाँ था कि वह निर्माण की बात सोच सके। प्रत्येक साल के बारहों महीने वह दूर देशों पर धावा करने की योजना ही बनाया करता था। बीच का थोड़ा-सा समय यदि किसी प्रकार निकल ही आता था तो वह लूट की राशि को गजनी में जमा करने दौड़ पड़ता था ताकि हलका होकर फिर अपने काम में लग सके। गजनी की जिस मस्जिद और विद्यालय को महमूद द्वारा निर्माण कराया माना जाता है वह गजनी के मुस्लिम-पूर्व भारतीय क्षत्रिय-राजाओं का बनवाया हिन्दू मन्दिर और हिन्दू विद्यालय ही हो सकता है, और कुछ नहीं।

त्रिलोचनपाल और भीमपाल हार अवश्य गए थे, परन्तु कुचले नहीं जा सके थे। अभी भी दो-आव में मस्तक उठाए वे खड़े थे। बुन्देलखण्ड में कालिजर के राजा रायनन्द और ग्वालियर के राजा ने कन्नौज के राजा से युद्ध किया क्योंकि इसने आत्म-समर्पण कर अपनी प्रजा को लुटवाने में महमूद की सहायता की थी। अपनी सेना का त्याग करने, क्षत्रिय कर्म की अवहेलना कर देशघाती होने के अपराध में कन्नौज के राजा का अन्त कर दिया गया। उन्हीं सह बताने का अवसर नहीं दिया गया कि उसका क्षत्रिय कर्म 'अहिंसा परमोधर्म' हो चुका है। महमूद के भावी आक्रमणों को रोकने के लिए दोनों ने त्रिलोचनपाल की सहायता करने का निर्णय किया।

१०१६ ई० के शीतकाल में अनुमानित आक्रमण हुआ। महमूद पंजाब की पाँचों नदियों और गंगा-यमुना को पार किया। त्रिलोचनपाल रामगंगा से पीछे हटा। कटी गाँवों के फूले शवों पर तैरकर महमूद के दुष्ट

दल ने नदी पार की। त्रिलोचनपाल के साधारण अवरोध को नष्ट कर गंगा के पूर्व में नये निर्मित नगर को लूटकर महमूद ने बरबाद कर दिया। मुसलमानी आक्रमण ने कन्नौज को नष्ट कर दिया था। बड़े शोक की मुसलमानी आक्रमणकारियों ने जबकि अपने सहस्रवर्षीय शासन-काल है कि विदेशी आक्रमणकारियों ने जबकि अपने सहस्रवर्षीय शासन-काल में एक नगर से दूसरे भारतीय नगर को लूटने, नष्ट करने और जलाने के प्रतिरिक्त और कुछ नहीं किया, फिर भी आधुनिक भारतीय इतिहास पाठ्य-पुस्तकें उन्हें अनेक काल्पनिक नगरों के निर्माण का श्रेय देती हैं।

त्रिलोचनपाल की सेना के बिखर जाने के बाद भी, मिलकर सामना करने के बदले नन्द की सेना अकेली ही महमूद का सामना करने चली। मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार राय नन्द की सेना में ३६,००० घोड़े, ४०,००० पैदल, और ६४० हाथी थे। पर्वतीय दुर्ग से, नन्द की मिली-जुली सैन्य-शक्ति को नीचे अपनी ओर आती देख महमूद का दिल बैठ गया। इस बार अपने भूखंतापूर्ण अभियान के लिए उसने अपने आप को धिक्कारा भी। रायनन्द भी दिन भर की कूच के बाद महमूद के पड़ाव के समीप पहुँच चुका था। दूसरे दिन के अवश्यम्भावी संग्राम के बारे में वह सारी रात सोच-विचार करता रहा। उषाकाल के पूर्व ही उसने विचार बदल लिया। बिना लड़े ही उसकी हिम्मत पस्त हो गई—(अहिंसा परमोधर्म के इन्जेक्शन का प्रभाव)। सारे साजो-सामान को छोड़-छाड़कर वह चटपट सिर पर पैर रखकर भाग खड़ा हुआ। सूर्योदय के बाद महमूद की पर्यवेक्षक टुकड़ी ने शत्रु-क्षेत्र में गतिहीनता देख कर अपने आपको दितासा दिया कि यह कोई जाल नहीं है। तब खेमों पर भागकर महमूद ने उन्हें बिखेर दिया। नन्द की सेना के ५८० और त्रिलोचनपाल की सेना के २८० हाथी उसके हाथ लग गए थे। इस बार उसने इतने ही पर सन्तोष कर लिया। उसे ज्ञात था कि अशान्त पंजाब अभी भी उसका मार्ग बन्द कर सकता है। अतः वह शीघ्र ही अपनी लूट सम्भालकर बहनी चला गया।

अन्तर्गोष्ठ्य राक्षस जीवन से उसे आशा से अधिक मुनाफ़ा मिल रहा था। इस बार उसने पंजाब को एकदम शान्त कर उसे मुस्लिमिस्तान बनाने की सम्भावना पर विचार किया। ताकि उसे भारत को और

अधिक लूटने के लिए यहीं एक स्थायी निवास प्राप्त हो जाए।

उसका प्रथम प्रहार स्वात, बाजूर, और काफिरिस्तान की सोमान्त जातियों पर हुआ। ये शाक्य-सिंह (गौतम बुद्ध, अहिंसा परमोधर्म) की पूजा करते थे। अभी तक "उनकी गर्दन पर इस्लाम का जुझा नहीं रखा गया था" काबुल नदी की सहायक नदियाँ नूर और कीर के तीरों पर किरात और नाघिन (नूर) क्षत्रों में ये सीधे-सादे बनवासी रहा करते थे। महमूद का क्रूर प्रहार हुआ और "अहिंसा परमोधर्म" से 'हिंसा लूट परमोधर्म' ही इनका धर्म हो गया। ये मुसलमान बना लिये गए।

लाहौर लुप्त हो गया—काश्मीर घाटी की रक्षा करने वाले शक्ति-शाली अवरोध लोहाकोट के आधे मार्ग तक महमूद आया। जिसने अपने प्रहारों से सभी अवरोधों को चकनाचूर कर दिया था उसी को लोहाकोट से दम दबाकर भागना पड़ा था। यह अपमान निरन्तर उसे खाए जा रहा था। यह उसके बाहुबल का अपमान था। उसने एक बार पुनः प्रयास किया। पर उसे पीछे हटना पड़ा। तब उसने अपना ध्यान पंजाब के मैदानी क्षेत्रों को विनष्ट करने पर केन्द्रित किया। रामगंगा संग्राम के तुरन्त बाद ही त्रिलोचनपाल सुरधाम सिधार गया था। निराशा, दुर्भाग्य, और अपमान की पीड़ा ने उसे और उसके परिवार को तोड़ दिया था। लाहौर के अवरोध में असफल होने के कारण हिन्दुत्व ने लाहौर को खो दिया। महमूद ने लाहौर में एक मुस्लिम शासक नियुक्त किया। इस पवित्र क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण स्थानों पर उसने उप-शासकों की नियुक्ति की। उनके अधीन सैन्य-टुकड़ियों को छोड़ दिया गया। इस प्रकार पंजाब में कल्लूर-वंश के शासन की समाप्ति हो गई। कल्लूर के राज-परिवार के बारे में तत्कालीन इतिहासकार अल-बरूनी लिखते हैं—'वे उच्च विचार और सम्य आचार के महान् व्यक्ति थे। अपनी महानता के कारण वे अच्छे और सच्चे कामों को करने से कभी भी पीछे नहीं हटे। अन्तिम जीवित उत्तराधिकारी भीमपाल अजमेर के राय के पास चले गए। वहाँ १०२६ ई० में उसकी मृत्यु हुई।'

जब स्वयं अल-बरूनी जैसा महमूद का दिन-रात का साथी, शिविर-अनुयायी, और बेतन-भोगी अनुचर लाहौर के हिन्दू कल्लूर राजपरिवार के लोगों के महान् और उच्च गुणों की इस प्रकार प्रशंसा करता है तो

वह साफ है कि उस महान् परिवार का विनाश करने वाले महमूद की वह खुले घाव निन्दा और बुराई कर रहा है।
इस्लाम के लिए पंजाब को पाक करने के बाद महमूद बे-रोकटोक लाहौर आ सकता था।

१०२२ ई० के शीतकाल में गजनी से चलकर उसने खालियर को घेर लिया। नियम के अनुसार बाहरी गाँवों को लूटकर जला दिया गया। निवासियों को सताया गया। बहुतों को मुसलमान बना लिया गया। मगर हिन्दुत्व की दृढ़ चट्टान की भाँति खालियर दुर्ग मस्तक ऊँचा किए खड़ा रहा। अपनी विजय असम्भव देख, महमूद अपनी नाक बचाने के लिए नजराना पाकर लौट जाने पर ही राजी हो गया। इस जानवर से छुटकारा पाने के लिए उसे ३५ हाथी दे दिए गए। अधिक सम्भावना इसी बात की है कि उसने दुर्ग के बाहरी अस्तबल से हाथियों को खोल लिया और नजराने का भूठा बहाना गढ़कर लिख दिया। मुस्लिम इतिहासकारों की यह साधारण कमजोरी रही है कि विजय और प्रतिष्ठा के झूठे बमकदार विवरणों के परदे में उन्होंने अपनी कटी नाक को छिपाया है। (सच्ची बात तो यह है कि हम लोगों ने खुशामदियों, चापलूसों और चाटुकारों को इतिहासकार की पदवी दे देने की भूल की है। अगर ये अपने स्वामी को बुराई की डींग नहीं हाँकेंगे तो उनका पेट कैसे भरेगा?)।

खालियर में खाली हाथ लौटने के बाद महमूद दूसरी ओर मुड़ गया। इस बार उसने रायनन्द की राजधानी कालिजर पर घेरा डाल दिया। यहाँ उसे सफलता नहीं मिली। आसपास के गरीब महावतों को डरा-धमकाकर और कुलीन व्यक्तियों के निर्जन अस्तबलों में से खोज-बोनकर ३०० हाथियों को जमा किया और यह दावा किया की नन्द ने ३०० हाथियों की कीमत देकर चैन खरीदा है। महमूद जैसा आबारा अन्धराधो, जिसका हाथ हमेशा यन्त्रणा और विनाश, धर्म-परिवर्तन और विध्वंस, बलात्कार और खून-खराबी के लिए खुजलाया करता था, उस मिट्टी का बना हुषा नहीं था, जो बिना किसी मजबूरी के ३३५ हाथियों का उपहार लेकर ही चुपचाप गजनी चला जाता।

महमूद के भक्तों और साम्प्रदायिक मुस्लिम विवरणों ने उसकी

प्रशंसा में कुछ स्वनिर्मित स्तुतियों को प्रचलित किया और यह दावा किया कि महमूद के घोर शत्रु रायनन्द ने महमूद की प्रशंसा में इन स्तुतियों की रचना की है।

सभी जानते हैं कि हाथी के पैरों के तले कुचलकर मरने से बचने के लिए घरबी का प्रसिद्ध कवि फिरदोसी छिपता-भागता फिरता रहा था; महमूद के शिकारी कुत्ते उसका पीछा करते रहे। ऐसा महमूद नन्द की कुछ कविताओं से प्रसन्न नहीं हो सकता। दूसरी ओर उसका भीषण बैरी नन्द महमूद की अन्तर्राष्ट्रिय लूटपाट की प्रशंसा में कभी भी काव्य-रचना नहीं करेगा।

देहाती क्षेत्रों को लूट, जला, निराश हो महमूद ने पीठ फेरी। उसके सितारे गर्दश में थे। अन्तर्राष्ट्रिय चोरी के लिए ऊपर-नीचे पड़ते उसके झुंड-के-झुंड साथी पहले की भाँति निर्दोषों की गर्दन मरोड़ने और बबलाओं की इज्जत लूटने की अपनी प्रथा को मचकर भरपूर मुनाफ़े का मक्खन नहीं पा रहे थे। पाप का लाभ कम हो रहा था।

पूर्व की ओर लुटेरा महमूद कालिजर तक ही आया। उसकी आबारा जिन्दगी से उसका स्वास्थ्य चौपट हो गया था। क्षय रोग के प्रत्येक चिह्न प्रकट होने लगे। शारीरिक और मानसिक रूप में वह कठोर शिविर-जीवन-यापन के अयोग्य हो गया था। मगर अभी भी भारत में कुछ विख्यात मन्दिर शेष थे जिनकी पावन-प्रतिमाओं का अपमान कर वह उन्हें लूटना चाहता था।

खालियर-कालिजर से हारे-थके हुए गजनी लौटकर उसने अपनी सशस्त्र सेना का वृहत् सम्मेलन किया। कुछ पापी सहयोगियों का वह आबारा डाकू-दल कई गुना बढ़कर, भारतीय धन और रक्त को चाटने वाले टिड्डी दल में परिणत हो गया था। गुण्डों और अन्तर्राष्ट्रिय अपराधियों के गिरोह में ५४ हजार घोड़े, १३०० हाथी (कहा जाता है कि मृत्यु के समय महमूद के पास २५०० हाथी थे) और एक लाख से अधिक पैदल सेना थी।

इस विशाल गिरोह के साथ महमूद ने सोक्सस नदी पार करके नदी पार के शासकों को आतंकित किया। समरकंद का शासक अस्तवीन पकड़-जकड़कर महमूद गजनवी के सामने पेश किया गया। सता-सताकर इसे क्रूर

जेवरों की सुनी आँखों के सामने धीरे-धीरे सड़-मरने के लिए हिन्दुस्तान की जेल में बंद दिया गया।

महमूद गजनवी और परवर्ती मुस्लिम शासकों ने, समरकंद के फलते-फूटते हिन्दु मंदिर को अपने कुर और सुनी आक्रमणों से मुस्लिम कंद बना दिया। लंबूर संग का मकबरा पूर्वनिर्मित भी एक हिंदू राजभवन ही है। इसके विद्रु होने के प्रमाण में मकबरे के भीतर ही 'सूर-सादूल' की चित्रकारी दिखी है। संस्कृत में सूर-सादूल (सूर्य-शार्दूल) का अर्थ को देखा किया जा सकता है। संस्कृत में सूर-सादूल (सूर्य-शार्दूल) का अर्थ है "सूरज और सूर"। मकबरे के भीतर की यह चित्रकारी अभी भी सूर-सादूल ही कहलाती है। यह प्रमाण प्रष्ट है कि यह भवन पहले संस्कृत-भाषी भारतीयों का ही था।

समरकंद के पास एक वीर हिन्दू जाति सेल्यूक (शायद चालुक्य) रहती थी। कुर अन्वेषणों के बाद भी वे प्राचीन हिंदू धर्म से चिपके ही रहे। अपने चतुर्दिक ओं को सम्पूर्ण मुस्लिम बनाने के लिए महमूद ने सेना को आदेश दिया कि चार हजार सेल्यूक परिवारों को ओक्सस (अश्वक जेब, एवं नदी) पार सदेह कर परशियन चरागाहों में बसा दिया जाय। गजनवी सेना की सुनी नजरों के सामने जब यह जाति नदी पार कर रही थी तब महमूद के असंख्य कपटी कप्तानों में से एक, अस्सालन हाजिब ने इस बिहो जाति को समेटकर डबो देने की सलाह दी। मगर महमूद हर मजा कि कहीं तटवर्ती जाति कोई समुचित अवसर पाकर प्रतिशोध में उसको पैदल सेना को ही न डबो दे। उसने इस विचार को मान्यता नहीं दी।

महमूद के मरने के बाद इन दुनियाय सेल्यूकों ने उसके अभिमानी साम्राज्य को तहस-नहस कर दिया।

सोमनाथ की लूट—१८-१०-१०२५ ई० को महमूद अपने क्रूरतम अभियान पर निकला। कुर अत्याचारों और हिंदू जनता की लूट का यह चरम उत्कर्ष था।

निर्वासित और अनियमित गुण्ठों का सबसे बड़ा दल उसने जमा किया। चारों ओर शोक पीट दिया कि महमूद अपने जीवन के सर्वाधिक लाभदायक लूट-अभियान पर निकल रहा है। जो कोई भी काफिर हिंदुओं को लूटने, देव-प्रतिमाओं को कुर-कुर करने और उनकी स्त्रियों का हरण-

व्यभिचार करने का सबाब लूटकर इस्लाम की सेवा करना चाहता है, महमूद के दल में शीघ्र आ मिले। हजारों के मुण्डों में डाकूओं, चोरों और हत्याकारों का दल महमूद के बेतन-भोपी दल में समा गया। महमूद की सुरक्षा में खुलेआम लूट-मार, बलात्कार और नर-संहार के आनन्दोत्सव की अपेक्षा में वे उछल रहे थे। भारत के पश्चिमी तट पर स्थित सोमनाथ का मन्दिर कितना प्राचीन है, नहीं कहा जा सकता। शतान्दियों से इस मन्दिर की शिवप्रतिमा की पूजा छोटे-बड़े, ऊँचे-नीचे, अमीर-गरीब, विद्वान्-मूर्ख आदि सभी हिन्दुओं ने, यहां तक कि स्वयं अवतारी भगवान् श्री कृष्ण ने भी की थी। अनवरत वरुण (सागर) सोमनाथ के चरण पक्षारता रहता था। सारा वर्ष दूर-दूर से लाखों भक्त पूजा करने आते रहते थे। शिवरात्रि जैसे धार्मिक उत्सवों में भीड़ का सागर लुहराने लगता था। सैकड़ों पुजारी रात-दिन शिवाराधना किया करते थे। यह कम टूटता ही नहीं था।

मुस्लिम इतिहासकर कहते हैं कि मन्दिर में दो सौ मन की एक सोने की जंजीर थी। इसमें अनेक घंटियाँ बँधी हुई थीं। पूजा के समय की घोषणा करने के लिए इसे बजाया जाता था। मन्दिर और यात्रियों की सेवा, सफाई के लिए नियुक्त असंख्य लोगों के अतिरिक्त मन्दिर में ५०० देव-दासियाँ, २०० गायक और ३०० नाई भी थे। मन्दिर के प्रांगण में ५६ स्वर्णविष्टित पाषाण स्तम्भ थे।

शिवलिंग पाँच गज लम्बे थे। दो गज भू-भीतर और तीन गज ऊपर। तारीख-ए-जयमुल-मा-असीर बतलाता है कि लटकते दीपों पर जड़े अनेक रत्नों का प्रतिबिम्ब, कई गुना अधिक बिखरकर अंधेरे गर्म-गृह में चम-चम और दिप-दिप करता रहता था।

आधे नवम्बर में महमूद मुलतान पहुँचा। राजस्थानी रेगिस्तान पार करने की योजना उसने बड़ी सावधानी से बनाई। कई दिनों का खान-पान काफ़ी परिमाण में ले लेने की आज्ञा सभी को दी गई। इसके अतिरिक्त ३००० ऊँटों पर और अन्न-जल लाद लिया गया। मार्ग ही में भूख-प्यास से बेहाल हो डाकू-दल कहीं बिद्रोह कर दे तो? फिर लौटते समय लूट बोलने के काम में भी तो ये आएँगे।

मार्ग में बरबादो करते इस टिड्डी दल का आना सुन, कहा जाता है

कि अजमेर का राय भाग गया। असुरक्षित अजमेर लूट लिया गया। यहाँ इतिहासकारों को ध्यान देना चाहिए कि प्राचीन नगर-मध्य स्थित राज-महल जैसे स्मृति-भवन तथाकथित मोइनुद्दीन जिश्ती का मकबरा और सड़ाई दिन का झोपड़ा, मुस्लिम आगमन के पहले का निर्माण है। अजमेर के शासकों को इसके निर्माण का श्रेय झूठमूठ ही दिया जाता है। अजमेर के राजा तथा इनके पूर्वज इन भवनों में रहते थे। इन्हीं लोगों ने इसे बनवाया था, मुसलमानों ने नहीं।

सारे रास्ते गाँवों को काटता-खाता, मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करता, गाँवों को लूटता-जलाता और अतंक फैलाता हुआ महमूद गुजरात की राजधानी अनहिल वाड़ पाटण की ओर बढ़ा। समृद्धशाली पाटण को भी खाली कर दिया गया। महमूद ने सारी सम्पत्ति समेट ली। शहर भीषण प्रकाश और बरबादी का शिकार हुआ। मानो चूहों और टिट्टियों का दल एक साथ शहर पर छा गया हो। सरस्वती नदी के साथ-साथ महमूद की रक्त बूझने-चाटने और जीभ चटकारने वाली सेना सोमनाथ की सीमा पर १०२६ ई० की जनवरी के दूसरे सप्ताह में पहुँची।

महमूद के लूटने-जलाने से पहले सोमनाथ एक भव्य शहर था। इसके चारों ओर पत्थर की दीवार थी। भीतर भव्य-भवन, विशाल गुम्बद (टावर) और ऊँचे स्तम्भ (मीनार) मस्तक ताने खड़े थे मानो हिन्दू कला, गौरव, उन्नति, उद्योग और पुण्यों के स्मृति-चिह्न हों।

बृहस्पतिवार के दिन महमूद सोमनाथ शहर के बाहर पहुँचा। तम्बू लगाने में दिन डल गया। इन गुण्डों की पहुँच का समाचार भीतर पहुँचते ही प्राचीर पर नागरिकों की भीड़ हो गई। उनके चेहरों से चिन्ता झलक रही थी। इस्लाम के नाम पर जो जुलूम और सितम महमूद ने भारत पर डाला था उन धरति वाली कहानियों को उन्होंने सुन रखा था।

दूसरे दिन प्रातः १०२६ ई० की जनवरी के दूसरे सप्ताह के शुक्रवार को महमूद की भयंकर शैतानी मशीनों ने पवित्र शहर के भीतर अग्नि-पिंडों एवं पत्थरों की वर्षा प्रारम्भ कर दी। दोपहर तक एक बुरज में छेद हो गया। उन्होंने प्रवेश का प्रयास किया पर वे पीछे धकेल दिए गए। रात में भी महमूद ने रुक नहीं लिया। अग्नि-पिंडों की वर्षा जारी रही। तीर्थ-यात्रियों से भरी पूरी घर्षशालाओं और नागरिकों के गृहों में आग लगती

रही। शनिवार की सुबह शैतानी सेना ने नगर के बाहरी रक्षा-कवच (प्राचीर) को भेद ही दिया। अब अन्तिम युद्ध की तैयारी हुई। सोमनाथ पर अब अपनी श्रद्धांजलि और जलांजलि नहीं, अपनी अन्तिम रक्तांजलि चढ़ाने के लिए नगर-निवासी और तीर्थयात्री तैयार हो गए। कसाइयों के क्रूर आक्रमणों के सामने जो कुछ भी उन्हें मिला वही लेकर, सीना तानकर खड़े हो गए। शहर के सैकड़ों द्वारों पर लोग लड़ने, कटने और मरने लगे। वीर हिन्दू रक्षकों की लाशों की कुचलता हुआ महमूद का भयंकर शैतानी दल भीतर मन्दिर में घुसने के लिए भयंकर दबाव दे रहा था। ज्यों-ज्यों वे गर्भ-गृह के समीप पहुँच रहे थे, विरोध तीव्रतर और रक्तम होता जा रहा था।

पश्चिम सागर में सूर्य अस्त हो गया। मगर सोमनाथ को अभी तक कला-भंजक मुस्लिम नहीं छू पा सके थे। मुट्ठी भर रक्षकों के अनन्य और अनोखे विश्वास ने हमलावरों को तीन दिन और तीन रात रोके रक्खा था। शत्रु को खाड़ी के कई स्थानों पर रोका गया, प्राचीरावेष्टित नगर की चक्काकार गलियों के हर मोड़ पर रोका गया। मगर बाहर से कोई भी सहायता नहीं आई। देश के लिए चुल्लू भर पानी में डूब मरने की बात थी कि कोई भी पड़ोसी शासक मुस्लिम लूटेरों को ललकारता, बिना ससि लिए, सरपट दौड़ा नहीं आया जबकि वे हिन्दू नागरिकों और तीर्थयात्रियों को सोमनाथ में जिवह कर रहे थे, उनके घरों में प्राण लगा रहे थे, उनकी स्त्रियों और बच्चों से व्यवचार और बलात्कार कर रहे थे।

रविवार को प्रातः महमूद को समाचार मिला कि वास्तव में एक हिन्दू सेना सोमनाथ की ओर आ रही है। उसके कान खड़े हो गए। मगर हिन्दू सेना विद्युत्-गति के साथ, अपने अग्रिम कूच को एकदम गुप्त रखने का प्रयास कर, चुपचाप आ महमूद को घर-दबोचती तो बह बुरा फँसता। सोमनाथ के निवासियों को काट-गिराने तथा घेरे को खालू रखने के लिए सेना की एक टुकड़ी उसने भीतर छोड़ दी। बाकी सेना लेकर वह उस हिन्दू सेना का सामना करने बाहर की ओर मुड़ा जो पवित्र सोमनाथ के विध्वंस का प्रतिशोध लेने अब आई थी।

शहर से कुछ मील दूर दोनों सेनाएँ टकरायीं। निशाचर मुस्लिम

हत्याकाण्ड का समाचार चारों ओर फैल चुका था। पास-पड़ोस के छोटे शासक इस सेना को कुमुक पहुँचाने का प्रयास कर रहे थे। फिर भी हिन्दू सेना महमूद की इस टुकड़ी से बहुत ही कम रही। वीरप्रसू भारतभूमि में धर्म सैनिक नहीं ग्रहिसक जन्म ले रहे थे। दूसरे, एक केन्द्रीय नेतृत्व का अभाव था। तीसरे, मुसलमानों जैसे धार्मिक उन्माद का भी अभाव था। इतना होने पर भी वे इतनी वीरता से जूझें कि महमूद की हालत नाजुक हो गई। पहली बार उसका गिरोह और गुण्ठादल साहस छोड़ने लगा। मरता क्या न करता। महमूद अपनी रिजर्व सेना लेकर एक ही नारे के साथ आगे बढ़ा—“करो या मरो।” किसी प्रकार वह हिन्दू सैन्य-पंक्ति को तोड़ सका। इसके बाद भयंकर नर-संहार की बारी थी ही।

यह महमूद की अवशिष्ट सेना अपने साथियों की सहायता के लिए वापिस मन्दिर की ओर मुड़ी जो सोमनाथ मन्दिर को चूसने में लगे हुए थे। इन खूनी बहादुरों के पहुँचते ही युद्ध-पस्त नागरिक काट गिराए गए। मन्दिर में प्रवेश करते ही पुजारियों को टुकड़े टुकड़े करके बिखेर दिया गया। सैकड़ों अनुचरों के हाथ-पांव काट दिए गए। पाशविक पीड़ा, यन्त्रणा और हाहाकारों की गणना कौन कर सकता है?

मन्दिर के कोष-कक्षों को तोड़ दिया गया। सारी सम्पत्ति के हजारों ढण्डल बना दिए गए।

धार्मिक उन्माद में गुराँते हुए महमूद ने शिवलिंग पर एक हथोड़े का वज्र प्रहार किया। शिवलिंग चूर होकर दो बड़े भागों में बिखर गया। सोने और होंरे के गहनों तथा जड़ाऊ बेल बूटों के परिधानों से लिपटे शिवलिंग के एक भाग को गजनी भेज दिया गया। बाद में शिवलिंग का वह भाग गजनी के बुड़दोड़ मैदान में चक्रस्वामी प्रतिमा के पार्श्व में गाड़ दिया गया। सोमनाथ लिंग का दूसरा भाग गजनी की जामा मस्जिद (प्राचीन हिंदू मन्दिर) की सीढ़ियों पर जड़ दिया गया ताकि धर्मपंरस्त मुसलमान उस पर अपने जूते के तले पोंछ भगवान् का भजन करने मस्जिद में प्रविष्ट हो सकें।

यह खज़ाना भूठी है कि भग्न शिवलिंग के भीतर से चमकते रत्न बाहर उछल पड़े थे। सोमनाथ का शिवलिंग एक ठोस पत्थर का बना हुआ है। रत्न मन्दिर के कोष-गृह से लूटे गए थे।

सोमनाथ का विध्वंस-कार्य समाप्त हुआ। पवित्र मन्दिर पहली बार मस्जिद बन गया। महमूद ने अपनी सेना को फिर से सजाया और प्रन्-हिलवाड़ पाटण की ओर बढ़ा। पाटण के परमदेव राय ने रक्षा-सहायता का कार्य कर महमूद को एक बार निराशा की अन्तिम सीमा पर पहुँचा दिया था। सोमनाथ की रक्षा के संग्राम में बिखरी सेना को संगठित करने का अवसर इन्हें नहीं मिल पाया था। महमूद की ललकार का सामना करने के अयोग्य होने के कारण इन्होंने पश्चिमी तटीय खाण्डाह द्वीप-दुर्ग में शरण ली। वहाँ भी उसने इनका पीछा नहीं छोड़ा। कहावत को सत्य करते हुए राय 'शैतान और समुद्र' के बीच में बुरे फँस गए। किसी प्रकार वे भाग सकने में समर्थ हुए। दुर्ग की सारी सम्पत्ति शैतान के पेट में समा गई।

महमूद सोमनाथ की देखभाल का भार देवसुरन को सौंप कर आया था। मुसलमानों ने इन्हें देवसीलीम गुलत लिखा है। यह संन्यासी उन्हीं में से एक था जो थोड़े-बहुत किसी प्रकार जीवित बच गए थे। लोगों से टैक्स वसूल कर कुछ दिनों तक तो इसने गजनी भेजा, मगर बाद में लोगों ने इसे समाप्त कर दिया।

तीन हजार ऊँटों, हजारों घोड़ों और हाथियों पर खज़ाना लादा गया। हिन्दुस्तान के किसी भी राजा के पास इस सम्पत्ति का सोवाँ भाग भी नहीं था।

सोमनाथ का पतन सुनकर राजस्थानी राजाओं ने अपनी-अपनी सेनाएँ एकत्रित कीं। महमूद को पवित्र लूट के साथ वापिस न जाने देने का निर्णय किया गया। इस सम्भावना पर विचारकर, इससे बचने के लिए उसने सिन्ध की मरुभूमि से होकर मुलतान जाने की सम्भावना पर विचार किया।

सोमनाथ के एक हिन्दू भक्त को जबरदस्ती गाइड बनाया गया। पर वह स्वयं भ्रमित हो गया। दुष्ट-दल मार्ग खो बैठा। कुछ दिनों तक दुष्ट दल बिना पानी के चलता रहा। फिर सतत राह पर ले जाने के अपराध में महमूद ने क्रोध में उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। बाद में उन्हें पानी तो मिला, पर जाट गुरिल्लों के साथ। जाटों ने इन्हें नचा मारा। हिन्दुस्तान की अधिकांश लूट सहित किसी प्रकार वह गजनी पहुँचा। राजपूतों की

संयुक्त संगठित सेना ने फिर से एक बार परम्परागत हिन्दू कमजोरी का परिचय दिया कि वे कुछ भी सीख नहीं सकते, भूल सब कुछ सकते हैं। इस प्रकार इतिहास का सर्वाधिक साहसी और क्रूर-कर्मी डाकू अपनी अलौकिक लूट लेकर चला गया और हिन्दू सेना राजस्थानी पहाड़ियों में अपने पैर सेकती रही।

महमूद का चिड़चिड़ा स्वभाव बहुत दिनों तक बदले की भावना को संजोकर रखता था। जाटों के गुरिल्ले विरोध की हूक रह-रहकर उसके दिल में उठती थी। लोहाकोट की उद्दता ने उससे बार-बार दुर्ग पर असफल आक्रमण करवाया था। अतः गजनी में लूटी सम्पदा को ताला लगा वह घृष्ट जाटों को सजा देने वापिस लौटा। मुल्तान में सिन्धु पर १४०० नावों की एक जल-सेना उसके पास थी। प्रत्येक पर अग्निबाणों से सुसज्जित १४ धनुर्धर रहते थे। मुस्लिम इतिहासानुसार जाटों के पास ४००० नावों की जल-सेना थी। टक्कर का विरोध हुआ। सम्भव है कि जाटों के पास १४०० नाव ही हों और महमूद के पास चार हजार। क्योंकि उनके विवरणों में हमलावरों की ही बड़ाई प्रायः होती है। महमूद की नावों में नुकीले लोह-दण्ड लगे हुए थे। ज्यों ही जाट नावें निकट आतीं, इनसे टकराकर उलट आतीं। अतएव महमूद को इनसे विशेष सहायता प्राप्त हुई। अनेक जाट डूब गए। उनकी पत्नियाँ सिन्धु द्वीपों में उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। वहाँ मुस्लिम हमलावर पहुँचे, उन्हें जबरदस्ती भोगा और मुस्लिम हरमों में बन्द कर दिया। बहुतों को सता-सताकर मार दिया। जाट बच्चों का शत्रुता हुआ। उन्हें गुलामों के बाजार में बेच दिया गया।

महमूद का अन्तिम काल अशान्त रहा। उसके धर्मोन्मादी और क्रूर अक्रूरों के अत्याचार से अशान्त हो नागरिक विद्रोही हो गए। उन्हें दबाने में असमर्थ सेनापतियों ने अदभ्य विद्रोह को मसलने के लिए शैतान का बाहुल्य किया। अपनी सनातन क्रूरता से महमूद ने उन्हें हराकर बिखेर दिया। मगर फिर उनके धामीण-दल संगठित हो गए। इसी बीच महमूद की सेना ने राय के कुवाड़हिंद राज्य को उखाड़ फेंका। वहाँ अपनी शक्ति गुंदा करते महमूद नवविजित क्षेत्र में चला गया। वहाँ की जनता विद्रोह कर देती। पर उन्हें मार-काट डाला गया।

कुत्त मरुतुर का जन्म—डाकू सम्राट का अन्त समीप था। उसका

अदभ्य उत्साह बीते जमाने की यादगार हो गई। जरा-सी भी कठिनाई या श्रम वह नहीं झेल सकता था। साँस लेने के लिए उसे मुँह बाकर हाँफना पड़ता था। थोड़ी देर खड़े रहने पर ही वह लड़खड़ाकर जमीन पर पसर जाता था। नम्रता के तिरस्कर्ता ने अपनी अभिमानी उद्दता में कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि कोई शक्ति उसे कुचल भी सकती है। सबको सुलाने वाली, विश्वव्यापी-शान्ति कर्त्री मृत्यु ने अब अपना अचूक फन्दा महमूद के गले पर फेंका और उसे धीरे-धीरे पाताल लोक में घसीटने लगी। वहाँ उसे अपने भयप्रेरक कुकर्मों का उत्तर देना था।

मौत महमूद की आँखों में भाँक रही थी। उसे यह जानकर काफ़ी कष्ट हो रहा था कि वह अपने खजाने के विशाल ढेर में से एक तुच्छ आभूषण भी अपने साथ नहीं ले जा सकता। इसे उसने ३३ वर्ष के अन्त-राष्ट्रिय डाकू जीवन में जमा किया था। असीम कष्ट और यथेष्ट विस्मय भी उसे था कि एक अदृश्य "शत्रु" उसे घसीटे लिये जा रहा है और वह, अतीत का एक सर्वशक्तिशाली डाकू-सम्राट, एक अंगुली भी उठा नहीं पा रहा है।

अब वह ६३ वर्ष का था। २६ अप्रैल, १०३० ई० को वह अपनी भौतिक सम्पत्ति के नुकसान से समझीता नहीं कर सका जो उसके हाथों से फिसल रही थी। और वह धीरज नहीं रख सका। महमूद ने अपने सारे खजाने को अपने सामने फैला देने की आज्ञा दी। कट्टर लोभी और प्यासे कंजूस की भाँति वह हीरों-रत्नों को आँखों से पीकर, हृदय में जमा करना चाहता था। इसे उसने हजारों निर्दोष नागरिकों का गला निचोड़ कर जमा किया था। पीड़ित बच्चों की चीख और बिलखती स्त्रियों के क्रन्दन उसे स्वप्न में भी चैन नहीं लेने दे रहे थे। इस हाहाकार को दबा, उन्हें अनसुनी करने के लिए, और अपना ध्यान दूसरी ओर बटाने के लिए उसने जगमगाते जवाहरातों, चकमती चाँदियों और शोभायमान सोनों को भरपूर नज़र से पीने के लिए एक के ऊपर एक कौंधती कतारों में सजवा दिया। इन सभी की तुच्छता से निराश हो, विवेक की चुभन से कातर हो, रोती आँखों से उसने यह सम्पत्ति अपने कोष-गृह की सन्दूकों में बन्द करवा दी। अभी भी उसे आशा थी कि शायद वह स्वस्थ हो जाए, शायद किसी जादुई चमत्कार से पुनः जीवित हो जाए तो वह हराम

के इन गहनों और ताबीजों को फिर से शरीर पर सजा लेगा।

अप्रैल, १०३० ई० को उसकी राजा से हाथियों, घोड़ों और ऊंटों की पंक्तियाँ उसके सामने लाई गई। फिरिश्ता के अनुसार वह ५० वर्ष की हुराम की कुमाई का लेला-जोला ले रहा था। फिरिश्ता कहते हैं कि वह उन पशुओं की ओर देख रहा था, वे पशु अपनी पूँछ हिला-हिला कर बड़े आनन्द से उसे विदाई दे रहे थे। महमूद बड़े जोर से फफककर रो पड़ा।

शूनै-शूनै: शय करने वाले रोग ने उसे चारों ओर से जकड़ लिया। ३० अप्रैल का महा अभिमानी डाकू हीरो महमूद जो व्यभिचार और बलात्कार, लूटपाट और आगजनी, नर-संहार और नारकीय अत्याचार, गोकशी और बालहरण पर उत्सव मनाता था, अपने देश गजनी में ३० अप्रैल, १०३० को मर गया।

उसका बदसूरत शरीर एकदम ठंडा हुआ पसरा पड़ा था। अभिमानी मुंह और कुर हाथ हमेशा-हमेशा के लिए हिलने बन्द हो गए। उसकी कूह को घसीट-घसीटकर ले जाया गया था। उसे उत्तर देना था अपने घसंख पाशविक, निर्मम, क्रूर, शनवी, राक्षसी और हैवानी अत्याचारों का जो सबमुच एक नंगा शैतानी नाच था, जिससे एक हाथ में लप-लप करती लाल भाग थी और दूसरे में खून टपकती लाल तलवार।

वह आदमी इस्लाम का धृणित और नियमहीन रक्षक था। उसने अपने धर्म पर कलंक का प्रमिट टीका लगाया है।

(मदर इण्डिया, सितम्बर १९६६)

मुहम्मद गौरी

त्रिदेवों की भाँति त्रिराक्षस भी हैं—मुहम्मद बिन कासिम, महमूद गजनवी और मुहम्मद गौरी। भारत आदि देशों पर इन्होंने खून और भय की भरपूर वर्षा की। इस देश के दुर्भाग्य ने ही इन महामारियों को अपनी ओर खींचा था। शांति दूत पैशम्बर के नाम पर इन्होंने जो भर कर खिलवाड़ किया। शर्म इनके पास फटकी भी नहीं। किशोर-भोगियों की इस निरासी जाति के आतंक और अत्याचार एवं खून-खराबी के काले कारनामों के कारण सारी इंसानियत का सिर शर्म से नीचा हो गया है। मगर भारत के कतिपय मुसलमान इन लोगों के निन्दनीय और शर्मनाक काले-कारनामों को दुत्कारते नहीं, धिक्कारते नहीं, बल्कि इनकी बड़ाई करते हुए और दो कदम आगे बढ़ जाते हैं और सिर्फ इन्हीं राक्षसों के ही नहीं बल्कि इनके परवर्ती सभी शासकों के काले-कारनामों को "महान्-कार्य" बतलाते हैं। बर्बरता और अत्याचार, लूट और बलात्कार को मगर ये 'महान् कार्य' मानेंगे तो क्या कभी हिन्दू और मुसलमान के बीच मैत्री और समझौता हो सकता है? आज भी ये दोनों एक हो सकते हैं यदि आज के मुसलमान इन अत्याचारियों के काले कारनामों पर क्षोभ प्रकट करें और क्षमा माँगें, हमलावरों को गाजी कहना छोड़ दें और खून से लाल अपने अतीत से अपना मनोवैज्ञानिक नाता तोड़ लें। यह तो साधारण सी समझ की बात है मगर संबंध सुधारना है तो अतीत से नाता तोड़ना होगा। तभी शान्ति और मैत्री के फल लगेंगे। मगर इसके ठीक विपरीत हमारी पाठ्य-पुस्तकों ने बड़ी सफलता से इनके क्रूरकर्मों पर पर्दा डाल दिया है, इनके अत्याचारी और काले शासन को झूठे प्रताप, नकली चमक, मिथ्या तड़क-भड़क और बनावटी वैभव की कपटी कलाई से रगड़-रगड़ कर चमकाया है।

हिंदू-मुस्लिम एकता के नाम पर हमारे इतिहासकारों को अब हिंदू और मुसलमान दोनों के सामने सन्वाई रख देनी चाहिए। उन्हें बताना चाहिए कि वास्तव में क्या घटना घटी, कैसे घटी और क्या घटी। हमारी प्रजा को अब अफ्रीम की इस पिनक में नहीं रहना चाहिए कि भाईचारे के गहरे प्यार के कारण ही मुस्लिम राजाओं ने हिन्दुओं का खून बहाकर उनकी भाओं को रोड़ा है। गलत अनुमान और भूठे तक देकर आज तक इतिहास का मखौल ही उड़ाया गया है। इतिहास के नाम पर जो भी कूड़ा-कचरा प्रायः स्कूलों और कालिजों में पढ़ाया जाता है उसमें मुस्लिम-साम्प्रदायिकता कूट-कूटकर भरी हुई है। जबकि मुगल-दरबारों से नर-सायबदायिकता कूट-कूटकर भरी हुई है। जबकि मुगल-दरबारों से नर-सायब (लौटेबाजी), बेम्भावृत्ति, हिजड़ों, रखैलों, हरमों, मादक द्रव्यों, शराब की नदियों और अनन्त खूनी अभियानों की सड़ान्ध आती है, हमारी निकृष्ट इतिहास-मुस्तक मुगल दरबारों को राजकीय प्रताप, महानता और न्याय की सुन्दर छत्रछाया आदि कहकर लोगों की आँखों में धूल मोजती है। हिन्दुस्तान का हजार वर्षीय मुस्लिम युग उनकी बर्बर लूट, हिन्दुओं की नृसंहत्या, हिन्दुओं का भोषण-संहार, हिन्दू देव-स्थानों का विनाश, हिन्दू स्त्रियों के साथ निर्मम बलात्कार, हिन्दू किशोरों का क्रूर दुरूप और लाखों हिन्दुओं को गुलाम बनाकर बेच देने की खून खौलाने वाली कहानी है। इसी युग को बड़ी बेशर्मी से हमारे इतिहास का आदर्श युग माना गया है।

सच्चाई की इस तोड़-भरोड़ से हमारा इतिहास हिन्दू और मुसलमान दोनों को गुमराह कर रहा है। एक ओर वह मुसलमानों को यकीन दिलाता है कि उनके पूर्वजों ने जो भी अन्याय और अत्याचार किया है वह महान् है। इस प्रकार हमारा इतिहास उन्हें सुधरने का अवसर नहीं देता। उल्टे उनके काले कारनामों को और भी कलापूर्ण तरीकों से दोहराने का निर्माण-सा देता है। दूसरी ओर हिन्दुओं को झूठा भरोसा देता है कि हजार वर्षोंय मुस्लिम युग का नारकीय व्यवहार स्वागत योग्य है, सर्वोत्तम है और हमें उसका स्वागत करना चाहिए। इस प्रकार हमारा इतिहास हिन्दुओं के बिबेक पर ही नहीं इनकी वीर परम्परा पर भी लात मारता है।

जो इतिहास आज भारतीय स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाया जाता है,

जिसे सरकार संसार के सामने रखती है, उसमें मन-गढ़न्त कहानियों के सिवाय और कुछ नहीं है। हजार वर्षों के इस लम्बे पर उदास शासनकाल के काले, बर्बर और खूनी कारनामों को उसके रोमांचकारी वर्णनों के साथ जनता के सामने पेश करके, यह विश्वास और भरोसा देकर जनता को सरासर धोखा दिया जा रहा है कि रक्त टपकाती तलवारों और शमीण हिन्दू जनता को घेरने वाले चोरों, डाकुओं, दुष्टों, लुटेरों, मूर्तिभंजकों, बूचड़ों और विध्वंसकारियों के गिरोह के नेता कासिम, गजनवी, गोरी, गुलाम, खिल्जी, लोदी, तुगलक, बाबर, हुमायूँ, शेरशाह, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब और इनके सारे पतित वंशजों का युग शांति, उन्नति और साम्प्रदायिक मैत्री का बड़ा खुशहाल युग था और खुशहाल युग के अलावा और कुछ नहीं था। इससे और कुछ तो नहीं होगा सिर्फ मुसलमानों के मन में अपने उन पूर्वजों के लूटपाट और नरसंहार के उस त्योहार को मनाने की इच्छा बलवती होगी जिसकी प्रशंसा में हमारी पाठ्य-पुस्तकों के पन्ने रंगे हुए हैं। अगर लोगों को इतिहास पढ़ाने का यही अर्थ है कि वे पिछली भूलों को भूलकर, अतीत की असफलताओं को दोहराने से बचें तो वर्तमान इतिहास को एकदम उलटा अभिनय करना होगा। उसे सच्ची बातें कहनी होंगी।

उसी खूनी युग में गौरी ने भारत में प्रवेश किया था। कासिम और गज़नवी के हिन्दू-विनाशकाल में ३०० वर्ष का अन्तर था। मगर गज़नवी और गौरी के नृशंस आक्रमणों के बीच सिर्फ १४० वर्ष का ही व्यवधान था। गौरी के बाद मुस्लिम शासन का अत्याचारी और रक्त-चूसक फ़न्दा भारत के गले में स्थायी रूप में फँस गया।

भारतीय इतिहास का यह युग अपने छात्रों, वासकों और जनता को अगर कोई शिक्षा देता है तो वह शिक्षा यही होगी कि सीमा के प्रथम आक्रमण से ही देश को जागकर गतिशील हो जाना होगा और हमलावरों को उपद्रवी और जंगली पशु मानकर उन्हें उनकी माँद तक सदेव, चाहे वह माँद दूर अरब में ही क्यों न हो, समाप्त कर सदा-सर्वदा का भ्रष्ट साफ़ करना होगा ।

भारत की पवित्र धरती पर कासिम के नारकीय नृत्य होने के पूर्व ७५ वर्ष में भारत ने यह कार्य नहीं किया। पृथ्वीराज से नेहरू तक के

शासकों ने ऐसा करने का महान् अपराध किया है। जिसके कारण इसने एक भयंकर समस्या का कारण बन दिया है और हिन्दू राष्ट्र के रूप में भारतवर्ष का जीवन समाप्त होने जा रहा है।

अविश्वसनीय हिन्दू इतिहासकार—गोरी और डकती से संचित गजनवी की सम्पत्ति एवं साम्राज्य को उसके वंशजों ने धीमे ही चीपट कर दिया। विनाश और विध्वंस एवं पाप और दुराचार के उस मलबे से एक दूसरा शतानुशतान लुटेरा गोरी प्रकट हुआ। गजनवी और गोरी में यद्यपि १४० वर्ष का अन्तर है, फिर भी इतिहास में इन दोनों का नाम इकट्ठा ही आता है। कारण, इन दोनों के नृशंस आक्रमणों से भारत का जो विनाश हुआ है उस विनाश में काफी समानता है। इन दोनों का ही उद्भव गजनवी से हुआ था। अन्तर केवल दोनों के अन्त में है। गजनवी जहाँ भारत की सारी लूट सही-सत्तामत्त गजनवी ने जाने में सफल हुआ था, वहाँ गोरी अपने नृशंस जीवन के बीच में ही भार डाला गया।

इतिहासकार इस तरह-पशु गोरी को जोभ ऐंठने वाली भारी भरकम उपाधि देते हैं—“सुल्तानुल्लाह राजा मुइज्जुद्दुन्या बाउद दीन अब्दुल मुबारक मुहम्मद बिन साम”।

‘दिल्ली सुल्तानेट ७११ ई०’ शीर्षक हिन्दी पुस्तक के पृष्ठ ८५ पर डा० आसिर्कौदालाल श्रीवास्तव लोगों को बतलाते हैं, कि “एक पक्के मुसलमान होने के नाते गोरी ने भारत में मूर्ति-पूजा का विध्वंस कर पैगम्बर मुहम्मद के उपदेशों का प्रचार करना अपना पवित्र कर्तव्य समझा।” आने श्रीवास्तव जी फरमाते हैं कि गोरी के अन्य कार्य भी प्रशंसनीय हैं। भारत के इतिहास के नाम पर जो बकवास ठूस-ठूसकर जरी गई है, यह उसका एक उदाहरण है। क्या भारत में पवित्र उपदेशों का प्रकाश और प्रभाव था? क्या भारत के पास कृष्ण की गीता, शंकराचार्य का एकाग्रवाद, वेद और उपनिषद् नहीं था? यह कुतर्क, कपट और आपत्तुसी की धुन है कि क़ासिम, गजनवी, गोरी, विलासी अकबर और कपटी और ग़रीब जैसे डाकुओं, दुष्टों और हत्यारों ने पैगम्बर मुहम्मद के उपदेशों को बड़े सराहनीय ढंग से फैलाया। हमारे इतिहासकारों के लिए यह बड़े गर्व और शोक की बात है।

भारतीय इतिहासकारों के अनुसार, पैगम्बर मुहम्मद के उपदेशों का

प्रचार और प्रसार करने गोरी का प्रथम आक्रमण ११७५ ई० में हुआ। सोने की नगरी और पवित्र तीर्थस्थान मुल्तान ही उसका पहला शिकार बना। क़ासिम के बाद से ही इसकी लूट का लम्बा सिलसिला शुरू हो चुका था। एक के बाद दूसरे मुस्लिम लुटेरों ने इनके बहुमूल्य रत्नों, जवाहरातों, मोतियों, और स्वर्ण-शिलाओं को लूट-लूटकर अपना-अपना कारवाँ भरा था।

उस समय मुल्तान के सिंहासन पर हिन्दू राजा का मुसलमान वंशज आसीन था। इसके पूर्वज को इस्लाम का अमृत तलवार की धार पर पिलाया गया था। ये नए मुसलमान एक ओर नृशंस और खूनी कारनामों के कारण इस्लाम से घृणा करते थे; दूसरी ओर मूल पुरानपंथी हिन्दुओं ने इसके हिन्दू-धर्म में वापिस लौटने के मार्ग को बन्द कर रक्खा था। सदा की भाँति गोरी ने एक बार फिर मुल्तान को खून से नहला दिया और एक-एक दाना लूट यहाँ के निवासियों को अकाल, भूख, गरीबी और पीड़ा के बीच तड़प-तड़पकर मरने के लिए छोड़ दिया। वह भाया और चला गया। मगर इतनी देर में ही हँसता-खेलता और फलता-फूलता मुल्तान मुँचा, खुँचा, ठंडा, पसरा पड़ा था।

इसके बाद गोरी ऊपरी सिन्धु-क्षेत्र के भट्टी राजपूतों की राजधानी ‘उच’ की ओर बढ़ा। धोके और बहाने से इसके अधिकांश लोग नगर-प्राचीर के भीतर चले गए। भट्टी शासकों को काट-काटकर फेंक दिया गया। उनकी बिलखती पत्नी और भयभीत पुत्री गोरी के हरम में बसीट लाई गईं। लुटे-पिटे शहर को जलकर बरबाद होना था ही। लूट के माल के ढेर लगाए गए। प्रथम लूट की सफलता से फूलकर गोरी ने अत्यधिक उमंग और उत्साह से दूसरा धावा किया और संकट में फँस गया। बेचारा... ! इस बार उसने गुजरात के खिलते-महकते राजनगर अनहिल-वाड़ पाटण को नोचना-खसोटना चाहा था। बघेल वंशज भीमदेव द्वितीय वहाँ का शासक था। इस युवक हिन्दू राजा ने बड़े ओज और उत्साह से पीट-पीटकर गोरी के दुष्ट-दल की सिकं पीठ ही नहीं तोड़ी बरन् भारत की सीमा के बाहर तक उसे रगेद-रगेदकर मारा। इस मार से गोरी इतना भयभीत हो गया कि इसकी याद ने ही उसे अगामी २० वर्ष तक गुजरात पर बुरी नजर डालने से रोका।

हिन्दू राज्यों की शक्ति और कमर तोड़ पिटाई का स्वाद चखने के बाद उसने उधर से ध्यान हटाकर पहले मुस्लिम शासकों से पंजाब ही छीनने का निर्णय किया। सन् ११७६ ई० में वह पेशावर पर चढ़ बैठा और गजनवियों से इसे छीन लिया।

अपने इस शारम्भिक अभियान में, पंजाब के दुर्बल और गुणहीन गजनवी शासकों पर विजय पाकर उत्साहित हो, गौरी लाहौर के दुर्ग की ओर बढ़ा। कासिम से भी सैकड़ों वर्ष पूर्व लाहौर के दुर्ग का निर्माण हिन्दुओं ने किया था। फिर भी हमारे इतिहासकार इसके निर्माण का कूड़ा खेम अकबर को देते हैं क्योंकि जहाँगीर ने अपने पिता के पक्ष में यह कूठी गवाही दी है कि लाहौर के दुर्ग का निर्माण उसके पिता अकबर ने किया है। उसी लाहौर-दुर्ग को, जिसका निर्माण अकबर ने किया था, अकबर से सैकड़ों वर्ष पूर्व ही गौरी ने गजनवी के अपहर्ता खुसरो मलिक से ११८१ ई० छीन लिया था। अब मलिक को गौरी की इस्लामी भूख मिटानी थी। उसे सारा खजाना दे देना पड़ा। बंधकी में गौरी ने उसके पुत्रों को अपने पास रख लिया। पैगम्बर मुहम्मद और खुदा की कसम खाने वाले इन बर्बर इस्लामी लुटेरों ने ही इस क्रूर और जंगली नियम को बिसमिल्लाह की थी। इन बर्बर मुस्लिम गुण्डों की खूनी तलवार ने पंतुक और पारिवारिक सम्बन्ध को बीच से तोड़ दिया। अब वे अभाग बच्चे अपने माता-पिता से सैकड़ों कोस दूर उस खूनी दरबार में थे जहाँ इस्लाम की लपनपाती नंगी तलवार कच्चे घागे से बँधी सीधी उनके सिर पर लटक रही थी। दोनों ही एक दूसरे से दूर, एक दूसरे की चिन्ता में व्याकुल थे। भवितव्यता का विचार करवे सिर्फ काँप ही सकते थे। अपने विनाशकारी उन्माद में गौरी ११८२ ई० में देवल (कराँची) से जा टकराया। एक ही भपट्टे में उसने सरब सागर तक के क्षेत्र को समतल कर डाला और ऊँटों पर सारी लूट लादकर वह गजनी लौट गया।

दो वर्ष के बाद ही ११८४ ई० में गौरी एक बार फिर पंजाब की ओर इतारने चला आया। कारण सिर्फ इतना ही था कि नाममात्र के राजा खुसरो मलिक को, जिसे अपनी हस्ती से बाहर टैक्स देना पड़ता था, मजबूरन टैक्स भेजना बन्द कर देना पड़ा। फल पंजाब को भोगना पड़ा। इन दो मुस्लिम लुटेरों की चलती चक्की ने, पंजाब की जनता का

कूट-पीस-छानकर मलौदा बना दिया और गौरी ने अपने अनुचर हुसैन खारमिल को स्यालकोट दुर्ग सौंप दिया।

अपनी राजकीय सम्पत्ति और अधिकार लुट जाने से उत्तेजित होकर खुसरो ने हिन्दू गवखर जाति से सहायता माँगी और स्यालकोट दुर्ग घेर लिया। दुर्भाग्य से काश्मीर के हिन्दू शासक राजा चक्रदेव से गवखरों का बँर था। फलतः राजा चक्रदेव ने गौरी की सहायता की। अपनी ही भूल से हिन्दू-काश्मीरी और हिन्दू-गवखरों ने आपस में ही टकराकर हिन्दुओं के विनाश का न्यौता विदेशी मुसलमानों को दे दिया।

खुसरो मलिक को स्यालकोट का घेरा उठाना पड़ा। गौरी की सेना की दूसरी टुकड़ी ने लाहौर-दुर्ग घेर लिया था। इस बार काश्मीर के राजा की सहायता लेकर वह लाहौर-दुर्ग को बचाने दीड़ा। अपने प्रत्येक हमले में गौरी को पीठ दिखाकर मैदान छोड़ना पड़ा था। इसलिए वह कपट-जाल पर उतर आया। उसने कपटपूर्ण समाचार भेजा कि यदि खुसरो मलिक स्वयं सन्धि-वार्ता के लिए आवें, तो वह घेरा उठाकर गजनी वापिस लौट जाएगा। खुसरो मलिक सन्धि-वार्ता के लिए गौरी के तम्बू में आए और गौरी उन्हें बाँधकर घरीचिस्थान घसीट लाया। बाद में ११६२ ई० में गौरी के आदेश से उसे बन्दीगृह में हलाल कर दिया गया। अतएव इन लोगों के पास सन्धि-वार्ता के लिए जाना भी जान-बूझकर विनाश का न्यौता देना है। प्रबल शत्रु को लोभ-लालच दे, शांति सन्धि-वार्ता के बहाने अपने दुर्ग में बुलाकर फिर उन्हें बन्दी बनाकर तहखाने में धकेल, हलाल कर देने की प्रशंसनीय परिपाटी मुसलमानों के खून में समझाई हुई है। 'महान् और प्रतिष्ठित' अकबर भी इस मुस्लिम हथियार का उपयोग करता था। गौरी के प्रायः चार शताब्दियों बाद 'महान्' अकबर ने उसी उपाय से असौरगढ़ का विनाश किया था।

गजनवी शासन के अन्त से सिन्ध और पंजाब पर गौरी का एकाधिकार हो गया। जिस प्रकार पाकिस्तान आज इन्हीं दो हिन्दू स्थानों से उछलकर हिन्दुस्तान पर आक्रमण करता है, ठीक उसी प्रकार गौरी ने भी इन्हीं दो स्थानों से दिल्ली और अजमेर के तत्कालीन शासक पृथ्वीराज को धर दबोचने की योजना बनाई थी।

प्रायः चार सौ वर्ष तक हिन्दू-भूमि बर्बर मुस्लिमों के आक्रमणों के

विवेक, राजनीति और दूरदर्शिता से काम लेकर यदि उन दोनों ने अपनी सेनाओं को एक कर लिया होता तो वे दोनों अफ़ग़ानिस्तान की सीमा के उस पार तक इन उन्मादी और जंगली जानवरों को खदेड़कर, इनकी जड़ें खोदकर, सदा सर्वदा के लिए इस मुस्लिम संकट को भाड़-पोंछ कर माफ़ कर सकते थे। मगर ठीक इसके विपरीत वे दोनों, पृथ्वीराज और भीमदेव शाहू की राजकुमारी के लिए आपस में लड़ पड़े और अपनी शक्ति का अपव्यय कर बैठे।

पृथ्वीराज के कुल-प्राता, चित्तोड़ के शासक समरसिंह एवं दिल्ली के राज सोचिन्दराय ने गौरी पर ऐसा आघात किया था कि उसके शरीर से रक्त की धारा फूट पड़ी थी। वह समर-भूमि में संजानी होकर गिर पड़ा और बन्दी बना लिया गया। दिल्ली की सड़कों का नाम इन्हीं वीरों पर होना चाहिए।

इन्दीगढ़ से अभूतपूर्व, उदारतापूर्ण मुक्ति पाकर गौरी समर्पण की शर्त से सिर लटकाए गजनी लौट गया। पराजय की स्मृति बार-बार उसके मस्तिष्क को भेद रही थी। इधर देशद्रोही जयचन्द ने गौरी से अपना सम्पर्क बराबर बनाये रक्खा था। धीरे-धीरे गौरी में नयी आशा ने जन्म लिया। पुनः एक बार उसने तुर्की, ईरानी, अरबी और अफ़ग़ानी गुण्डों में से हथारों और लठेरों को छांट-छांटकर जमा किया और एक विशाल किंगडम लेकर ११६२ ई० में भारत की ओर कूच कर दिया। उसकी पैदल सेना में १,२०,००० सैनिक थे।

लाहौर पहुँचने के साथ ही उसने अपनी माया फैलानी शुरू कर दी। बिबाम-उन्-मुल्क को उसने अपना दूत बनाकर पृथ्वीराज के पास भेज दिया। उसने गौरी का जागीदारी-पट्टा पृथ्वीराज के चरणों पर रख दिया। बड़ी आशा थी कि भोला-भाला पृथ्वीराज अपने जागीदार की सेना सहित दिल्ली आने की अनुमति दे देगा और बस एक बार दिल्ली के भीतर किसी प्रकार घुस तो जाऊँ फिर दिल्ली और दिल्लीपति दोनों को ही देक लूँगा। सौभाग्य से पृथ्वीराज के सलाहकार विवेकशील थे। वे इस बात को ताद गए। उन्होंने अन्य राजपूत राजाओं को भी सचेत कर दिया। सभी को हिंदू भगवा-ध्वज के नीचे एकत्रित होने की सूचना भेज दी गई। संयुक्त सेना लेकर पृथ्वीराज सरहिन्द की ओर बढ़ा। हिन्दू

सेना का बड़ा-बड़ाकर वर्णन करने की आदत से लाचार मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार पृथ्वीराज की सेना में पैदल सैनिकों की तो बात छोड़िए, सिर्फ घुड़सैनिकों की संख्या ही ५,००,००० थी और हाथियों की ३,०००।

भयंकर युद्ध छिड़ गया। हिन्दुओं के प्रहारों से गौरी-सेना को अपनी पंक्तियाँ ब्राहि-ब्राहि करके बिखर गईं। उन्होंने रणभूमि से भागकर कई मील उत्तर में तरावड़ी में शरण ली। सायंकाल गौरी ने रात्रि-युद्ध-बन्दी की प्रार्थना की। धर्म-युद्ध की परम्परा के अनुसार पृथ्वीराज ने इसे स्वीकार कर लिया और बर्बर मुस्लिम गुण्डों को खदेड़कर मारने वाले हिन्दू वीरों के हाथ रोक दिए गए।

ठीक आधी रात को जबकि हिन्दू सेना बड़ी शांति से सो रही थी, गौरी ने चुपचाप और एकाएक धावा बोल दिया। छल और कपट के माया-जाल में फँसे सोते वीर हिन्दू सैनिकों को गौरी के कसाई दल ने हलाल कर दिया। इस धोखेधड़ी के संग्राम में पृथ्वीराज ने वीरगति प्राप्त की।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार पृथ्वीराज को बन्दी बनाकर मारा गया था। कहा जाता है कि यंत्रणा से विह्वल हो, मृत्यु से पहले पृथ्वीराज ने गौरी को उस दिन का स्मरण दिलाया था जबकि पृथ्वीराज ने उसे उदारतापूर्वक मुक्त कर दिया था। तब अपनी चारित्रिक दुष्टता से मुहम्मद गौरी ने उत्तर दिया कि वह इतना बुद्ध नहीं है कि हाथ में आए शत्रु को छोड़ दे। कुछ दूसरे इतिहासकारों के अनुसार गौरी ने पृथ्वीराज को अपना गुलाम बनाकर उसे वापिस अजमेर लौटने की आज्ञा दी और बाद में उसे हलाल कर दिया।

पृथ्वीराज के राजकवि चंदभट्ट के महाकाव्य 'पृथ्वीराज-रासो' ने दावा किया है कि राजकवि और राज्य-रक्षक दोनों को ही बन्दी बनाकर गजनी लाया गया। वहाँ गौरी एवं उसके क्रूर दरबारियों तथा नागरिकों ने शराबी-शामोद में उन्मत्त हो पृथ्वीराज के विख्यात धनुर्कोशल को देखने की तीव्र इच्छा प्रकट की। असहाय बन्दी पृथ्वीराज को रण-भूमि के मध्य में खड़े होकर दूर स्थित लौह-पात्रों का लक्ष्य-वेध करना था। शब्द-लक्ष्य-वेधी के रूप में पृथ्वीराज विख्यात थे। तदनुसार एक-एक कर लौह-पात्रों को बजाया गया और पृथ्वीराज लक्ष्य-वेध करते रहे। इस अलौकिक

प्रदमन से प्रभावित हो अशोक गौरी बाह-बाह कर उठा। गौतान के प्रदमन को सुनकर वीर पृथ्वीराज ने उसका भी लक्ष्य-बेध कर दिया और लुटेरा मर गया। इन सभी विवरणों में अधिक तर्कसंगत विवरण वही है जिसमें पृथ्वीराज की रणभूमि में वीरगति प्राप्ति का वर्णन किया गया है। उरावड़ी का दूसरा संशाम निर्णायक था। अन्तिम हिन्दू साम्राज्य समाप्त हो गया। मुसलमानों के क्रूर, बीभत्स और घृणित शासनकाल में हिन्दुस्तान हाहाकार करने लगा। मुहम्मद गौरी के बर्बर गुण्डे बलात्कार, हत्या और लूट के प्रभोद में खुलकर खेलने लगे। मार्ग का काँटा पृथ्वीराज हटा चुका था। अरस्वती से नीचे अजमेर तक हाहाकार और कुहराम मच चुका था। प्रत्येक स्थान पर स्त्रियों, निरपराध बच्चों और पुरुषों का भयंकर संहार हुआ। सभी मन्दिर-मस्जिद बन गए और पहली बार हिन्दुस्तान के पवित्र राजसिंहासन को विदेशी मुस्लिम लुटेरे ने गंदा किया। कुचले, मसले और रोड़े गणेशों की देखभाल एवं निगरानी के लिए मुहम्मद गौरी ने अपने गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक को दिल्ली में छोड़ दिया। गौरी के गुलाम के रूप में पृथ्वीराज के पुत्र गोला ने अजमेर की जागीर सम्भाल ली। इसी समय अजमेर के अल्प राज-प्रासादीय दुर्ग को मोइनुद्दीन चिश्ती का मकबरा बना दिया गया और विशालदेव की पाठशाला को मस्जिद। यह पाठशाला रूपी मस्जिद आज "सड़ाई दिन का भोंपड़ा" के नाम से विख्यात है। ढाई दिनों के इस दृष्टिकोण उन्माद ने इस ललित जगमग भवन को ध्वस्त कर दिया।

उधर मुहम्मद गौरी अजमेर से वापिस लौटा, उधर अजमेर ने मुस्लिम कुशा उतार फेंका और घृणित मुस्लिम शिकंजे के विरुद्ध विद्रोह की पताका फहरा दी। अन्य स्थानों पर भी इसका प्रभाव पड़ा। हिन्दू शासक जटवान ने हाँसी के मुस्लिम रक्षकों को घेर लिया। गौरी का दिल्ली शाय ऐबक तुरन्त सहायता के लिए आया। बागद के निकट भीषण संघाम छिड़ गया। हिन्दू शक्ति को उभारने के प्रयास में वीर जटवान ने प्राणों की बाजी लगा दी और समर-भूमि में खेत रहा।

अपने स्वामी की कपट-रण-चातुरी में ऐबक पूरी तरह मँजा हुआ था। बुन्देलखण्ड के शासक डोर राजपूतों से ऊपरी मित्रता जताकर कपटी भाषा के प्रसार से उनके नेताओं का हरण कर अपने पास गिरवी

रख लिया। फिर उनको भीषण यातनाएँ दे, कुंठ को मार और खपाकर दुर्ग-रक्षकों से दुर्ग का समर्पण करवाया।

इस पर भी डोर सेनापति (चौधरी) चन्द्रसेन ने कुतुबुद्दीन का दहना से सामना किया। मगर ऐन मौके पर उसका अपना ही सम्बन्धी अजयपाल मोटी घूस प्राप्त कर ऐबक से जा मिला। इस प्रकार उसने अपने देशभक्त हिन्दू भाइयों के रक्त से धरती को लाल किया।

इस विजय से मेरठ मुस्लिम शासन के अधीन आ गया। ११६३ ई० में ऐबक ने दिल्ली के तोमर शासक को इस बहाने से गद्दी से उतार दिया कि राजनगर के मेहमान बर्बर मुस्लिम गुण्डों की उचित खातिरदारी करने में वह पूर्णरूपेण असफल रहा। इस प्रकार भारत पर मुस्लिम शासन का प्रारम्भ हो गया।

उधर पृथ्वीराज के भाई हेमराज ने मुस्लिम अधिकृत दुर्ग रणयम्भोर को घेर लिया। यहाँ का दुर्गपति ऐबक का सिपहसालार किवाम-उल्-मुल्क था। उधर गौरी की गुलामी स्वीकार कर अपने वीर पिता के नाम और अपने परिवार पर कलंक लगाने वाले पृथ्वीराज के पुत्र गोला से अजमेर के कुछ वीर चौहानों ने शासन छीन लिया। स्पष्ट है कि उग्र हिन्दुत्व ने कभी भी दुर्बल और देशद्रोही राजा को मान्यता नहीं दी। पृथ्वीराज के पुत्र गोला को अजमेर से भागना पड़ा। अजमेर और रणयम्भोर पर मुस्लिम गाँठ को कसने के लिए ऐबक आया। मुहम्मद गौरी के संरक्षण में गोला पुनः अजमेर की गद्दी पर बैठा। मगर वीर हेमराज अभी तक अजेय था। वारन के डोर राजपूत भी अपनी स्वतन्त्रता के प्रयास में लगे हुए थे। ऐबक को अपना गिरोह लेकर यमुना-पार दौड़ना पड़ा। इसी समय उसने उस स्थान को ध्वस्त किया जो आज अलीगढ़ के नाम से विख्यात है।

अलीगढ़ नगर, इसके तथाकथित मुस्लिम विश्वविद्यालय और इसके तथाकथित मुस्लिम निवासियों को उस दिन की याद करनी चाहिए जिस दिन ऐबक ने उनके हिन्दू पूर्वजों को खूनी तलवार की धार पर मुसलमान बनाया था। धर्म-परिवर्तन का इनका गौरव एकदम खोखला है। वह दिन था उनके व्यक्तिगत अपमान का, आतंक और यन्त्रणा का; वह दिन हिन्दुस्तान, हिन्दू पूर्वजों और हिन्दू राज्यों के लिए लज्जा का दिन था। भारत उस दिन एक सम्पन्न और संगठित देश होगा जिस दिन अलीगढ़

नगर अपनी प्राचीन परम्परा को स्वीकार करेगा और उसके निवासी बापित अपने हिन्दू विश्वास में लौटेंगे जिसे उनके पूर्वजों को भयभीत होकर त्यागना पड़ा था।

जयचन्द ने देशद्रोह का स्वाद चखा—छल, कपट और माया से दबे राजपूत पुनः सिर उठा रहे थे। गौरी के गुलाम ऐबक के हाथों से शासन की लगाम छूटने वाली थी। यह समाचार सुनकर गौरी एक बार फिर धर्मोन्मादी लूटेरों को बटोरकर भारत मा पहुँचा। ऐबक की भारतीय मुस्लिम सेना भी इससे भा मिली। इस भारतीय मुस्लिम सेना में धर्म बदले गए मुसलमान भी थे। इन दोनों का ही लक्ष्य अब देशद्रोही और बन्धुघाती जयचन्द था जिसे अब अपने ही पाप की फसल काटनी थी। भूतपूर्व साथी होने के कारण मुहम्मद गौरी उसके सारे रहस्यों, सारी चालों और समूची दुर्बलताओं से परिचित था। देशद्रोही और म्लेच्छ-सहयोगी होने के कारण इसने अपने हिन्दू बान्धवों की सहानुभूति भी खो दी थी। उसका शासन कन्नौज से वाराणसी तक फैला हुआ था।

मुहम्मद गौरी को अपने ऊपर ही चढ़ते देख जयचन्द ने अपने भूतपूर्व मित्र और वर्तमान शत्रु को रोकने के लिए अपनी सेना की अग्रिम टुकड़ी भेजी और बहु मार लाकर बापित भाग आई। अन्ततः उसे स्वयं सेना लेकर मैदान में उतरना पड़ा। शत्रु सेना की गति रुक गई। कन्नौज और इटावा के बीच में यमुना तट के चन्दावर स्थान पर घनघोर संग्राम हुआ। जयचन्द की सेना ने अपनी वीरता से गौरी के छक्के छुड़ा दिए। हताश गौरी शान्ति-सन्धि की भीख माँगने ही वाला था कि देव ने करवट बदली और संग्राम का हिन्दू पलड़ा एकाएक हल्का हो गया। उसकी आँख से होकर शत्रु के एक बाण ने जयचन्द की खोपड़ी वेष दी। जयचन्द मारा गया। अपने सेनापति के घरायाँ ही जाने पर विजयी होती हिन्दू सेना अपनी सफलता की भाषा छोड़कर इधर-उधर भागकर तितर-बितर हो गई। यही चन्दावर में भी हुआ। अपना पासा सीधा पड़ता देख गौरी भागती सेना को कुरतापूर्वक रोकने लगा। हताश मुहम्मद गौरी अब धर्मोन्माद के नपुंसक आवेग में था। बिखरे सिरों की गिनती नहीं थी। खून पीते-पीते धरती भी रुक गई। हजारों की संख्या में हिन्दू स्त्रियों को छीना और लूटा गया। कटे मेमनों की तरह शिशुओं का कीमा चारों ओर बिखरा हुआ था।

११६२ ई० के तरावड़ी संग्राम से पृथ्वीराज के साम्राज्य का घन हुआ और ११६४ ई० के चन्दावर संग्राम से जयचन्द का विशाल राज्य गौरी के पैरों तले आ गया।

अब गौरी का गिरोह हिन्दू तीर्थयात्रियों के पवित्रतम तीर्थ वाराणसी की ओर बढ़ा। वाराणसी जयचन्द की ही दूसरी राजधानी थी। जयचन्द की मृत्यु के बाद गौरी के गुण्डों को रोकने-टोकने वाला कोई नहीं रहा था। इससे हिंदुओं की शिक्षा लेनी चाहिए कि प्रत्येक नगर और स्थान पर उसकी अपनी सुरक्षा सेना हो ताकि हमलावरों को हर स्थान का मूल्य, रक्त के सिक्कों में चुकाते-चुकाते रक्तहीन हो जाना पड़े।

मुस्लिम सेना ने १००० हिन्दू मन्दिरों को लूटकर उन्हें मस्जिद बना दिया। पवित्र शिवस्थान दूसरी मुस्लिम गुंठागर्दी का शिकार बना। इससे पहले १५० वर्ष पूर्व अहमद-नियालतिजीन ने इसे लूटकर निर्ममता से बरबाद किया था। गौरी की यह लूट दूसरी मुस्लिम लूट थी। वाराणसी के विश्वनाथ मन्दिर, जयचन्द के राजप्रासाद, नागरिकों और व्यवसायियों को लूटकर मुहम्मद गौरी के सामने सोने-चाँदी का विशाल पहाड़ खड़ा कर दिया गया। तर-संहार और कत्ल-ए-आम के उत्सव में लपकती और ललकती मुस्लिम सेना ने नगर में प्रलय मचा दी। कोई घर ऐसा नहीं बचा जिसमें सुन्नत न हुई हो।

१४०० ऊँटों पर लूट का सामान लादकर गौरी का कारवाँ गजनी की ओर चल पड़ा।

कन्नौज अभी तक भी अविजित ही था। इसकी सुरक्षा-व्यवस्था सुदृढ़ थी। अतएव मुहम्मद गौरी ने अभी इसके साथ छेड़-छाड़ करना उचित नहीं समझा।

गौरी के गजनी लौटते ही उत्तर-भारत के राजपूतों ने अपनी-अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और ऐबक मुस्लिम जुए को जबरन लादने तथा स्वतन्त्रता के प्रयासों को कुचलने में तल्लीन हो गया।

मुस्लिम संरक्षण से मुक्त होने में प्रलीगढ़ सबसे आगे था। मगर इसके निवासियों के एक बड़े भाग को मजबूरन मुसलमान ही बना रहना पड़ा। प्रलीगढ़ का प्राचीन नाम कोइल है।

ऐबक जल्दी ही वहाँ पहुँचा और स्वतन्त्रता की घोषणा करने वाले

सिर उठाते हिन्दू वीरों के सिरों को उसने पाशविक क्रूरता से कुचलकर प्रभल डाला। उधर राजस्थान में बीर हेमराज देशभक्तों का नेता था। मुसलमानों की करण-सेवा में प्रसन्न रहने वाले गोला को उसने एक बार फिर गहरी से उतार फेंका। अजमेर पर अपना प्रभाव जमा, हेमराज राज-पूतों की सेना लेकर दिल्ली-मुक्ति की तैयारी में व्यस्त हो गया। उसने राजस्थान के अन्य राजपूत राजाओं से सम्पर्क स्थापित किया ही था कि ऐबक ने अजमेर को घेर लिया। यहाँ की सुरक्षा हिन्दू सेनापति जाटराय के अधीन थी। अपनी राजधानी को ग्रहण-ग्रस्त देखकर हेमराज मुट्ठीभर की सैनिकों के साथ वहाँ पहुँचा। मुस्लिम लुटेरों ने सीमावर्ती क्षेत्रों को नष्ट-भ्रष्ट कर आपूर्ति मार्ग बन्द कर दिया था। हिन्दू रक्षक भूखे मरने लगे। बीर हेमराज भूख की लपलपाती ज्वाला को नहीं सह सका; साथ ही वह बंदर मुस्लिम शत्रुओं की सादर परोसी खीर नहीं खा सका। वह चिंता में प्रविष्ट हो गया।

नगर-प्रवेश के बाद ऐबक ने एक बार फिर मुस्लिम तलवार की धार पर अजमेर को रक्त-स्नान से पाक और साफ़ किया; मन्दिरों को पुनः मस्जिद बनाया, हिन्दू स्त्रियों को अपने कब्जे में किया और हिन्दू होने के कारण एवं मुस्लिम रीति का अत्याचार न टा सकने के कारण पृथ्वीराज के दुर्बल पुत्र गोला को हटाकर, एक मुस्लिम दुष्ट को वहाँ का राज्यपाल नियुक्त किया।

११६५-६६ ई० में मुहम्मद गौरी एक दूसरा गिरोह लेकर एक बार फिर भारत आया और उसने पादव भट्टी राजपूतों के केन्द्र बयाना को घेर लिया। तीव्र प्रतिरोध के बावजूद मुस्लिम लुटेरे राजा कुमारपाल से थान-गिर-वर्ग और विजयगढ़ मन्दिर छीनने में लफ़्त हो गए। नियमानुसार मुस्लिम अत्याचारों और बलात्कार की बारी आई। लुटेरे शासक के रूप में उसने बहाउद्दीन तुघ़िल को वहाँ नियुक्त कर दिया। एक हिन्दू दुर्ग का नाम उसने सुल्तानगढ़ रख दिया।

दक्षिण की ओर मुड़कर अब गौरी ने ग्वालियर को जा घेरा। राजा सुलक्षण पाल ने अपने दुर्ग की रक्षा बड़ी ही वीरता से की। अन्त में गौरी को अपना घेरा उठाना पड़ा। उसे भय था कि विदेशी क्षेत्र में भूख की ज्वाला से बेहाल होकर उसके मुँह कहीं घुटने न टेक दें। बाद में आदत से लाचार

कपटी गौरी ने अपने वचन को भंग कर बहाउद्दीन तुघ़िल को दुर्ग घेरने भेज दिया। आपूर्ति मार्ग को बन्द करने में तुघ़िल किसी प्रकार सफल हो गया। आपूर्ति मार्ग के बन्द हो जाने के उपरान्त भी उसे १० महीने तक घेरा डाले पड़े रहना पड़ा। अन्त में विवश हो दुर्ग-रक्षकों ने इन हमलावरों के लिए दुर्ग खाली कर दिया और पीछे हट गए।

११६६ ई० में राजस्थान के मेदों और चौहानों ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। अजमेर के मुस्लिम दुर्ग-रक्षकों को उन्होंने घेर लिया। ऐबक इनकी सहायता के लिए पहुँचा और हारकर दुर्ग में शरण ली। इसी बीच मुहम्मद गौरी की एक और सैन्य टुकड़ी वहाँ आ पहुँची और राजपूतों को घेरा उठाना पड़ा।

अपने आक्रमणों से तहस-नहस भारत में कुतुबुद्दीन ऐबक को छोड़कर गौरी गजनी वापिस लौटा। उसे पश्चिम एशिया के शत्रुओं को भी शान्त करना था। अन्धखुद के संग्राम में ख्वारिज्म के शासकों ने गौरी को १२०४ ई० में बड़ी बुरी तरह हराया। बड़ी कठिनाई से गौरी किसी प्रकार जिन्दा वापिस गजनी लौट सका। परवर्ती सन्धि के अनुसार उसे ख्वारिज्म के शाह अलाउद्दीन को पश्चिम एशिया का अपना सारा भू-भाग सादर समर्पित कर देना पड़ा।

इस पराजय के समाचार के साथ-साथ उसकी मृत्यु की अफ़वाह भी पंजाब तक पहुँच गई और जनता ने उसके शासन के विरोध में विद्रोह कर दिया। मुस्लिम दरबारी ऐबक-वक ने सुल्तान के शासक को हलाल कर सत्ता पर अपना कब्जा कर लिया। लाहौर एवं गजनी के बीच में गवस्सर आदि जातियों ने विद्रोह की पताका फहरा दी।

मुहम्मद गौरी ने भारत की जितनी भूमि रौंदी वो वहाँ चारों ओर उथल-पुथल मच गई। न किसी का जीवन सुरक्षित था न सम्पत्ति। चोर, डाकू आदि लोगों के कारण शान्तिपूर्ण जीवनयापन सपना बन गया था। अतएव अपने स्वामित्व की मोहर-छाप पुनः लगाने के लिए गौरी फिर एक बार एक विशाल गिरोह लेकर आया और कुतुबुद्दीन को पंजाब में मिलने का समाचार भेज दिया। अत्याचारी मुस्लिम जुए को उतार फेंकने को उत्सुक वीर पंजाबियों ने हर जगह और हर स्थान पर ऐबक को रोका। सारे रास्ते लड़ता-भिड़ता, गिरता-पड़ता और मरता-बचता ऐबक

किसी प्रकार अपने स्वामी से घा मिला।

असन्त क्षत्रों को मसान-सा शान्त कर दोनों लाहौर पहुँचे। इसके बाद मुहम्मद गौरी ने गङ्गी के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में उसने दमयक में पड़ाव डाला। तब १५३-१२६६ ई० को वीर हिन्दुओं का एक छोटा दल तलवार से वपखात करता मुहम्मद गौरी के खेमे तक आया और एक ही झटके में गौरी का सिर कटकर भूमि पर लुढ़कता दूर तक चला गया। इस प्रकार एक घोर मुस्लिम लुटेरे का अन्त हो गया।

(मदर इण्डिया, नवम्बर १९६६)

: ४ :

बख्तियार खिल्जी

मानव प्रगति के इतिहास में मुहम्मद-इब्न-बख्तियार खिल्जी एक अध्रम नाम है। सारे संसार में विख्यात हिन्दू शिक्षा-केन्द्र खोज-खोजकर नष्ट करने में उसने अपनी दुष्टता का परिचय दिया था।

यह शैतान गुलामों के बाजारों में कई बार बिका था। अनेक बार नौकरियों से निकाला गया था। मगर इसका नाम बड़ा लम्बा-चौड़ा, भारी-भरकम, उच्चारण में क्लिष्ट और तड़क-भड़क वाला था—“मलिक शाजी बख्तियार उद्-दीन मुहम्मद इब्न बख्तियार खिल्जी।”

आदम-काल से मानवता ने ज्ञान एवं प्रगति की वृद्धि एवं मुरसा के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगा रखा है। मगर बख्तियार खिल्जी शैतान मुस्लिम हमलावरों के उस गिरोह का सदस्य था, जिसने पुस्तकों, ग्रन्थों और हिन्दू शिक्षा एवं विद्या-केन्द्रों को दीमक की तरह चाट लिया था।

बघेरों एवं भेड़ियों के इस इन्सानी गिरोह में उसका पद प्रतिष्ठा का था। क्योंकि दूसरे मुसलमान लुटेरों की तरह वह अपनी सीमा में ही सन्तुष्ट नहीं था। वह चारों ओर सूँघता फिरता था। अपने राक्षसी उन्माद में वह प्राचीन प्रसिद्ध हिन्दू शिक्षा-केन्द्रों को खोजता फिरता था। हथौड़े, संडासी, मशाल, तलवार, कुल्हाड़ी, छेनी और भाले आदि लेकर वह उनपर दूट पड़ता था और उन्हें गिराकर ही दम लेता था। नालन्दा विश्वविद्यालय इन्हीं में से एक था।

बख्तियार खिल्जी पापियों का शाहजादा और मानव-जाति का काला धब्बा था। फिर भी इसीके नाम पर बिहार राज्य में एक नगर बख्तियार-पुर है। बगल में ही इसके शिकार नालन्दा की लाश भी पड़ी है। जिसके नाम ने इस देश को बदनामी और बरबादी दी, उसके नाम पर यही नगर

है। आश्चर्य होता है कि यह कैसा देश है। यह दोहरी बातें मृत, शान्त और डरपोक भारत की अपनी विशेषता है। इस अभाग्य देश के शहरों, नगरों और गांवों के नाम अभी भी ऐसे ही हैं। इलाहाबाद, अहमदाबाद, महमूदाबाद, नजीबाबाद हिन्दुस्तान की गुलामी की चमचमाती मोहर-छाप हैं। न जाने कब गुलामी की यह मोहर-छाप छूटेगी?

इस राजस के खूनी और नारकीय कारनामों के बावजूद 'तबक़ात-ए-नासिरी' के लेखक मिनहज-अस्-सिराज ने लिखा है—“वह एक बहुत ही स्फूर्तिशाली, निर्दोष, वीर, साहसी, बुद्धिमान और अनुभवी आदमी था।” (इलियट एवं डाउसन, ग्रन्थ २, पृष्ठ ३०५)। सभी मुस्लिम इतिहासकारों ने वास्तव में हिंस्र पशु एवं शैतानों की प्रशंसा की ऐसी ही डींग हांकी है। सर एच० एम० इलियट ने अपना विचार प्रकट किया है कि भारत के मुस्लिम युग का इतिहास “एक धृष्ट और मनोरंजक धोखा है।”

मुहम्मद बख्तियार खान गंगेसर प्रांत के 'गोर' स्थान का एक खिल्जी था। जन्मजात उत्पत्ती और दुष्ट होने के कारण वह लूटमार में सिद्धहस्त होने के लिए शैतान लूटेरे मुहम्मद गौरी के पास आया। उसने उस अन्तर्राष्ट्रिय डाकू सरदार की हर तरह से खिदमत की। धरेलू कामों में भी हाथ बँटाया और उनकी कामगिरी में झोंकने के लिए औरतों एवं लड़कों की दलाली भी उसने की।

बख्तियार खाने-अर्द्ध (प्रायः कार्यालय) में नियुक्त हुआ। मगर अयोग्यता का प्रमाण पत्र दे, उसे शीघ्र ही वहाँ से निकाल दिया गया। तब मुस्लिम लूटेरों के साथ मिलकर वह भारत में घुस आया। दिल्ली के नजीप विदेशी मुस्लिम नगर-सैनिकों के पास उसे फिर पहले जैसी ही नौकरी मिली। वहाँ से भी अयोग्यता का कर्लक ले उसे निकलना पड़ा।

उत्तर भारत उस समय भूकम्प की-सी अवस्था में था। मुस्लिम आक्रमणों के आतंक और पीड़ा के मलबे चारों ओर बिखरे पड़े थे। इस हड़कम्प का फायदा उठा लूटकर पत्थर-सा बख्तियार लुढ़कता हुआ मैदान से दूर बरगुँ तक आ लुढ़का। उसने यहाँ के मुस्लिम लूटेरे दलपति हिजवर-उद्-दीन हसन की सौकरी कर ली और हिन्दू-हत्या अभियान में अपनी योग्यता का नमूना उसने पीट ही दिया। उच्च मर्दानगी की कुंजी उसे मिल गई। वह कुंजी भी हिन्दू घरों को लूटना, हिन्दू स्त्रियों पर बलात्कार

करना, हिन्दू सम्पत्ति को बटोरना, हिन्दू हाथी-घोड़ों को चुराना और मुस्लिम गुण्डों एवं दुष्टों को बटोर, पाप की फसल का लोभ देकर उन्हें उकसाना। बस, उसे इतना ही करना था। धीरे-धीरे वह भी एक दुष्ट दल का सरदार हो गया।

मलिक हिसामुद्दीन उधवालक अवध में तैनात मुहम्मद गौरी का एक गुर्गा था। बख्तियार की प्रतिभा को उसने ताड़ लिया और हिन्दू-हत्या अभियान पर उसे नियुक्त कर दिया।

“व्यापार के सामानों का अपना निजी संग्रह भी वह करने लगा था”, यानी हथियार, घोड़े और मुस्लिम लूटेरे दल का नियोजन। निजी आक्रमण-अभियानों में उसे अधिक फायदा नज़र आया तो उसने “कई स्थानों पर बड़ी लगन और फुर्ती दिखाई” (वही पृष्ठ ३०५)। मुस्लिम इतिहास के इस कथन का अर्थ है कि उसने आधी रात में हिन्दू घरों पर चढ़ाई कर, हिन्दुओं का वध किया, हिन्दू-स्त्रियों का शील-भंग एवं अपहरण कर हराम का इतना माल बटोरा कि वह एक बड़ा डाकू शासक बन बैठा। इन आक्रमण-अभियानों के दौरान उसने दो शहरों पर भी कब्ज़ा जमा लिया और सहलत एवं सहली उसकी अपनी जागीर हो गई।

गौरवशाली भारत—भारत में इन मुस्लिम डाकूओं की प्रत्यकारी डकैतियों का स्वाद लेते हुए तबक़ात के अनुसार, “साहसी और उद्यमी होने के कारण मुनीर (मुंगेर) और बिहार के जिलों पर प्रायः आक्रमण कर, वह प्रचुर लूट जमा करता रहा था। इस प्रकार उसके पास घोड़े, हथियार एवं सैनिकों की प्रचुरता हो गई। उसकी वीरता एवं लूटेरी चढ़ाईयों की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई और दूर-दूर से आ-आकर खिल्जियों का एक दल उसके पास जमा हो गया। उसके कारनामों का समाचार कुतुबुद्दीन के पास भी पहुँचा। एक पोशाक भेज उसने उसको बड़ा सम्मान दिया।”

उत्तर प्रदेश एवं बिहार के सारनाथ, कुशीनारा, नालन्दा आदि प्राचीन विश्वविख्यात हिन्दू शिक्षा-केन्द्रों के खण्डहरों में हम उसकी विनाश-लीला के दर्शन कर सकते हैं। इन पाषाण भवनों की नींव तक उसने खोद डाली है। तबक़ात का यह वर्णन नगाड़े की चोट पर लोगों को बतलाता है कि बख्तियार ने इन स्थानों पर लगातार आक्रमण किया, बार-बार बार किया, उन्हें जलाया और वहाँ का सारा धन बटोरकर ले गया। वास्तव में

भारतीय मुस्लिम शासन का यह "सुनहरा युग" था मगर मुसलमानों के लिए। वे हिन्दू घरों को आग और खून से लाल कर, सारा सोना लूट, बटोर ले जाते थे।

इन अद्भुत शिक्षा-केन्द्रों में शिक्षा पाने के लिए सारे संसार से, सुदूर मिस्र एवं अरब से लेकर चीन और जापान तथा दक्षिण द्वीप-समूह से लेकर इस तक के छात्र जाते थे और हिन्दू गुरुजनों एवं शिक्षकों के चरणों में बैठकर विभिन्न विषयों का सांगोपांग ज्ञान प्राप्त करते थे—

कताई, बुनाई, बुवाई (Mining), आयुर्विज्ञान, शस्त्र, मेटालरजी (धातु-विज्ञान), राजनीति, कूटनीति, शासन-कला, बैंकिंग, अर्थशास्त्र, शस्त्र-निर्माण, बुद्ध-कला, धनुर्विज्ञान, प्रक्षेपण-शास्त्र (राकेट्री), गणित, ज्योतिष, नक्षत्र-विज्ञान, अध्यात्मवाद (मेटाफिजिक्स) दर्शन-शास्त्र, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र, सैन्याभूति, कृतु-विज्ञान, मेनसूरेसन, कैलक्यूलस, हायनेमिक्स, स्टेटिस्टिक्स, गायन, संगीत, नृत्य, मूर्तिकला, वास्तुकला, चित्रकला, इंजीनियरिंग, जीव-विज्ञान, स्त्रीरोग-विज्ञान और काम-शास्त्र आदि।

उस जमाने में कई गज अरज वाले सूती वस्त्रों की कताई और बुनाई होती थी जो इतने महीन और मुलायम होते थे कि एक अंगूठी के आर-पार हो जाते थे। बड़ी आसानी से ये एक छोटी डिब्बी में बन्द हो जाते थे। फिर भी तह के दाग उसपर नहीं पड़ते थे। आज की अच्छी-से-अच्छी टेरेलीन भी उसके आगे बेकार थी। सबसे महत्वपूर्ण बात इसका उत्पादन-मूल्य था, एकदम कस्ता। आँख मूँदकर चलने वाले ये अर्थशास्त्री, बड़ी-बड़ी योजना बनाने वाले ये मन्त्री और लम्बी-लम्बी बातें करने वाले ये शासकगण अपनी चिड़ता की दौग हाँकते हैं फिर भी पर्याप्त रोटी, कपड़ा और आवास साधारण लोगों को न्युस्तार नहीं हैं। मगर प्राचीन भारत में अनोखे उत्पादन ज्ञान के कारण उत्तम चीज इतनी सस्ती थीं कि साधारण श्रेणी का व्यक्ति भी उन्हें खरीद सकता था। यह उन्हीं दिनों की बात है जब जनमानस राह राह चलते किसी मकान से पानी का एक घूंट माँगता था तो उसे दूध का एक गिलास मिलता था। आज जब हम दूध खरीदते हैं तो पानी मिलता है क्योंकि गाँवें बची नहीं, मुस्लिम लूटेरे उन्हें चट कर गए।

शान्ति और समृद्धि का विश्वविख्यात भारत अँकाल और हड़तालों का अखाड़ा बन गया। एक जादुई कारनामा हो गया। मुसलमानों के लूटेरे आक्रमण और शासन ने हजार वर्षों तक इसपर परिश्रम किया। कासिम, गजनवी, गौरी, बख्तियार, अलाउद्दीन, बाबर, हुमायूँ, अकबर, शाहजहाँ, औरंगजेब आदि पिशाचों के योजना-बद्ध लगातार स्पर्श से भारत इतना मुरझा गया है कि कई पंच-वर्षीय योजनाओं तक से इसमें सिहरन तक नहीं हुआ; हजार वर्षीय मुस्लिम तबाही और बरबादी की मरम्मत होनी तो दूर रही। बख्तियार इस भय-सर्जक धूमकेतु का एक जगमगाता सितारा था।

'तबक़ात' के अनुसार—“विश्वसनीय आदमियों ने कहा है कि वह (बख्तियार) सिर्फ़ दो सौ घुड़सवारों के साथ बिहार दुर्ग के द्वार तक गया और बेखबर शत्रुओं (यानी छात्र एवं शिक्षक-गण) पर टूट पड़ा। बख्तियार के अनुचरों में दो बड़े बुद्धिमान भाई थे। एक का नाम निजामुद्दीन था, दूसरे का शम्सुद्दीन। बख्तियार खिल्जी द्वार पर पहुँचा और लड़ाई प्रारम्भ हो गई। तब इन दो बुद्धिमान भाइयों ने बहादुरों की उस सेना में बड़ी चुस्ती दिखाई। मुहम्मद बख्तियार खिल्जी ने बड़ी बोरता और सतर्कता दिखाई और द्वार से दुर्ग में प्रवेश कर महल पर अपना अधिकार कर लिया। लूट का काफ़ी माल विजेताओं के हाथ लगा। महल के अधिकांश निवासी केश-मुण्डित ब्राह्मण थे। उन सभी को खत्म कर दिया गया। वहाँ मुहम्मद ने पुस्तकों के ढेर को देखा। उसकी जानकारी पाने के लिए उसने आदमियों की खोज की तो पता लगा कि सारे लोग मर चुके हैं। पर यह मालूम हुआ कि वह सारा दुर्ग और नगर अध्ययन का स्थान (मंदिरसा) था।”

“इस विजय के बाद लूट के माल से लदा बख्तियार खिल्जी कुतुबुद्दीन के पास आया जिसने उसका काफ़ी मान और सम्मान किया।” (वही पृष्ठ ३०६, ग्रन्थ २)।

ध्यान देने की बात है कि मुस्लिम शासन बख्तियार बिना कारण और अचानक हिन्दू विद्या-केन्द्र पर टूट पड़ा था। इसको मुस्लिम लेखक बहादुरी का बेहतरीन कारनामा कहता है। अध्ययन और अध्यापन में लगे सारे छात्रों और शिक्षकों का खूनी नर-संहार हुआ। उसपर यह दावा भी हुआ

कि इससे इस्लाम का सिर ऊँचा हुआ है। एक ओर बबर मुसलमानों ने हिन्दुस्तान में हिन्दुओं की हत्याएँ की, दूसरी ओर मुस्लिम लेखकों का नगाड़ा बज उठा कि बख्तियार और उसके गुर्गो निजामुद्दीन और शम्सुद्दीन ने बड़ी सफलदारी का काम किया है।

ग़ज़नी के ग़ोरी दरबार एवं दिल्ली के ऐबक दरबार से जिसे अयोग्य मानकर हटा दिया गया था उसी बख्तियार को अब योग्यता का स्पेशल प्रमाण-पत्र मिला। हिन्दू सिर फोड़, इस्लाम के नाम पर चार चाँद लगाने वाले हत्यारे को मुस्लिम कुलीन लोगों का स्थान मिला। इस पर कसाई कामों के लिए उसको सम्मान मिला।

इस सम्माननीय ऊँची प्रगति से कुछ दरबारी जलने लगे। "अपनी प्रशोद पाटियों में वे इस पर व्यंग्य करते, हँसते और मुस्कराते हुए उसका मजाक उड़ाते थे। यह बर-भाव यहाँ तक बढ़ गया कि उसे श्वेत-महल में हाथी से नड़ना पड़ा। अपनी कुल्हाड़ी से उसकी सूँड़ पर इसने ऐसा वार किया कि हाथी भाग खड़ा हुआ। इसने उसको रगेदा। इस विजय-प्राप्ति से प्रसन्न हो, कुतुबुद्दीन ने अपने (हिन्दुओं से लूटे) शाही खजाने के उपहारों से मालामाल कर दिया। अपने कुलीन लोगों को भी उसने उसे प्रचुर उपहार देने की आज्ञा दी, जिसका विवरण देना सम्भव नहीं है। सुलतान ने पोशाक या वह बिहार लौट आया। लखनौटी, बिहार, बंग (बंगाल) और कामरूप के काफ़िरों (हिन्दुओं) के दिमाग में उसका भयंकर डर बैठ चुका था।"

इस उद्धरण की कई बातें ध्यान देने योग्य हैं।

१. हिन्दुओं को लूटने, हिन्दुओं का संहार करने और हिन्दू स्त्रियों, बच्चों का अपहरण करने की होड़ मुसलमानी गुलामों एवं गुर्गों में मची हुई थी। इस निन्दनीय होड़ एवं होड़ में जो बाजी मार ले जाता था उससे सभी जयने मगते थे।

२. दूसरा महत्वपूर्ण संकेत श्वेत महल का वर्णन है। यह साफ़-साफ़ लाल किले के दीवाने-खास का वर्णन है। इसलिए यह वर्तमान धारणा कि लाल किला (और भीतर का श्वेत महल यानी दीवाने-खास) का निर्माण मुग़ल सम्राट् शाहजहाँ ने किया है, एकदम ग़लत और अधपूर्ण है।

३. तीसरे, तबक़ात के अनुसार बख्तियार खिल्जी अपने राजसी

अत्याचारों के कारण हिन्दुस्तान के पूर्वी भागों में एक डरावना मूत था। इसलिए मुस्लिम सभ्यता एवं संस्कृति का मुसलमानी दावा एकदम झूठा हो जाता है। हिन्दुस्तान में मुसलमान कोई सभ्यता और संस्कृति लेकर नहीं आए। भयंकर बबरता, मौत, विनाश, तबाही और बरबादी लेकर वे यहाँ आए और वेशुमार सम्पत्ति, मनुष्यों, स्त्रियों एवं बच्चों को उठाकर ले गए।

उस समय बंगाल का राजा राय लक्ष्मणसेन था। नदिया उसकी राजधानी थी। मुस्लिम इतिहास तबक़ात-ए-नासिरी में उल्लेख है— "छोटा हो या बड़ा, किसी के साथ भी उसने कभी अन्याय नहीं किया। जो कोई भी उसके पास दान माँगने जाता था वह प्रत्येक को एक लाख देता था।"

पाठक प्रायः पूछते हैं कि हम मुस्लिम इतिहासों को खुशामद और चापलूसी से भरा हुआ झूठा वर्णन मानते हैं फिर जब कभी वे हिन्दुओं के पक्ष में कुछ अच्छी बातें लिख देते हैं तो उसे ज्यों-का-त्यों क्यों स्वीकार कर लेते हैं। कुछ विचार करने पर यह पता लगेगा कि ऐसा करने में हम कोई अन्याय और अपराध नहीं कर रहे हैं। मानवीय व्यवहार में अगर कोई पक्का झूठा भी साधारण एवं विरोधहीन बात कहे तथा वह बात एकदम सम्भव, विवेकपूर्ण, तर्क-संगत और तथ्यों से मेल खाती हो तो तुरन्त स्वीकार कर लेनी चाहिए। मगर भौतिक विषयों में जिस आदमी पर यह शंका होती है कि वह अपने स्वार्थ के लिए सच्चाई को दबाकर, उसके बदले झूठी कहानियाँ गढ़ रहा है तो वहाँ उसका तुरन्त विरोध होना ही चाहिए।

मुस्लिम दशावाजी—कभी-कभी लोगों को यह कहकर बहकाया जाता है कि बख्तियार ने बंगाल की राजधानी नदिया को सिर्फ १८ घुड़सवारों के साथ जीता था। यह सरासर झूठ है। मिनहज-अस्-सिराज अपनी तबक़ात-ए-नासिरी में लिखता है— "एकाएक नदिया शहर के सामने वह १८ घुड़सवारों के साथ आया। उसकी बाकी सेना उसके पीछे-पीछे आ रही थी।" (पृष्ठ ३०८-६)।

इससे मालूम होता है कि बड़ी दोस्ती जताता बख्तियार १८ घुड़सवारों के साथ नदिया में प्रविष्ट हुआ। बाद में उसकी शेष सेना भी उसी

बहाने से नदिया में प्रविष्ट हो गई। फिर चारों ओर बिखरकर वे लोग एकाएक बरीब, असुरक्षित और हथियारहीन नागरिकों पर टूट पड़े। खून, लूट और बलात्कार का उन्मादी और नंगा मुसलमानी नाच होने लगा।

तबकाल के अनुसार बख्तियार ने नदिया में कपट-माया से प्रवेश किया था। उसके अनुसार—“बख्तियार ने किसी भी आदमी से कुछ भी छेड़खानी नहीं की। बिना दिखावे के बड़ी शान्ति से वह आगे बढ़ता गया ताकि कोई भी यह न भाँप जाय कि वह कौन है। लोगों ने तो यह सोचा कि वह कोई व्यापारी है जो बेचने के लिए बोड़े लाया है। इसी प्रकार वह राय लखमिनिया के महल-द्वार तक चला आया। तब अपनी तलवार खींच उसने आक्रमण कर दिया। इस समय राय भोजन पर बैठे हुए थे। खाद्य-पदार्थों से परिपूर्ण सोने और चांदी के पात्र सामने परोसे हुए थे। एकाएक महल-द्वार एवं शहर से जोर-जोर से चीखने और चिल्लाने की आवाजें आने लगीं। इससे पहले कि उन्हें भावना मालूम हो, महल में घुस बख्तियार खिल्जी ने कई लोगों को तलवार के घाट उतार दिया। महल के पिछवाड़े से राय ने पाँच भाग गए। उनका सारा खजाना, उनकी सारी पत्नियाँ, दासियाँ और नौकरानियाँ उसके कब्जे में आ गईं। अनेक हाथियों को भी उसने अपने अधिकार में कर लिया। लूट का इतना माल हाथ लगा कि उसकी गिनती नहीं हो सकी” बख्तियार खिल्जी ने नदिया को नष्ट कर लखनौटी को अपने शासन-क्षेत्र का केन्द्र बनाया।”

इससे ज्ञात होता है कि मुसलमानों ने अपनी जन्मजात दगाबाजी का सहारा ले हिन्दुस्तान के एक-एक क्षेत्र का दमन कर, सारे नगरों एवं शहरों को नष्ट कर डाला। सारे शमीण क्षेत्र भी तबाह हो गए। प्रत्येक मुस्लिम लूटेरे ने बार-बार इन मुस्लिम कारनामों को दोहराया है। फिर भी भारतीय स्मृतों एवं कालिजों में यह गन्दगी बड़े धूम-धड़क्के के साथ फैलाई जा रही है कि मुसलमान भारत में नई संस्कृति, नई सभ्यता और नये प्रकार का मकान-निर्माण-ज्ञान लेकर आए। अगर बलात्कार, लूट, धोखे-बाजी, लूट, नर-संहार, विश्वासघात, आगजनी, चोरी और तबाही सभ्यता है तो यह सत्य है कि मुसलमानों ने सारी दुनिया में सभ्यता का प्रसार किया। उन्हें नई सभ्यता के आविष्कारता और अगुवा, प्रचारक एवं प्रसारक होने की बजाई अवश्य ही मिलनी चाहिए।

मुस्लिम माया, विश्वासघात और छल-कपट स्वयं-सिद्ध है। कासिम के समय से ही हिन्दुओं को इसकी जानकारी हो गई थी। फिर भी वाग्वच्य है कि प्रत्येक हिन्दू राजा ने बार-बार इन गोरियों और खिल्जियों पर विश्वास कर अपने राज्यों को तबाह कराया। क्या सारे हिन्दू राजनीतिज्ञ सोने बने गए थे? क्या राज्य का गुप्तचर विभाग छुट्टियाँ मना रहा था? क्या सारी साधारण सावधानियों एवं सतर्कताओं को तिलांजलि दे दी गई थी?

दुर्भाग्य से राय लखमणसेन की शान्त निद्रा आज भी भारतीय शासकों पर सवार है। हजार वर्ष की मुस्लिम बर्बरता, विश्वासघात, बलात्कार और लूट की माया इन लोगों ने देखी फिर भी मानो इन लोगों ने कसम खा रखी है कि वे सीखेंगे कुछ नहीं, भूलेंगे सब-कुछ।

पृष्ठ ३०६ पर सिराज कहता है कि बख्तियार खिल्जी ने “समीपवर्ती महलों को अपने कब्जे में कर अपने नाम की घोषणा करवा दी और उसे सिक्कों पर छपवा दिया। चारों ओर मस्जिद, मकबरे एवं कालिब (मदरसे) खड़े किए गए” अपनी लूट का एक बड़ा भाग उसने कुतुबुद्दीन के पास भेज दिया।”

इस वर्णन से इतिहासकारों को समझ लेना चाहिए कि अन्यायी और मायावी मुसलमानों ने अपने सिक्कों का निर्माण भी नहीं किया। सिर्फ उन्होंने हिन्दू राजाओं के ही सिक्कों पर अपने नाम की चिप्पी लगवा दी। इतिहासकारों को पबित्र नन्दी आदि चिह्न-युक्त सिक्कों पर अब बरबी और फारसी भाषा के अक्षर मिलते हैं तब आनन्दमग्न हो वे कहते हैं कि मुसलमानों में इतनी सहनशीलता थी कि उन्होंने हिन्दू देवताओं का भी आदर किया। उनके इस भोले-भाले और सीधे-सादे विश्वास पर तरस जाता है। इस बात की दो ही सम्भावनाएँ होंगी—१. सिक्कों की परम्परागत पवित्रता हिन्दुओं की भावनाओं में गहरी पैठी हुई थी। अतएव मजबूरन लूट के सिक्कों पर हिन्दू चिह्नों के ही साथ अपना नाम छापना पड़ा। २. आर्थिक और यान्त्रिक जानकारी के अभाव में उन्हें मजबूरन हिन्दू सिक्कों पर ही अपना नाम छापकर सन्तोष करना पड़ा क्योंकि कूट या भारी टैक्सों से प्राप्त हिन्दू सिक्कों पर डले हिन्दू चिह्नों का मिटाना उन लोगों के बूते के बाहर की बात थी। अतएव अधिकांश मध्यकालीन सिक्के हिन्दू सिक्के ही हैं। इन सिक्कों के हिन्दू चिह्नों को या तो उन लोगों ने

मिट्टा दिया या फिर उन्हीं चिह्नों के साथ अपने मुस्लिम नाम भी घोष दिए।

सिराज साफ़-साफ़ स्वीकार करता है कि बंगाल के सारे मध्यकालीन मकबरे, मस्जिदें और मस्जिदें हिन्दू मन्दिर, महल और पाठशालाएँ ही हैं। मुसलमानों के लम्बे शासन समय के दौरान लोग इन मुस्लिम अवहत्ताओं और विध्वंसकारियों को ही इन भवनों के निर्माता मानने की भूल कर बैठे हैं।

आसामी और राय—उर और उमीन की बख्तियार की भूल बढ़ती ही गई। माया, आतंक और यातना के हथियारों का प्रयोग उसने चीनी तुकिस्तान एवं तिब्बत में भी करना चाहा। "इस इरादे से दस हजार घोड़ों की एक सेना तैयार की" उसके नायकों में से एक नायक कूच (बिहार) की स्थानीय जाति का था। इसका नाम अली मिच था। बख्तियार खिल्जी ने इसे मुसलमान बनाया था। पहाड़ी मार्गों को बतलाना उसने स्वीकार कर लिया।" इससे ज्ञात होता है कि मुसलमान बनने के बाद किस प्रकार हिन्दू अपनी ही जाति और देश के दुश्मन और गद्दार हो गए। फिर अकबर, शाहजहाँ और बहादुरशाह आदि विदेशी मुसलमानों ने भारतीय जमीन के साथ बलात्कार किया तो आश्चर्य ही क्या?

हिन्दू से मायावी मुसलमान बना अली मिच बख्तियार को बर्धनकोट नगर तक ले आया। ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे बसा कभी यह बंगमती नाम से भी विख्यात था। बीस खम्भों का एक प्राचीन हिन्दू पुल इस नदी पर था। साधारण पर्यटक, इतिहास के छात्र एवं शिक्षक, शोधकर्ता और सरकारी अधिकारियों को यह जानकर जाग जाना चाहिए कि मध्यकालीन पुलों का निर्माण मुसलमानों ने नहीं किया है वरन् मुस्लिम-पूर्व हिन्दू कारीगरों ने ही इनका निर्माण किया है। मुसलमानी दरबारों के रिकार्ड में कहीं भी इस बात का ज़रा भी प्रमाण नहीं है कि मुसलमानों ने कोई भी नहर, पुल, महल, दुर्ग, मकबरा या मस्जिद बनाया है। इधर-उधर जो बयान हैं वे सरम्मत सम्बन्धी हैं। इसी सरम्मत को उन लोगों ने बढ़ाकर अपना मौलिक निर्माण कहा है। उसपर सरम्मत का खर्चा और भार भी हिन्दू जमता पर ही सादा गया। उतहपुर सीकरी, ताज या आगरा दुर्ग से

सम्बन्धित अरबी लेखों का अनुवाद करते समय पवित्र विद्वानों ने अपनी-अपनी टिप्पणियाँ देकर इसे एकदम स्पष्ट कर दिया है।

बख्तियार खिल्जी ने, एक पक्के चोर की भाँति पुल की सुरक्षा के लिए अपनी एक मजबूत सैन्य-टुकड़ी वहाँ छोड़ दी ताकि भागने का मार्ग साफ़ रहे। बाकी सेना के साथ वह आसाम में घुस गया और तिब्बत की ओर बढ़ा। १२४३ ई० की एक रात उसने बनगाँव और देवकोट के बीच अपना पड़ाव डाला। एकाएक आसामी शासक की हिन्दू सेना ने उसपर चढ़ाई कर दी। पहली बार एक हिन्दू ने इन दुष्टों की नाड़ी पकड़ अपनी सूझ-बूझ का परिचय दिया। आसामी राय की गिनती उन मोड़े हिन्दू राजाओं में की जानी चाहिए जिन्होंने अपनी सुरक्षा के प्रति सतर्क रह परिस्थिति को पूरी तरह समझा। पवित्र उषाकाल में हिन्दुओं ने आक्रमण किया था। दोपहर होते-होते हिन्दू सेना ने "बड़ी संख्या में मुसलमानों को मार दिया और घायल कर दिया।" आश्चर्य है कि (तबक़ात-ए-नासिरी के अनुसार) "शत्रुओं (यानी हिन्दुओं) के पास बाँस के भाले थे और उनकी ढाल, कवच तथा शिरस्त्राण सिर्फ़ कच्चे रेशम के ही बने हुए थे जो आपस में एक दूसरे से बँधे और सिले हुए थे। सभी के पास लम्बे-लम्बे धनुष और बाण थे।"

भयभीत, आतंकित और पराजित बख्तियार को उसके जानसूँ ने खबर दी कि कुछ ही दूरी पर एक विशाल हिन्दू शहर कुर्मपट्टन है जो चारों ओर दीवारों से आवेष्टित है। "उस नगर के बाजार में प्रतिदिन प्रातः १५०० घोड़ों की बिक्री होती थी और उस शहर में ३५,००० बीर तुकों (यानी हिन्दुओं) की सेना धनुष-बाणों से तैयार खड़ी थी।"

"बख्तियार खिल्जी ने देखा कि उसके आदमी यक़े ओर हताश हैं, अनेक मारे गए हैं और काफ़ी घायल हैं। उसने नायकों से सलाह-मशवरा करके लौट जाना ही ठीक समझा ताकि दूसरे साल पूरी तैयारी से वे फिर उस देश में आ सकें।"

मायावी मुस्लिम लुटेरों को बुरी तरह हराने के बाद आसामी हिन्दू सेना ने इस बात का भी पूरा ध्यान रखा कि वापिस भागते मुस्लिम हैवानों को खाने का एक दाना भी न मिले और न उनके जानवरों को घास का एक तिनका ही। इसपर "मजबूर होकर वे लोग अपने घोड़ों को मारकर खा गए।"

बख्तियार वापिस भागता हुआ पुल तक आया और सन्न रह गया। यह देखकर उसे बड़ा धक्का लगा कि उसकी टुकड़ी का सकाया कर हिन्दुओं ने पुल तोड़ उसके भागने का मार्ग एकदम बन्द कर दिया है।

समीप में ही "एक मजबूत गगनचुम्बी मन्दिर था जिसमें सोने और चांदी की अनेक प्रतिमाएँ थीं। सोने की एक प्रतिमा बड़ी विशाल थी जिसका बज्र दो तीन हजार मिस्त्रल से भी अधिक था। बख्तियार एवं उसकी बाक़ी सेना ने इसमें पनाह ली और बेड़ों से नदी पार करने के इरादे से वे लोग लकड़ी एवं रस्सी के प्रबन्ध में लग गए।" यहाँ यह बत-इरादे से वे लोग लकड़ी एवं रस्सी के प्रबन्ध में लग गए।" यहाँ यह बत-लाना बेकार ही है कि उन मायावी मुसलमानों ने मन्दिर को अपनी विधि के अनुसार अपवित्र कर, स्वर्ण प्रतिमाएँ गला दीं और उसे मस्जिद बना दिया—यह एक ऐसी कहानी है जिसे हजार वर्ष के इतिहास में इतनी बार दोहराया गया कि लोग पढ़ते-पढ़ते जब जाते हैं।

हिन्दुस्तान के बीरों की कतार में आसामी राय को रखना ही पड़ेगा क्योंकि उसने अपने देश और अपनी प्रजा की रक्षा की; क्योंकि उसने जागरण, चेतना और दूरदर्शिता का परिचय दिया, क्योंकि उसने अपने कर्तव्य का पालन किया। अपने निष्फल क्रोध में हर चीज़ को तोड़ता, फोड़ता और चबाता यह मायावी मुस्लिम पशु जबतक उसके राज्य पर मेंढराता रहा, उसने चैन की एक सांस भी नहीं ली।

"उसने अपने क्षेत्र के सारे हिन्दुओं को एकत्रित होने की आज्ञा प्रसारित कर दी और लोग हिन्दू मन्दिर (तथा परिवर्तित मस्जिद) के चारों ओर एकत्रित होने लगे। वे चारों ओर आड़े एवं तिरछे बांस के भाले गाड़ने लगे ताकि चारों ओर एक प्रकार की दीवार बन जाए।"

मुसलमान ने ही मारा—पिजरे में बन्द हो घिर जाने के भय से बख्तियार ने निकटवर्ती जंगल में भाग जाने का निर्णय किया। आसामी हिन्दू सेना का सामना करने का साहस उसमें नहीं था। हर हालत में नदी पार करने की ठान जब वह नदी तट की ओर बढ़ा तो यह देख उसके होश फ़ाफ़रा हो गए कि आसामी शासक की वीर और चौकन्नी सेना अभी तक उसके पीछे लगी हुई है। हड़बड़ाहट और घबराहट में मायावी मुस्लिम सेना ब्रह्मपुत्र की तीव्र धारा में कूद पड़ी। "पीछा करने वाले हिन्दुओं ने नदी तट पर अपना अधिकार कर लिया। शत्रु धारा के बीच में पहुँच गए

जहाँ पानी बहुत गहरा था और प्रायः सभी डूब गए। कुछ घोड़े, जिनकी संख्या १०० के आस-पास होगी और मुहम्मद बख्तियार खिल्जी बड़ी कठिनाई से नदी पार कर इस पार आ सके।" वह भी बहती हुई मुस्लिम लाम का सहारा लेकर।

"इस विपत्ति की परेशानी का मारा बख्तियार खिल्जी देवकोट पहुँचकर बीमार पड़ गया। वह कभी भी बाहर नहीं निकलता था। नदी में डूबे लोगों की स्त्रियों एवं बच्चों को देख उसे शर्म महसूस होती थी। जब कभी वह घोड़े पर बाहर निकलता तो मद, औरत और बच्चे सड़कों और घरों पर खड़े हो चीखते-चिल्लाते उसे गालियाँ देते थे।" प्रायः इसी समय गोरी, जो बंबर मायावी मुसलमानों का एक चमकता सितारा था, जिसके चारों ओर बख्तियार खिल्जी जैसे ग्रह नाचते और चक्कर काटते थे, मारा गया।

इस सितारे के पतन के बाद अल्लाह ने बख्तियार की जान भी इसी प्रकार निकाली। एक हत्यारे के चाकू ने दूसरे हत्यारे की हत्या कर दी।

जिस प्रकार यह गुलाम मायावी मुस्लिम लुटेरा दूर देवकोट में मरा उसमें एक प्रकार का दैवी न्याय भी है। अपना काला चेहरा यह जनता को नहीं दिखा सकता था। शान्त और पवित्र पाठशालाओं पर साँप की तरह अचानक उछल और शैतान की तरह मचल इसने लोगों का जीवन जहरीला कर दिया था। ऐसे मायावी मुस्लिम पिशाच को अली मरदान खिल्जी ने कुचला। आसामी पराजय में इसका कोई प्यारा रिश्तेदार काम आया था। १२०५ ई० में शर्म से मुँह छिपाए बख्तियार एकान्त में पड़ा हुआ था। मृत्यु दूत की भाँति अली मरदान सुदूर कुनी से आया। तेज़ी से तम्बू में प्रवेश कर झटके से परदे को नोच, फुर्ती से चाकू निकाल वह गालियाँ दे देकर चाकू भोंकने लगा। वह तबतक चाकू भोंकता रहा जबतक उसका छिन्न-विच्छिन्न शरीर गर्म खून में लथपथ हो ठण्डा और कड़ा नहीं हो गया। 'राक्षस-हन्ता' का सारा श्रेय आसाम के वीर हिन्दू शासक को मिलना चाहिए, जिसने बिना विलम्ब किये एक मायावी मुस्लिम डाकू को जड़-मूल से साफ़ कर अपनी जागरूकता और कर्तव्यपरायणता का परिचय दिया। हे भगवान् ! हमें अनेक और ऐसे ही वीर और प्रतापी हिन्दू योद्धा प्रदान करो।

हिन्दुत्व के हीरो आसाम के वीर शासक को हम भूले बैठे हैं, जिसने

मायावी बकि्त्यार को हड्डियों तक तोच, नंगा कर, उसके दुष्कर्मों से ताड़ुकों का परित्याग किया। इसका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाना चाहिए।

लोक-सभा, सुरक्षा कार्यालयों एवं अन्य सरकारी दफ्तरों में इसके चित्र लगाने चाहिए ताकि सम्बद्ध सभी लोगों को आसाम के इस हिन्दू शासक की बीरता, सतर्कता, पुष्टकला, दूरदर्शिता, कर्तव्यमरायणता और देश-भक्ति का बराबर स्मरण होता रहे।

मुहम्मद गौरी का मुस्लिम गिरोह एक सहस्रमुखी मायावी अजगर था। गङ्गनी से बाराणसी तक इसने आग और जहर उगसा। भारत के बीर राज-पूतों ने कई स्थानों से इस अजगर को काट, इसके कई टुकड़े कर दिए। मगर मरते-मरते भी इस अजगर ने कई स्थानों पर दुष्कर्मों का अण्डा दे ही दिया।

कुतुबुद्दीन, अल्तमश, बकि्त्यार आदि कई धर्मान्ध मुस्लिम गुलाम इन अण्डों से पैदा हुए और सारे देश को धुन एवं दीमक-सा चाट गए। बकि्त्यार भी इन्हीं में से एक था। इसका आकार धीरे-धीरे विशाल होता जा रहा था। उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल एवं आसाम इन चार प्रान्तों को इसने कुचला, रौंदा। अन्त में, आसाम के बीर हिन्दू योद्धा शासक ने इसे घेरकर, रोंदकर मारा।

(मदर इण्डिया, मार्च १९६७)

: ५ :

कुतुबुद्दीन ऐबक

यह विधाता का कैसा क्रूर व्यंग्य है कि प्रथम विदेशी राजा, जिसने भारतीयों को गुलाम बनाया, जिसने इस्लाम के नाम पर पाशविक, अत्याचार कर दिल्ली के प्राचीन हिन्दू राजसिंहासन को अपवित्र किया, स्वयं एक गुलाम था। इसे पश्चिम एशिया के इस्लामी देशों में अनेक बार खरीदा-बेचा गया था।

उसका नाम कुतुबुद्दीन ऐबक था। इतिहास 'तबकात-ए-नासिरी' का कहता है कि उसकी छोटी अंगुली तोड़ दी गई थी और इसीलिए उसे ऐबक कहा जाता है, ऐबक यानी "हाथ से पंगु"। कुछ इतिहासकार विश्वास करते हैं कि ऐबक एक जाति की उपाधि होनी चाहिए। दूसरे कहते हैं कि 'मूल पाठ का बयान सही नहीं हो सकता।' इससे स्पष्ट है कि मध्यकालीन मुस्लिम इतिहास की पुस्तकें झूठे बयानों की पिटारी हैं।

इन्हीं झूठे इतिहासों पर आधारित आधुनिक इतिहास पुस्तकें जनता और सरकार को पथभ्रष्ट करती हैं कि मुस्लिम शासकों और कुलीनों की लम्बी वंश-परम्परा, जिन्होंने आतंक और अत्याचारों की झड़ी लगा दी, जिनके हजार वर्षों के लम्बे शासनकाल का हर एक दिन खून से चिपचिपा है, उस लम्बी वंश-परम्परा के सभी वंशज दयालु, न्यायी और सम्य थे।

उदाहरण के लिए हम पहले कुतुबुद्दीन को ही लेंगे। इसे जो गुणों का प्रमाण-पत्र दिया जाता है, उसे परखेंगे। फिर हम जाँचेंगे कि इन गुणों का मिलान उसके जीवन-चरित्र से होता है या नहीं।

'तबकात' के अनुसार,—“सुलतान कुतुबुद्दीन दूसरा हातिम था, वह एक बहादुर और उदार राजा था”...पूर्व से पश्चिम तक उस समय उसके समान कोई राजा नहीं था। जब भी सर्वशक्तिमान खुदा अपने लोगों के

सामने महानता और भयंकरता का नमूना पेश करना चाहते हैं, वे वीरता और उदारता के गुण अपने किसी एक गुलाम में भर देते हैं... अतएव यह राजा दिलेर और दरियादिल या और हिन्दुस्तान के सारे के सारे क्षेत्र मिलों (यानी मुसलमानों) से भर गए थे और शत्रुओं (मतलब हिन्दू) से साफ हो गए थे। उसकी लूट और कत्ले-आम मुसलमानों का।" (पृष्ठ २६६, पन्ना २, इलियट और हाउसन)।

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि मुस्लिम इतिहास और यथार्थ में सारे मुसलमान हिन्दुस्तान के हिन्दुओं के लगातार कत्लेआम का (स्पष्ट ही इसमें उनकी स्त्रियों के बलात्कार, उनकी सम्पत्ति की लूट और उनके बच्चों का हरण भी शामिल है) ऊँचे दर्जे की उदारता, धार्मिकता, वीरता और महानता का काम मानते हैं। साम्प्रदायिकता से सराबोर और राजनीति से दुर्गन्धित भारतीय इतिहासों ने बलात्कार, लूट, हरण और नर-संहार से अपनी आँखें एकदम मूंद ली हैं। उन्होंने सिर्फ इन्हीं शब्दों को कसकर पकड़ रक्खा है कि मुस्लिम बादशाह "उदार और कुलीन" थे।

इसीलिए भारतीय जनता और सरकार को अवश्य ही महसूस करना चाहिए कि बिना एक भी अपवाद के, भारत का प्रत्येक मुस्लिम शासक नृशंस और अत्याचारी था। इनके दुष्कर्मों से मनुष्य की ही नहीं पशु की भी गर्दन शर्म से झुक जाती है। इसलिए हमारे स्कूलों और कॉलेजों की पाठ्य-पुस्तकों में समुचित सुधार कर लेना चाहिए। कठोर सत्य का स्वागत करना चाहिए। झूठी स्तुति और मनगढ़न्त गण्यबाजी में डूबकी नहीं लगानी चाहिए।

कुतुबुद्दीन एक गुलाम था। कौन उसकी जन्म-तिथि में सिर खपाए? इसलिए इतिहास को उसकी जन्म-तिथि का ज्ञान नहीं है। इतिहास को सिर्फ इतना ही पता है कि वह एक तुर्क था। उसके परिवार को मुस्लिम धर्म मानना पड़ा था। गुलामी से स्थापित उसे अनेक लोगों के साथ भेड़ की भाँति बेचने के लिए एक बाजार से गुलामों के दूसरे बाजार में हँका गया था।

उसका पहला खरीददार अज्ञात है। मगर उसे निमिषपुर में खरीदकर खोले-पौले भाव पर बेचा गया था। इस नाम से महाभारत में वर्णित नेमिषारण्य का स्मरण हो आता है। नेमिषारण्य यानी नेमिष अरण्य यानी

वन। निमिषपुर से हिन्दुओं को अपने उस विस्तृत, विनाश और दूर-दूर तक फैले हुए अपने साम्राज्य का कम-से-कम एक बार स्मरण अवश्य ही कर लेना चाहिए क्योंकि यह एक संस्कृत शब्द है।

निमिषपुर में गुलाम कुतुबुद्दीन के स्वामी ने उसे निमिषपुर के प्रमुख काजी तथा शासक के हाथों बेच दिया। कुतुबुद्दीन के नए स्वामी का नाम क़ख़रुद्दीन अब्दुल अजीज था।

जो भी शिक्षा-दीक्षा कुतुबुद्दीन को काजों के घर मिली वह सिर्फ इतनी ही थी कि कैसे कुरान पढ़ी जाय और किस प्रकार काफ़िरो (हिन्दुओं) का कत्ले-आम किया जाय।

कुरूप और पंगु गुलाम में अनुरक्ति न होने के कारण काजों ने इसे एक सोदागर-दल के हाथ बेच दिया। आज के व्यापारियों की भाँति, मध्ययुगीन मुस्लिम व्यापारियों के पास मनो काले रुपये नहीं थे मगर त्यों 'लाल' धन अवश्य था जो कासिम से गौरी जैसे लुटेरों के क्रमिक लुटेरे-अभिषानों में हिन्दू घरों से लूटा जाकर हिन्दुओं के कत्लेआम से निकली खून की नदियों पर बहता हुआ उस देश में जा पहुँचा था।

कुतुबुद्दीन अब किशोर अवस्था को पार कर रहा था। उसका मूल्य भी बढ़ रहा था क्योंकि डाका डालने और हिन्दुओं को मार-लाने की क्षमता भी वृद्धि पर थी। जबकि काजी ने स्वयं कुतुबुद्दीन को "लाल बाजार" की मोटी रकम लेकर बेचा था, उसके नए व्यापारी स्वामी ने शतान लुटेरे मुहम्मद गौरी से, गजनी में, उसका अनाप-बनाप 'लाल बाजारी' मूल्य वसूल किया था।

भारत के सभी मुस्लिम बादशाह और लुटेरे सिर्फ रात ही नहीं बरन् दिन भी शराब के आमोद और वासना के प्रमोद में व्यतीत करते थे। उसी परम्परा के अनुसार गौरी भी "प्रायः संगीत और आनन्द में डूब जाता था"। तबक़ात में वर्णन मिलता है कि "एक रात उसने पार्टी दी और आनन्दोत्सव के बीच में उसने अपने नौकरों को सोने और चाँदी के टुकड़े बड़ी उदारता से दिये। और लोगों के साथ-साथ कुतुबुद्दीन को भी उसका भाग प्राप्त हुआ। मगर जो कुछ भी उसे मिला... मजलिस से बाहर आने पर, उसने अपना सारा हिस्सा तुर्की सिपाही, पहरेदार और नौकरों में बाँट दिया।"

जिस समय कुतुबुद्दीन मुहम्मद गौरी की सेवा में आया, उस समय तक उसके पास कोई भी उल्लेखनीय विवेक नहीं बचा था। कोई भी काम कितना ही बन्दा और गिरा हुआ क्यों न हो, वह उसके लिए तैयार रहता था। इससे उसे अपने नियमहीन स्वामी की कृपादृष्टि प्राप्त होती थी। "जब तक उसकी कृपा से वह 'घोड़े का स्वामी' नहीं बना था" उसे महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपा जाता था।

गुलामबारों का नायक होने के नाते कुतुबुद्दीन को खुरासान के विरुद्ध एक अभियान में भाग लेना पड़ा था। इसमें तीन शासकों ने भाग लिया था, गोर, गबनी, और बामियाँ। बामियाँ अफगानिस्तान का ही एक क्षेत्र है जहाँ कि विनाश बुद्ध प्रतिमा और कलाकृतियों से अलंकृत गुफाएँ प्राचीन भारतीय साम्राज्य के विस्तार और विजय का स्मरण कराती हैं। कुतुबुद्दीन ने इस अभियान में तथा बाद के अभियानों में व्यावहारिक ज्ञान पाया। इससे बाद में उसे भारत में अपना नृशंस और खूंखार चक्र चलाने में काफ़ी सहायता मिली। "वह पशुओं के दाना-पानी जुटाने वाले दल का नायक था और एक दिन जबकि वह चारे की खोज में था, शत्रुओं के अश्वारोहियों ने उसपर आक्रमण कर दिया।" उसे बन्दी बना, बेड़ियाँ पहना दी गईं। बाद में किसी प्रकार उसके बन्दी-कर्ता सुलतान शाह के हारने पर, कुतुबुद्दीन को बेड़ियों के साथ ही ऊँट पर लादकर उसके स्वामी मुहम्मद गौरी के पास लाया गया।

कुतुबुद्दीन को मुक्त कर कहराम का क्षेत्र उपहार में दिया गया। उस समय ऐसे उपहारों का अर्थ होता था कि वह खुला गुलाम उस प्राप्त जागीर की प्रजा पर सुल्तान-सुल्ता अत्याचार कर सकता था। यह उसका अधिकार था जिसकी कहीं कोई मुनबाई नहीं थी।

गौरी ने १६ वर्ष पूर्व ही भारत पर अपना नृशंस आक्रमण प्रारम्भ कर दिया था। उसके गुलाम कुतुबुद्दीन ने काफ़ी उत्साह दिखाया। उसने अपने आपको स्वामी का पक्का एवं निपुण गुर्गा प्रमाणित कर दिया जो अपने स्वामी के रक्त-रजित चरण-चिह्नों पर चलकर शान्तिप्रिय, अर्धनिद्रित (बौद्ध के नये में) हिन्दू सम्प्रदाय को ध्वस्त करने के लिए कमर कसकर तैयार था।

अपनी चारित्रिक विशेषता के कारण हुसैन निजामी का इतिहास

'ताजुल्-मा-आसीर' (पृष्ठ २२६, ग्रन्थ २, इलियट एवं डाउसन) घोषणा करता है कि "कुतुबुद्दीन ऐबक मुसलमान और इस्लाम का तमम है" काफ़िरी का विध्वंसक है, "उसने अपने आपको धर्म और राज्य के शत्रुओं (मतलब हिन्दुओं) को उखाड़ फेंकने में लगा दिया, उसने हिन्दू की जमीन को उन लोगों के कलेजे के खून से इतना सराबोर कर दिया कि कयामत के दिन मोमिनों को खून का दरिया नावों से ही पार करना होगा—जिस भी दुर्ग और गढ़ पर उसने घावा किया उसे अपने कब्जे में कर लिया, उसकी नींव और खम्भों को... हाथियों के पैरों तले रौंदकर धूल में मिला दिया। "ताजधारी रायों का सिर काट उसे मूलियों का ताज बना दिया—अपनी तलवार के दमदार पानी से मूर्तिपूजकों के सारे संसार को जहन्नुम की आग में झोंक दिया—प्रतिमाओं और मूर्तियों के स्थान पर मस्जिद और मदरसों की नींव रखी—और (इस प्रकार उसके कारनामों से) लोग नौशेर्वा, हस्तम और हातिमताई को भी भूल गए"।

यह उद्धरण गला फाड़कर जोर से चिल्ला-चिल्लाकर साफ़-साफ़ बतला रहा है कि मुस्लिम "उदारता और प्रताप" का मतलब क्या है। साथ ही यह भी स्वीकार और मंजूर करता है कि मध्ययुगीन मकबरे और मस्जिदें, जिन्हें मुस्लिम उपयोग के लिए जबरदस्ती जलत किया गया, हकीकत में हिन्दू मन्दिर ही हैं जिन्हें मोठी ख़बान में मस्जिद और मदरसा कहा गया है। इस उद्धरण से हमारी सरकार, हमारे पर्यटन विभाग और हमारी जनता पर यह सच्चाई प्रकट होनी चाहिए कि जिसे हम बड़े गौरव से महान् मुस्लिम महल कहकर प्रशंसा करते हैं, वे और कुछ नहीं सिर्फ़ अपहृत (जब्त) और दुर्व्यवहृत हिन्दू महल और मन्दिर ही हैं।

११६१ ई० में कुतुबुद्दीन ने सर्वप्रथम भारत में प्रवेश कर मेरठ पर घावा किया था। सारे दुर्ग विदेशी मुसलमानों ने बनाए हैं—इस प्रचलित विश्वास को झूठा साबित करता हुआ ताजुल्-मा-आसीर, (पृष्ठ २१६, ग्रन्थ २, इलियट एवं डाउसन) कहता है—"जब वह मेरठ पहुँचा, जो सागर जितनी चौड़ी और गहरी खाई, बनावट तथा नींव की मजबूती के लिए भारत भर में एक प्रसिद्ध दुर्ग था, तब उसके देश के आश्रित शासकों की भेजी हुई एक सेना उससे आकर मिल गई। दुर्ग ले लिया गया। दुर्ग में एक

कोतवाल की नियुक्ति की गई और सभी मूर्ति-मन्दिरों को मस्जिद बना दिया गया।"

कितने दुःख की बात है कि प्रत्येक मुस्लिम इतिहासकार इस प्रकार बार-बार जोरदार आवाज में यह घोषणा करता है कि हिन्दू महलों को, मन्दिरों और राजप्रासादों को, मस्जिदों (और मकबरों) में परिणत कर दिया, इसके बावजूद भी हमारी सरकार और हमारी जनता यह दृढ़ विश्वास करती है कि भारत के मध्ययुगीन भवनों का निर्माण मुसलमानों ने किया है।

एक मुस्लिम इतिहासकार कहता है कि मेरठ लेने के बाद कुतुबुद्दीन दिल्ली की ओर बढ़ा जो "सम्पत्ति का स्रोत और ऐश्वर्य का आगार था।" विदेशी मुस्लिम विजेता कुतुबुद्दीन ने "घन और ऐश्वर्य के आगार" उस नहर को विध्वंस कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। "शहर और इसके समीपवर्ती क्षेत्र को मूर्तियों और मूर्ति-पूजकों से मुक्त कर, देव-स्थानों को जगह मस्जिदों का निर्माण किया।"

कुतुब मीनार—आजकल दिल्ली में जिसे हम कुतुब मीनार कहते हैं वह हिन्दू राजा विक्रमादित्य के राज्यकाल का प्राचीन हिन्दू नक्षत्र-निरीक्षण स्तम्भ है। जब कुतुबुद्दीन ने दिल्ली पर धावा किया था तब इसके चारों ओर मजबूत दीवार थी। विनाश के एक नये नाच के बाद जिसमें प्रतिमाओं को बाहर फेंक उसी मन्दिर को क्वातुल् इस्लाम की मस्जिद बनाया जा रहा था, कुतुबुद्दीन ने पूछा कि इस स्तम्भ का मतलब क्या है? उसे अरबी भाषा में बताया गया कि यह स्तम्भ एक "कुतुब मीनार" है यानी उत्तरी ध्रुव के निरीक्षण का स्तम्भ। नक्षत्र-निरीक्षण-स्तम्भ (खगोल विद्या सम्बन्धी) के इस अरबी रूपान्तर से इतिहासकार भ्रम में पड़ गए और इसका सम्बन्ध कुतुबुद्दीन से जोड़ दिया।

इस मुस्लिम लुटेरे ने १२०६ से १२१० तक सिर्फ चार वर्ष राज्य किया था। इस स्तम्भ की योजना और निर्माण के लिए चार वर्ष पर्याप्त नहीं हैं। इस बात को तो अभी छोड़ ही दिया जाय क्योंकि कुतुबुद्दीन ने कहीं भी यह नहीं कहा है कि उसने इस स्तम्भ का निर्माण किया है। दूसरी ओर उल्टे ओह स्तम्भ की ओर जाने वाले एक वृत्त-खण्ड पर एक लेख

खुदा दिया है कि उसने पत्थर-स्तम्भ के चारों ओर स्थित २७ मंजों को नष्ट-भ्रष्ट कर बरबाद किया है।

दिल्ली-विजय के तुरन्त बाद कुतुबुद्दीन को समाचार मिला कि पृथ्वी-राज के भाई हेमराज ने हिन्दू-स्वाधीनता का झण्डा कुलन्द किया है। उसने मुस्लिम अधिकृत रणबम्होर दुर्ग को घेर लिया। उसने अजमेर की ओर भी कूच करने की धमकी दी है जहाँ कि मुसलमानों के घृणित और लालची संरक्षण में सिर्फ नाम के लिए पृथ्वीराज के पुत्र का शासन था। हेमराज के प्रयत्न सफल नहीं हुए। मगर कुतुबुद्दीन ने इस मौके से खूब फायदा उठाया। अधिक-से-अधिक धन, जहाँ तक वह निचोड़ सका, पृथ्वीराज के पुत्र से उसने निचोड़ा क्योंकि ताजुल्-मा-आसीर हमें बतलाता है, कि "इस मित्रता के बदले में उसने (पृथ्वीराज के पुत्र ने) भरपूर खजाना भेजा" साथ में तीन सोने के तरबूज थे जिन्हें बड़ी कुशलता एवं निपुणता से पूर्ण चन्द्र की आकृति में ढाला गया था। इस वर्णन से मालूम होता है कि मुस्लिम दरबारों में अकल्पित धन कहाँ से आया। साथ ही इसी विवरण से यह भी ज्ञात होता है कि अशिक्षित विदेशी मुस्लिम गिरोह को किसी भी आभूषण या भवन-निर्माण का प्रारम्भिक ज्ञान तक भी नहीं था। इन कला-कृतियों के निर्माण में जितना समय लगता है उतना फ़ालतू समय ही इनके पास नहीं था।

अभी कुतुबुद्दीन मुश्किल से अजमेर में मुस्लिम शक्ति का सिक्का जमा ही पाया था कि उसे समाचार मिला कि दिल्ली के हिन्दू शासक, ने जिसे गद्दी से हटाकर राजसिंहासन मुस्लिम अपहर्तकों ने छीना था, अपनी सेना एकत्रित कर ली है और वह सीधा कुतुबुद्दीन की ओर बढ़ा चला आ रहा है। घिर जाने के डर से कुतुबुद्दीन अजमेर से बाहर निकल आया। घमासान युद्ध हुआ। दिल्ली का राजपूत शासक वीरता से युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। कायर मुसलमानों ने "घड़ से उसके सिर को तराश लिया और उसे उसकी राजधानी और निवास स्थान दिल्ली भेज दिया।"

कुतुबुद्दीन ने अपनी दुर्ग-विजयों, मजबूत चौकियों और जिहाद का लम्बा-चौड़ा विवरण लिखकर गौरी का कृपापात्र बनने के लिए गजनी भेज दिया।

अपने स्वामी का निमन्त्रण पाकर कुतुबुद्दीन दूर गजनी पहुँचा। उसके आगमन पर एक उत्सव का आयोजन किया गया एवं "बहुमूल्य रत्नों एवं श्रेष्ठतम शस्त्रों और गुलामों का उपहार" कुतुबुद्दीन को दिया गया।

मगर कुतुबुद्दीन इस महान् सम्मानजनक भोज का उपयोग नहीं कर सका। वह बीमार पड़ गया था। कुतुबुद्दीन दरबार के मन्त्री जिला-उल्-मुल्क के साथ ही ठहरा हुआ था। सम्भव है कि जिला-उल्-मुल्क ने जलन में आकर कुतुबुद्दीन को जहर दे दिया हो। बाद में उसे गौरी के मेहमान-खाने में लाया गया। अभी भी वह स्वस्थ अनुभव नहीं कर रहा था। उसने हिन्दुस्तान वापिस लौटने का निर्णय किया। गौरी ने उसे अपना परवाना दिया। इसके अनुसार अब वह हिन्दुस्तान के पददलित, अपहृत और अपवित्र क्षेत्रों में गौरी का प्रतिनिधि था।

भारत की ओर बढ़ते हुए कुतुबुद्दीन ने काबुल और बलू के बीच बंगाश देश के कारमन स्थान पर अपना पड़ाव डाला। वहाँ के मुखिया को घमकाकर उसकी पुत्री को अपने घृणित गुलामी के हरम में घसीट लाया गया।

दिल्ली लौटकर कुतुबुद्दीन स्थानीय जनता को पहले की भाँति अपने नृशंस कारनामों से सताने लगा। ११६४ ई० में उसने कोल एवं वाराणसी की ओर कूच किया। ताजुल्-मा-आसीर के अनुसार—“कोल हिन्द का सर्वाधिक विख्यात दुर्ग था।” वहाँ की रक्षक-टुकड़ी में “जो बुद्धिमान थे उनका इस्लाम में धर्म परिवर्तन हुआ, मगर जो अपने प्राचीन धर्म पर ठटे रहे, उनको हलाल कर दिया।” इससे स्पष्ट है कि हिन्दुस्तान के आज के मुसलमान हिन्दुओं के ही वंशज हैं, जिनके बाप-दादाओं को सता-सता कर मुसलमान बनाया गया था। “मुस्लिम गिरोह ने दुर्ग में प्रविष्ट होकर भर-पूर खजाना और अनगिनत लूट का माल जमा किया जिसमें एक हजार घोड़े भी थे।” यह सरासर झूठ है जो मुस्लिम इतिहासकारों की चरित्र-हीनता को प्रकट करता है। यह मुस्लिम इतिहासकार बड़ी दूरदर्शिता से यह लिखने से कतरा जाता है कि दुर्ग को जीतकर अपने अधिकार में किया गया। मुस्लिम इतिहास में इस प्रकार क्रम टूटना, व्यवधान होना ही एक स्पष्ट स्वीकृति है कि मुस्लिम धावे को भयंकर नुकसान के साथ पीछे धकेल दिया गया और कोल अविजित खड़ा रहा। मुस्लिम इतिहासों में इस प्रकार

की घटनाओं एवं झूठी विजयों के वर्णन करने के बाद उसी स्थान पर मुसलमानों के बार-बार आक्रमण करने का वर्णन भी मिलता है।

इसी बीच गौरी मुस्लिम लुटेरों के विशाल गिरोह को लेकर भारत में बढ़ आया। अपनी गुलामी के नजराने के तौर पर कुतुबुद्दीन ने “श्वेत घोड़ी और लाल सोने से लदा एक हाथी, एक सौ घोड़े और अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्य पेश किए।” इन सबको हिन्दू घरों से लूटा गया था। कैसी विडम्बना है कि एक भाड़े का डाकू अपने डाकू-सरदार को अपनी पाप की कमाई नजर कर रहा है।

ये दोनों मुस्लिम सेनाएँ मिलकर मुस्लिम लुटेरों का एक विशाल गिरोह हो गया। इसमें पचास हजार तो सिर्फ सवार सेना ही थी। वे सभी कवच से ढके हुए थे। अब पैदल सेना का अनुमान लगा लीजिए, जिसमें धर्म-परिवर्तित हिन्दू भी थे, जिन्हें कोड़े मार, तलवार की धार पर मुसलमान बनाया गया था।

देश-जाति द्रोही जयचन्द—कुतुबुद्दीन के नियन्त्रण में मुहम्मद गौरी ने अपनी लुटेरी सेना की एक टुकड़ी आगे भेज दी। इनके जिम्मे काम था असुरक्षित नगरों और देहातों को लूटना, खलिहानों को जला देना, खड़ी फसल कुचल देना, जलाशयों में जहर घोल देना, हिन्दू स्त्रियों को मुस्लिम हरमों में घसीट लाना, हिन्दू मन्दिरों को अपवित्र कर देना और रूकावटों को उखाड़ फेंकना। अपना काम पूरा कर कुतुबुद्दीन वापिस लौटकर मुहम्मद गौरी से आ मिला। हिन्दुओं को इस बहादुरी से विनष्ट करने के उपलक्ष्य में उसको यथेष्ट इज्जत बरूनी गई।

जयचन्द पृथ्वीराज का प्रतिद्वन्दी था। उसका राज्य कन्नौज से वाराणसी तक फैला हुआ था। वीर पृथ्वीराज से लड़ने के लिए धोखेबाज, लालची और विदेशी-म्लेच्छों को भारत आने का निमन्त्रण दे इसने भयंकर भूल की थी। वह अब हक्का-बक्का होकर देखता रह गया कि मुसलमान प्रत्येक हिन्दू का उत्कट-शत्रु है, जिसे एक-एक करके नष्ट करना ही उनका पवित्र कर्तव्य है। मुहम्मद गौरी की तन, मन, धन से सहायता करने वाले ने देखा कि वह मुस्लिम शांतान उसके फलते-फूलते क्षेत्रों की ही रौंदकर सन्तुष्ट नहीं है वरन् स्वयं उसीको बन्दी बनाकर मारने पर तुला हुआ है। विश्वासघाती मुस्लिम दोस्त की धोखेबाजी से कुपित हो जयचन्द अपनी

सेना ने उससे वा टकराया। विषाक्त मुस्लिम बाण से वह हौदे से नीचे गिर गया। "घाते की नोक पर उसके सिर को उठाकर सेनापति के पास लाया गया, इसके शरीर को घृणा की धूल में मिला दिया गया।" तलवार के पानी से घृत-परस्ती के पाप को उस जमीन से साफ किया गया और हिन्दू देश को अन्न और अन्धविश्वास से मुक्त किया गया" ठाठ के साथ ढीठ मुस्लिम इतिहास कहता नहीं करता।

"बेगुनार लूट मिली... कई सौ हाथी कब्जे में आए और (मुस्लिम) सेना से अस्त्र दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया, जहाँ कि राय का खजाना जमा था।"

जयचन्द हार गया, मारा गया। वाराणसी का प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थ असुरक्षित हो गया। मुस्लिम सेना वाराणसी की ओर बढ़ी। एक हजार मन्दिरों को मस्जिद बना दिया गया। मुस्लिम लुटेरों की यह लूट पवित्र तीर्थस्थान की दूसरी लूट थी। पहली बार महमूद गजनवी की मौत के तुरन्त बाद ही इसे अहमद ने लूटा था। सिर्फ औरंगजेब को ही पवित्र वाराणसी के विनाश का कारण बताना बेकार है। जिस भी मुस्लिम शासक की सेना ने इस पवित्र तीर्थ में प्रवेश किया था उनमें से प्रत्येक ने इस पावन नगरी को नष्ट-प्रष्ट कर इसके मन्दिरों को मस्जिदें बनाया था। मुस्लिम लुटेरों की इस कमकमी कतार में स्वयं अकबर भी है, जिसने प्रयाग को अछूता नहीं छोड़ा।

जब-जब वाराणसी पर मुस्लिम आक्रमण हुआ, प्रसिद्ध काशी विश्वनाथ मन्दिर को लूटा गया। मगर पुनर्गठित हिन्दू शक्ति ने इसे बार-बार हिन्दू पूजा के लिए अपने अधिकार में किया। तब औरंगजेब ने इसे एक बार फिर २६० वर्ष पूर्व इस्लाम के नाम पर लूटा। तबसे वह पवित्र मन्दिर अभी तक मस्जिद बना हुआ है। यह कबतक मस्जिद बना रहेगा यह हिन्दू शक्ति और हिन्दू मर्दानगी पर निर्भर करता है।

समीपवर्ती क्षेत्र में मुस्लिम अत्याचार और आतंक का पागल और अंतर्गामी नंगा नाच हुआ। इसके बाद मुहम्मद गौरी गजनी लौट गया।

लूटे मुस्लिम विवरणों के आधार पर यह प्रमाणित किया जा चुका है कि वे लोग कौल को जीत नहीं सके थे। इसलिए वाराणसी से लौटते समय कुतुबुद्दीन ने उसपर पुनः आक्रमण किया। ताजुल्-मा-आसीर के अनुसार,

"इस क्षेत्र को मूर्ति एवं मूर्ति-पूजकों से मुक्त किया गया और काफिरपन की नींव को नष्ट कर दिया गया", इसका मतलब है कि सब मन्दिरों को मस्जिद और हिन्दुओं को मुसलमान बना दिया गया।

दिल्ली लौटने पर, कुतुबुद्दीन नामी इस दोगले गुलाम के बारे में ताजुल्-मा-आसीर बड़े जोशो-खरोश से यह दावा करता है कि "इसका न्याय बिना भेद-भाव के एकदम निरपेक्ष था जिसके फलस्वरूप भेद और भेदिया एक ही घाट पर एक साथ पानी पीते थे।" गिरवी रखी कलम से बिल-वाड़ करते हुए मध्ययुगीन-मुस्लिम इतिहासकार कहीं तक चापलूसी, झूठे तर्क और ढीठता की सीमा तक पहुँच सकते हैं, यह इसका एक छोटा-सा उदाहरण है। इसीलिए सर एच० एम० इलियट भारत के मध्ययुगीन इतिहास के चरित्र की नाड़ी पकड़ इसे "एक घृष्ट परन्तु मनोरंजक घोषा" कहते हैं और इनका कहना एकदम फिट बैठता है।

११६२ ई० में मुहम्मद गौरी पुनः एक बार भारत आता है। कुतुबुद्दीन सेना के साथ इससे आ मिलता है। वे दोनों बयाना दुर्ग को घेर लेते हैं। मगर दुर्ग की सेना से लड़ने के बदले मुस्लिम सेना हमेशा की भाँति समीपवर्ती देहातों में रहने वाले असुरक्षित निवासियों और उनकी असहाय स्त्रियों और बच्चों पर अपनी बहादुरी दिखाते हैं। अपनी संकटग्रस्त प्रजा को बलात्कार, हत्या, लूट, अपहरण और आगजनी से बचाने के लिए कुँवर-पाल आत्म-समर्पण कर देते हैं।

मुस्लिम खानाबदोशों का झुण्ड अब ग्वालियर की ओर बढ़ा। इसका शासक सुलक्षणपाल था। इसने ऐसा विकट संघाम किया कि गौरी का सारा गौरव चकनाचूर हो गया। उसे वापिस भागना पड़ा। मगर इस डूब मरने वाली हार को भी कपटी मुस्लिम इतिहासकारों ने गाल बजा-बजाकर डफने का प्रयास किया है कि हिन्दू राजा ने "क्षमा-याचना की" कानों में गुलामी का रिग पहना "नज़राना देना स्वीकार किया और शान्ति-उपहार स्वरूप दस हाथी भेजे, जिसके कारण उसे शाही सुरक्षा प्रदान कर, दुर्ग में रहने की अनुमति दे दी गई।" लुटा-पिटा-सा गौरी गजनी लौट गया और कुतुबुद्दीन दिल्ली पहुँच गया।

प्रायः इसी समय देश-भक्त हिन्दू शक्तियाँ अनहिलवाड़-शासक के कुगल नेतृत्व में संगठित होने लगीं। विदेशी मुसलमानों को सत्कार

गया। कुतुबुद्दीन चारों ओर से घिर गया। जीवन समाप्ति की सीमा तक संकटग्रस्त हो गया। उसने ताबड़तोड़ अपने स्वामी के पास यह कुसमाचार बोला और मुहम्मद गौरी से अतिशीघ्र सहायता और पर्याप्त कुमुक की मांग की। गौरी का प्रोजन और बाहार नूट ही था। कुतुबुद्दीन इसे हिन्दु-स्तान में एकत्रित करके गजनी भेजता था। अतएव उसने देखा कि कुतुबुद्दीन की समाप्ति से उसका अपना अस्तित्व ही मिट जाएगा। लुटेरों और गुण्डों के एक विशाल विरोह को जमा करके अनहिलबाड़ भेजा गया। आबू पर्वत के नीचे एक संकरे रास्ते पर राय कर्ण एवं अन्य राजपूत अधिकारियों के अधीन एक सशक्त हिन्दू सेना एकत्रित थी।

उस संकट स्थिति में आक्रमण करने का साहस मुसलमान नहीं बटोर सके। विशेषकर उसी स्थान पर एक बार मुहम्मद गौरी स्वयं भी घायल हो चुका था। ऐसा विश्वास उन्हें हो गया था कि वह स्थान मुस्लिम खाना-बदोशों के लिए मनहूस है। फलतः वे पीछे हटे। तब हिन्दू सेनाओं ने अपने पर्वतीय स्थानों को छोड़ दिया और मुस्लिम सेना पर टूट पड़ी। खुले मैदानों में आमने-सामने लड़ाई हुई। हमेशा की भाँति मुस्लिम वर्णनों ने मुस्लिम विजय का दावा किया है। परन्तु इन पंक्तियों को पढ़ने पर पता चलता है कि मुस्लिम सेना ने हारकर अजमेर में शरण ली और वहाँ से बहू दिल्ली नौट गई।

अगुरीसत हिन्दू घरों को बरबाद कर जो लूट कुतुबुद्दीन को प्राप्त होती थी उसका पाँचवाँ भाग वह गौरी को भेजता था। दूसरे, वह इससे भी पहले गौरी का निजी गुलाम था। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण संग्राम के बाद अपनी हार पर झूठी जीत का रंग चढ़ाने के लिए उसे नजराना भेजना पड़ता था ताकि कहीं सारिक नाराज होकर वापिस बुलाने का विचार न करे। इसी कारण भारत में हुई प्रत्येक मुठभेड़ पर मुसलमानों की झूठी जीत की घोषणा की गई है चाहे हार में मुसलमानों की नाक ही क्यों न कट गई हो। इसी कारण अपने स्वामियों के पास गुलाम सरदारों ने जितने भी सभाचार भेजे सभी में हिन्दुओं के साथ हुए प्रत्येक संग्राम में मुसलमानों की जीत का बोलचाल लगाया गया।

अभिहित दरबारों में चक्कर काटने वाले खुशामदी लेखक मोटी रकम इनाम में पाकर हार को जीत मिलाने के लिए तैयार ही बैठे रहते थे। इस

लिए साधारण जनता और विद्वानों को इस सफेद मूठ के प्रति जागरूक हो जाना चाहिए और इन लोगों के वर्णन का वास्तविक निष्कर्ष स्वयं ही निकालना चाहिए।

१२०२ ई० में एक दूसरे पालतू गुलाम अल्तमश के साथ कुतुबुद्दीन ने कालिंजर दुर्ग को घेर लिया। यह दुर्ग परमार राजाओं की राजधानी था। सदा की भाँति ताजुल्-मा-आसीर नामक इतिहास दावा करता है कि हिन्दू राजा पराजित हुआ और भाग गया। उसने शान्ति-सन्धि की प्रार्थना की और राज कर देते रहने पर उसे अपना राज्य रख लेने की अनुमति दे दी गई, ऐसा लिखा गया है। मगर बाद में यह भी जोड़ दिया गया है कि उसने स्वाभाविक मृत्यु पाई और शान्ति-सन्धि की किसी भी शर्त को पूरा नहीं किया। इन पंक्तियों से साफ़ झलकता है कि मुस्लिम सेना को ही हारकर लौटना पड़ा था। हालाँकि हमेशा की भाँति अपनी हार की मार छिपाने के लिए पालतू इतिहासकारों ने इस मुठभेड़ पर मुस्लिम जीत का रंग चढ़ाने का पूरा प्रयास किया है।

दूसरी बार मुस्लिम सेना ने इसपर फिर चढ़ाई की। इस बार की स्थायी सेना में हजारों नए मुसलमानों का ही जोर नहीं था वरन् नए विदेशी मुस्लिम लुटेरों को भी भरा गया था। मृत शासक के मुख्यमन्त्री अजदेब ने बड़ी वीरता से दुर्ग की रक्षा की।

बाद में दुर्ग आतंक, माया और धोखे से कब्जे में हुआ। फिर सदा की भाँति "मन्दिरों को मस्जिद बनाया गया और बुतों (देव-प्रतिमाओं) का नामोनिशान तक मिटा दिया गया। पचास हजार लोगों के गले में गुलामी का फन्दा कसा गया और हिन्दुओं के रक्त से सारी जमीन रंजित हो गई।" (इलियट एवं डाउसन, ग्रन्थ २, पृ० २३६) इससे साबित होता है कि इस्लाम के नाम पर गुलामी के गीत गाए गए और गुलामी के नाम पर इस्लाम की शोभा बढ़ाई गई।

अब कुतुबुद्दीन महोबा से जा टकराया मगर मुस्लिम इतिहासकारों की चुप्पी से साबित होता है कि वहाँ उन लोगों को काफ़ी नुकसान उठाना पड़ा था। इसी प्रकार का एक प्रयास बदायूँ पर भी किया गया "जो नगरों की जननी और हिन्द देश के प्रमुख नगरों में से एक था।" (इसलिए हिन्दुओं को बेवकूफी से भरा यह विचार अपने दिमाग से एकदम निकाल देना

चाहिए कि इन नगरों का निर्माण मुसलमानों ने किया है; वरन् इसके ठीक विपरीत मुस्लिमों ने इन्हें बड़ी बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर बरबाद किया है)। बदायूँ-अभियान भी बड़ी बुरी तरह कुचला गया था।

इसी समय एक दूसरा मुस्लिम पिशाच कुतुबुद्दीन के गिरोह में आ मिला। यह एक शैतान लुटेरा और पालतू गुलाम था। बाद में इसीने पूर्वी भारत के बिहारों के साथ-साथ नालन्दा का भी नाश किया था। पहले इसकी हिन्दुओं की हत्या, नर-संहार और लूट की शक्ति को नापा और परखा गया। सन्तोषजनक पाने पर इसे मुहम्मद गौरी के गुलाम गिरोह-नेताओं के कैबिनेट का सदस्य बना लुटेरे दल में सम्मिलित किया गया। (बख्तियार खिल्जी)

महोबा और बदायूँ में हिन्दू तलवारों से हुए घावों को चाटता, भोगी विल्ली-सा कुतुबुद्दीन दिल्ली वापिस लौटा।

१२०३ ई० में मुहम्मद गौरी भारत पर अपने घावों के क्रम को कायम रखते हुए, गजनी से चला। मार्ग में खीता की हिन्दू-सेना ने इसे रोककर सलकारा। अनखुद की सीमा पर संशय छिड़ गया। परिणाम में गौरी को इस बुरी तरह कुचलकर हराया गया कि वह भय से कांपता मैदान से भाग पड़ा हुआ। अफवाह तो यहाँ तक फैली कि वह युद्ध में मारा ही गया। इस भयदह में उसके एक महत्वाकांक्षी गुलाम-ऐबक-बक ने मोके को सूँघा और एक टोली लेकर वह सुलतान गया। फिर गवर्नर के कानों में गुप्त समाचार कहने के बहाने उसकी हत्या कर दी।

भारत में मुस्लिम आक्रमकों और लुटेरों के आपसी द्रोह और उथल-पुथल के अवसर से लाभ उठाते हुए, बाकन और सरकी में खोकर जाति के हिन्दू शासकों ने अपनी सेना एकत्रित की और भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए खोरदार अभियान की योजना बनाई। सतलज और जेहलम नदी के तट के आस-पास स्थित मुस्लिम अधिकृत क्षेत्रों पर दावे और बावें से आक्रमण किया गया। एक बार तो मुस्लिम शासन उखड़ ही गया। संग्राम का मुस्लिम शासक बहाउद्दीन मुहम्मद अपने भाई के साथ हिन्दू सेना के टकराने चला। "मगर वर्षा की बूंदों या जंगल के पत्तों के समान उसकी सेना के बहुत से आदमी या तो बन्दी बना लिये गए या मारे गए" उनकी

शक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गई... दुश्मनों (यानी हिन्दुओं) की अत्यधिक संख्या के कारण सुलेमान नामक सिपहसालार को भाग जाना पड़ा।

इस प्रकार हिन्दुओं ने पंजाब के कुछ भाग से मुस्लिम जुआ उतार फेंकने में सफलता पाई। अनखुद की पराजय और हिन्दुओं की इस लगातार सफलता से आतंकित होकर मुहम्मद गौरी ने कुतुबुद्दीन के पास सहायता का समाचार भेजा। इसने अपनी शक्तियों को एकत्रित किया और अपने स्वामी गौरी की सहायता के लिए चल पड़ा। गौरी इस समय निराशा के कगार पर झूल रहा था।

सिर उठाती हिन्दू शक्ति और गुलामों तथा लुटेरों की मुस्लिम सेना के बीच भयंकर संग्राम छिड़ गया। वीर और देशभक्त हिन्दू सेना का नेतृत्व वीर खोवकर राय के हाथ में था। उसके एक साहसी पुत्र ने जुद्ध के पर्वतीय दुर्ग से आती हुई मुस्लिम सेना को अपनी लड़ाई का भरपूर स्वाद चखाया।

स्पष्ट है कि मुस्लिम सेना अपना मार्ग नहीं बना सकी। निरुत्साहित मुस्लिम सेना लाहौर में एकत्रित हुई। हताश और हारे हुए गौरी ने यहाँ डबडबाई आँखों से अपने गुलाम-गुट से विदा ली। वापसी में इन लोगों ने अपना पड़ाव दमयक के निकट के एक बाग में डाला था। यहीं पर शैतान लुटेरे गौरी को वीर हिन्दू सेना की एक टुकड़ी ने, जो समीपवर्ती क्षेत्रों से मुस्लिम लुटेरों का सफ़ाया कर रही थी, मारकर समाप्त कर दिया।

चूँकि मुहम्मद गौरी का कोई पुत्र नहीं था अतएव गौरी की मृत्यु के बाद उसका भतीजा गियासुद्दीन मुहम्मद उसका उत्तराधिकारी हुआ। इस उत्तराधिकारी ने गुलाम कुतुबुद्दीन को मुस्लिम अधिकृत भारतीय भू-भाग सौंप दिया। इस विलयन के चिह्न स्वरूप गियासुद्दीन ने एक ताज, एक सिंहासन और एक छत्र उसके पास भेजा, जिसे पूर्ववर्ती मुस्लिम आक्रमण-कारी लूट लाए थे। मगर इन सबके पहुँचने से पूर्व ही कुतुबुद्दीन को दिल्ली त्याग, देशभक्ति को कुचलने लाहौर जाना पड़ा। लाहौर में १२०६ ई० में उसने अपने आपको सुलतान घोषित किया परन्तु सुलतान ताजुद्दीन ने इसका विरोध किया। परवर्ती संग्राम में ताजुद्दीन हारकर भाग गया। अपनी महत्वाकांक्षा से फूलकर कुतुबुद्दीन सीधा गजनी आया और यहाँ ४० दिन तक अधिकारी शासक के समान रहा। उसके बाद वह दिल्ली लौट

आया। २६ जून, १२०६ को उसने बिधि-विधान के साथ राजा का ताज पहना।

भारत के इतिहास का वह दिन कलंक से एकदम काला दिन है, जिस दिन प्राचीन पवित्र हिन्दू राजसिंहासन को, जिसे पाण्डव, भगवान् कृष्ण और विक्रमादित्य जैसे नर-रत्नों ने पवित्र और मुशोभित किया था, एक कृण्णित विदेशी मुस्लिम ने, जिसे कई बार पश्चिम एशिया के गुलामों के बाजारों में खरीदा और बेचा गया, अपवित्र और कलंकित कर दिया।

अपने ४० दिन के गजनी-वास में, अपने स्वामी गोरी को मृत्यु से बेसमय कुतुबुद्दीन ने धर्मत्यागी नए मुसलमान सरदारों की बहू-बेटियों को छीन-बसीट अपने हरम में भर लिया।

कुतुबुद्दीन १२०६ से १२१० ई० तक हिन्दुस्तान के मुस्लिम अधिकृत भू-भाग का नाममात्र का सुलतान रहा। अत्याचारी मुस्लिम शासन में उपद्रव होना तो सामूली बात है। कुतुबुद्दीन का अधिकांश समय जगह-जगह भाग-दौड़कर बिद्रोह दबाने में व्यतीत हुआ।

कुतुबुद्दीन और उसके स्वामी गोरी को कई बार भारत के वीर देश-भक्त हिन्दुओं के हाथों बुरी तरह हारना पड़ा था। अतः अब वह इतना साहस ही एकत्रित नहीं कर सका कि देशभक्तों से जा भिड़े। जबतक गोरी का सिर कटकर नहीं गिरा तबतक कुतुबुद्दीन को भारत में गोरी का शिकारी कुत्ता बचना ही था। मगर एक बार स्वामी का जुआ उतरते ही उसने किसी भी अभियान को चलाने का साहस नहीं किया।

नवम्बर, १२१० ई० के प्रारम्भिक दिनों में, लाहौर में चौगान (बोली) खेलते समय कुतुबुद्दीन घोड़े से गिर गया। घोड़े की जीन के पायदान का नुकीला भाग उसकी छाती में घँस गया और वह मर गया। अल्ताह ने जैसे-को-तैसा बदला दिया। यह दारुण और दोगला मुस्लिम पशु एक पशु द्वारा ही मारा गया। इसके पीछे २० वर्षों का लूटेरा इतिहास है। इससे से प्रायः ४ वर्ष तक वह सुलतान बना रहा।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि किसी भी इतिहासकार ने उसे कुतुबु मीनार बनाने का श्रेय नहीं दिया है। इसपर भी भूल और झूठ से भरपूर भारतीय इतिहास कुतुबुद्दीन को उस स्तम्भ के निर्माण का श्रेय देता है।

अरबी भाषा में 'कुतुब मीनार' का अर्थ है "नक्षत्र निरीक्षण का स्तम्भ"। चूँकि हिन्दू स्तम्भ का उपयोग नक्षत्रों के निरीक्षण के लिए होता था इसीलिए मुस्लिम बातचीत और पत्रों में उसे "कुतुबु मीनार" कहा गया है। मगर इतिहासकारों ने उस साधारण अरबी शब्द को कुतुबुद्दीन के साथ उलझा दिया है और अर्धनिद्रा में "कुतुबु मीनार" के निर्माण का श्रेय कुतुबुद्दीन को दे दिया। जो भी खुदाई उस क्षेत्र में कुतुबुद्दीन ने की है वह है उसके हाथों उस क्षेत्र का विनाश। उस स्थान के विनष्ट मन्दिर का नाम रखा गया 'कुवत-उल्-इस्लाम' उर्फ 'अमा मस्जिद'।

मन्दिरों का सिर्फ नाम बदलकर मस्जिद नाम रख देना ही उन लोगों के लिए निर्माण है। भारत के मुस्लिम शासनकाल में यही होता आया है, बिना जरा भी परिवर्तन के। इससे सर एच० एम० इलियट के कथन की भी पुष्टि होती है कि भारत में मुस्लिम युग का इतिहास "एक घृष्ट परन्तु मनोरंजक धोखा है।" इसलिए हिन्दू विक्रम-स्तम्भ के चतुर्दिक् विस्तृत विनाश का श्रेय ही मुस्लिम दास लूटेरे कुतुबुद्दीन को मिलना चाहिए, इसके निर्माण का नहीं।

निकटवर्ती नगर महरोली साफ़-साफ़ इस सत्य की ओर संकेत करता है कि विक्रमादित्य, जो वेध-शालाओं और निरीक्षण शालाओं के निर्माण के लिए विख्यात है, ही इस नक्षत्र-निरीक्षण स्तम्भ एवं आस-पास के २७ मंजों के निर्माता हैं। उनका दरबारी नक्षत्रज्ञ मिहिर अपने सारे गणितज्ञ और यंत्रज्ञ सहयोगियों के साथ निकटवर्ती नगर में रहता था। इसी कारण इस नगर का नाम पड़ा मिहिर-अवली यानी मिहिर पंक्ति (अनुपायियों की)। इसलिए भारतीयों को इस भव्य-स्तम्भ को विक्रम स्तम्भ ही कहना चाहिए। इसका सम्बन्ध किसी मुस्लिम गुलाम से जोड़कर इसकी पवित्र परम्परा को अपवित्र नहीं करना चाहिए, जिसने प्रत्येक भारतीय चीज का छीना है, प्रत्येक हिन्दू चीज को अपवित्र किया है।

(मदर इण्डिया, जनवरी १९६७)

अलतमश

मुसलमानों द्वारा बरबाद किए गये और उजड़े हिन्दू मन्दिर-मण्डल से आवृत्त तथाकथित दिल्ली की कुतुब मीनार के पास एक कोने में दबी गड़ी पड़ी है अलतमश की लाश—मुस्लिम गुलामों के गुलाम का शव। इसके खूनी कारनामों ने दिल्ली के पवित्र और प्राचीन राजसिंहासन पर कालिमा की अमिट छाप लगा दी है।

दिल्ली का दूसरा गुलाम शासक अलतमश एक गुलाम था और कुतुबुद्दीन का दामाद भी। इधर कुतुबुद्दीन स्वयं भी डाकू एवं लुटेरों के सरदार मुहम्मद गौरी का एक नाचोज़ गुलाम था।

पुनर्गठित हिन्दू शक्तियों ने बड़ी सफलता से एक ही साथ दो इन्सानो राजा गौरी और बस्तिमार खिलजी की पीठ तोड़, उनका सफ़ाया कर पृथ्वी का भार हल्का कर दिया था। उन दोनों की विषाक्त मुस्लिम-साँसों से गजनी से लेकर वाराणसी तक के उत्तर भारतीय क्षेत्र तबाह और बरबाद हो गए थे। (आज भले ही गजनी अफ़ग़ानिस्तान, जिसका प्राचीन संस्कृत नाम अहिर्नस्थान है, का एक भाग हो, स्वयं अफ़ग़ानिस्तान, भी प्राचीन भारत का ही एक भाग था।) दुर्भाग्य से फिर भी काफ़ी देर हो चुकी थी। मुस्लिम दुष्ट-रत्न का सरदार गौरी अपने पीछे अनेक पापी मुस्लिम गुलामों को छोड़ गया था। इनकी जड़ें भारत की पवित्र धरती में गहरी गड़ चुकी थीं। इन्हीं पापी गुलामों में से एक गुलाम कुतुबुद्दीन था। अलतमश इसी गुलाम का एक गुलाम था और दामाद भी।

मध्ययुग में कुतुबुद्दीन ही वह पहला मुसलमान था जिसने हिन्दू भारत की सार्वभौमिकता विधिवत ग्रहण करने के बाद, अपने पापी और खूँरेजी

कारनामों से, इस महान् प्राचीन देश के राजसिंहासन एवं राजमुकुट की पवित्रता भंग करने का महान् अपराध किया था।

उसके बाद इस अपहृत सिंहासन पर गुलामों का गुलाम और दामाद अलतमश आसीन हुआ। अतुलनीय मुसलमानी दुष्कर्मों में अपने भाग का योगदान कर इसने भारत में मुस्लिम कुशासन की सड़ान और घनीभूत कर दी। मुस्लिम अन्धविश्वास, कड़ी सूदखोरी, नाँच-खाँच, छीन-अपट, मार-काट, विनाश, विध्वंस, वैश्यावृत्ति, बलात्कार, शील-हरण, अपहरण, पीड़ा, यन्त्रणा एवं लूट आदि का ढेर और ऊँचा हो गया। सारा वातावरण विषाक्त हो गया।

बिना एक भी अपवाद के भारत का प्रत्येक मुसलमान शासक कुमाँ और कसाई था। वे नृशंस अत्याचारों के प्रणेता थे। फिर भी समझ में नहीं आता कि हमारे इतिहासों एवं प्रश्न-पत्रों में क्यों-इन दानवों और राक्षसों की "महानता" के गीत गाए गए हैं। शायद वे अपनी दुष्टता में अद्वितीय थे, इसीलिए। सच्चाई की यह तोड़-मरोड़ बन्द होनी चाहिए। अगर यह बन्द नहीं होती है तो जनता को अपनी आवाज़ बुलन्द करनी चाहिए। हमारे वीर और निष्कलंक छात्रों के मस्तिष्क को इस तोड़-मरोड़ से हमें विषाक्त नहीं होने देना चाहिए।

अलतमश ऐसा ही शासक था—एक पापी और अत्याचारी। एक मामूली नौकर जिसे बार-बार खरीदा और बेचा गया था। मगर इसकी प्रशंसा में रचे गए गीत आधुनिक भारतीय इतिहासों में आसमान को छूते हैं। यह अलतमश के नाम से भी कुख्यात है। इसकी उपाधि बड़ी लम्बी-चौड़ी थी—'सुलतान शम्सुद् दुन्या बाउद्दीन अब्दुल मुजफ़्फ़र अलतमश'। वह तुर्किस्तान की अलवेरी जाति का था।

दूसरों की तो बात ही छोड़िए, स्वयं इनके भाई-बन्द ही इन मुस्लिम दुष्टों से घोर घृणा करते थे। इसकी परख आप इस सच्चाई से कर सकते हैं कि उसके अपने भाई ही उसके शारीरिक सौंदर्य से जल-भुनकर राख रहते थे। 'तबक़ात-ए-नासिरी' के अनुसार—“घोड़ों के मुण्ड को देखने के बहाने उसे उसके माता-पिता से दूर भेज दिया गया।” (पृष्ठ ३२०, ग्रन्थ २, इलियट एवं डाउसन)।

अलतमश एक खूबसूरत लड़का था। मुस्लिम शासन में यह शारीरिक

आकर्षण बरदान नहीं, अभिशाप था; क्योंकि उसपर नर-भोगियों का आक्रमण होता रहता था। अगर कहीं वह शारीरिक सौंदर्य क्रय-विक्रय की आँधी में पड़ जाता था तो उसके मूल्य निर्धारण का आधार नर-भोग ही होता था। इसके साथ ही उसपर घरेलू कार्यों का बोझ भी लद जाता था।

हमने ऊपर देखा है कि मध्य-युगीन मुस्लिम जीवन का सारा वातावरण इतना विषाक्त था कि हर प्रकार के पापों के कीटाणु इसके खून में पाए जाते थे। इसी कारण उसके अपने घर से ही अल्लमश का अपहरण उसके अपने साइबों ने ही किया। अपहरण उनके खून में ही नहीं, सारे वातावरण में था। नर-भोग और नर-हत्या का भी यही हाल था।

अश्व-सृष्ट दिखाने के बहाने, अश्व-व्यापारी के हाथ गधे की भाँति अल्लमश को बेच दिया गया। अल्लमश का भोगकर घोड़ों के सोदागर ने बुझारा में उसे एक स्थानीय निवासी के हाथ बेच दिया। फिर हाजी बुझारी ने उसे उस निवासी के पास से खरीदा। इस प्रकार बाजारू सामानों की भाँति बिकता हुआ अल्लमश जमालुद्दीन चश्त काबा के पास आ पहुँचा। जमालुद्दीन चश्त काबा गुलामों का व्यापारी था। उसकी पत्नी व्यापारिक नज़रों ने ताड़ लिया कि इस खूबसूरत छोकरे की अच्छी कीमत उठ सकती है, यदि इसे मुहम्मद गौरी जैसे विलासी, शराबी और मदककी दुष्टपति के हाथों बेचा जाय।

प्राकृतिक सम्भोग सामिथी—जूतों की भाँति जोड़ों में ही गुलामों को बेचने की प्रथा मुसलमानों में थी। ऐबक नामक एक तुर्की के साथ अल्लमश का जोड़ा लगा। उसके सौन्दर्य को अपनी कामुक आँखों से चाटते हुए मुहम्मद गौरी ने प्रत्येक का दाम "एक हजार शुद्ध सोने की दीनार" लगाया। यानी एक जोड़े का दो हजार। मगर जमालुद्दीन चश्त काबा के अनुसार अल्लमश की कीमत बहुत ज्यादा थी। उसने उसे इस दाम पर बेचना स्वीकार नहीं किया।

इस मुनाफ़ाखोरी से कोधित होकर गौरी ने अल्लमश की खरीद पर रोक लगा दी। निराश और कोधित होकर जमालुद्दीन को अपना बचा-खुचा सामान लेकर वापिस ओटना पड़ा। आगामी तीन वर्षों तक अल्लमश को साईसी करनी पड़ी। इसी बीच जमालुद्दीन ने उसे और माँसल बनाकर उसकी सौन्दर्य-वृद्धि का प्रयास किया और उसे गज़नी में "माल-निकास"

मूल्य पर बेचने के लिए खड़ा कर दिया। मगर अभी तक अन्यायी गौरी का प्रतिबन्ध लागू था। किसी में भी अल्लमश को खरीदने की हिम्मत नहीं हुई। सभी दूर खड़े-खड़े कामी नज़रों से उसे चाटते रहे।

जमालुद्दीन अल्लमश के साथ गज़नी में ही बिपक गया। इस इंसानी सामान को बेचने के लिए वह द्वार-द्वार गया और प्रत्येक मुस्लिम विलासी का दरवाज़ा खटखटाया। ठीक इसी समय गौरी का गुलाम गुर्गा कुतुबुद्दीन भी गज़नी आ पहुँचा। हिन्दुस्तान में आतंक और यन्त्रणा की चक्की चक्राने की सोल एजेन्सी इसीके पास थी। हिन्दुस्तान की अगाध लूट उसके पास थी। अपने नर और मादा हरम को ठूसकर भरने के लिए वह मनचाही इन्तानी भोग-सामग्री खरीद सकता था। अल्लमश के सौन्दर्य पर लट्टू होकर उसने गौरी से उसे खरीदने की अनुमति माँगी। खून से लथपथ हिन्दुस्तानी लूट के अबाध आयात के लिए उसे कुतुबुद्दीन के कूर हाथों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। अतएव वह उसका निवेदन न ठुकरा सका।

मुहम्मद गौरी अपनी प्रचलित आज्ञा रद्द करना भी नहीं चाहता था, कम-से-कम गज़नी में तो नहीं। अतएव उसने कुतुबुद्दीन को इन्तानी सामानों के साथ जमालुद्दीन को दिल्ली ले जाकर अपनी खरीद-फरोकत-कर लेने की सलाह दी।

तदनुसार अल्लमश और ऐबक का जोड़ा दिल्ली में बिका। कुतुबुद्दीन स्वयं भी एक ऐबक ही था। जमालुद्दीन को इस युग्म का दाम एक सौ हजार चीतल मिला।

अल्लमश अंगरक्षकों का नायक बना, मगर उसका अपना सुन्दर शरीर, सम्भवतः, अपने बदसूरत स्वामी कुतुबुद्दीन की कामुक कारगुजारियों से सुरक्षित नहीं था। तबक़ात-ए-नासिरी के अनुसार, "कुतुबुद्दीन उसे बेटा कहकर पुकारता था और उसे हमेशा अपने पास ही रखता था।" इससे स्पष्ट है कि वह उसे सदा अपने समीप ही रखता था। अल्लमश के ऊपर उसने पचास हजार चीतल बेकार नहीं बहाए थे। अन्यायी मुसलमानों ने हमेशा अपनी कामुकता का ऊँचा मूल्य चुकाया है।

कुतुबुद्दीन के शारीरिक प्यार और कामुक आकर्षण का केन्द्र अल्लमश, यों न दिन-दुनी रात चौगुनी तरक्की करता। पहले वह शिकारियों का नयक बना, फिर ग्वालियर-पतन एवं परवर्ती लूट के बाद उसे इसकी

जागीर मिल गई। कुछ अन्य खूनी अभियानों के बाद—“बारन शहर और जिले की सारी तहसील” इसकी जागीर में जुड़ गई। बाद में बदायूँ भी इसीको मिला।

अपने पतित जीवन के अन्तिम भाग में मुहम्मद गोरी अन्दखुद के संशय में हिन्दुओं से बुरी तरह हारा था। कोरूर (गकसर) जाति ने उसकी पीठ तोड़ दी थी। अल्तमश के साथ कुतुबुद्दीन अपने मालिक की मालिश करने दोड़ा। तीनों की संयुक्त सेनाएँ भी गोरी की टूटी पीठ न जोड़ सकीं। उसके हृदय में साहस का संचार न हो सका। इसके कुछ दिनों के बाद ही कुछ बोर हिन्दुओं ने गोरी को इस्लामी दोखख में पार्सलकर उसे अपने नारकीय जीवन से मुक्ति दे दी।

इन विपन्न दिनों में जब पुनर्गठित हिन्दू सेनाओं से भयभीत होकर गोरी, एक पागल कुत्ते की तरह, एक छोर से दूसरे छोर तक भाग-दौड़ कर था, उसे अल्तमश के साहचर्य का आनन्द-भोग प्राप्त हुआ। स्पष्ट है कि उसने गोरी से कुतुबुद्दीन की कामुकता की शिकायत की थी, क्योंकि उसने कुतुबुद्दीन को अल्तमश से अच्छा व्यवहार करने की आज्ञा दी। सर्व शक्ति-शाली कुतुबुद्दीन उसके मौखिक आदेश का पालन करेगा ही, इस पर निश्चित होकर गोरी ने “उसे (अल्तमश का) मुक्ति-पत्र लिखने की आज्ञा दे, बड़ी उदारता से उसे स्वतन्त्र कर दिया।”

१२१० ई० में कुतुबुद्दीन की मृत्यु हो गई और मुसलमानों द्वारा अपवित्र दिल्ली के हिन्दू राजसिंहासन पर अल्तमश जा जमा। तबक़ात के अनुसार दिल्ली और उसके आस-पास के स्थानीय (हिन्दू) सरदारों ने राज-भक्ति स्वीकार नहीं की और विद्रोह करने का निश्चय कर लिया। “दिल्ली से बाहर आकर और गोलाकार रूप में एकत्रित होकर, उन लोगों ने बराबर का शपथ बुलन्द कर दिया।”

यह संशय उसका पहला बड़ा अभियान था। अल्तमश दिल्ली के सिंहासन पर २५ वर्षों तक जमा रहा जिसके बीच १३ बड़े अभियानों एवं बनेक विद्रोह के कारण उसे अण-भर की भी शान्ति नहीं मिली। असन्तोष और विद्रोह व्यापक था।

अपहर्ता मुस्लिम गुलाम अल्तमश एवं संयुक्त हिन्दू शक्तियों के बीच

दिल्ली के बाहर यमुना तट पर संग्राम हुआ जिसमें न तो अल्तमश ने ही पूर्ण विजय प्राप्त की, न हिन्दू-शक्ति ही उसे पदच्युत कर सकी।

लाहौर, तबरहिंद एवं कहराम को हथियाने पंजाब के क्षेत्रीय अपहर्ता लूटेरे मलिक नासिरुद्दीन कवाचा के साथ उसकी कई बार टक्कर हुई। लड़ाई वर्षों लम्बी चली। कई बार झड़पें हुईं। अन्त में कवाचा की हार हुई।

अपने सुलतान का हत्यारा—तबक़ात-ए-नासिरी से ज्ञात होता है कि “हिन्दुस्तान के विभिन्न भागों के नायकों और तुकों के साथ उसका बराबर युद्ध चलता रहा।”

गजनी गद्दी के नाम-मात्र के उत्तराधिकारी सुलतान ताजुद्दीन थे। ख्वारिज्म सेना के हाथों वे बड़ी बुरी तरह पराजित हुए। भागे-भागें वे लाहौर आए। उन्होंने सोचा था कि गुलामों के मुस्लिम-बाजारों में सामानों की भाँति दर-दर बिकने वाला, गुलामों का गुलाम अल्तमश अवश्य ही संकटग्रस्त गजनी शासक का स्वागत, सहायता और सम्मान करने दौड़ा आएगा। मगर कृतज्ञता और राजभक्ति ये दो ऐसे गुण हैं जिनसे मुसलमानों का दूर का रिश्ता भी नहीं है। कैसी कृतज्ञता और कैसी राजभक्ति! पंजाब में ताजुद्दीन की उपस्थिति देखकर अल्तमश ने सोचा कि मेरी नव-प्राप्त सार्वभौमिकता खतरे में है। ताजुद्दीन को कोई भी खेद देना उसे नहीं ज़ेबा। मुस्लिम परम्परा के अनुसार सारे विवादों का अन्त समझौता नहीं संग्राम है। १२१५ ई० में दोनों की सेनाएँ विरुपात नारायण मैदान में उतर पड़ीं। परिणाम वही हुआ जो होना चाहिए था। सुलतान ताजुद्दीन विदेशी था। उसे ज्ञात नहीं था कि भारत में कहाँ-कहाँ मुस्लिम नगर-सैनिक तैनात हैं। हिन्दुस्तान में पीड़ा और यातना से बने नए मुसलमानों की निष्ठा से भी अनजान था। अल्तमश विजयी हुआ और सुलतान ताजुद्दीन यातदुज बन्दी बनाकर दिल्ली पार्सल कर दिए गए। इससे पहले कि उनके सहयोगियों की भीड़ जमा हो, अल्तमश ने उन्हें दूर बदायूँ में बन्द कर दिया। इसके बाद बिना किसी धूम-धड़क के अल्तमश ने उन्हें मारकर चुपचाप गाड़ दिया।

कूर मुस्लिम शासन में सिर्फ हिन्दू ही मुस्लिम अपहर्ता शासक से पूणा नहीं करते थे, वरन् सुलतान के अपने भाई-बन्द भी बराबर विद्रोह करते रहते थे।

मलिक नासिरुद्दीन कबाचा अपनी भूतपूर्व हार के कारण कुलबुला रहा था। उसे शैतान अल्तमश से दिली घृणा थी। उसने एक दूसरी सेना बटोरी और लड़ने के लिए अल्तमश को ललकारा। १२१६ ई० के संग्राम में कबाचा की फिर हार हुई।

हिन्दुस्तान को सदा सिकुड़ती सीमा के भीतर महत्त्वपूर्ण सैनिक गति-विधियाँ एक छतरनाक मोड़ ले रही थीं। ठीक आज की-सी परिस्थिति थी। आज भी हिन्दुस्तान की सीमा पर दो दुश्मन मँडरा रहे हैं। एक ओर इस्लाम का चाँदकपी हंसुआ चमक रहा है तो दूसरी ओर चीनी अजगर अपना मुँह फाड़े खड़ा है। अल्तमश के समय में एक ओर मुसलमान जोंक की तरह चिपटे हिन्दुस्तान की जीवन-शक्ति चूस रहे थे तो दूसरी ओर विशाल मंगोल गिरोह खुरासान और ख्वारिज्म पर अपना फन मार रहे थे। कभी ये दोनों छेत्र भारतीय हिन्दू-शासन के अन्तर्गत थे। मगर लुटेरे मुसलमानों ने इन्हें बरबाद कर अपने खूनी रंग में रंग लिया था। भयानक चंगेज खाँ मुस्लिम दृष्टि से काफिर था क्योंकि वह पैर पकड़कर गिड़गिड़ाने वाले मुस्लिम लुटेरों के दिमाग में अल्लाह का भय भर रहा था। वे लोग उसकी तलवार के भयंकर वारों से भयभीत होकर उल्टे पैरों भाग रहे थे। इस्लाम यानि शान्ति के नाम पर इन लोगों ने सैकड़ों वर्षों तक लाखों निर्दोष लोगों को पीड़ाएँ और यातनाएँ दीं। इस तरह इन लोगों को भी पीड़ा और यातना का स्वाद चखना पड़ा।

चंगेज खाँ की प्रगति से घबराकर ख्वारिज्म के शासक सिर पर पैर रखकर भाग खड़े हुए। संकट से बौखलाकर वे सीधे भारत में प्रविष्ट हो गए। वे पश्चिमोत्तरी सीमा की ओर नहीं जा सकते थे क्योंकि वहाँ एक-से-एक भाजू और बाघ डाकूओं, लुटेरों, चोरों और दुष्टों के दलपतियों का रूप धारणकर बराबर विचरण करते रहते थे। उनके प्रवेश से अल्तमश ने अपनी दिल्ली की गद्दी के लिए फिर खतरा सूँघा। कहीं गुलामों के बाजारों से बार-बार लड़कता और बिकता अल्तमश और कहीं जलालुद्दीन एक सर्व-शक्तिवाली, गुलामों का स्वामी, गद्दीपति सार्वभौम सुलतान।

अपने देश ख्वारिज्म से सुरक्षा की खोज में निकली जलालुद्दीन की सेवा करने-भारने पर उतारा की। अल्तमश के लाहौर रक्षक (या मक्षक ?) उन्हें जल्दिक दिनों तक रोक नहीं सकते थे। अतएव १२१८ ई० में अल्तमश

अपनी प्रमुख सेना लेकर दिल्ली से चल पड़ा। उसे अपनी नव-प्राप्त उपाधि की रक्षा करनी थी। जलालुद्दीन अपनी सेना के हारी, चकी, हताश होने के कारण लड़ना नहीं चाहता था। वह सिन्ध और शिवस्थान की ओर भाग गया।

अब बंगाल के खिल्जियों ने अल्तमश के लिए खतरा पैदा कर दिया। उन लुटेरों की शक्ति दिन-ब-दिन बढ़ रही थी। अल्तमश काफ़ी दिनों से उनके दमन का विचार कर रहा था। अन्त में, १२२५ ई० में उसे बहाना मिल ही गया। प्रत्येक मुस्लिम शासन की भाँति वहाँ भी आन्तरिक विरोध और विद्रोह रोम-रोम में सबल रहा था। इस कारण लूट-भाग भेजने में थोड़ा विलम्ब हो गया। बस, अल्तमश सेना लेकर लखनौटी आ धमका। सदा की भाँति यह दावा किया गया है कि कुछ झड़पों के बाद खिल्जी नेता गिया-सुद्दीन ने शान्ति-सन्धि की प्रार्थना की। कुछ भी हो, सन्धि के नियमों से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वयं अल्तमश भी संकट से बाहर नहीं था। उसे कोई स्पष्ट विजय प्राप्त नहीं हुई।

राजपूतों ने दिल्ली से उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाने का प्रयास किया। इन राजपूतों ने विलासी और क्रूर मुस्लिम शासन से कभी समझौता नहीं किया था। वे लोग भारत के मुस्लिम राज्य पर आक्रमण करने की तैयारियाँ करने लगे। इस नये संकट की सूचना से अल्तमश घबरा गया। जैसे-तैसे खिल्जी-झगड़े पर सन्धि की चिप्पी लगाई। अपनी नाक बचाने सन्धि-पत्र में दो-चार धाराएँ ठूस दीं और दिल्ली की ओर चल पड़ा।

रणथम्भोर दुर्ग पुनर्जीवित राजपूतों का शौर्य केन्द्र था। इस दुर्ग का मूल संस्कृत नाम "रण-स्तम्भ-भ्रमर" है। प्रत्येक मुस्लिम इतिहास के समान तबक़ात-ए-नासिरी ने यह दावा किया है कि—"कुछ ही महीनों में शम्सुद्दीन (यानी अल्तमश) के हाथ से १२२६ ई० में इस दुर्ग का पतन हो गया।" झूठ का डंका पीटने वाले मुस्लिम इतिहासकारों की पोस अब खून चुकी है। अबतक के अध्ययन से हम लोग जान चुके हैं कि यहाँ मुसलमानों की विजय नहीं हुई क्योंकि जब मुसलमानों की सचमुच जीत होती है तो वे मुस्लिम इतिहासकार अनिवार्य रूप से (१) मार-काट और लूट-हरण का ब्योरेवार वर्णन पेश करते हैं, (२) ताज्जा कटी गायों के खून से सारे मन्दिरों को पाक और साफ़ करने का चित्र खींचते हैं, तथा (३) दुर्ग पर मुस्लिम

अधिकारों निरुक्त करते हैं। यहाँ तबक़ात का लेखक मिनहज-अस्-सिराज चलते-फिरते ढंग से रणबम्भोर दुर्ग के घिराव और कुछ मास बाद इसके पतन हो जाने की सूचना भर देता है। इससे प्रतीत होता है कि अलतमश को वीर राजपूतों के सामने से मुँह छिपाकर भागना पड़ा था।

इस पराजय के कारण अलतमश के नव-प्राप्त राजकीय सम्मान को गहरी ठेस लगी। उसकी मरम्मत और मरहम-पट्टी के लिए वह शिवालिक की पहाड़ियों के माण्डूर दुर्ग की ओर बढ़ा। यह भी एक राजपूत दुर्ग था। हमेशा की भाँति यहाँ भी उसे १२२७ ई० में विजयी घोषित किया गया। मगर ऊपर लिखी कसौटी पर कसने के बाद यही पता चलता है कि हिमालय के इस पहाड़ी-तल से भी उसे अपमानित होकर दुम दबाकर भागना पड़ा।

सम्मानहीन अलतमश के सामने अब एक दूसरा ही खतरा था। अदम्य नासिरुद्दीन कबाचा फिर एक सेना बटोर लाया था। वह सिन्ध में उछ के समीप अमरावती दुर्ग के निकट पड़ाव डाले बैठा था (मुस्लिम इतिहासकारों ने अमरावती को अमरावत लिखने की भी भयंकर भूल की है)। उछ में एक माह तक युद्ध चलता रहा। मई, १२२८ ई० में अलतमश ने इसपर अपना अधिकार कर लिया। अलतमश ने १२२८ ई० में कबाचा को उछ से अमरावती तक रणदर मारा। कबाचा सिन्धु में डूब मरा। मरने से पहले उसने अपने पुत्र मलिक अलाउद्दीन बहराम शाह को अलतमश की सेवा में भेज दिया ताकि उसका जीवन किसी प्रकार बच जाए। अलतमश ने कबाचा की सारी सम्पत्ति अपने कब्जे में कर ली। हरम भी निश्चय ही उस सम्पत्ति का ही एक भाग था। कबाचा के मुस्लिम लुटेरों की इस्लामी राज-मूर्ति तो बड़ी आसानी से बदल ही गई थी। रातों-रात अब वे अलतमश के नवक और अनुचर हो गए।

कबाचा की पराजय और मौत से आतंकित होकर देवल (देवालय मानी कर्णवी) के धर्मान्तरित शासन ने अलतमश से सन्धि कर ली। सिन्ध पर उसी का अधिकार था। बाद में अगस्त, १२२८ में अलतमश दिल्ली लौट आया।

उन पतित मुस्लिम सुलतानों की सेवा करने, कदमबोसी करने और गिड़गिड़ाते वाले इन रामानुदास मुस्लिम जासूसों ने कितना सफ़ेद झूठ

लिख मारा है। फिर भी ये लोग अपने आपको इतिहासकार कहते हैं। तबक़ात-ए-नासिरी के लेखक मिनहज-अस्-सिराज के लेख से ही इस सफ़ेद झूठ का पर्दाफ़ाश भी हो जाता है।

मिनहज-अस्-सिराज हमें बतलाता है कि "उछ-पड़ाव के पहले ही दिन उस महान् और धार्मिक (?) राजा से इस किताब के लेखक ने घेंट की और उपहार पाया। जब हुजुरे आला उस दुर्ग से लौटे तब तथ्य-संग्रहकर्ता भी उस अपराजेय (?) राजा की विजयी सेना के साथ दिल्ली आ गया।"

(इलियट एवं डाउसन, ग्रन्थ २, पृष्ठ २६)

शैतान रूपी सुलतान को एक नीच और पतित अनुचर "महान् और धार्मिक... अपराजेय" कहता है। सिर्फ़ इसीलिए कि उससे उसने "उपहार पाया" था। इस प्लेग के फन्दे में मध्ययुगीन सभी मुस्लिम इतिहासकार फँसे हुए हैं और यह संक्रामक रोग हिन्दुस्तान के सारे इतिहासों में फैल गया है। ये अपनी झूठ का स्पष्ट डंका स्वयं पीट रहे हैं। फिर भी भारतीय विवेक त्यागकर तोते की तरह इन्हीं झूठी बातों को रटते चले जा रहे हैं।

काफ़िरों (हिन्दुओं) को सताने, मारने और लूटने वाले मुस्लिम लुटेरों को सिर्फ़ नाम के प्रधान खलीफ़ा ने हमेशा अपना संरक्षण दिया है। उन्होंने अब अनुभव किया कि राजा की उपाधि धारण करने वाला, गुलामों का गुलाम अलतमश इस्लामी पुरस्कार पाने का पूरा अधिकारी हो गया है। मिनहज-अस्-सिराज ने लिखा है कि "खलीफ़ा की गद्दी से पोशाक लेकर दूत नागौर की सीमा पर पहुँचे और (१२२६ ई० की) एक सोमवार को उन्होंने राजधानी में प्रवेश कर शहर को पवित्र किया। इस्लाम के केन्द्र से प्राप्त पोशाकों से राजा, उनके कुलीन नायकों, उनके पुत्रों, अन्य कुलीनों एवं नौकरों को सम्मानित किया गया।" (पृष्ठ ३२६)।

अलतमश बंगाल का दमन कर उसे अपने राज्य में नहीं मिला सका था। यह असफलता बहुत दिनों से उसके दिल में चुभ रही थी। १२२६-३० ई० में उसने फिर एक अभियान का आयोजन किया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस बार भी उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। मगर चापलूस मुस्लिम इतिहासकार हमेशा अपने अभिभावक सुलतान की विजय का डंका पीटते हैं और अपने-अपने सुलतान के विरोधियों की बुराई करना अपना धर्म समझते हैं। उनकी नलेखनी से प्रकट होता है कि बंगाल का मुस्लिम

अपहर्ता अभिहित ही रहा। अल्लमश निराशा से अपने हाथ भलता वापिस लौटा और मलिक अताउद्दीन ज़ानी लखनौटी का मुस्लिम सार्वभौम शासक बना ही रहा।

साम्प्रदायिक इतिहासों में सिर्फ सफ़ेद झूठ ही भरा हुआ नहीं है। इसके अतिरिक्त जब कभी भी उन्होंने हिन्दुओं का वर्णन किया है तो हमेशा गालियों से ही बातें की हैं। हिन्दुस्तान में रहकर और हिन्दुस्तान का नामक-यानी स्थायीकर हिन्दुओं को "कुत्ता, डाकू, चोर, शत्रु, शैतान" जाति कहा गया है। इस प्रकार उन्होंने नीचता की हद कर दी। जिस थाली में खाया उसी में छेद किया। मिनहज-अस्-सिराज ने फ़रमाया है कि १२३० ई० में अल्लमश ने "ग़ालियर की घोर कूच कर दिया। जब उनका गाही तम्बू दुर्ग की दीवार के नीचे तन गया तब घुणित बासिल के घुणित पुत्र मलिक देव ने लड़ाई छेड़ दी" यानी अपनी रक्षा करना, अन्याय का प्रतिकार करना एक घुणित कार्य था।

छात्रों को झूठी पढ़ाई—कितने बड़े शर्म और शोक की बात है कि जो लोग स्कूलों एवं कालिजों में इतिहास पढ़ाते हैं, जिन्हें हमारी मूर्ख जनता भ्रम से इतिहासकार मानती है, उन लोगों ने मुस्लिम इतिहासों की गालियों और सफ़ेद झूठों के बारे में हमारी जनता को एकदम अंधेरे में रक्खा है। हमारे स्कूलों और कालिजों में पढ़ाया जाने वाला हिन्दुस्तान का इतिहास गण-राजियों और कल्पित कहानियों पर आधारित है। इसे उन लोगों ने लिखा है जो हिन्दुओं को हिन्दू-भूमि के डाकू और दुष्ट कहकर पुकारते थे।

"मुहम्मद तुगलक का मूर्खतापूर्ण मुद्रा-सुधार, शाहजहाँ का स्वर्ण युग, अकबर का भू-कर सुधार, शेरशाह का सुधार" आदि विषयों का वर्णन करने के लिए प्रशस्त बड़े हर्ष से विभिन्न परीक्षाओं में बार-बार वितरित किया जाता है। मुस्लिम दगाबाजी, सार्वभौम और यातना को नज़र-अन्दाज़-कर जातिभेद संयोग से जिस संश्राम में हिन्दुत्व की हार हुई है, उसकी बड़े प्रेम से विशद व्याख्या करने के लिए छात्रों को कहा जाता है। वे शिवाजी, राजा प्रताप, पृथ्वीराज आदि अनेक देशभक्तों को एकदम भूल जाते हैं। क्या वे लोग जनता को यह समझाना चाहते हैं कि हिन्दुस्तान में बदरदस्ती घुसने वाले थे मुस्लिम लुटेरे हिन्दू जनता को प्रताप, शिवाजी

और पृथ्वीराज से ज्यादा प्यार करते थे? क्या हम विश्वास कर लेंगे कि अनन्त मानव-संहार और मन्दिर-विनाश में लीन निरक्षर भट्टाचार्य, नम्बरी शराबी, नशाखोर और कामुक पापी मुस्लिम सुलतानों ने सराय, कुएँ, सड़क, भवन का निर्माण कराया तथा निर्दोष शासन-प्रबन्ध में ही अपनी सारी शक्ति, समय और सम्पत्ति का व्यय किया था? यह झूठ और असंगति की इन्तिहा है जिसे भारतीय स्कूलों और कालिजों में नीची कक्षा से लेकर पी-एच० डी० तक के छात्रों को पढ़ाया और रटाय़ा जाता है।

जो इतिहास पढ़ते और पढ़ाते हैं, मैं उन दोनों को ही बतला देना चाहता हूँ कि शाहजहाँ का शासनकाल कोई स्वर्णयुग नहीं था क्योंकि उसने १६ प्रतिशत जनता पर (जोकि हिन्दू थे) लगातार अत्याचारों की वर्षा की थी। उसने उनके मन्दिरों को नष्ट कर दिया और उनको सामूहिक रूप से हाथियों के पाँव-तले कुचलवा दिया क्योंकि उन्होंने मुसलमान बनना स्वीकार नहीं किया। हत्या और खून तो महज मामूली बात थी। क्या हम ऐसे युग को जिसमें अधिकांश लोगों ने भय से थर-थर कांपते हुए अपना जीवन बिताया है, स्वर्णिम युग कह सकते हैं?

अकबर का बहु-प्रशंसित भू-कर सुधार भी जनता के धन चूसने की सुसंगठित प्रणाली के सिवाय और कुछ नहीं था। अकबर के भारी टैक्सों को वसूल करने के लिए बीच चौराहों पर कोड़ों से निर्दयतापूर्वक पीट-पीट कर जनता की चमड़ी उधेड़ ली जाती थी। अकबर के क्रूर-करोँ को चुकाने के लिए लोगों को अपनी पत्नियों और बच्चों को बेच देना पड़ता था। क्या यह भू-कर सुधार गर्व करने योग्य है?

मुहम्मद तुगलक की जन्मजात मानसिक दुर्बलता को विस्मयकारी आर्थिक आविष्कार मानने की भूल की गई है। आश्चर्य होता है कि पागल राजा होने का इनाम किसे दिया जाय—खुद मुहम्मद तुगलक को या उसके पागलपन पर आश्चर्यचकित होने वाले हमारे शिक्षा-सुलतानों को। मुहम्मद तुगलक की शराबी-सनक, अन्धी हठधर्मी और पीड़ादायक अत्याचारों को उच्च आर्थिक उपाय कहकर उसकी बड़ाई करना ठीक वैसा ही है जैसा ताली बजा-बजाकर उस साँप की बड़ाई करना जिसने परिवार-नियोजन की सफलता के लिए लोगों को काट-काटकर जनसंख्या में कमी की हो।

और शेरशाह के बारे में ! शेरशाह ने स्वीकार किया है कि वह मल्लू-
खों के पास बहुत दिन तक डाकुओं के दल में सीखतड़ रहा है। इसीसे
उसके पाशविक जीवन की पूर्ण व्याख्या हो जाती है। भारत के प्रत्येक
मुस्लिम शासक के जीवन का ऐसा ही घृणित और कुत्सित रिकार्ड रहा है।
इसपर भी हमारी साधारण जनता और इतिहास के छात्रों को हर साल
छोखा दिया जा रहा है। उन्हें बड़े परिश्रम से मुस्लिम शासकों के उन गुणों
का पाठ पढ़ाया जाता है, जो गुण उनमें थे ही नहीं। -

भारत में स्कूल की पाठ्य-पुस्तकों के मध्यकालीन इतिहास में मुसल-
मानी नाम ठूस-ठूसकर भरे गए हैं। तत्कालीन हिन्दू राजाओं के बारे में
प्रायः वहीं के बराबर ही प्रश्न दिया जाता है। हिन्दुस्तान की प्रमुख हिन्दू
भूमि में आदि से अन्त तक सिर्फ मुसलमान-ही-मुसलमान की चीखो-पुकार
का एक अजीब रोग पैदा हो गया है। "फूट डालकर शासन करने" वाली
नीति अंग्रेजों के लिए ठीक हो सकती थी। मगर आज के स्वतंत्र भारत में
और वह भी इतिहास में उसी अवास्तविक, भ्रमपूर्ण और झूठे वातावरण
को सृष्टि करना कहीं तक उचित है ? क्या हम इसे सहन करेंगे ? देखें
कीन इतिहासकार, शिक्षक या सरकारी अधिकारी सामने आकर इस ऐति-
हासिक शिक्षा एवं परीक्षा के दम-घोंटू वातावरण को स्वच्छ करता है।

मिनहज-अस-सिराज की तबक़ात-ए-नासिरी मध्ययुगीन झूठों का एक
पुलिन्दा है। अगर हम मिनहज का विश्वास करें तो ग्वालियर का घिराव
११ महीने तक चलता रहा। उसके वर्णनों से यह निश्चय नहीं हो पाता है
कि अल्तमश ग्वालियर दुर्ग पर अधिकार करने में सफल हुआ या नहीं
क्योंकि वह जीत या हार का स्पष्ट वर्णन करने से कन्नी काटता है। मध्य-
कालीन इतिहास के शिक्षक और छात्र इस माप-दण्ड को अच्छी प्रकार
समझ लें कि जब कभी मुस्लिम अभियानों का अन्त अस्पष्ट या इधर-उधर
की बातों में होता है तो यह निश्चित है कि आक्रमणकारी सुलतान को
निराश हो, हारकर भागना पड़ा था। मिनहज-अस-सिराज ने अपने
विशिष्ट वर्णन में लिखा है कि आपित और घृणित मलिक देव रात में दुर्ग
त्यागकर भाग गया। ७०० व्यक्तियों को जाही तम्बू के सामने दण्ड देने
का आदेश दिया गया। नायकों एवं अधिकारियों की पदोन्नति कर दी गई
...मिनहज-अस-सिराज (यही चापलूस इतिहासकार) को भी एक छोटा-

मोटा पद दिया गया। नमाज की निगरानी तथा सभी धार्मिक, नैतिक और
न्याय-कार्य उसे सौंपे गए। कीमती खिलत और बहुमूल्य उपहार भी
लोगों में बाँटे गए। सर्वाधिक दयालु और बहादुर राजा के उदार हृदय
तथा पाक रूह की अल्लाह ताला सहायता करें (?)। अल्तमश की सैन्य-
पंक्तियों पर ग्वालियर की हिन्दू सेना ने इस प्रकार वज्र-प्रहार किया कि
उसे, जबतक वह वहाँ रहा तबतक, अल्लाह की स्पेशल नमाज पढ़ने की
आज्ञा लोगों को देनी पड़ी।

इस मुस्लिम गुलाम लेखक का यह विवरण ध्यान देने योग्य है। अल्त-
मश ने बिना किसी कारण के ही ग्वालियर को घेर लिया या फिर भी
उसका अल्तमश को एक न्यायी, बुद्धिमान, उदार और दयालु राजा कहना
जारी रहता है। दूसरी ओर उसने ग्वालियर नरेश मलिक देव की बातें
गालियों से ही की हैं—“घृणिक वासिल का घृणित पुत्र मलिक देव”।
उसके बाद उसने पाठकों को बतलाया है कि ११ महीने की घेराबन्दी के
बाद भी वह ग्वालियर दुर्ग के बाहर नीचे अपने तम्बू में ही था। स्पष्ट है
कि ग्वालियर दुर्ग उसका शिकार नहीं बन सका। बस, उसका असुमय
इस्लामी रोष उबल पड़ा। अपने तम्बू के सामने उसने ६०० (हिन्दू) लोगों
की रक्त-धारा बहा दी। या तो उनकी हत्या कर दी या उन्हें पंगु बना
दिया। कुछ पदोन्नतियाँ कर उसने लोगों की आँखें पोंछीं। उनकी स्वामि-
भक्ति को सहारा दिया या फिर दुर्ग के वीर हिन्दू रक्षकों द्वारा मारे गए
लोगों के खाली पदों पर उसने लोगों की पदोन्नति की। इस प्रकार अल्तमश
को ग्वालियर दुर्ग से अपमानित होकर, सिर झुकाए, मुंह लटकाए वापिस
लौटना पड़ा। ग्वालियर का विशाल हिन्दू दुर्ग शतान्तर मुस्लिम सुलतान
अल्तमश के वीरों और प्रहारों के बीच अचल खड़ा रहा। उसकी मायावी
झाड़-फूंक और छोखा-घड़ी से भी वह दुर्ग अप्रभावित ही रहा।

ग्वालियर-विजय के प्रयास से हताश होकर अल्तमश ने अन्य आसान
शिकारों की ओर नज़रें दौड़ाईं। १२३३ ई० के प्रारम्भ में ही वह दिल्ली
लौट आया था। एक वर्ष के बाद ही उसने भोपाल के समीप भिलसा नगर
पर घावा कर दिया। मिनहज-अस-सिराज हम लोगों को बतलाता है कि
“वहाँ एक मन्दिर था जिसे बनाने में तीन सौ वर्ष लगे थे।” धन्यवाद दीजिये
अल्तमश और उसके मुस्लिम गुणों का। वह प्राचीन शहर—वह प्राचीन

संसार का सर्व श्रेष्ठ अद्भुत नमूना—भाँय-भाँय करने वाले खण्डहर में बदल गया। मिनहज-अस्-सिराज हमें बतलाता है कि "उसने (अल्लतमश ने) उसे चूर-चूर कर दिया।"

प्राचीन मन्दिरों का विध्वंस—महमूद गज़नवी ने मथुरा के विनाश और भव्य मन्दिरों का वर्णन किया है जिनको बनाने में, उसके अनुसार, दो सौ वर्ष लगे थे। स्पष्ट है कि उसने उन्हें चूर-चूर कर दिया था। अब मिनहज-अस्-सिराज हमें बतलाता है कि भित्तियाँ (विदिशा) में भी एक मन्दिर था, जिसके निर्माण में ३०० वर्ष लगे थे। निर्माण-काल की अवधि को लोग अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन मान सकते हैं पर उससे दो बातें स्पष्ट होती हैं कि (१) मुस्लिम लुटेरे भवन-निर्माण कला से इतने अनजान थे कि भारतीय भवनों को आँखें फाड़-फाड़कर ताज्जुब से देखते थे; (२) इतिहास के शिक्षकों एवं साधारण जनता को यह बात हृदय से निकाल देनी चाहिए कि दक्षिण भारत के समान उत्तर भारत में भव्य और आलीशान मन्दिर और महल नहीं थे। विदिशा और मथुरा के भव्य अलंकृत मन्दिरों की उपस्थिति के तथ्यों से प्रमाणित होता है कि उत्तर भारत में भी ऐश्वर्यशाली प्रासाद थे। अतएव यह कोई विस्मय की बात नहीं है कि अद्वितीय ताजमहल और आगरा तथा दिल्ली के गौरवशाली संगमरमर (स्फटिक) के भवन मुस्लिम आगमन से सत्ताब्दियों पूर्व का निर्माण हैं। इसलिए पाठकों को इस सच्चाई से सचेत हो जाना चाहिए कि अकबर और हुमायूँ के मकबरों जैसे असंख्य मकबरे और मस्जिद वास्तव में राजपूतों के महल और मन्दिर ही हैं।

भित्तियाँ को नष्ट-भ्रष्ट करके और लूटकर अपनी अन्धो इस्लामी रोषानि को तुष्टकर अल्लतमश उज्जैन की ओर बढ़ा। वहाँ उसने भगवान् शिव के महाकाल मन्दिर का विनाश किया। इस स्थान पर मिनहज-अस्-सिराज एक बहुत महत्त्वपूर्ण विवरण देता है। वह कहता है कि उज्जैन में राजा विक्रमादित्य की एक भव्य मूर्ति थी, जिन्होंने अल्लतमश के (१२३४ ई० के) उज्जैन-आक्रमण के १३१६ वर्ष पूर्व राज्य किया था और इन्हीं राजा विक्रम ने हिन्दू सम्बत् चलाया था। समय-समय पर ऐसे प्रमाण मिलते रहते हैं फिर भी बिलायती और बिलायत पास भारतीय विद्वान् विक्रमादित्य के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करते, या फिर उनको राजा

शालिवाहन से मिला-जुला देते हैं जिन्होंने ७८ ई० में एक दूसरा सम्बत् चलाया था।

इस्लामी गुण्डागर्दी के जोश में बड़े धूम-शङ्कके के साथ अल्लतमश उज्जैन के महाकाल मन्दिर का शिवलिंग उखाड़कर दिल्ली ले आया। साथ में कुछ ताम्र प्रतिमाएँ भी थीं। इन सभी का उसने क्या किया, यह अज्ञात है। मगर मध्यकालीन मुस्लिम लुटेरे और अत्याचारियों के काले कारनामों को देखकर यह अनुमान सहज में ही किया जा सकता है कि उसने उन्हें मस्जिदों में परिवर्तित हिन्दू मन्दिरों की सीढ़ियों में जड़वा दिया होगा ताकि उनपर अपने जूते पोंछकर धर्मार्ति (मुसलमान) लोग नमाज पढ़ने भीतर जायें। अपने जन्मस्थान में प्रतिष्ठित भगवान् श्री कृष्ण की मूर्ति को औरंगजेब ने आगरा की केन्द्रीय मस्जिद की सीढ़ियों में जड़वा रक्खा है। यह मस्जिद भी एक प्राचीन राजपूत महल था। भगवान् कृष्ण के शिक्षा-निकेतन सन्दीपनी आश्रम एवं भक्त कवि भर्तृहरि के मठ आदि उज्जैन के धार्मिक स्थानों को भी मुसलमानों ने अपने हथौड़ों से चूर-चूर कर दिया।

वर्ष में कम-से-कम एक बार हिन्दू हत्या अभियान की आयोजना करना मुसलमानों का पुनीत धार्मिक कर्तव्य था ताकि वे अधिक-से-अधिक हिन्दुओं को हलालकर उनकी स्त्रियों को लूट सकें, मन्दिरों को पाक और साफ़ कर मस्जिद बना सकें, उनके बच्चों का अपहरण कर मुसलमानों की संख्या बढ़ा सकें तथा गाज़ी कहलाकर अधिक-से-अधिक सबाब लूट सकें। यह वार्षिक हिन्दू हत्या अभियान उनका रिवाज हो गया था, जिसका जन्मदाता बाकू सरदार महमूद गज़नवी था।

जबतक भारत के मुस्लिम अपहर्ता शासकों के पास सेना का एक टुकड़ा भी बचा, उन लोगों ने इस रिवाज का दृढ़ता से पालन किया था। एक भी मुस्लिम शासक इसका अपवाद नहीं था—अकबर भी नहीं।

उज्जैन से वापिस लौटने के तुरन्त बाद ही इस रिवाज के अनुसार अल्लतमश ने एक दूसरे अभियान की आयोजना की। मिनहज-अस्-सिराज के अनुसार यह अभियान बनयान (सम्भवतः बयान) के विरुद्ध था। मगर फिरिश्ता, तारीखे बदायूनी और तबकात-ए-नासिरी कहते हैं कि यह अभियान मुलतान के विरुद्ध था।

अब उसके विध्वंसों पर पूर्णविराम लगाने का निर्णय कर अल्लाह ने

इस मैदान सुलतान को बांध लाने के लिए अपना दूत भेज दिया। अल्लमश को और टकटकी लगाए सोते हुए अल्लमश से साक्षात्कार करने की आशा कर बैठते हैं और उन्हें निराश होना पड़ता है। पर्यटक देखते हैं कि अल्लमश को उसी प्रकार गाढ़ा गया है जिस प्रकार भारत में अन्य मुस्लिम लुटेरे गड़े होते हैं। एक प्राचीन हिन्दू मन्दिर के भूगर्भीय कक्ष (तहखाने) में वह गड़ा गया है। उसकी कब्र भी उसी प्रकार मिट्टी, पत्थर और चूने से भरी हुई है। उसके ऊपर तहखाने की छत और जमीन की सतह है। कुछ ही सीढ़ियाँ नीचे तहखाने का अन्धकारपूर्ण कमरा है। एक असहनीय दुर्गन्ध इस तहखाने में व्याप्त है। स्पष्ट रूप से उसके काले कारनामों से परिपूर्ण उसके पशु-सुख जीवन ने ही इस दुर्गन्ध को उगता है और शताब्दियों से उगलता चला जा रहा है। इससे यह दुर्गन्ध धीरे-धीरे अत्यधिक घनी हो गई है।

हमारे पुरातत्त्व विभाग को इसकी सारी गन्दगी साफ़ कर तहखाने में

प्रकाश की व्यवस्था कर देनी चाहिए ताकि पर्यटक स्वयं यह देख लें कि वे मुस्लिम आक्रमणकारी और लुटेरे अपने बनाए मकबरों में नहीं बरन् हिन्दू प्रासादों और मन्दिरों के तहखानों में बड़े आराम से सोए हुए हैं। ये सभी तहखाने एक सुरंग से संयुक्त हैं। कई स्थानों पर ऊपर इन कब्रों तक जाने के लिए सीढ़ियाँ भी बनी हुई हैं।

कुतुब मीनार का निर्माण—ऊपर हमने अल्लमश के शासन का वर्णन किया। इसमें यह कहीं भी नहीं लिखा हुआ कि अल्लमश ने कुतुब मीनार बनवाई है। साधारण पाठकों को शायद यह नहीं मालूम कि हमारे "अन्धे इतिहासकार" उनसे अन्धी आंखमिचौनी का खेल खेल रहे हैं। वर्तमान फ़ैशन के अनुसार "कुतुब-मीनार" से साधारण पाठक यह विश्वास कर लेते हैं कि इस भव्य गुम्बददार और अलंकृत स्तम्भ-निर्माण का झूठा मुस्लिम दावा कुतुबुद्दीन और सिर्फ़ कुतुबुद्दीन के पक्ष में ही है। मगर भाइयो, ऐसा नहीं है। इसे गढ़े गढ़ाए शब्द कुतुब-मीनार से भ्रमित "इतिहासकारों" का एक दल जब इसके निर्माण का श्रेय कुतुबुद्दीन के सिर मँढ़ता है तब एकाएक अल्लमश के प्रायः २०० वर्षों के बाद मैदान में आने वाले शम्स-ए-शिराज यफ़्रीफ़ के बयान से उनका सामना हो जाता है।

प्रत्येक मध्ययुगीन मुस्लिम इतिहासकार के समान शम्स-ए-शिराज अफ़्रीफ़ ने भी झूठों का एक पुलन्दा लिख छोड़ा है। इसका नाम तारीख़े-फ़िरोज़शाही है। कल्पना की एक भंग-तरंग में उसने लिख मारा है कि कुतुब-मीनार का निर्माण अल्लमश ने किया है। फलतः अन्धे और विचार-हीन इतिहासकारों के एक दल ने यह प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया है कि अल्लमश ने ही कुतुब-मीनार (बेधशाला) का निर्माण किया था। यह प्रश्न करने पर कि तब इसका नाम कुतुब-मीनार क्यों है, वे यह समझाने का प्रयास करते हैं कि अपने स्वामी कुतुबुद्दीन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए अल्लमश ने इस स्तम्भ का निर्माण कराकर इसका नाम कुतुब-मीनार रख दिया है।

भारतीय इतिहास और पर्यटक साहित्य ऐसी ही हास्यास्पद ऊँची उड़ानों और झूठे बयानों पर आधारित है। कुतुबुद्दीन या अल्लमश के शासन-युग से अलग जो मौलिक तथ्य इस स्तम्भ-निर्माण का दावा करता है, उसकी संवन्धा उपेक्षाकर ये लोग उसे दबा देते हैं। हम जानते हैं कि

मुस्लिम लुटेरे भारतीय भवनों की भव्यता देख-देखकर एकदम हक्के-बनके रह गए थे। अपने अज्ञान और विस्मय से वे यह विश्वास करते थे कि इन भवनों के निर्माण में अवश्य ही दो-तीन सौ वर्ष लगे होंगे। इन भवनों के बनाने योग्य न तो समय था न सम्पत्ति, न धीरज था न शान्ति। साथ ही "कुतुब-मीनार" जैसे स्तम्भ को बनाने योग्य आवश्यक यान्त्रिक-ज्ञान भी उनके पास नहीं था।

यह भी विचारणीय है कि इसका अलंकरण सम्पूर्ण रूप से हिन्दू परम्परा के अनुसार है। इसके अरबी लेख परबर्ती जालसाजियाँ हैं ताकि हिन्दू निर्माण के शौरव पर झूठी मुस्लिम पानिश की जा सके। इसके चारों ओर २७ मन्दिरों का समूह था। इसका प्रमाण कुतुबुद्दीन के खुदे लेखों में है। यह खुदा हुआ लेख स्पष्ट बतलाता है कि मन्दिरों के बीच में खड़ा यह हिन्दू स्तम्भ एक केन्द्रीय हिन्दू (वेधशाला) नक्षत्र-निरीक्षण-स्तम्भ था।

मुस्लिम बरबादों की याद दिलाने वाले इस तथ्याकथित कुतुब एवं इसके चारों ओर बिसरे शण्डहरों पर संस्कृत की खुदाई के अवशिष्ट अंश अभी भी देखे जा सकते हैं। कुतुब-मीनार एक अरबी शब्द है जिसका अर्थ है "नक्षत्र-निरीक्षण का स्तम्भ।" यह महरौली में स्थित है। महरौली (मिहिर-अबलि) एक संस्कृत शब्द है जो राजा विक्रमादित्य के दरबार के प्रसिद्ध ज्योतिषी मिहिर की यादगार में बनाए गए उपनगर की ओर संकेत करता है।

अतएव यह स्पष्ट है कि यह तथ्याकथित कुतुब-मीनार विक्रम स्तम्भ है। इसे प्रसिद्ध विद्वान् सम्राट् विक्रमादित्य ने नक्षत्रों के निरीक्षण के लिए ईसा से पहले बनाया था। इसका आकार, प्रकार और नक्शा भी उनके प्रसिद्ध दरबारी ज्योतिषी मिहिर ने बनाया था। अतएव इस स्तम्भ के निर्माण का श्रेय किसी मुस्लिम-पिशाच कुतुबुद्दीन, अलतमश या अलाउद्दीन खिल्जी को नहीं मिलना चाहिए। हाँ, कुछ भ्रमित इतिहासकार अलाउद्दीन खिल्जी का नाम भी रटते रहते हैं और तीनों ही भ्रमित दल अपनी-अपनी बहानियाँ पेश कर देते हैं।

ये भ्रमित इतिहासकार साधारण गरीब पर्यटक से लेकर चम्मच-पुष्ट भ्रष्टार तक की गह कह सकते हैं कि दिल्ली पर शासन करने वाले औरंगजेब और बहादुरशाह जफर तक के प्रत्येक विदेशी मुस्लिम अपहर्ता शासकों

ने अपनी-अपनी छैनियों से इस स्तम्भ (यानी कुतुब-मीनार) को वर्तमान रूप प्रदान किया है।

जितनी जल्दी इस सत्य की तोड़-मरोड़ बन्द होगी उतना ही अच्छा है। हमारे छात्रों, शिक्षकों एवं जनता को यह माँग करनी चाहिए कि लुटेरे और हत्यारे मुसलमानों के बारे में "अरेबियन नाइट" जैसी कल्पित कहानियाँ गम्भीर इतिहास कहकर अब न पढ़ाई जाएँ। साथ ही हिन्दुस्तान के पर्यटक साहित्य में भी ये अनिवार्य संशोधन किए जाएँ।

(मदर इण्डिया, अप्रैल १९६७)

रजिया

मध्यकाल का मुस्लिम-दरबार नरक की एक मशीन था। संगदिल, शैतान मुलतान इसका केन्द्रीय चक्का था तथा मुस्लिम कुल्हाड़ी मौजने वाले गुर्गों के दलपति इस मशीन के शेष कल-पुर्जे।

धूस, भाई-भतीजावाद, हत्या, नर-संहार, बलात्कार एवं लूट रूपी कोयले-थानी से चालित इस मशीन का काम हिन्दू एवं हिन्दुस्तान की महीन कटाई करना ही था।

कीवों और गिद्धों की भांति हिन्दू मलवों पर टूटने वाली मुस्लिम अपहर्ताओं एवं उनके चुनिन्दा लोगों की यह मशीन बड़ी तेजी से चली और हजार वर्षों तक लगातार चलती ही रही। खूनी टुकड़े खूब विकीर्ण हुए। दमघोंटू हुगंन्ध चारों ओर व्याप्त हो गई। कपट, कामुकता और विश्वासघात की गोद में लिपटे, जो इस मशीन से जाकर नहीं चिपटे, वे बड़ी बुरी तरह जले, गले और बरबाद हो गए। रजिया का जीवन इसका ज्वलन्त प्रमाण है, हालाँकि वह स्वयं एक मुसलमान थी, एक मुसलमान गुलाम मुलतान की एक मुसलमान गुलाम बेटी।

रजिया अल्तमश की अनाथ पुत्री थी। भेड़ियों से भरे मुस्लिम दरबार में उसकी जवानी सहज प्राप्य थी। जोरों से चलते मशीन के पट्टे में वह बुरी तरह फँस गई। कुछ ही पलों में रजिया राज-गद्दी से गेंद की भांति ऊपर उछाल दी गई। उसका नारी-शील चूर-चूर होकर धूल में मिल गया।

दिल्ली की गलियों में अनेक मध्यकालीन मुस्लिम कब्रें फटे हाल पड़ी हुई हैं। इनमें से एक रजिया की भी है। कैयल में बन्दी बनाकर, दिल्ली की गलियों में धसीटकर उसकी हत्या की गई। जिस स्थान पर उसकी हत्या हुई उसी स्थान पर उसे दफना दिया गया। पुरानी दिल्ली के तुर्कमान

गेट के एक फलांग भीतर एक कबीला देर है। इसी के नीचे रजिया बंदी पड़ी है।

अप्रैल, १२३६ ई० के अन्त में अल्तमश की मृत्यु हुई। मुस्लिम दरबारी रिवाज के अनुसार 'बेटों' में गद्दी की छीन-झपट होने लगी। मध्यकालीन मुस्लिम दरबारी जीवन का 'बेटा' शब्द बहुत ही व्यापक और धूर्धला है। मुस्लिम शासकों का लम्बा-चोड़ा हरम मुगियों के दड़वों से भी अधिक उप-जाऊ होता था। मुर्गीराज हरम में मुख्य-द्वार से प्रवेश करते थे और चोर-द्वारों से गुप्त प्रेमीगण। बच्चों की पैदावार बड़ी तेजी से बढ़ती थी। काम दूसरों का था, मगर नाम मुलतान का। हर नये जन्म की घोषणा पर मुलतान का मुस्लिम सीना बित्ता-भर फूल जाता था।

गद्दी के शाही दावेदार अनेक होते थे। उत्तराधिकारी संग्राम का राज-मार्ग सभी के लिए खुला था। गुलाम, भतीजे, भाई, भोजाई, अंग-रक्षक, चाचा, चाचियाँ, दादियाँ, पुकार-माँ, धाय-माँ, रसोइए, खोजे, पदचर और मन्त्री ही नहीं, वैश्या के दलाल भी इन निश्चित दंगों में भाग लेते थे।

नासिरुद्दीन मुहम्मद एक लापरवाह, चरित्रहीन और कामुक शाही जवान था। उसके पिता अल्तमश के जीवन में ही उसकी जलामयिक मृत्यु हो गई थी। वह गुप्त रोगों का रोगी भी था। फिर भी चापलूस भिनहज-अस-सिराज उसे 'विद्वान्, मेधावी, वीर, साहसी, उदार और दातार' कहने से नहीं चूकता। प्रत्येक मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासकार ने इसी प्रकार दिल खोलकर हर शैतान की आरती उतारी है। मगर बाद में जब वे उनकी जीवन-घटनाओं का वर्णन करते हैं तो वही लूट, कामुकता और हत्या का बीभत्स खूनी किस्सा ही सामने आता है। प्रचलित भारतीय पाठ्य-पुस्तकों ने सरसरे तौर पर लिखी इन्हीं मशीनी-उपाधियों को चुन-चुनकर इकट्ठा किया और बड़े इतमीनान से मध्यकालीन मायावी मुसलमानों की काली करतूतों पर परदा डाल दिया। अब वे इस बात का नगाड़ा बड़े जोरों से पीट रहे हैं कि उनमें से हर एक शासक न्यायी, कुलीन, बुद्धिमान, विद्वान्, उदार, धार्मिक और विवेकशील था।

अल्तमश के बाद रुकुनुद्दीन फ़िरोजशाह गद्दी पर बैठा। यह एक तुर्की-दासी का पुत्र था, जिसका शील कदापि सुरक्षित नहीं रहा होगा। विशेष

कर उस अवस्था में जब हम अस्तमश को हमेना चारों ओर घूमता, फिरता और सूँघता पाते हैं।

धर्मा-पालन के लिए तिराज अपने सधे-सधाये सुर और स्वर में उसकी आरती उतारता है कि "धर्मा और इन्सानियत से ओत-प्रोत (वह) एक उदार, सुन्दर राजा था।" मई, १२३६ में वह गद्दी पर बैठा। "उनके बैठने से (राज) गद्दी और ताज दोनों ही धन्य-धन्य हो गए।" यहाँ पर भी सदा की भाँति मायावी मुस्लिम इतिहास का कट्टर झूठ जन्म ले रहा है। दो ही पंक्तियों के बाद उसी मुस्लिम इतिहासकार ने लिखा है कि "अनुचित स्थानों पर (हिन्दू) जनता का धन लूटाते हुए उन्होंने अपने आपको महफिलों की मोज-मस्ती के हवाले कर दिया। कामुकता और विलासिता में वे इतना राक हो चुके थे कि सरकारी काम उपेक्षित होने के कारण एकदम उलझ गए। उनकी माँ जाह तुरकन देश के सरकारी कामों में दखल देने लगीं। पति के जीवनकाल में दूसरी ओरते उन्हें ईर्ष्या और घृणा से देखती थीं। उन सभी को सजा देने का अब उन्हें मौका मिला। बदले के क्रोध में अन्धी होकर उन्होंने अनेक स्त्रियों को मौत के घाट उतार दिया। (अपनी एक प्रतिद्वन्द्विनी सीत के पुत्र) जाहजादे कुतुबुद्दीन की उन्होंने आँखें फुड़वा दीं और बाद में मरवा दिया।"

अस्तमश के बेटों में एक गियासुद्दीन मुहम्मद भी था। इसने रकनुद्दीन से अवध में छेड़छाड़ प्रारम्भ कर दी। शाही लुटेरों का एक दल खजाना लूटकर सखनोटी से दिल्ली ला रहा था। उसने इसे लूट लिया। इसके अतिरिक्त उसने हिन्दुस्तान के बहुत से गहरों को भी लूटा। बदायूँ के कामक मलिक इजुद्दीन मुहम्मद सलाही, मुलतान-शासक मलिक इजुद्दीन कजोर खाँ, हांसी-कामक मलिक संफुद्दीन कोचो और लाहौर-शासक मलिक अलाउद्दीन ने आपस में पटपन्त्र रचकर विद्रोह कर दिया। मध्यकाल के मुस्लिम दरबारी और शासक ही नहीं, अपितु चपरामी भी कट्टर इस्लामी धर्मांधता की वापिक तरंग में गोता खाता था। हिन्दू घरों को लूटकर शम्प्य शेरों की तबाह करना तथा हिन्दू स्त्रियों एवं बच्चों का बलात् हरण-भोगकर उन्हें मुसलमान बनाना अपना पवित्र इस्लामी कर्तव्य मानता था। इसीलिए कट्टर मुस्लिम गुण्डों के ये दादा जब दिल्ली दरबार से विद्रोह करते थे, तब अपने उबलते-उकलते रेजोर इस्लामी जोश में हिन्दुओं की हत्या,

हरण, और लूट पर पिल पड़ते थे। मुसलमानी शासकों के दिल्ली-विद्रोह का एक ही अर्थ था कि वे हिन्दू धन की लूट का बंटबारा दिल्ली के मुलतान से नहीं करेंगे। हर हालत में हिन्दुओं को ही चढ़ाई का कड़वा स्वाद चाखना पड़ता था, चाहे वह काफ़िरो पर पवित्र वापिक इस्लामी चढ़ाई हो, चाहे कूर-भोगी कट्टर मुसलमानों का बेमौसम विद्रोहात्मक नाटकीय नृत्य।

रकनुद्दीन विरोध का दमन करने दिल्ली से सेना लेकर निकला। कूर मुस्लिम शासन के हजार वर्ष एक बड़ा, विशाल कड़ाह-मा प्रतीन होता था, जिसमें असन्तोष और विद्रोह का उफान बराबर आता रहता था।

रकनुद्दीन की अनुपस्थिति का लाभ उसकी पोष्य बहिन रजिया ने उठाया। प्रतीत होता है कि मायावी मुस्लिम हरम अण्डा सेने की एक विशाल मशीन था, जिसमें से प्रत्येक दिन सैकड़ों पोष्य भाई, बहिन, पुत्र और पुत्रियाँ निकलती रहती थीं। रजिया में राजगद्दी का भोग करने की तीव्र इच्छा जागृत हो गई। सहायता के लिए कुछ गुनाम, जो उसके चारों ओर चक्कर काटते रहते थे, आगे आए। उनकी नजर शाही गद्दी और शाही जवानी, दोनों पर थी।

दरबार के धूर्त और कामुक मुस्लिम गिरोह-नेताओं के लिए रकनुद्दीन की बूढ़ी माँ बेकाम थी। वे रजिया की सहायता के लिए आगे बढ़े ताकि परदे के बाहर खींचकर उसका अबाध भोग कर सकें। रकनुद्दीन की बूढ़ी माँ कल कर दी गई।

१२३६ ई० में रजिया राजगद्दी पर शान से बैठ गई। अपने पोष्य भाई के विरुद्ध एक पोष्य बहिन का गद्दी के लिए यह एक खुला विद्रोह था। गद्दी से दूर सुलतान को बन्दी बनाने के लिए उसने एक सेना भेज दी। जिस माह उसे बन्दी बनाकर दिल्ली लाया गया उसी माह उसकी मृत्यु हो गई। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि रजिया ने बड़े ठण्डे दिल से उसकी हत्या करवा दी ताकि न रहेगा बाँस न वजेगी दाँसुरी।

इस प्रकार रकनुद्दीन का इस्लामी शासन छः महीने २८ दिन का था। उसके बारे में हमें ज्ञात होता है कि "महफिल और काम-प्रीड़ा का वह ऐसा कीड़ा था कि गायकों, हँसोड़ों और लौण्डों पर वह प्रायः इनाम बरसाता रहता था। वह इतनी लापरवाही से धन लूटाता था कि शराब में मदमस्त

हाथों पर सवार होकर सड़कों और बाजारों में (मुस्लिम) जनता के लूटने के लिए सोने का लाल टंका वह फेंकता फिरता था।"

ठीक यही वर्णन भारत के प्रत्येक मायावी मुस्लिम शासन के ऊपर, जरा से फर्क से, एकदम फिट बैठता है। शराब और साकी की महफिलों में सभी लोगों ने आस-बन्दकर हिन्दू-धन लुटाया था। मुस्लिम लुच्चे और गुण्डे इससे और मोटे होकर दूने उत्साह से हिन्दू-गृहों की लूट-भोग में पिल पड़ते थे। फर्क सिर्फ इतना ही था कि रकनुद्दीन जैसे लोगों ने इसे खुले आम भारत के मुस्लिम क्षेत्रों (या दूर मक्का) में बरसाया जबकि औरंगजेब जैसे हृदयहीन और डकदार लोगों ने इसे चुनिन्दा डाकुओं और हत्यारों के बीच बाँटा।

अब गद्दी पर रज़िया थी। तबक़ात-ए-नासिरी के लेखक मिनहज-अस्-सिराज रज़िया के जीवन-चरित्र की बिस्मिल्लाह करते हैं। झूठ का ढिंढोरा पीटकर वे गुलाबी आवाज़ में रज़िया की आरती उतारते हैं—“एक महान् साम्राज्ञी, बुद्धिमती, न्यायी और उदार, प्रजा-पालक, सच्चा न्याय करने वाली प्रजा-रक्षक” आदि, इत्यादि। मगर हम ऊपर देख चुके हैं कि षड्यन्त्र और हत्यारे सुसज्जित लोगों से रज़िया भी कम फरेबी और कम खून की प्यासी नहीं थी। अपने ही सुलतान भाई रकनुद्दीन की हत्या कर उसने गद्दी हथपी थी। शायद उसकी माँ के खून से भी उसके हाथ लाल थे।

कुछ लोग कहते हैं कि अल्लमश ने रज़िया में नेता का गुण पाया था। अतएव उसकी आखिरी स्वाहिष थी कि रज़िया ही सुलताना बने। बकवास और कोरी बकवास। इस गप्प को रज़िया के गद्दीनशीन होने के बाद कहा गया है। चापबूस दरबारियों ने इसे गढ़ा है क्योंकि अपनी मर्दानगी के अधिमान में ऐंठ कुछ मुस्लिम दरबारियों ने चोली-सरकार के सामने सिर झुकाना मंज़ूर नहीं किया। लुद वज़ीरे-आज़म निज़ामुल् मुल्क जुनैदी ने रज़िया को सुलताना नहीं माना। उसने रकनुद्दीन से विद्रोह करने वाले अन्य अधिकारियों के साथ मिलकर मशरफ को घोषणा कर दी। लोग “देश के विभिन्न भागों से आ आकर दिल्ली के दरवाज़ों पर जमा होने लगे और कफ़ी दिनों तक दुश्मनी बजती रही।” (इलिफ़ट एवं डाउसन, ग्रन्थ २, पृष्ठ ३३३)।

“दिल्ली के दरवाज़ों” के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि तुर्कमान गेट

(जिसके भीतर रज़िया गड़ी पड़ी है) तथा पुरानी दिल्ली के अन्य द्वार रज़िया बेगम के समय में विद्यमान थे। इसलिए यह विचार एकदम भ्रम-पूर्ण और सफ़ेद झूठ है कि पुरानी दिल्ली को शाहजहाँ ने १७वीं शताब्दी में बनवाया था।

दूसरी महत्वपूर्ण बात है कि रज़िया ने चार वर्ष से भी कम समय तक राज्य किया था। इसके अतिरिक्त उसका सारा शासन-काल तोय मुद्र, विद्रोह, दंगों और झगड़ों का अखाड़ा था। फिर कट्टर मुस्लिम लेखकों ने उसे नायाब हिरोइन के रूप में चित्रित करने का जो तोड़ प्रयास किया है। इन लेखकों के अनुसार रज़िया ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का जो तोड़ प्रयास किया, जाति-भेद करने वाले अतिरिक्त हिन्दू कर्तों को हटाया, जाति-भेद-हीन न्याय दिया और विचारवान सुधार लाने की कोशिश की। मगर सबसे ज्यादा आश्चर्यजनक और हास्यास्पद बात तो यह है कि ऐसी हास्यास्पद बकवास का दावा प्रत्येक भारतीय मुस्लिम शासक के बारे में किया गया है, जबकि बिना एक भी अपवाद के हर एक मुस्लिम शासक शांति का ही अवतार था। अपने दुष्कर्मों से इन लोगों ने भारत में जहन्नुम जैसी आग जलाई थी, जिनमें हिन्दू जल-तड़प कर मरते थे।

मुस्लिम लेखकों की यह बकवास, यह कल्पना की रंगीन उड़ान, यह गप्पबाज़ी और ये झूठी कहानियाँ मुसलमानों के विचार और सुधार के बीच-में अड़ी-गड़ी पड़ी हैं। उन्हें भारत का निष्ठावान नागरिक बनने में ये अड़ंगा लगाती हैं। भारतीय मुसलमानों को प्रारम्भ से ही यह बतला-बतला कर विश्वास दिलाया जा रहा है कि क्रूर पीड़ाएँ और सामूहिक नर-संहार, जिन्हें हजार वर्ष तक हिन्दुओं ने मुस्लिम कुशासन में भोगा है, “बुद्धिमानी और न्याय का अद्वितीय” उदाहरण हैं। फिर वे मूर्खता और अन्याय क्यों न करेंगे? स्वाभाविक ही है कि वे उस रोल में अपने बाप-दादाओं को भी मात देने का प्रयास करेंगे और उसी प्रकार का न्याय करने की ओर अधिक बुद्धिमानी दिखाएँगे।

इसके विपरीत प्रतिदिन स्कूलों और कालिजों में तथा सरकारी रिकाइज़ों के द्वारा हिन्दुओं के मस्तिष्क में यह भरा जा रहा है कि अमानुषिक मुस्लिम अत्याचार उनके हृदय की अद्भुत उदारता थी। उनका महान् गौरवशाली कार्य था। हिन्दुओं से यह प्रार्थना कराई जाती है कि भविष्य में भी उन्हें

ऐसी ही उदारता प्राप्त हो। इतिहास को झूठ का पुलिन्दा नहीं होना चाहिए। तथ्य और सत्य की शिक्षा तो दूर रही, साम्प्रदायिक मंत्री और राजनीतिक दृष्टिकोण से भी शिक्षा-प्रचार का अनुमोदन नहीं हो पाता। यह न्याय नहीं है।

वीरवर्म युग मानकर बिलखते अतीत का झण्डा फहराना, मामूली भाई-भाई का रगड़ा कहकर अवघ-आम को टाल देना और क्रूरतम कृत्याचार को दुलारा शासन कहकर पुचकारना साम्प्रदायिकता के केंद्र को छिपाना है। छिपाने से रोग मिटता नहीं, उल्टे वह दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता ही जाता है।

रजिया की गद्दी नसीनी में असन्तुष्ट अवघ-शासक मलिक नासिरुद्दीन ने अपनी उन्नति का स्वप्न देखा। तुरन्त सेना बटोरकर दिल्ली जा पहुँचा। बहाना बड़ा सुन्दर था, मुसीबत में रजिया की सहायता करना। इरादा था गद्दी और गद्दीवालों दोनों को हथियाना। चाल बड़ी चालू और पुरजोर थी। मगर वह दिन की कल्पना और रात का सपना चूर-चूर हो गया। बागियों ने उसे पकड़कर मोत की गोद में सुला दिया।

दिल्ली घिराव में थी और रजिया प्राचीर के भीतर बन्द। एक दुर्ग-द्वार के रखक कुछ विद्रोही सेना-नायक थे। रजिया ने अपने हाव-भाव के बाण उधर छोड़े और वह अपनी सेना सहित घिरी हुई दिल्ली से दूर पहुँच गई।

यमुना किनारे पड़ाव डाले बँन की साँस ले उसकी सेना हिन्दू सेतों पर टूट पड़ी। उस प्रकार फँस होकर दोनों सेनाएँ आमने-सामने आ डटीं। दोनों तृप्त सेनाओं में अनिर्णायक झड़पें होने लगीं। इस उथल-पुथल में रजिया अब नाम की सुलताना थी। सैन्य-विजय की कोई आशा भी नहीं थी। तब कुछ विद्रोही और कपटी नायकों को जीतने अपने कामुक और कपटी हाव-भाव पर उतर आई। विरोधी नेताओं पर कुछ कामुक संकेत जाड़वाएँ गये। मलिक इजुद्दीन मुहम्मद सालार तथा मलिक इजुद्दीन कबीर जो रजिया के जवान तम्बू में रात बिताने आए। उन लोगों को यह ठग हुआ कि मलिक जनी, मलिक कोची और बजोरे-आजम निजामुल मुल्क जुनेदी को बागचीत के बहाने बुलाकर बन्दी बना लिया जायेगा। इन तीनों को यह बख्त भी मालूम पड़ गई। वे तीनों भाग गये।

कपटी और दगाबाज नर-मुसलमान की धोति रजिया ने विद्रोहियों की कतार तोड़ दी। अब उसकी सेना ने भागते विद्रोहियों का पीछा किया। अनेक लोगों के साथ तीनों ही पकड़े गये। रजिया ने सबको हत्या कर दी।

कट्टर मुस्लिम गुलाम सुलतानों से हिन्दुओं ने कभी भी समझौता नहीं किया था। जब १२३६ ई० में रजिया दिल्ली की अपहृत-गद्दी पर बैठी तो हिन्दुओं ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए पुनः एक साहसिक कदम उठाया। एक विद्वान् और वीर हिन्दू नार ने वीर हिन्दुओं की एक सेना जमा की। इसमें भाग लेने सिन्ध और गुजरात आदि प्रान्तों से भी देश-भक्त हिन्दू आये थे।

सिराज के अनुसार नार ने "इस्लाम के लोगों से खुली लड़ाई खेड़ दी।" (इलियट एवं डाउसन, ग्रन्थ २, पृ० ३३६)। मार्च, १२३७ ई० में यानी रजिया के गद्दी हड़पने के पाँच महीने के भीतर ही ढाल, तलवार, बाण आदि अस्त्र-शस्त्र लेकर एक हजार हिन्दू वीर "दो दलों में जामा मस्जिद तक आए। दूसरा दल कपड़ा बाजार होकर मुइज्जी के दरवाजे में इसे मस्जिद समझकर प्रविष्ट हो गया। दोनों ओर से उन लोगों पर चढ़ाई कर दी। तलवारों से अनेक धर्मात्मा (यानी मुसलमान) मारे गये और अनेक भागती भीड़ ने कुचल दिए।" इससे पहले कि वह छोटी मगर वीर हिन्दू सेना नगर पर अधिकार करे "वक्षत्राण, पृष्ठव्राण, शिरस्त्राण आदि जिरहबद्धतर पहने, भाले और ढाल आदि हेथियारों से लैस (मुस्लिम सेना) चारों ओर से एकत्रित हो, जामा मस्जिद पर चढ़ने लगी" (खुदा के न्याय के भय से) मुसलमान जो (दूसरी) मस्जिदों के शिखर तक चढ़ गये थे, ईंट और पत्थर नीचे लुढ़काने लगे।" बद्धतरबन्द मुस्लिम सेना से लड़ते हुए एक हजार वीर हिन्दू योद्धाओं ने स्वतन्त्रता की देवी के चरणों पर अपने प्राणों की आहुति चढ़ा दी।

झूठे मध्यकालीन इतिहास की अनेक उलझनें इस विवरण से सुलझती हैं। रजिया-शासन के सम्पूर्ण वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस दिल्ली का इसमें वर्णन किया गया है वह आज की पुरानी दिल्ली ही है। अतएव यह गण्यबाजी एकदम बन्द हो जानी चाहिए कि पुरानी दिल्ली की नींव शाहजहाँ ने १७वीं शताब्दी में डाली थी। दूसरे, इसी वर्णन में एक स्थान पर नूर-किले का वर्णन है। यह नूर-किला स्पष्ट रूप में लालकिला ही है,

क्योंकि इस नूर-किले वाली लालकिले से ही एक प्रमुख सड़क इस तथा-कथित जामा-मस्जिद तक जाती है। तीसरे, इसपर भी गौर कीजिए कि जिस लाल-किले और जामा-मस्जिद के बनाने का इनाम शाहजहाँ को १७वीं शताब्दी में मिला है, वही जामा-मस्जिद, और वही लाल-किला शाहजहाँ की वेदाङ्ग से भी ४०० वर्ष पहले रजिया के समय में जीता-जागता मौजूद रहा था। चौथे यह भी ताबिले गौर है कि हिन्दुओं ने सबसे जामा मस्जिद को ही अपने कब्जे में किया। इसका एक ही अर्थ है कि यह हिन्दुओं का मन्दिर था और मुसलमानों ने इसपर बलान् अपना अधिकार कर इसे मस्जिद बना दिया था।

कुछ आगे बढ़िए। तैमूर लंग की लूटेरी सेना ने १३६८ ई० के किसमस में दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। तब हिन्दु इस तथाकथित जामा मस्जिद से ही बचा हुए थे। इसका वर्णन उसने स्वयं अपनी जीवनी में किया है। इससे यह पूर्ण-रूपेण प्रमाणित हो जाता है कि जिस जामा-मस्जिद को हम शाहजहाँ का बनाया हुआ मानते हैं उसे शाहजहाँ ने नहीं बनाया। वह हिन्दुओं का मन्दिर था। पाँचवां निष्कर्ष यह भी निकलता है कि हिन्दुओं का दूसरा दल जो वर्तमान चावड़ी बाजार से निकल, मस्जिद समझकर, जिस दूसरे अपहृत हिन्दु-मकन (मुइज्जी) में घुसा था, वह भी आस-पास में ही मौजूद था।

रजिया के छोटे-चार वर्षीय शासन-विवरण से पाठकों को यह यकीन हो जाना चाहिए कि हर एक मुस्लिम राजा, चाहे वह नर हो या नारी, हिन्दुओं से व्यवहार करते समय शैतानों के दादा और लुटेरों के बाप हो जाते थे।

बिलास-विषाक्त दरबारी वातावरण में गद्दी पर बैठी जवान रजिया स्वयं ही एक नुर-कार थी। उसके लिए बिलासी दरबारी आपस में सिर कुदोजन किया करते थे। मुस्लिम दरबारी जीवन के पापी भँवर में फँसी रजिया को लोगों का सहारा लेने के लिए अपनी जवानी का मोदा करना पड़ता था। जनेक लोग इस लड़की को धमकाने में सफल भी हुए। इनमें बघोर जमाबूदीन याकूत नामक एक गुलाम था। वह घुड़सवार का मुखिया (और पहला सेवक) था। घुड़सवारी का आनन्द लेने के समय रजिया के साथ वही बाहर जाता था। कामुक सम्बन्ध घनिष्ठ हो जाने पर वह

रजिया का निजी सहायक बन गया। इस तरहकी प्राप्त याकूत का घनिष्ठ सम्बन्ध रजिया की आँखों को भाता था मगर अन्य दरबारियों की आँखों में वह बुरी तरह चुभता था।

उसके साथ घुड़सवारी में बाहर जाते समय भयानक मूत जैसा काला लबादा, जो मुस्लिम औरतों का परिधान है, रजिया ने त्याग दिया था। वह मर्दाना कोट और टोपी पहनने लगी थी।

ग्वालियर की नगर-टुकड़ी रजिया की उपेक्षा करती आ रही थी। कभी-कभी संदेहात्मक दो-तरफा रुख भी अपना लेती थी। क्षेत्रीय उपद्रवों तथा विद्रोह-दमन के व्यय के साथ-साथ विरोधी दरबारियों को घूस दे देकर रजिया को उन्हें मिला रखना पड़ता था। इससे शाही खजाना जब एकदम सूख गया तो ग्वालियर पर सेना भेज दी गई। वह बड़ी चिन्तित थी क्योंकि ग्वालियर के मुसलमानों ने लूट-भाग भेजना बन्द कर दिया था। अब ग्वालियर को मैदान का दर्शक नहीं, खेल का खिलाड़ी बनना पड़ा। दृढ़ नेतृत्व के अभाव के कारण, बिना प्रबल प्रतिरोध के ग्वालियर का पतन और दमन हो गया।

ग्वालियर पतन के तुरन्त बाद ही लाहौर के मुस्लिम-शासक मलिक इजुद्दीन कबीर खाँ ने १२३६ ई० में विद्रोह कर रजिया के शासन को चुनौती दे दी।

रजिया ने कूच कर दिया। लम्बी लड़ाई के उपरान्त भी रजिया बाग़ी कबीर खाँ का दमन न कर सकी। उलटे मुलतान और उसके आस-पास का भू-भाग उसे लूट-लगान के लिए सौंप देना पड़ा।

इस कष्टकारी लाहौर अभियान से रजिया अप्रैल, १२४० ई० में लौटी हो थी कि तबरहिन्द का शासक मलिक अलतूनिया विद्रोह कर बैठा। रजिया के असंतुष्ट दरबारी भी उससे जा मिले। इससे उसके न्यायी, बुद्धिमान और दातार होने के झूठे साम्प्रदायिक मुस्लिम प्रचार का पर्दाफाश हो जाता है।

रजिया तबरहिन्द की ललकार को शान्त करने निकली। अभी तक अपने फटे शासन पर चिप्पी लगा-लगाकर किसी प्रकार उसने उसे बचा रखा था। उसे कोई निर्णायक विजय नहीं मिली थी। तबरहिन्द में उसे हार ही जाना पड़ा। अपने अस्तबलची प्रेमी के साथ रजिया बन्दी बना ली

गई। परम्परागत मुस्लिम पीड़ा भोगकर याकूत को जान देनी पड़ी। रजिया तबरहिन्द के तहखाने में फिकवा दी गई।

रजिया मुट्ठी में थी। बासी शासक अलतूनिया ने रजिया के साथ बलात्कार किया। मुस्लिम इतिहासकारों ने इसे शादी का फतवा दिया। अपने ही कामुक जाल में कासी-फंसी रजिया और अलतूनिया अपनी सेना लेकर दिल्ली के लिए चल पड़े।

रजिया के तबरहिन्द-गमन के बाद ही मुइजुद्दीन अपने आपको दिल्ली का सुलतान घोषित कर, शाही खजाना भरने के लिए लूट-कर वसूल करने में जुट गया था। रजिया और अलतूनिया की मिलीजुली सेना को रोकने के लिए उसने भी सेना बटोरी।

लड़ाई में अलतूनिया और रजिया की संयुक्त सेना हार गई। रजिया का सितारा दूरा देखकर सारे मायावी मुस्लिम दरबारियों ने रजिया से कल्लो काट ली। गंजेड़ी यार किसका, दम लगाया खिसका। शीघ्र ही रजिया और अलतूनिया की हालत खस्ता हो गई। इसी हाल में जब वे दोनों भटक रहे थे तब १२४० ई० में लोगों ने उन्हें खत्म कर दिया। मिनहज-अस्-सिराज इसका श्रेय हिन्दुओं को देता है। हो सकता है कि पुनः गद्दी हथियाने के लिए वे हिन्दुओं को लूट-मारकर धन जमा कर रहे हों। मुहम्मद बिन कासिम के समय से ही धर्मान्ध मुस्लिम गिरोहबाजों ने हिन्दु सम्पत्ति को लूटकर उन्हें बलात् मुसलमान बनाना जारी रक्खा था। कमजोर दिलवाले मुसलमान बन भी जाते थे। इस प्रकार मुस्लिम संगीन भारत में घुसती गई, फूलती चली गई और देश तबाह होता चला गया।

रजिया और अलतूनिया का कांटा उखाड़ने वाले हिन्दुओं को बधाई मिलनी ही चाहिए। उन्होंने तबाही के जहरीले पौधों को दुबारा पनपने नहीं दिया। उनकी जड़ जमने से पहले ही उन्हें उखाड़ फेंका।

यह भी हो सकता है कि मिनहज-अस्-सिराज ने जान-बूझकर झूठ लिख मारा हो क्योंकि कोई भी मुसलमान अपने भूतपूर्व सुलतान की बेटी की हत्या का आरोप अपने सिर पर सगने देना नहीं चाहता था। दरबारियों के नाराज होने का भी भय था। सम्भव है कि फत्तेशाह मुस्लिम सेना ने रजिया का शीघ्र-शय करने के बाद उसकी हत्या कर यह अफवाह उड़ा दी हो कि रजिया की हत्या हिन्दुओं ने की है। मध्ययुगीन मायावी मुस्लिम

इतिहासकारों की आदत थी कि वे अपना दोष हिन्दुओं के सिर में डकर पाक-साफ हो जाते थे।

तीन वर्ष और छः दिन का रजिया का शासन संकट और मारकाट से भरा हुआ है। उसका अन्त अचानक और रक्त-रंजित हुआ। किसी प्रकार लोग इसे रजिया का शासन-युग मान सकते हैं। कामुक दरबारियों से भयभीत, दीवार से सटी, अपना शरीर और राज बचाने के लिए उसने कई लड़ाइयाँ लड़ीं मगर सभी में वह हार गई। प्रजा की भलाई सोचने का उसे समय ही कब मिला? अगर मान भी लिया जाए कि उसे समय मिला था तो भी उसने परम्परागत मुसलमानी चपमे से ही हिन्दुओं को देखा था। हिन्दुओं का कवाब बनाकर उसने खाया और खिलाया था। शराब, साकी और सोने से मुसलमानों का मनोरंजन किया था। भारत का सारा मुस्लिम युग उलटने-पलटने पर एक भी उल्लेख योग्य मुस्लिम शासक नहीं मिलता जिसने हिन्दुओं की भलाई सोची हो। फिर दिल्ली-दहली पर नाम के लिए बैठी रजिया का शासन किस प्रकार उल्लेख योग्य हो सकता है? महिमा-शाली शासन तो दूर रहा।

मुस्लिम-काल एक थरथराने और कंपकंपाने वाला काल है। संकीर्ण साम्प्रदायिक लोग कुतर्क और कल्पित वीरता का 'पोलसन-बटर' इसपर कितना ही क्यों न पोतें, इसे रगड़-रगड़कर कितना ही क्यों न चमकाएँ, इसमें सफेदी का नया गुण पैदा नहीं हो सकता। रजिया का शासन-काल काला था, काला ही रहा और काला ही रहेगा।

अन्य 'गुलाम' सुलतान

यदि एक शब्द में भारत के हजार वर्षों के मुस्लिम शासन की व्याख्या हो सकती है तो वह उपयुक्त शब्द "काला-काल" है।

मुस्लिम शाहजादा और सुलतान, दरबारी और गुलाम हमेशा आपस में लड़ते-झगड़ते एक-दूसरे के गर्म लाल खून में हाथ रंगते रहते थे। मगर जब-जब हिन्दुओं पर अत्याचार करने की बारी आती थी तो ये अपनी सारी शत्रुता भूलकर एक हो जाते थे।

अलतमश की धैर्यहीन मर्दानी बेटी रजिया को भी पागल हैवानियत का स्वाद चखना पड़ा। आरम्भ में अबीसिनियायी अस्तबलची गुलाम अमलुद्दीन ने उसका शील भंग किया। अन्त में तबरहिन्द के तहखाने में बन्द कर अलतूनिया ने उसके साथ बलात्कार किया। अप्रैल, १२४० ई० में रजिया इसका विद्रोह दबाने दिल्ली से चली थी। मगर उसके दल-बल और छत के सामने उसे उसकी रखैल बनकर अपनी सारी सेना भी सौंप देनी पड़ी, ताकि वह उसके बाद उसकी राजधानी पर भी जुल्म डाल सके।

इधर रजिया ने दिल्ली छोड़ी, उधर उसके हजारों हरम-भाइयों में से एक मुइजुद्दीन बहराम शाह ने अपने सुलतान होने की डगडुगी पीट दी। सहायता करनी तो दूर रही, उसे इस बात की जरा-सी भी परवाह नहीं थी कि तबरहिन्द के तहखाने में उसकी हरम-बहिन के साथ बलात्कार हो रहा है। अब एक ही समय में दो सुलतान थे—रजिया और बहराम शाह। इस्लामी शासन का यह रोग जन्मजात है।

रजिया और उसके अपहर्ता अलतूनिया को मिली-जुली सेना से बहराम शाह को गुलाम खानदान की सुलतानी पर ठोके अपने दावे की रक्षा करनी थी। अक्टूबर, १२४० ई० के परवर्ती संग्राम में रजिया और उसके

अपहर्ता अलतूनिया को मारकर सड़क के किनारे फेंक दिया गया। अपने शोकपूर्ण अन्त के सबूत में रजिया का शील-हीन शरीर पुरानी दिल्ली के तुर्कमान-गेट के भीतर सड़क के किनारे एक जीर्ण-शीर्ण कब्र में दबा-बदा पड़ा है।

रजिया की अनुपस्थिति में मुइजुद्दीन बहराम शाह को गद्दी पर बैठाने वाले षड्यन्त्रकारी दरबारियों में इब्तियारुद्दीन इतिजिन काफ़ी प्रभावशाली था। हकीकत में बहराम शाह एक कठपुतला-सा था। उसकी नकेल इसीके हाथ में थी। वह इतना प्रभावशाली था कि जिस औरत की उसे स्वाहिष होती, उसे पकड़वाकर मँगवा लेता था। यहाँ तक कि उसकी तापाक कामुक नज़रों से सुलतान की अपनी बेटी भी नहीं बच सकी। उसका निकाह काज़ी नासिरुद्दीन से हुआ था। उसने काज़ी को मजबूर किया कि वह अपनी बेगम को तलाक़ दे दे। इसके बाद काज़ी की भूतपूर्व बेगम और सुलतान की पुत्री इब्तियारुद्दीन के पलंग पर घसीट लाई गई।

राजपूतों की नक़ल में इब्तियारुद्दीन के द्वार पर प्रतिदिन दिन में तीन बार बाद्ययन्त्र बजाए जाते थे। एक सजा-सजाया हाथी भी चौबीसों घण्टे द्वार पर तैयार तैनात खड़ा रहता था मानो आजकल की मोटर-कार हो। एक मध्य-युग का चिह्न था तो दूसरा आजकल का फ़ैशन।

अपने दरबारी के दबदबे से भयभीत बहराम शाह ने श्वेत महल (जो दिल्ली के प्राचीन हिन्दू लाल किले के दीवाने-खास के अतिरिक्त और कुछ नहीं था) में, कुरान-पाठ का आयोजन किया। इब्तियारुद्दीन इसमें मान्य अतिथि था। पिछले कमरे में सुलतान के दो किराए के हत्यारे बौतले साफ़ कर रहे थे। पाठ के बीच में ही इन हत्यारों की नकेल खोल दी गई। कपटी और मायावी इब्तियारुद्दीन आँख बन्द किए मुहम्मद और अल्लाह की महानता का पाठ श्रवण कर रहा था। साथ ही उसके मन में यह लड़कू भी फूट रहे थे कि किस प्रकार सुलतान मेरी अंगुलियों पर नाचते हैं; कि एका-एक हत्यारे तेज़ी से बाहर आए, झटके से छुरा निकाला और बिजली की भाँति उसपर टूट पड़े। शराब की झोंक में उन्होंने उसका कीमा और कबाब बना डाला।

भारत में मुस्लिम-शासनकाल में कुरान-पाठ का प्रयोग अपने खूनी कारनामों पर धर्म का पर्दा डालने के लिए हुआ है। हर तरफ़ से लाचार

और निराश होने पर इन हत्यारों ने आध्यात्मिक शान्ति-प्राप्ति का बुकी जोड़ा और बक्का भागकर अपनी जान बचाई है। अकबर ने भी तथाकथित मोहनुद्दीन बिजली की रज का उपयोग लोगों की आँखों में धूल झाँकेने के लिए किया था। वह वहाँ से राजपूतों पर चढ़ाई किया करता था। धोखे की इस भाड़ की हमारे मोघे-सादे इतिहासकार उसकी गहरी धामिकता मान बैठे हैं।

इस झगड़े-फसाद में घायल होकर निजामुल् मुल्क महजबुद्दीन किसी प्रकार बचकर भाग निकला था। उधर मलिक बदरुद्दीन शंकर ने इस्तिथारुद्दीन की जगह ले ली। उसके दबदबे और कारनामों से सुलतान और बजीर दोनों ही आतंकित हो उठे। सुलतान ने उसे भी अल्लाह के पास पार्सल करने का निश्चय कर लिया। बदरुद्दीन शंकर ने सुलतान से खतरे की बू सुंघी। अगस्त, १२४७ ई० के सोमवार को उसने प्रमुख दरबारियों की एक बैठक अपने निवास-स्थान पर बुलाई। वे सभी सुलतान को गद्दी से उतार फेंकने और उसके भाई को गद्दी पर बैठाने की साजिश करने लगे।

इस बैठक का समाचार सुलतान को मिला। बदरुद्दीन का घर घेर लिया गया। बैठक बीच में ही भंग हो गई। भोला-भाला-सा मासूम चेहरा बनाकर बदरुद्दीन सुलतान के पक्ष में हो गया। सुलतान वापिस महल लौटा, दरबार बुलाया और बदरुद्दीन को बदार्थ की लूट का काम सम्भालने की आज्ञा मिल गई। बदरुद्दीन दूर बदार्थ में कसमसा रहा था। वह दिल्ली लौट आया। षड्यन्त्रकारी बदरुद्दीन के आगमन से सुलतान आतंकित हो उठा। उसे उसके एक दरबारी साथी के साथ बन्दी बनाकर तहखाने में फेंक दिया गया। कुछ दिनों के बाद दोनों की गर्दन रेत दी गई।

इस घटना से सारे कुलीन मुसलमान आतंकित हो उठे। यहाँ कुलीन का अर्थ हिन्दू धन-सम्पत्ति की लूट-पाट से धनवान बने मुसलमान हैं, जिन्हें यह पता भी नहीं था कि कुलीनता किस चिड़िया का नाम है। हकीकत में ये जाँक और तर-भसी ही थे। भारत के हर एक मुस्लिम शासक और दरबारियों की भाँति मुहजबुद्दीन बहराम शाह के पास किराये के हत्यारों का एक काम गिरोह था। वे कुछ सिक्कों के लिए किसी भी आदमी की पीठ में छुरा घोंप सकते थे। बजीर निजामुल् मुल्क महजबुद्दीन भी इस्तिथारुद्दीन

के हत्याकाण्ड के समय घायल हुआ था और इसका बदला लेने के लिए वह कसमसा रहा था।

प्रायः इसी समय खुरासान और गजनी से आकर अफगानी मंगोल लाहौर पर टूट पड़े। दिल्ली का सुलतान लाहौरी गुर्गा मलिक काराकाश अकबकाकर सीधा दिल्ली भाग गया। दिसम्बर, १२४१ ई० में मंगोलों ने लाहौर पर अधिकार कर लिया। एक-एक मुसलमान की गर्दन रेत दी गई। उनकी स्त्रियाँ एवं बच्चे बन्दी बना लिये गये। फिर उनको आपस में बाँट लिया गया। लाहौर के मुसलमान एक जमाने से जुल्म ढा रहे थे। अल्लाह के रहमो-करम से उसका स्वाद अब उन्हें भी चखना पड़ा। आजकल मंगोली चीन से मुस्लिम-लाहौर का याराणा चल रहा है। शायद इतिहास अपनी कहानी फिर दुहराएगा। शायद लाहौर फिर एक बार लाल तलवार के लाल-लहू से लाल होगा क्योंकि कुचली-मसली, पंगु-अपंग और कटी-पिट्टी मानवता को मुसलमानों के हजार वर्षीय क्रूर-कर्मों का लेखा-जोखा लेना है।

कुछ दिन के सुंभी सुलतान दरवेशों और रखलों से सलाह लेते थे। बहराम शाह भी अयूब नामक एक फकीर के प्रभाव में था। वह फकीर तथाकथित कुतुबमीनार के समीप मिहिरपुर यानी मिहिरावली (महरोली) में रहता था। ऐसे फकीर प्रायः व्यभिचारी और षड्यन्त्रकारी होते थे। एक बार काजी शम्सुद्दीन मिहिर को उसे बन्दी बनाना पड़ा था। मगर स्वयं सुलतान उसके प्रभाव में था। फलतः हाथी के पैरों के नीचे काजी साहब का मलीदा बिखर गया।

उधर मुगलों को लाहौर मिला इधर सुलतान को विरोधी, फ़ालतू और षड्यन्त्रकारी दरबारियों से छुट्टी पाने का एक बहाना। उसने सभी को अपना-अपना गिरोह तैयार कर लाहौर जाने का आदेश दे दिया। मगर ये दरबारी सिंहासन और संसार से सुलतान को साफ़ करना अधिक पसन्द करते थे।

दिल्ली से सेना चली। लाहौर मार्ग पर व्यास नदी के किनारे डेरा डाला गया। यहाँ से बजीर निजामुल्-मुल्क ने दिल्ली सुलतान को धूर्तता से भरा एक खत लिखा कि साथ के सभी सेना-नायक, और दरबारी घुष्ट, अनुशासनहीन और उच्छृङ्खल हैं। मेरी इच्छानुसार इन्हें खत्म करने का अधिकार मुझे सौंपा जाय ताकि एक अनुशासित सेना मुगलों से लड़ सके।

मुस्लिम सुलतान, बजीर और दरबारी सभी एक ही घंटी के बड़े-बड़े थे— निर्दयी, निर्लज्ज और नराधम। इनके लिए दूसरे मानव का जीवन एक फलतू बीज थी। इसलिए सुलतान ने बजीर की इच्छानुसार लोगों की हत्या करने का अधिकार-पत्र भेज दिया।

दरबारियों को बढ़ाकर सुलतान को गद्दी से हटाने और उसकी हत्या करने के लिए बजीर कसमसा ही रहा था। उसने सभी दरबारियों और नायकों की बैठक बुलाई और उनके सामने सभी को मार डालने का अधिकार-पत्र रख दिया। बजीर के इस भायाबी रहस्योद्घाटन से सभी घन्न रह गये। उनके पैरों की जमीन खिसक गई। सभी आवेश में आ गये। उन्होंने सुलतान से प्रतिशोध लेने की सौगन्ध खा ली। तदनुसार मुगलों से लड़ने का विचार खटाई में पड़ गया और सुलतान की सेना सुलतान से बदला लेने दिल्ली के लिए चल पड़ी।

दिल्ली का घिराव हो गया। सुलतान के थोड़े बहुत अंग-रक्षकों और बचो-बूकी सेना के साथ तीव्र मीर-काट मच गई। इस दौरान हिन्दू सेत और खालिहान या तो लूट लिये गये या फिर जरूरत न होने पर जला दिए गये ताकि कहीं विरोधी दल उन्हें न हथिया ले।

मुसलमान संयुक्त हों या विभक्त, हिन्दुओं के लिए तो खतरे की घण्टी ही थे। संयुक्त होने पर हिन्दुओं को कुचलने का मिला-जुला प्रयास होता था। आपसी लड़ाई में अंशान्ति जहाँगीर और शाहजहाँ या अकबर और जहाँगीर में हुआ था, दोनों स्वार्थी दल लड़ाई जारी रखते परन्तु विनाश हिन्दुओं का ही होता था। विरोधी दल दाना-पानी और शरण न ले ले, दोनों ही स्वार्थी दल हिन्दुओं की खड़ी फसल जला देते थे और इस प्रकार मध्यकालीन मुस्लिम शासकों ने, संयुक्त और विभक्त दोनों ही अवस्थाओं में हिन्दुस्तान का सत्यानाश ही किया है। हजार वर्षों तक चलने वाले इन बूटे-अभिधानों से दिल्ली, आगरा, मथुरा, कन्नौज, बिदिशा, प्रयाग, उज्जैन, काशी, लाहौर और पेशावर आदि भारत के अनेक भव्य नगर धूल में मिल गये। अतएव दिल्ली पर चाहे हिन्दू शासक हों या मुसलमान, मुस्लिम आक्रमणकारियों ने बार-बार पीढ़ी-दर-पीढ़ी हिन्दुस्तान पर आक्रमण कर भारत का विध्वंस कर दिया। हिन्दुओं के घर चकनाचूर हो गए। उनकी बेटीयाँ बिल, कौन खा गये।

परिस्थिति सम्भीरतर होती गई। ऐसी परिस्थिति में लोण्ठों, चाप-लूसों, रखैलों, खोजों और नपुंसकों से घिरे सुलतान की नकेल किसी-न-किसी नौकर-चाकर के हाथ में ही होनी चाहिए। सुलतान मुइजुद्दीन बहराम शाह का सलाहकार भी फखरुद्दीन मुबारक शाह फरखी नामक एक दरी बिछाने वाला ही था। विद्रोही दरबारियों से समझौता न करने की सलाह उसने सुलतान को दी।

उधर सुलतानी शासन के विरोध में दिल्ली के कुछ मुसलमानों ने भी बगावत कर दी। उस समय तबक़ात-ए-नासिरी का लेखक मिनहज-अल्-सिराज तथाकथित जामा मस्जिद में नमाज़ पढ़ रहा था। गुलामों की सहायता से वह किसी-न-किसी प्रकार बचकर भाग निकला।

दिन बीतते गये। घेरा कसता गया। १२४३ ई० में विद्रोही तूफ़ान की भाँति दिल्ली में घुस आये। दरी बिछाने वाले की नृशंस हत्या कर दी गई। नौ दिन तक सुलतान को कैद रखा गया और फिर उसकी भी हत्या कर दी गई। भारत के प्रत्येक मुस्लिम शासन की भाँति सुलतान मुइजुद्दीन बहराम शाह का शासन भी कपट और कण्ट से भरा था। मगर यह कम समय तक ही रहा—सिर्फ २ वर्ष और ४५ दिन।

अलाउद्दीन

मुस्लिम शासक के जीवित रहने पर सारे राज्य में अव्यवस्था और अशान्ति तो बनी ही रहती थी, उसके मरने पर इसकी ली और तीव्र हो जाती थी क्योंकि तब गद्दी के लिए सभी लोग खुल्लम-खुल्ला तलवारें नंगी कर नाचने लगते थे। बहराम शाह की हत्या के बाद यह कहानी इतनी बार दुहराई गई है कि पढ़ते-पढ़ते जी ऊब जाता है।

अब एक तरक्की यापता उदृष्ट गुलाम बलबन ने किराये के द्विदोर-चियों से सारे शहर में अपनी सुलतानी का ऐलान करा दिया। मगर उसे कोई सहयोग नहीं मिला।

अन्तमश के पोते अलाउद्दीन को जेल से निकालकर गद्दी पर बैठाया गया। गद्दी का सम्भावित मुस्लिम दावेदार यदि किसी प्रकार जेल में जिन्दा रह गया, तो मानना पड़ेगा कि वह तक्रदीर का सिकन्दर था क्योंकि एक बार गद्दी पर बैठने के बाद सभी मुस्लिम शासक गद्दी के सभी सम्भा-

बित्त दावेदारों की हत्या कर देते थे या उनकी आँखें फोड़ देते थे। कहीं उज्जैन-कूट मचाकर बेकार हुंमामा न खड़ा कर दे, इसलिए सुलतान ने बलबन को सागौर, मण्डावर और अजमेर की जागीर दे दी। अपहृत जर और जमीन देकर बाकी दरबारियों का भी मुंह बन्द कर दिया गया।

वजीर बनकर निजामुल्-मुल्क महजबुद्दीन ने सारी सत्ता अपने हाथ में समेट ली। कोल, जिसे हम आज भ्रम से मलीगढ़ कहते हैं, वजीरे आजम की अपनी जागीर हो गई। नैतिकता के अभाव तथा लोभ और लालच की नपनपाती ज्वाला के चारों ओर असन्तोष का अलाव जल रहा था। दरबार में अपनी नाड़ी को चालू न देख असन्तुष्ट तुर्की दरबारियों ने आपस में साजिश की। ३० अक्टूबर, १२४२ ई० को उन्होंने निजामुल्-मुल्क की हत्या कर दी।

नये सुलतान अलाउद्दीन मसूद शाह बिन फ़िरोजशाह ने हिन्दुओं का संहार-कार्य जारी रक्खा। हिन्दू राज्यों पर कई बार घावे हुए। अपवित्र होकर मन्दिर मस्जिद बनने लगे। हिन्दू नारियों एवं वच्चों का अपहरण चालू रहा। हिन्दू सम्पत्ति की लूट-पाट में तेज़ी आ गई।

जिस समय विद्रोही दरबारियों ने बन्दीगृह खोजकर, अलाउद्दीन को बरामद कर सुलतान बनाया या उसी समय उसके दो चाचा नासिरुद्दीन और अलानुद्दीन भी मुक्त हो बाहर आये थे। स्वतन्त्रता की दो-चार साँस ही इन दोनों ने ली थी कि अलाउद्दीन ने सुलतान बनने के साथ ही इन्हें वापिस उसी तहख़ाने में घुट-घुटकर मरने के लिए भेज दिया।

दो वर्ष व्यतीत हो गये। मुस्लिम प्रजा अलाउद्दीन को सुलतान के रूप में देखने की अभ्यस्त हो गई। तब उसने अपने चाचाओं को मुक्त करके बहराच और कन्नौज का अपहृत हिन्दू क्षेत्र दे दिया।

आयः इसी समय भयंकर चण्डालों अपने हत्या-अभियान पर निकला हुआ था। मुस्लिम-कुशासन के कारण उत्तरी भारत में अव्यवस्था देखकर उसने एक वृत्तिशाली लुटेरी-बाहिनी बंगाल की हिन्दू राजधानी लखनौटी की लूटने भेज दी।

सुलतान अलाउद्दीन ने स्थानीय दुर्ग-अधिकारी तुघन खाँ की सहायता के लिए तयार खाँ के अधीन एक सेना भेजी। मगर चोर चोर मोसेरे भाई होते हैं। इस विदेशी सुलतान ने आक्रमणकारियों के साथ सन्धि कर ली

और उस दिन को एक महान् गौरवशाली दिन माना। कुछ भी हो, हर हालत में हिन्दू जन-धन को लुटना-पिटना था। बंबंर मुगलों और विदेशी मुस्लिम पाटों के बीच इनकी चटनी बन गई। इस चटनी को दोनों ने बड़ा स्वाद ले लेकर चाटा।

अब पश्चिम से एक दूसरी मुगल सेना उछल आ टकराई। परिस्थिति गम्भीर हो गई। अनेक दरबारी अपने रिश्तेदारों के साथ जेल में सड़ रहे थे। बाकी लोग मुगलों से दोस्ती निभाने पुरब गये हुए थे। अतः सुलतान अलाउद्दीन मसूद शाह को अपने हरम से बाहर निकलना पड़ा। उसे सेना तैयार करनी पड़ी। इसी बीच लूट-बटोरकर मुगल जा चुके थे।

हत्या और लूट, साजिश और कपट, नशेबाज़ी और बेध्या-गमन तथा अशिक्षा और अन्धविश्वास में पैदा होकर फलने-फूलने वाले सुलतानों की दोस्ती स्वाभाविक है, नीच लोगों से होगी। मिनहज-अस्-सिराज अपनी तबक़ात-ए-नासिरी में इसका नंगा चित्र पेश करता है। यह चित्र, आश्चर्य कि भारत के सारे मुस्लिम शासकों पर एकदम फ़िट बैठता है। वह बतलाते हैं—(पृष्ठ ३४५, ग्रन्थ २, इलियट एवं डाउसन) कि “सुलतान की सेना में बेकार लोगों का एक दल था। वे सुलतान के साथ उठते-बैठते थे। ये लोग सुलतान को बुरी राह पर ले गये। उसमें बुरी आदतें डाल दीं। उसमें अपने कुलीन लोगों को पकड़कर मार डालने की बुरी आदत पड़ गई। उसके सारे गुण (?) ख़त्म हो गये। वह लम्पटता, मोज-मस्ती और शिकार में डूब गया। सारे राज्य में असन्तोष छा गया। सरकारी काम अव्यवस्थित हो गये (यानी मुस्लिम दरबारियों को लूट में से हिस्सा मिलना बन्द हो गया)।” शाहजादों और दरबारियों ने मिलकर नासिरुद्दीन को निमन्त्रण भेजा। जून, १२४६ ई० में सुलतान अलाउद्दीन मसूद शाह गद्दी से नीचे घसीटे गये, बन्दी ख़ाने में पटके गये और हलाल कर दिए गये। इस प्रकार इनका शासन ४ वर्ष १ महीना और १ दिन का था। इसके बाद इनको अल्लाह के पास उसी तरह खून से पोतकर पार्सल किया गया जिस प्रकार उनके पूर्ववर्ती सुलतान हलाल हो अल्लाह के पास पहुँचे थे।

नासिरुद्दीन

अब बहराइच का मखक जागीरदार मृत गुलाम सुलतान अल्तमश का छोटा पुत्र नासिरुद्दीन भरे-कटे खूनी मुस्लिम सुलतानों के खून से लथपथ दिल्ली के हिन्दू राजसिंहासन पर आ बैठा।

"सुलतान-ए-मुअज्जम नासिरुद्दीन-बा-उद्-दीन महमूद" कण्टकापूर्ण रक्त-रंजित मुस्लिम गद्दी पर रविवार, १० जून, १२४६ ई० को आसीन हुआ। मगर सबसे मजेदार बात तो यह थी कि उसे बहराइच से दिल्ली तक दुर्गुल जोड़कर एक औरत की भाँति छिपकर आना पड़ा।

जैसा कि प्रत्येक मुस्लिम इतिहासकार की आदत थी, मिनहज-अस्-सिराज नासिरुद्दीन के शासन-वर्णन की बिसमिल्लाह बड़ाई करते हुए करता है। फिर उसके दुराचारों और अन्यायों का बखान करने बैठ जाता है। वह कहता है कि "सभी लोगों ने एक स्वर से इस उदार, गुणी और कुलीन शाहबादे की ताजपोशी की प्रशंसा की" "उसके भेद-भावहीन शासनकाल में हिन्दुस्तान का सारा हिस्सा खुश था" यानी मुस्लिम सुखी तो सब सुखी, चाहे दूसरे जहन्नुम की आग में जल ही क्यों न रहे हों।

आगे यही इतिहासकार लोगों को बतलाता है कि जब नासिरुद्दीन बहराइच में जागीरदार था तब उन्होंने "काफ़िरों (यानी हिन्दुस्तान के पुत्र हिन्दुओं) के साथ अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं।"

इन चापलूसों के झूठे-सच्चे वर्णन हमारे इतिहासों में ठूस-ठूसकर भरे गये हैं तथा उन लोगों के खूनी और दुराचारी कारनामों की तरफ़ से आँखें एकदम बन्द कर ली गई हैं।

नासिरुद्दीन ने २० वर्षों तक हिन्दुओं को चबाया था। वह भाग्यशाली था कि १२६६ ई० में अपनी सामान्य मौत मरा। नासिरुद्दीन के बाद बलबन उल्ल पर बैठा। यह हकीकत में एक क्रूर-पिशाच था और गुलाम-वंश का अन्तिम शासक भी। नासिरुद्दीन का समर्थी होने के साथ ही यह उसका सेनापति भी था। इसी बात से यह साबित हो जाता है कि नासिरुद्दीन को एक सीधा, चला, अच्छा, मामूम, और मितव्ययी शासक मानना सरासर बकवास है।

गद्दीनशीन होने के साथ ही नासिरुद्दीन की सेना ले सिन्धु भागना पड़ा। यहाँ मुगल गिरोह सारे क्षेत्रों को लूटकर मुसलमानों का हिस्सा मार

रहे थे। मगर या तो उन्होंने इसकी परवाह नहीं की या फिर मुगलों से भिड़ने की उनकी हिम्मत नहीं हुई। सुलतान की सेना लड़ने के बदले जेहलम तथा सिन्धु के समीपवर्ती क्षेत्रों को लूटने और लगान (?) वसूल करने में लग गई। सुलतान ने "अपने साजो-सामान और हाथियों के साथ (सोदा) चनाब नदी पर अपना पड़ाव डाल रक्खा था। (उनके सेनापति) उबुध खा अल्लाह के रहमोकरम से (?) जेहलम तथा जुद की पहाड़ियों को तबाह व बरबाद कर अनेक कोखरों (यानी हिन्दू जाति गवखरों) तथा बिद्रोही काफ़िरों को जहन्नुम रसीद कर रहे थे। इसके बाद उन्होंने सिन्धु के किनारे आगे बढ़कर आम-पास के सारे क्षेत्रों में तबाही फैला दी।"

बाद में मुस्लिम इतिहासकार मिनहज-अस्-सिराज हमें बतलाता है कि "अन्न आदि वस्तुओं के अभाव के कारण उन्हें वापिस लौटना पड़ा।" क्या इस बयान से यह स्पष्ट नहीं होता कि वीर हिन्दू गवखरों के सामने से उत्सुध खाँ को जान बचाकर भागना पड़ा था? वह सोदा के किनारे दौड़ता-भागता सुलतान नासिरुद्दीन के पड़ाव पर वापिस आ गया। यहाँ से वे दोनों दिल्ली भाग गये। "मार्ग में जालन्धर की पहाड़ियों के एक मन्दिर को मस्जिद बनाकर उन लोगों ने उसमें ईद-ए-अज़ा पढ़ी।"

दूसरे साल नासिरुद्दीन की सेना पानीपत क्षेत्र से लगान (?) लूटने आई। मगर मार खाकर और सब कुछ गँवाकर वापिस भाग आई। अब इस हार की लाज को ढकना था। नासिरुद्दीन की नज़र गंगा-यमुना क्षेत्र पर पड़ी। कन्नौज के समीप एक हिन्दू राज्य था। इसकी राजधानी नन्दन प्राचीरों से घिरी थी। नाक बचाने के लिए किसी बहाने की आवश्यकता थी ही नहीं। नर-भक्षी मुसलमानों का हर हिन्दू धीज पर टूट पड़ना एक स्वाभाविक बात थी। हिन्दू शक्ति को चकनाचूर करना उन लोगों का पहला और पवित्र कार्य था। इसके लिए माया, कपट, अत्याचार, यन्त्रणा, घूस और पाशविकता आदि सभी रास्ते अपनाए गये। घमासान युद्ध हुआ। खूब खून-खराबा हुआ। अन्त में तबक़ात-ए-नासिरी के अनुसार फरवरी, १२४८ ई० में नन्दन के राजा ने कुछ शर्तों के साथ समर्पण कर दिया यानी मुस्लिम सेना हारकर शान से भाग गई।

मगर मुस्लिम शासन में हिन्दू ज़र-ज़मीन को लूटना बन्द नहीं हो सकता था। अतएव नासिरुद्दीन की सेना करों की ओर बढ़ी। सेना का रुख

कुछ बिजोहात्मक हो चुका था। कहीं मुलतान सपेट में न आ जाए अतएव मुलतान ने अपना तम्बू समर-भूमि से दूर ही रखा। सेना की बागडोर कुर-थोगी मुस्लिम उलुघ खां के हाथ में थी।

श्रीमती मुस्लिम उल्लूख भाई के हाथ में थी।
इस पिताजी ने असुरक्षित गांवों और कस्बों में तबाही मचा दी। इस
स्थान का हिन्दू शासक दत्तात्री या मलाकी नामक एक राजपूत था। अपनी
बलिष्ठा के कारण असह्य मुस्लिम इतिहासकार ने इसके नाम को बिगाड़
दिया। यहाँ पर मुस्लिम आक्रमणकारियों ने अनेक हिन्दुओं को काटा, उनके
घरों को जूटा। हिन्दू नारियों और बालकों का हरण हुआ। वे पहले मुसल-
मान बने, फिर गुलाम।

मान बने, फिर गुलाम ।
मुलतान ने सोचा कि हिन्दुओं की यह लूट कुछ दिनों तक तो चलेगी ही । वह २० मई, १२४८ ई० को दिल्ली वापिस लौट आया । उसका एक भाई जलालुद्दीन इस लूट के भान में हिस्सा लेने के लिए उससे सगड़ पड़ा । इस सगड़ालू को दूर रखना जरूरी हो गया । मुस्लिम शासक ऐसी परिस्थिति को बड़ी खूबी से सम्भालते थे । उनकी यह आदत बड़ी घातक थी । इस आदत के अनुसार मुलतान नामिरुद्दीन ने जलालुद्दीन को सम्बल और बदायूं की जागीर दे दी । यह दूसरी बात थी कि वहाँ हिन्दू राजा का शासन और अधिकार था । मुस्लिम शासकों की इस घातक चाल ने आजकल के इतिहासकारों को भ्रमित कर दिया है । जो हिन्दू-क्षेत्र अपनी अधिकार सीमा से बाहर रहते थे, सुंदरे मुलतान उस हिन्दू-क्षेत्र को बड़ी दरियादिली से उपहार में सुंदरे दरबारियों को दे देते थे । इससे दुहरा लाभ होता था । एक तो सगड़ालू मुस्लिम दिल्ली में दूर हो जाता था और भाड़े के गुण्डों को लेकर हिन्दू लूट-मार में लीन हो जाता था । इस लूट का वह अकेला ही मालिक होता था । दूसरे, इस लूट-घाट में यदि वह मारा गया तो मुलतान को छुटकारा मिलता और उसका कांटा सदा के लिए साफ़ हो जाता और यदि वह अपने लूट-प्रयास में सफल होता तो मुस्लिम शासन क्षेत्र का विस्तार हो जाता । इस प्रकार सारा भारत धीरे-धीरे मुस्लिम शासन-क्षेत्र में समा गया । अकबर आदि मक्कार मुस्लिम शासकों के समय में भी ऐसा ही बड़ी तेजी से हुआ ।

इस प्रकार बदायूँ और सम्बल हिन्दू क्षेत्र होते हुए भी जलालुद्दीन के ही रहे। उन्हे हर किसी को लुटने का परवाना मिल गया। बड़ी शान से

जलान्दहीन ने इधर हिन्दू-क्षेत्र पर और रबला उधर हिन्दुओं ने उसकी पीठ पर डंडा बरसाना प्रारम्भ कर दिया। इस मार और प्रहार से वह इतना भयभीत हो गया कि “वह एकदम हताश और आतंकित होकर राकधानी भाग आया।” (पृष्ठ ३४७, प्रत्य २, इलियट एवं डाउसन)।

मुसलमानों की नजर में हिन्दुस्तान एक विशाल मुर्गोष्ठान था। हिन्दू लोग इस मुर्गोष्ठान की मुर्गियाँ और मुर्गे थे जो मुस्लिम दस्तरखान के लिए सिर्फ अण्डा ही नहीं देते थे बरन् उनका मुर्ग-मुसल्लम भी बनाया जाता था। अतएव उस शासन में प्रजा-पालन और प्रजा-पोषण योजनाओं की कोई जरूरत थी ही नहीं। लूटी हुई हिन्दू-सम्पत्ति मुसलमानों के पेट में पच जाती थी। अपहृत हिन्दू इस्लाम धर्म या मौत के पेट में चिलीन हो जाते थे क्योंकि बुद्ध के अहिंसा के रोग से दुर्बल भारत की पावन-शक्ति तो नष्ट हो चुकी थी।

ती महीने के बाद नासिरुद्दीन को पता लगा कि उसका खजाना खाली हो चुका है। मुस्लिम जेवनार की आग में हिन्दू जन-धन झोंकने के लिए उसे पुनः हिन्दू लूट की योजना बनानी पड़ी। कहीं मुस्लिम असन्तोष भड़क उठा तो ? इस बार उसने रणथम्भोर पर आक्रमण करने का विचार किया। मगर यह अभियान असफल हुआ। इस संग्राम में मुस्लिम नामक मलिक बहाउद्दीन ऐबक वीर राजपूतों द्वारा मारा गया।

तथाकथित काजी और मुल्लाओं की हालत भी दूसरों से अच्छी नहीं थी। इन काजियों और मुल्लाओं ने सबादा तो ओढ़ा था धार्मिकता का परन्तु बुराइयों और साजिशों के खून में ये अपनी अनोखी दाढ़ी भिंगोते और फिर बड़े प्रेम और प्यार से उसे सहलाते थे। अनेक बार इनकी साजिशें इन्हीं पर बरस पड़ती थीं। इमामुद्दीन शकूरकनी भी इन चालबाजियों में उलझा हुआ एक पाजी काजी था। इसे राज्य से निर्वासित कर दिया गया था। वह हिन्दू क्षेत्र में चला गया। बाद में नासिरुद्दीन का हुक्म हुआ और एक किराये के हत्यारे इमामुद्दीन रिहान ने उसकी हत्या कर दी।

उलुध खाँ अब दरबार में इतना प्रभावशाली हो गया कि सुलतान को अपनी बेटी का निकाह उसके बेटे से करना पड़ा ।

इहेज में इतना धन देना पड़ा कि खजाना फिर खाली हो गया। खाली खजाना भरने के लिए पुनः लूट-हत्या अभियान शुरू हुए। यमुना पार हिन्दू

हर रौंद जाने गये। दरबारी जी-हुजूरिये मिनहज-अस्-सिराज को भी इस हुराम के बाल का एक हिस्सा मिला। पाप की कमाई पाने-खाने लायक वह हुराम के बाल का एक हिस्सा मिला। पाप की कमाई पाने-खाने लायक वह था भी। बरना वह भावी लोगों के लिए एक सूठा इतिहास-कैसे लिख सकता था कि सभी मुस्लिम राजा, चाहे उनके कारनामे काले ही क्यों न हों, श्रेष्ठ गुणयुक्त देवी इंसान थे। इतिहास के भावी छात्रों को बर्गलाने का इनाम उसे मिला। उसे "१०० खर-भार (गधे का बोझ) का उपहार" मिला। लूट मचाने के लिए उसे कुछ हिन्दू गाँवों की जागीर भी मिली।

१२५० ई० में नासिरुद्दीन मुलतान पर अधिकार करने गया। मगर मुलत नायक शेर खाँ के हाथों पिटकर शान से वापिस भाग आया।

१२५० ई० में मलिक इजुद्दीन ने विद्रोह कर दिया। यह मुलतान में नियुक्त था। मुलतान नासिरुद्दीन को बड़ी अनिच्छा से अपना वार्षिक हिन्दू-हराम-अभियान छोड़ना पड़ा। नासिरुद्दीन नागौर खाना हो गया। वहाँ एक मोटी धूस देकर इजुद्दीन को मिलाया गया। इसके बाद ही मुगलों ने सिन्ध का उछ घेर लिया। मुलतान को विद्रोही इजुद्दीन से छुट्टी पाने का एक बहाना मिल गया। उछ के लुटेरे मुस्लिम रक्षक को सहायता भेजनी थी। मुलतान ने यह बार इजुद्दीन के सिर पर धोप दिया। भारी मूस्य चुकाकर उसकी मुलतान भक्ति खरीदी गई थी। उसका मुँह रुपये से बन्द था। इजुद्दीन इंकार न कर सका। इजुद्दीन बन्दी बना और उछ में मुगल शेरखाँ को समर्पित हो गया।

हिन्दुओं को लूटने में मुलतान ने अब अधिक स्वतन्त्रता महसूस की। वह उलुघ खाँ के साथ हिन्दू ग्वालियर की ओर बढ़ा। जिधर वह गया उधर के हिन्दू खेव हाहाकार करने लगे। हिन्दू घर और खेत लूट लिये गये। उनमें आग लगा दी गई। जहीरदेव नामक एक हिन्दू-नायक से उसका सामना भी हुआ। मिनहज-अस्-सिराज ने इस अभियान का बड़ा चलता बयान दिया है। इससे मालूम होता है कि नासिरुद्दीन को मायूस हो थोड़े-बहुत लूट के बाद से ही संतोष कर वापिस लौटना पड़ा।

उछ और मुलतान के मुगल लूटे शूल की माँति नासिरुद्दीन को चुभ रहे थे। वह इन दोनों नगरों पर अधिकार करने निकला। मगर इस बार सेना-पति उलुघ खाँ ने विद्रोह कर दिया। मुलतान को दिल्ली भागना पड़ा। उन्होंने उलुघ खाँ को दरबार से शिवाजिक की पहाड़ियों में निर्वासित कर

दिया। वहाँ के हिन्दुओं को अब दो पाटों के बीच में पिसना पड़ता था। कभी मुलतान उन्हें लूटते थे तो कभी विद्रोही उलुघ खाँ। मुस्लिम दरबार में ईर्ष्या और विरोध की आग भड़कती थी और हिन्दुस्तान के हिन्दुओं को जलाने वाली आग की लपट तेज हो जाती थी।

मुगल शेर खाँ और मुलतान नासिरुद्दीन के आपसी झगड़ों का लाभ हिन्दुओं ने उठाया। मुलतान और उछ के हिन्दुओं ने एक सेना संगठित की और शेर खाँ को सिन्ध के उस पार फेंक दिया।

१२४४ ई० में मुलतान नासिरुद्दीन ने बरदार और पिजोर के हिन्दू क्षेत्रों का सत्यानाश किया। उसके बाद वे गंगा-सिन्धु के मैदान में प्रविष्ट हो गये। वहाँ हिन्दुओं ने उनकी लुटेरी-सेना का डटकर सामना किया। मुलतान के सेनापति इस भिड़न्त में काम आये। पासा पलट गया। मुलतान क्रोध से जलने लगा। उसने आज्ञा दी कि कैवल नगर के एक-एक हिन्दू को इस प्रकार निर्दयता से काट-काटकर फेंक दिया जाय कि "अगर कोई नागरिक किसी प्रकार जिन्दा बचकर भाग निकले तो वह इस कारनामे को ताजिन्दगी न भूल सके।" इस खूनी काण्ड का उत्सव मनाने के लिए मुलतान ने वदायूँ के लिए कूच कर दिया। (वह) बड़े शान और शोकत के साथ वहाँ पहुँचा... (वहाँ) नौ दिन तक ठहरने के बाद (मुलतान) दिल्ली वापिस लौटा।

अब मुलतानी राज्य के पश्चिमोत्तर स्थान से विद्रोह का समाचार आया। असंजन खाँ, सनजन ऐबक, उलुघ खाँ और जलालुद्दीन ताल ठोंक रहे थे। मुलतान ने विद्रोह का दमन करने के लिए प्रस्थान किया। मगर हालात गम्भीर थे। उसने विद्रोही लोगों की सारी माँगें ज्यों-की-त्यों स्वीकार कर लीं और गर्दन झुकाए वापिस दिल्ली चला आया।

इधर मुलतान नासिरुद्दीन की विधवा माँ ने कटलघ खाँ से निकाह कर लिया। मांस खाने एवं विलास और व्यभिचार के बीच रहने के कारण मुस्लिम नारियों के लिए विधवा जीवन व्यतीत करना वास्तव में एक कठिन काम था। मगर मुलतान क्रोधित हो गया। उसने इस जोड़ी को दिल्ली से अवध भेज दिया।

पिछले खूनी मुस्लिम शासकों से नासिरुद्दीन किसी भी बात में कम नहीं था। मुलतान अपने एक सहायक कुतुबुद्दीन से किसी बात पर नाराज हो

किया। उसने उसे परबन्धित कर दिया और बन्दीगृह में डाल दिया और कुछ दिन के बाद उसकी गर्दन कटम कर दी।

नासिरुद्दीन के अद्वय 'कुलीनों' में भी जमीन और तरुत का झगड़ा चलता रहता था। वे एक-दूसरे की चाल पर नज़र रखते थे। किसी को परबन्धित कर देते थे। कोई हताल हो जाता था। यह रोज का किस्सा था। जब सोतेले बाप कटलख खां ने सुलतानी सत्ता को ठोकर मार दी। कटलख खां का दमन करने के लिए मलिक बक़म ख़वानी आगे आया और डेर हो का वह नम्बरी धुत था। वापिस आते समय वह हिन्दुओं को लूटता आया था ताकि दरबार में हार की बेइज्जती भी छिपा सके और लूट का माल देखकर अहिंसा भी गर्दन पर न झपटे। उस समय बिना लूट के सुलतान के पास जाने का जब दरबार में अपनी नाक कटवाना था।

सुलतान और सोतेले बाप की यह लड़ाई वर्षों चली। उनमें अवध, बहराच, बदायूं, फातिबर, करी, मानिकपुर और सतनौर आदि स्थानों पर लड़ाई हुई। सुलतान नासिरुद्दीन और बागी कटलख खां की उत्पाती मुस्लिम सेनाएँ हिन्दु घर और जमीन से खाना-दाना प्राप्त करती थीं, सन्तुष्ट होती थीं और उछल-उछलकर आपस में लड़ती थीं। ये जोंकों से भी गए गुजरें थे। सिर्फ हिन्दु लूट को चूसकर ही सन्तुष्ट नहीं होते थे। दोनों सेनाएँ घरों और खेतों को भी जला देती थीं। उन्हें डर था कि कहीं विरोधी दल को रहने के लिए घर और खाने के लिए अनाज न मिल जाय। निरह्व-अशिराब बतलाता है कि "उलुख खां की तलवार ने सारी पहाड़ियों का सरनाम कर दिया। वह पहाड़ियों की घाटियों को पारकर एक-दम भीतर शालमुर तक पहुँच गया। न तो किसी सुलतान ने कभी शालमुर पर अधिकार किया था, न कोई मुसलमान सेना अभी तक वहाँ पहुँची ही थी। मुसलमानों ने इसे पहली बार लूटा। चारों ओर तबाही फैला दी। उनकी अधिक संख्या में विरोधी हिन्दुओं को काटा गया कि उनकी संख्या गिनी नहीं जा सकती थी। और न उसका वर्णन ही किया जा सकता है।" (पृष्ठ ३२६, खण्ड २, इलियट एवं डाउसन)।

सुलतान की सेना से कटलख खां बचता हुआ इधर-उधर भागता रहा। दोनों के बीच में हिन्दु लूटे-पिटते रहे। अब वह समाना जा पहुँचा। यहाँ

का मुस्लिम अधिकारी सुलतान का विरोधी था। ऐसे एक होने से दोनों में गाढ़ी छानने लगी।

इस विरोध को दवाने के लिए उलुख खां नियुक्त था ही। वह सेना लेकर दिल्ली से चला। इसके कुछ ही दिन बाद दिल्ली के कुछ ऊँचे मुसलमानों ने दोनों विरोधियों को एक गुप्त पत्र भेजकर दिल्ली आने का न्योता भेज दिया। इन लोगों ने लिखा कि "आप लोगों के स्वागत में दिल्ली के दरवाजे खुले रहेंगे।"

सहयोग के इस आश्वासन से उत्साहित होकर दोनों बागियों ने दिल्ली के लिए कूच कर दिया। उन्होंने "यमुना तथा किलुवड़ी और शहर के बीच" अपना पड़ाव डाल दिया। (पृष्ठ ३५७) सुलतान एक कोने में दुबक-सा गया। उसकी सेना दूर थी। बागी उसे घेरे हुए थे। कुछ ले देकर कुछ बागियों को अपनी तरफ़ मिलाया गया। कोई और चारा था भी तो नहीं उसके पास।

१२५७-५८ ई० में एक मुगल सेना ने पुनः उछ और मुलतान पर चढ़ाई कर दी। सुलतान के कुछ बागी दरबारी भी मुगलों से जा मिले। मुगलों को खदेड़ने के लिए सुलतान ने प्रस्थान किया। मगर ऐसा प्रतीत होता है कि मुगलों से लड़ने की हिम्मत उसमें नहीं हुई।

उसका खजाना फिर खाली हो गया और हिन्दुओं को लूटना भी अनिवार्य हो गया। हराम का माल बटोरने बयाना, कोल और ग्वालियर को छाना गया। रणथम्भोर पर दूसरा प्रयास करने के लिए मलिकुन नवाब ऐबक के अधीन एक दूसरी लुटेरी मुस्लिम सेना भेजी गई। मुस्लिम लुटेरों की उपेक्षाकर रणथम्भोर अबतक अपना सिर स्वतन्त्रता से ऊँचा किए हुए था। खाली खजाने की हालत देख-देखकर सुलतान एकदम बीखलाए जा रहा था। इसी बीखलाहट में उसने अपने अधीनस्थ सभी मुस्लिम शासकों को नज़राना जल्दी भेजने का फरमान भेज दिया। फलतः बंगाल की लूट से लदे दो हाथी लखनौटी से चल पड़े।

१२६० ई० में दिल्ली की समीपवर्ती पहाड़ियों के राजपूत सरदारों ने दिल्ली स्वतन्त्र कराने की एक योजना बनाई। "मेवात के इन बागी (हिन्दु) निवासियों और उनके देव (हिन्दु-सरदार) को सजा देने के लिए" सुलतान ने उलुख खां को नियुक्त किया। थोड़ी-सी गाय-भेड़ों और कुछ घसुरावित

यहाँ की लूट बटोरकर सुलतान की पराजित सेना दुम हिलाती वापिस लौट आई। गुलामदियों में से मिनहज-अस्-सिराज ने इस पराजय का एकदम वर्णन किया है। उसने इन शब्दों में इस खतरनाक अस्पष्ट और धुंधला-भा वर्णन किया है। उसने इन शब्दों में इस खतरनाक अभियान का अन्त किया है कि "घाटियाँ और दरें साफ़ कर दिए गए, सबकुछ किले से लिये गए और इस्लाम के सिपाहियों की निर्दयी तलवारों की कुर धारों में असंख्य हिन्दू डूब गए।" सिर्फ़ भगवान् ही गिन सकता है कि कितने हिन्दुओं की हत्या इन मुस्लिम वर्ण-संकरों ने की।

किस प्रकार हिन्दू इतिहासकार धर्मकी में आए; किस प्रकार उन्होंने हर और भय से कुर भोगी मुस्लिम शासकों को अच्छे गुण वाले, उदार, भेदभाव से हीन, ईश्वर-भीरु धार्मिक-शासक के रूप में चित्रित किया, इसका एक उदाहरण देना है तो आप आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव की "दिल्ली के सुलतान" शीर्षक हिन्दी पुस्तक के पृष्ठ १२८ को पढ़ें।

श्रीवास्तव जी कपटी और झूठे मुस्लिम इतिहासकारों की लाइन में खड़े होकर बतलाते हैं कि नासिरुद्दीन एक सीधा-सादा, बुराईयों से दूर, सादगी से जीवन व्यतीत करने वाला तथा किसी को भी न सताने वाला सुलतान था। इस झूठे हिन्दू विचार-धारा का भण्डा-फोड़ करने के लिए हम आपके सामने मिनहज-अस्-सिराज की तबक़ात-ए-नासिरी के कुछ नमूने पेश करते हैं। नासिरुद्दीन के कारनामों का वर्णन करते हुए मिनहज-अस्-सिराज बतलाता है—

"(नासिरुद्दीन की सेना के सेनापति) उलुघ खाँ तथा कुछ अन्य दरबारी कुलीनों ने शाही सेना और अपने अनुयायियों के साथ एकाएक (हिमालय की) पहाड़ियों में एक अभियान चलाने का निर्णय किया... वे लोग अप्रत्याशित रूप से विरोधियों (यानी हिन्दुओं) पर टूट पड़े... सभी लोगों को तलवार से काटकर फेंक दिया गया... २० दिन तक सेना की टुकड़ियाँ पहाड़ियों में चारों ओर मँडराती रहीं... पहाड़ी लोगों के गांवों और आबादियों को चारों ओर से घेरकर बरबाद कर दिया गया... सभी निवासी चोर, डाकू और राहजनी करने वाले थे (प्रायः सभी मुस्लिम इतिहासकारों ने ये उपाधियाँ हिन्दू शासीनों को दी हैं)। उन सभी को (हिन्दुओं को) मार डाला गया। सिर काटकर लाने वाले सिपाहियों को एक सिर के लिए चाँदी का एक टंका इनाम मिलता था (मुसलमान कटे हिन्दू सिर के साथ-

साथ उसके घर की लूट भी लाते थे, इस लूट में से एक टंका मुसलमान सिपाही को दे दिया जाता था, तथा बाकी भाग कुलीनों, दरबारियों और सुलतान में बँट जाता था)। जिन्दा हिन्दू को पकड़कर लाने वाले सिपाही को दो टंका मिलता था (क्योंकि जिन्दा हिन्दू पहले मुसलमान बनता था, फिर गुलाम बनता था, उसके बाद खूनी मुस्लिम खंजर हिन्दुस्तान में गहरा घोंपने में सहायक भी होता था)। इनाम पाने के लालच में (मुस्लिम) सिपाही ऊँची-ऊँची पहाड़ियों पर चढ़ गए। घाटियों और दरों को उन्होंने छान मारा और कटे सिरों तथा बँधे लोगों को लाने लगे। खास तौर पर एक दल के अफ़ग़ान जिसमें तीन हजार घुड़सवार और पैदल थे... बहुत साहसी और हिम्मत वाले थे। वास्तव में, यदि देखा जाय, तो सेना के सारे कुलीनों, नायकों, तुर्कियों और ताजिकों ने बड़ी वीरता और बहादुरी दिखाई थी। उनके बेहतरीन कारनामे (यानी हिमालय की शान्त पहाड़ियों पर झोंपड़ियों में शान्ति से जीवन व्यतीत करने वाले हिन्दुओं पर अचानक झपटकर गर्दन तराश देने वाले बेहतरीन कारनामे) इतिहास में हमेशा जिन्दा रहेंगे... (अ) ऊँट पर भागने वाले हिन्दू दुश्मनों को उनके बन्धों और परिवारों के साथ पकड़ा गया। दुश्मनों के २५० नायक और सरदार बन्दी बनाए गये। पहाड़ी राणाओं तथा सिन्ध के राय के पास ५० हजार टंके मिले। इसे शाही खजाने में भेज दिया (हिन्दुओं की इस तबाही और बरबादी से सुलतान बड़ा प्रसन्न हुआ होगा)। अपने बहुत से नायकों एवं कुलीनों को लेकर वह (पिशाच उलुघ खाँ के) स्वागत में आया (क्योंकि वह एक ऐसा हिन्दू खजाना लूटकर लाया था जो इस बात का लाइसेन्स था कि लुटेरे मुस्लिम शासक और लुटेरे मुस्लिम दरबारी पाप और अपराध के कामुक और कुरिस्त जीवन में खुलकर कई दिन आराम से बिता सकते हैं)। राजधानी में दो दिन रहने के बाद दरबार फिर बहाँ गया... प्रतिशोध का सन्देश लेकर। हाथियों को तैयार किया गया। तुर्कों ने अपनी तीखी तलवारों पर सान चढ़ाई। शाही हुक्म पर बहुत लोग... हाथियों के पैरों के नीचे फेंक दिए गये। तेज तुर्कों ने हिन्दुओं के शरीरों के दो-दो टुकड़े कर डाले। तजरीबन १०० लोगों की मौत चमड़ी उधेड़ने वालों के हाथों हुई। सिर से पैर तक इनका चमड़ा छील दिया गया। फिर उनमें भूसा भरा गया। भूसों से भरी कुछ चमड़ियों को नगर के प्रत्येक दरवाजे पर टाँग दिया गया। होज-

रानी के वैदान तथा दिल्ली के दरवाजों ने ऐसे दण्ड की कभी कल्पना भी नहीं की होगी; न किसी ने ऐसी आतंककारी कहानी ही सुनी होगी (प्रायः सभी मुस्लिम इतिहासकारों ने अपने-अपने इतिहासों में ऐसे खूँखार और जंगली कारनामों का बयान किया है; साथ ही उन लोगों ने यह दावा भी किया है कि ऐसी बातें, ऐसी पीड़ाएँ, उनसे पहले किसी और सुलतान ने नहीं दी)।"

शान्त पहाड़ियों के इस निरुद्देश्य रक्तपात और पाशविक हत्याकाण्ड तथा लूट और बिम्बंत से उत्तेजित होकर हिन्दुओं ने भी बंसा ही बदला लिया। इस समाचार को सुनकर (सुलतान के सेनापति) उलुघ खाँ "पहाड़ियों की ओर तेजी से चल पड़ा और पुनः सिर उठाने वाले (हिन्दुओं) पर अकस्मात् झपटकर सभी को कैद कर लिया। इनकी संख्या बारह हजार थी। इनमें नर, नारी और बालक सभी थे। इन सारी घाटियों, पहाड़ियों और घिराबन्दियों को कुचल-मसलकर साफ़ कर दिया गया। इसमें लूट का माल भी बहुत मिला। इस्लाम की इस महान् विजय के लिए अस्ताह का लाख-लाख शुक है ...।"

इतिहास के छात्रों को यह नहीं बताया जाता कि मुस्लिम सुलतान शान्तिप्रिय हिन्दू-क्षेत्रों को अपने वार्षिक और मनमोजी आक्रमणों में इस-लिए लूटते थे, जिससे मुस्लिम लुटेरों और गुण्डों की सेना का भरण-पोषण हो सके; जिससे दरबार का कामुक और कुत्सित जीवन बेरोक-टोक चल सके। भारत के प्रत्येक मुस्लिम सुलतान और उनके पिछलग्गू गुर्गे अपनी रोटी-बोटी चलाने के लिए एक ही काम-धन्धा करते थे और वह काम-धन्धा था—हिन्दुओं की गर्दन काटकर सारी सम्पत्ति लूट लेना।

प्रसंगवश यह ध्यान देने की बात है कि सारे गुलाम खानदान का वर्णन करते हुए मिनहज-अस्-सिराज बार-बार दिल्ली के उन दरवाजों का वर्णन करता है, जिसे हम आज पुरानी दिल्ली कहते हैं। इसलिए मुगल सम्राट् शाहजहाँ कभी भी पुरानी दिल्ली का निर्माता नहीं हो सकता क्योंकि उसका जन्म मिनहज-अस्-सिराज के चार सौ वर्ष बाद हुआ था। दूसरे पृष्ठ (३८२, वही) पर मिनहज-अस्-सिराज हमें "शहर के किलुषड़ी और काड़ी-निवास स्थान" के बारे में भी बतलाता है। इसमें से पहला आज 'किलोकरी' और दूसरा हुमायूँ का मकबरा कहलाता है। हुमायूँ का मकबरा

एक प्राचीन हिन्दू राजमहल है। इसमें अनेक मुस्लिम सुलतानों ने निवास किया था। साथ ही हुमायूँ ने भी इसी में अपना डेरा डाला था। बाद में जब हुमायूँ की मृत्यु हुई तो शायद उसको इसी महल में गाड़ भी दिया गया। अतएव यह मानना एकदम गलत है कि जिसे हम आज हुमायूँ का मकबरा कहते हैं उसे हुमायूँ की मृत्यु के बाद बनवाया गया था।

(भदर इण्डिया, जून, १९६७)

बलबन

मध्यकालीन इतिहास का गुलाम-वंश मुहम्मद गौरी के कंधों पर चढ़-कर आया था, जिसने हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता में इस्लाम की कील ठोकी थी।

अन्तिम दोनों ही शासक, जो उस खानदान के हमेशा भूखे रहने वाले रक्त-पिशाच थे, २० वर्ष तक भारत में खून की नदियाँ बहाते रहे। अन्तिम मानव-शतान की उपाधि भी शतानी ही थी—“अल् खकानुल् मुअज्जम बहा उल् हुक्क बाउदीन उलुष खान बलबानुस् सुलतानी।”

इस्लामी हठधर्मों के तीव्र बुझार की उन्मादी अवस्था में, मरते-मरते भी, मुस्लिम गुलाम खानदान ने हिन्दुओं का कूलेआम लगातार और निर्बाध रूप से किया। इस खानदान का अन्तिम कुख्यात बूचड़ गियासुद्दीन बलबन था। बलबन के इस पक्ष पर प्रकाश डालते हुए महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष के पृष्ठ जी-१६१, भाग-१२, १६२२ के संस्करण में कहा गया है कि “बलबन का जीवन लड़ाई-झगड़े और दंगे-फसाद से भरा हुआ है। वह क्रूर मानव-हत्यारा था। दिल्ली के आसपास बार-बार उठने वाली विरोध की आवाज को दबाने के लिए उसने एक लाख मानवों की हत्या की। प्रत्येक शहर में मरौ-कटी लाशों का ढेर लग गया, जिसकी सङ्गन्ध से सारे वातावरण में असहनीय दुर्गन्ध व्याप्त हो गई थी।”

बलबन तुर्किस्तान की बलबारी का स्वाकन था। बचपन में ही कुछ मुगल लुटेरों ने उसे पकड़ लिया। इन्हीं मुगलों से उसने बलात्कार का पाठ पढ़ा, जिसका उपयोग उसने बाद में हिन्दुस्तान में लूट, बलात्कार और हत्या का चक्र चलाकर किया। बलबारी पर चलने वाले को गजनी के गुलामों के बाजार में ख्वाजा जमालुद्दीन नामक एक शोक गुलाम-व्यापारी के हाथ में

दिया गया। संसार के इतिहास में, गुलामों को बटोरकर, खिला-पिलाकर खूब मोटा-ताजा करके मुस्लिम शासकों के हाथों बेच देना मुस्लिम-युग में सबसे लाभदायक धन्धा था। इन गुलामों से, छोटे-मोटे बरेलू कार्यों के अलावा, गुदाभोग तथा अन्तर्धीय गुण्डागर्दी का कार्य भी लिया जाता था ताकि लूट, नरसंहार, विध्वंस और धर्म-परिवर्तन के सम्भों पर टिका मुस्लिम शासन फलता-फूलता रहे।

१२३२ ई० में अन्य गुलाम व्यवसायियों के साथ, ख्वाजा जमालुद्दीन बलबन आदि गुलामों को लेकर दिल्ली आया और उन सभी को मुस्लिम शासक अल्तमश के सामने क़तार में खड़ा कर दिया। भारत में अत्याचारी मुस्लिम शासन का शिकंजा मजबूत करने के लिए अल्तमश को गुण्डागर्दी में प्रवीण लोगों की जरूरत प्रचुर परिमाण में रहती थी। उसने सभी को ख़रीद लिया।

मध्ययुग में जमालुद्दीन जैसे गुलामों के व्यापारी और दलाल सारे पश्चिम एशिया में छाए हुए थे जो दुष्टों और गुण्डों का व्यवसाय बड़े घड़त्ले से चला रहे थे। अन्तर्धीय लूटमार करने वाले गिरोहपति के हाथों इन लोगों को भारी मुनाफ़े से बेचा जाता था।

बलबन अल्तमश का निजी-सहायक बनाया गया। सुलतान रकनुद्दीन के शासनकाल में उस गुलाम बलबन को इस्लाम के नाम पर हिन्दू क्षेत्र लूटने के लिए एक अभियान पर भेजा गया था। इसे बन्दी बनाकर इसके दुराचारों का दण्ड दिया गया। मगर स्वभाव से उदार होने के कारण हिन्दू लोगों ने इसकी कपटी कसमों पर विश्वास कर कि अब वह बुराई से तोबा करेगा और अच्छे मार्ग पर चलेगा, इसे मुक्त कर दिया। अगर इसको बन्दी करने वाले न्यायाधीश होते तो इस हत्यारे को इसके दुराचारों के अपराध में फाँसी पर लटका देते, उसकी मुक्ति की अपीलें भी बेकार होतीं और हजारों निर्दोष स्त्रियाँ और बच्चे इसके अत्याचारों का शिकार बन सिसक-सिसक कर मरने से बच जाते। मगर वे सिर्फ़ रहम दिल ही थे, न्यायाधीश नहीं।

जब अल्तमश की बेटी रज़िया ने गद्दी को हथियाया तब भी यह उसके शाही अंगरक्षक का काम करता रहा। अनेक बार औरतों के ऐसे निजी-सहायक उनके शीलहर्ता भी बन जाते थे। अपने काले कारनामों के कारण

बिख्यात बलबन घानी उलुघ खाँ अपने पद और स्थान के कारण जबान सुलताना रज़िया का शीतहता भी हो सकता है। रज़िया के शासन में ही उसकी पदोन्नति हुई और वह शाही अस्तबल का मुखिया बना दिया गया क्योंकि अपने पाशाबिक व्यवहार के कारण उसे पशुओं की देखभाल के योग्य समझा गया। उसकी पाशाबिकता के प्रमाण मिलने में देर भी नहीं थी। रज़िया को गद्दी से उतारने वाले बागी कुलीनों के समूह में वह मिल गया।

अपने विध्वंसात्मक षड्यन्त्रकारी स्वभाव के कारण उलुघ खाँ (बलबन) दरबार की षड्यन्त्र शृंखला का अनिवार्य अंग बन गया। रज़िया के परवर्ती शासक बहराम शाह को इसे संतुष्ट करने हेतु रेवाड़ी का क्षेत्र लूटमार करने को देना पड़ा। इसको अपना आधार बनाकर उलुघ खाँ ने अपने डाकू जीवन को बिसमिल्लाह की। उसने आक्रमण कर हांसी को भी दबोच लिया। उद्दण्ड और खूनी उलुघ खाँ (बलबन) ने अब सुलतानी पद पर अपनी नजर गड़ा दी। विद्रोह के पीछों के पनपने के लिए दरबार की कामुक और कपटी जमीन काफ़ी उपजाऊ थी। शासक-सुलतान को गद्दी से हटाने और उसकी हत्या करने के इच्छुक जहरीले दरबारियों के विद्रोही षड्यन्त्रों का मुख्य चक्का उलुघ खाँ (बलबन) ही रहता था।

रज़िया की मौति उसके भाई बहराम शाह को भी गद्दी से नीचे घसीटकर हलाल किया गया था। परवर्ती स्वाभाविक दंगे-फ़साद में सभी दरबारी गद्दी पर चढ़ बैठने के लिए घक्कम-घक्का करने लगे। घूर्त उलुघ खाँ ने अपनी सुलतानी का छिंदोरा भी पिटवा दिया। मगर अफ़सोस, उसे पर्याप्त साहो सहायता नहीं मिल सकी। उसे अलतमश के पोते अलाउद्दीन मसूद शाह के लिए रास्ता छोड़ना पड़ा। कठिनाई से उसने चार वर्ष ही शासन किया था कि उलुघ खाँ के षड्यन्त्रों ने उसकी गद्दी उलट दी और उसका ख़ात्मा कर दिया।

एक बार फिर बलबन ने गद्दी पर बैठने का प्रयास किया मगर असफल रहा। ख़ाली गद्दी के सामूहिक रॉक-एण्ड-रॉल ने उसके दावे को एक पीढ़ी पीछे धकेल दिया। अलतमश के पोते की हत्या के बाद अलतमश का बेटा नासिरुद्दीन गद्दी पर बैठा।

नासिरुद्दीन ने २० वर्ष तक आतंक फैलाया। उलुघ खाँ (बलबन) उसका सेनापति था। २० वर्ष तक नासिरुद्दीन की सेना के सेनापति की

हेसियत से तथा उसके बाद २० वर्ष तक अपनी सुलतानी हेसियत से बलबन (उलुघ खाँ) ने हिन्दू भारत को क्रयामत की विमाल कड़ाही में उबाल डाला। फलते-फूलते हिन्दू नगर और ग्राम घायल और मृत हिन्दू शरीरों को गोद में लेकर जलते खण्डहरों में बदल गए।

इब्न बतूता और इमाभी जैसे इतिहासकार सेनापति उलुघ खाँ (बलबन) पर जहर देकर अपने सुलतान नासिरुद्दीन की हत्या करने का आरोप लगाते हैं। यह आरोप, सम्भव है कि सत्य हो क्योंकि हिन्दू खून की नदी में तैरती इस खूंखार गद्दी पर बैठने के लिए बलबन एकदम बिलबिला रहा था। रज़िया, उसके भाई मुइजुद्दीन बहराम शाह और अलतमश के पोते अलाउद्दीन मसूद शाह की हत्याओं में इसने हिस्सा लिया था। इसी बीच उसने एक बार घूर्तता से अपनी सुलतानी का छिंदोरा भी पिटवा दिया था। सुलतान नासिरुद्दीन से उसने बशावत भी की थी। इन सब परिस्थितियों पर विचार करने से यह स्वाभाविक प्रतीत होता है कि बलबन अल्लाह पर इस बात के लिए क्रोधित हो जाय कि वह नासिरुद्दीन को न जहन्नुम भेज रहा है, न जन्नत ही बुला रहा है। नासिरुद्दीन की मृत्यु १२६५ से १२६६ ई० के बीच हुई थी। अतएव यह स्वाभाविक ही है कि विद्रोही और महत्वाकांक्षी उलुघ खाँ नासिरुद्दीन को जहर दे दे।

नासिरुद्दीन पुत्रहीन था। उसके साथ ही अलतमश का वंश ख़त्म हो गया। मगर दिल्ली के अपहृत राजसिंहासन पर अभी भी एक गुलाम जमा हुआ था।

इतिहासकार बरनी लिखता है—“नासिरुद्दीन के शासन के अन्त के साथ ही दिल्ली की सुलतानियत ने अपना सम्मान खो दिया। प्रजा सुलतानी शासन का विश्वास खो बैठी और उसका कोई भी भय प्रजा में नहीं रहा। किसी भी राज्य की सफलता और महानता का स्रोत है—कानून का भय और कुशल प्रबन्ध। ये दोनों ही नष्ट हो रहे थे और सारा राज्य कष्ट एवं अशान्ति से कुलमुला रहा था।”

बलबन के शासन ने उस कष्ट और अशान्ति को घनीभूत कर दिया। कुछ चापलूस मुस्लिम इतिहासकारों एवं अदूरदर्शी हिन्दू सहयोगियों ने बलबन द्वारा स्वीकृत और प्रयुक्त शासन की, कुछ काल्पनिक आघारों पर उसे सुदृढ़ और सफल शासन मानकर, ख़ूब मक्खन-मालिश की है। मगर

बलबन बीसे फूर बीबी में विवेक या समुन्नत मानवीय गुणों को खोजना वैज्ञानिक दृष्टि का शिवालिङ्ग ही कहा जाएगा। "दिल्ली सुलतानेट" नामक अपनी पुस्तक के पृष्ठ १३६ पर डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव बिला ज़िन्दा और बिचारे आँसू मून्द, तगाड़ा बजा बलबन की प्रशंसा में गला फाड़-फाड़कर तरपना देखते हैं। श्रीवास्तवजी ने व्यक्तिचारी और शराबी बलबन को तगा-बन्दी करने का श्रेय दिया है, जिसे पढ़कर महात्मा गांधी की शर्म से जमीन में घँस जाएँगे। ये आशीर्वादीलाल न तो इतिहास के आशीर्वाद हैं न बिडला के। वहाँ तक कि वे देश के आशीर्वाद भी नहीं हैं।

अनेक बिडोहों का नेतृत्व करने वाला तथा अनेक सुलतानों की हत्याओं में सक्रिय भाग लेने वाला बलबन अपनी साबंभौमिकता को अछूता रखने के लिए बहुत उत्तुक था। तुर्की दरबारियों का एक दल 'सर्वशक्तिशाली चालीस' कहलाता था। सुलतानी राज्य में उन्हीं की तूती बोलती थी। असल में वे ही लोग सुलतान बनाने वाले या बिगाड़ने वाले थे। नाममात्र का सुलतान इनके हाथों का खिलौना होता था। ये सर्वशक्तिशाली तुर्की दरबारी पाप की अच्छी फ़सल देने वाली जागीरों को अपने अधिकार में करके हिन्दू सेवों पर आक्रमण कर हिन्दू सम्पत्ति को लूटते थे, तथा स्त्रियों और बच्चों का अपहरण कर उन्हें तरह-तरह की यातनाएँ देकर मुसलमान और फिर गुलाम बनाते थे। ये चालीसों दरबारी सुलतान अलतमश के धुनिन्दा गुलाम थे। अलतमश के बाद वे सर्वशक्तिमान बन गये।

इनके जहरीले दाँत तोड़ने के लिए बलबन ने अनेक उपायों का सहारा लिया। शक्ति का ईर्ष्यालु सन्तुलन बनाए रखने के लिए बलबन ने कुछ छोटे दरबारियों को ऊँची जागीरें दे दीं। उस गुट के एक सदस्य मलिक बकबक की पीठ पर, जो बदार्थ का जागीरदार था, एक काल्पनिक अपराध के लिए इतने कोड़े बरसाए गये कि वह मर गया। इसी आरोप पर अयोध्या के शासक हैबत खाँ की पीठ पर ५०० कोड़े बरसाए गये और उसे गुलाम के रूप में एक मुस्लिम विधवा को उपहार में दे दिया गया। शराब के नशे में हैबत खाँ ने इसके पति को मार डाला था। बाद में हैबत खाँ ने हिन्दुओं से लूटी धन-राशि में से २०,००० टंके मुस्लिम विधवा को देकर अपनी स्वतन्त्रता तो खरीदी मगर मारे शर्म के वह जीवन भर अपने घर में ही मुँह छिपाए पड़ा रहा। यह भी हो सकता है कि उसे घर में नज़रबन्द कर

दिया गया हो। बंगाल के मुस्लिम शासक तुघ़लिन खाँ से हारे और भागे अमीन खाँ को खत्म कर दिया गया तथा उसकी सड़ी हुई लाश पवित्र जयोध्या के दरवाजे पर लटका दी गई। भटिण्डा, भाटनेर, समाना तथा सुताम का शासक शेर खाँ शक्तिमान-चालीस का नेता था। इसके अतिरिक्त वह बलबन का रिश्तेदार भी था। बलबन ने उसे जहर देकर मार डाला क्योंकि शेर खाँ महत्वाकांक्षी ही नहीं, प्रभावशाली भी था। बलबन को डर था कि कहीं वह गद्दी न छीन ले।

इस प्रकार पाशविक और बर्बर कर्मों द्वारा बलबन ने अपहृत सुलतानी को सिर्फ़ अपने लिए सुरक्षित कर लिया।

अपने मायावी और षड्यन्त्रकारी स्वभाव के कारण बलबन ने अपने महल से लेकर दूर तक के झोंपड़ों तक जासूसों का जाल बिछा दिया। हिन्दू लूट का बड़ा भाग वह इस पीठ में छूरे धोपने वाले दल पर खर्च करता था। बदार्थ के एक वेतनभोगी गुर्गे ने जब मलिक बकबक के विरोध में अपनी जवान नहीं खोली तो बलबन की आज्ञा से उसे सता-सताकर मार दिया गया तथा उसकी लाश बदार्थ के द्वार पर टाँग दी गई।

दिल्ली के मुस्लिम सुलतान शायद ही कभी अपने कर्मचारियों को वेतन देते थे। मुस्लिम सुलतान और उनके इस्लामी कर्मचारी हिन्दुओं की लूट से ही अपना पेट पालते थे। दरबारियों को छीना-झपटी हिन्दू-सेवों की जागीरें मिली हुई थीं। इसे वे अपनी इच्छानुसार दुहते थे, हरजाना वसूल करते थे या सब कुछ नोच लेते थे। छोटे तबकों के सिपाही आवश्यकतानुसार समय-समय पर हिन्दू घरों और खेतों पर झपटते और अपना खर्चा चलाते थे। इस लूट के माल में एक हिस्सा सुलतान का भी होता था, जिससे उसका खर्च चलता था।

बलबन ने इमादुल् मुल्क को अपना सिपहसालार बनाया। यह ध्यान देने की बात है कि हिन्दुओं की स्वतन्त्रता का प्रयास और विरोध इतना तगड़ा होता था कि सारे गुलाम सुलतानों को बार-बार उन हिन्दू-सेवों पर काबू पाकर आतंक द्वारा अपनी स्थिति मजबूत करते रहना पड़ता था, जिसको उनके लुटेरे मालिक गौरी ने जीता या रौंदा था। बलबन को भी जीवन भर यही करना पड़ा।

यहाँ तक कि इतिहास के 'आशीर्वाद' (?) डॉक्टर आशीर्वादीलाल

बीबास्तब को भी अपनी पुस्तक के पृष्ठ १४० पर स्वीकार करना पड़ा कि—“देश के अधिकांश भागों में हमारे देशवासी तुर्कों शासन के जुए को उतारकर तुर्कों अफ़ग़ानों और सिपाहियों को खदेड़ देते थे। वे (यानी हिन्दू) तुर्क-अधिकृत क्षेत्रों को लूटकर बरबाद कर देते थे ताकि कुछ अन्न आदि न बचे और तुर्की लोगों को कुछ भी भू-कर प्राप्त न हो सके। दोआब और अवध के क्षेत्रों में ऐसा विरोध (स्वतन्त्रता के लिए) बराबर होता रहता था। कटिहार (यानी वर्तमान रोहिलखंड) में सुलतान के सिपाही कुछ भी कर वसूल न कर सके। राजपूतों के विरोध से सारा आवागमन असुरक्षित हो गया था। बदायूँ, अमरोहा, पाटियाली, और काम्पिल राज-पूती विरोधों के केन्द्र थे। यहाँ वे तुर्कों को प्रतिशोधात्मक सजाएँ देते थे, किसानों को खेत जोतने से रोकते थे। और राहगीरों को लूटकर अपने छिपे स्थानों में लौट जाते थे। वे प्रायः रोज़ ही दिल्ली के निवासियों (मुसलमानों) को लूटते रहते थे। इन्हीं आक्रमणों के डर से दोपहर की नमाज़ के बाद दिल्ली के दरवाजे बन्द कर दिए जाते थे। बंगाल, बिहार और राजस्थान आदि दूर के स्थानों में परिस्थिति और भी बदतर थी। उस युग में हमारे देशभक्त नेताओं ने (जैसे की तैसा के अनुसार) लूट और विनाश की ही युद्ध-कला अपनाई, जिसके चलते तुर्क (हमारे) देश में अपनी शक्ति को ठोस नहीं कर सके।”

राजपूतों के आक्रमण से भयभीत होकर बलबन ने दिल्ली के चारों ओर दुर्गों और छाड़ियों को निर्दयतापूर्वक कटवाकर साफ़ करा दिया। इसी कारण दिल्ली आज रेत से भरी बंजर जमीन हो गई है। डॉ० बीबास्तब ग़लती पर हैं कि उसने दिल्ली के ग्रामीण क्षेत्रों में चार दुर्ग बनवाए थे। चापलूस मुस्लिम इतिहासकारों ने भूतपूर्व दुर्गों, यहाँ तक कि अस्तित्वहीन दुर्गों को भी अपने-अपने स्वामियों द्वारा बनवाया बताया है। बनावा तो दूर रहा इन मुस्लिम आक्रमणकारियों ने अव्य प्राचीरों, दुर्गों और महलों की बड़ तक खोद डाली, जिससे कि इनकी आड़ में वीर राज-पूत, लालची और सुटेरे मुस्लिम शासन के विरोध में अपना स्वातन्त्र्य-संग्राम संगठित न कर सकें।

एक वर्ष तक दिल्ली को बरबाद करने के बाद, अपने शासन के दूसरे वर्ष बलबन ने दोआब और अवध की ओर अपनी कुल्हाड़ी घुमाई। सारे

क्षेत्र को कई भागों में विभक्त कर उसने प्रत्येक भाग के लिए एक-एक सैन्य-टुकड़ी नियुक्त कर दी। उसने छाड़ियों, हिन्दू सरदारों और नागरिकों को काट फेंकने का आदेश दे दिया। धर्मान्ध मुसलमानों को चुन-चुनकर इन सैन्य-टुकड़ियों में भरा गया था। इन लोगों को बार-बार तोते की तरह रटा-रटाकर विश्वास दिलाया गया था कि हिन्दुओं को हलाल करना सबसे पहला धार्मिक कार्य है और इस्लामी जन्नत को प्राप्त करने के लिए हिन्दुओं की स्त्रियों से बलात्कार कर उनके बच्चों का अपहरण करना एकदम जरूरी है।

इस्लामी बहिष्त की प्राप्ति की आकांक्षा से, सारी लूट सिर पर लाद, हिन्दू खून की नदियों में तैरते हुए बलबन के दुराचारी सिपाही बे-अगाम लूट और बलात्कार के खूनी कारनामों को अंजाम देते हुए पवित्र गंगा, यमुना और अवध के चारों ओर पागलों की तरह विचरण करने लगे। भोजपुरी, पाटियाली, काम्पिल और जलाली की सैन्य-टुकड़ियों का संचालन अहं-बर्बर अफ़ग़ान कर रहे थे।

बलबन स्वयं कटिहार की ओर बढ़ा। इस्लामी जन्नत पाने के उपाय में वह प्रत्येक नगर और ग्राम के घरों को जला, भवनों को गिरा, खड़ी फ़सलों को रौंद, हर आदमी की हत्या करने लगा, हर स्त्री एवं बच्चे को गुलाम बनाने लगा। सारे क्षेत्रों में इस हत्याकाण्ड से क्षत-विक्षत शरीर पड़े सड़-गल रहे थे। इतिहासकार बरनी कहता है कि इस भयकारी नाटक का ऐसा आतंक विद्रोही हिन्दुओं के दिल पर बैठ गया कि हमेशा-हमेशा के लिए उनका साहस टूट गया। अगर सभी हिन्दू पुरुषों को मारकर उनकी स्त्रियों एवं बच्चों को मुसलमान बनाने के लिए बटोर लिया गया हो तो उस क्षेत्र में हिन्दू-विरोध जीवित ही कैसे रह सकता है।

यह नहीं सोचना चाहिए कि यह तबाही और बरबादी सिर्फ बलबन की ही खास खूबी है। प्रत्येक मुस्लिम शासक ने, चाहे वह दिल्ली का शासक रहा हो या अन्य नगरों का, या वह मध्ययुग का मामूली मुस्लिम सरदार रहा हो, ऐसे ही काले कारनामों से अपना मुँह काला किया है। कितने दुःख की बात है कि ऐसे खूनी और खतरनाक कारनामों का ब्योरेवार लेखा-जोखा होने के बावजूद भी भारतीय इतिहास ने मुस्लिम शासन को प्रशंसा की चादर से ढक रखा है। जागरूक अध्ययन द्वारा इस मायावी चादर को

सिर्फ बीच घर देने से कुबली-मसली राजों का उनका बर्बर काला कार-
नामा एकदम नंगा होकर जनता के सामने आ जाएगा।

बुन्देलखण्ड एवं राजपूताना में भी बलबन ने ऐसे कुबल-मसल अभियान
चलाने का प्रयास किया। अगर वहाँ की जनता बलबन के इस खूनी नाच
को देखकर जाग चुकी थी। उन खेतों को अपनी बर्बर चालों से पूर्ण बरबाद
कर सके, इससे पूर्व ही उन लोगों ने उसकी चाल को विफल कर दिया।

बलबन शासन के प्रथम वर्ष में बंगाल के शासक ने उसके अधीन होने
का नाटक खेला था। अब इसने बलबन से विद्रोह कर दिया। समय भी
उसने अच्छा चुना था। इधर मुगलों ने बलबन के राज्य के पश्चिमी छोर
सिन्ध पर चढ़ाई की उधर पूरब में उसने विद्रोह की तलवार चमका दी।
समय था १२७६ ई०। तुघिन खाँ ने अपने को राजा घोषित कर सिक्कों
पर अपना नाम खुदवा दिया। बलबन ने अवध शासक अमीन खाँ को इसका
विद्रोह दबाने की आज्ञा दी। जब अमीन खाँ हारकर वापिस आया तो उसने
उसे मारकर उसकी लाश को अयोध्या के द्वार पर लटकवा दिया।

बलबन ने बंगाल में दूसरी सेना भेजी। वह भी हारकर भाग आई।
तीसरी सेना भी गृह लटकाए वापिस आ गई। तीन बार विजयी होने वाले
तुघिन खाँ की शक्ति का अन्दाजा लगाकर बलबन ने स्वयं सैन्य-संचालन
का विचार किया। उसने दो लाख सैनिकों को एकत्र किया। साथ में उसका
पुत्र बुघ खाँ भी था। जब बलबन ने लखनौटी के समीप डेरा डाला तो
तुघिन खाँ बंगाल के भीतर चला गया। बलबन उसे चारों ओर खदेड़ता
रहा। अन्त में तुघिन खाँ को ढाका में पकड़कर हाजी नगर लाकर मार
दिया गया।

लखनौटी वापिस पहुँचकर बलबन ने तुघिन खाँ के सहयोगियों से
मर्चकर बदला लिया। शहर के बीच में दो मील लम्बे बाजार की सड़क के
दोनों ओर इन लोगों को शूल की नोक में भोंककर, शूल का दूसरा हिस्सा
जमीन में गाड़ दिया। शूल में भुँकी, सूली पर चढ़ी और अघर में लटकी
लाशों की बन्दनवार-सी रेंघ गई। सड़क के दोनों ओर खड़े लैम्प-पोस्टों-सा
दृश्य हो गया। अगर इस बन्दनवार और लैम्प-पोस्टों से सुगन्ध और प्रकाश
नहीं सड़ान्ध निकलती तो। इस खौफनाक दृश्य को देखकर ही कुछ लोग
बेहोश हो जमीन पर गिर गये। जो देखकर सिर्फ बदहवास ही हुए, बेहोश

नहीं हुए वे सड़ान्ध से बकराकर मूर्च्छित हो गए। बरनी कहता है—

“इससे पहले लोगों ने ऐसा खौफनाक दृश्य कभी भी नहीं देखा था।” अपने
स्वाभियों के शासनकाल का वर्णन करते समय मुस्लिम इतिहासकार ऐसे ही
खौफनाक कारनामों का वर्णन करते हैं। साथ ही वे यह भी लिखते हैं कि
ऐसा खौफनाक कारनामा उससे पहले किसी ने भी करके नहीं दिखाया था।
उसपर यह तुरा भी वे इतिहासकार जोड़ते गये हैं कि उनके स्वामी न्यायी,
दयालु और बुद्धिमान थे।

अब बलबन ने अपने पुत्र बुघ खाँ को बंगाल का शासन भार दे दिया।
साथ ही उसने बेटे को यह धमकी भी दी कि अगर वह कभी दिल्ली के
सुलतान (यानी बलबन) से विद्रोह करेगा तो उसे अपने सहयोगियों तथा
उनकी सारी स्त्रियों और बच्चों के साथ जलाकर राख कर दिया जाएगा।
इससे स्पष्ट होता है कि उसके पुत्र को भी बलबन से प्यार और भक्ति नहीं
थी। यह बात सिर्फ बलबन के परिवार तक ही सीमित नहीं है। यह बात
सारे मध्यकालीन मुस्लिम शासकों और दरबारियों पर समान रूप से लागू
होती है। यह एक शाश्वत नियम है।

बंगाल में आतंक फैलाकर बलबन दिल्ली लौट आया और लगा मृत
तुघिन खाँ से सहानुभूति रखने वाले लोगों को अपने दरबारियों के बीच
खोजने। जिसने जरा-सी भी संवेदना प्रकट की वही पकड़ लिया गया।
इन लोगों को उसने कई भागों में बाँटा और हर विभाग के लिए अलग-
अलग दण्ड की व्यवस्था की। एक काजी के बीच में पड़ने से उसने इन
दण्डों की क्रूरता कुछ कम कर दी। फिर भी सैकड़ों समाप्त हो गए और
बाक़ी बन्दी-खाने में बन्द कर दिए गये। मुस्लिम अत्याचार के इस हैजे से
अन्य अच्छे हिन्दू क्षेत्र भी बरबाद हो जाते अगर मंगोल आक्रमणकारियों
की नंगी तलवार बलबन-राज्य के पश्चिमी छोर पर लटकती न होती।
लाहौर तक भारत का उत्तरी क्षेत्र मुस्लिम हाथों से निकलकर मंगोलों के
हाथों में चला गया। दिल्ली सुलतान की सुलतानी सुलतान और सिन्ध तक
फैली हुई थी। यह धारणा एकदम निराधार है कि उसने उन खेतों में
मंगोलों का बढ़ना रोकने के लिए दुर्गों का निर्माण किया था। भूतपूर्व राज-
पूत दुर्गों में ही उसने अपने सैनिकों को तैनात कर दिया था। पश्चिमी
सीमा का शासन प्रबन्ध बलबन के एक सम्बन्धी शेर खाँ के अधीन था। शेर

खाँ का शातक और अत्याचार बलबन के बराबर ही था। गक़सर हिन्दुओं और मुग़लों के निवास-स्थानों को इसने जला डाला था और जो हाथ में पड़ा उसकी गर्दन मरोड़ डाली थी। केर खाँ के बढ़ते प्रभाव से डरकर बलबन ने उसे १२७० ई० में जहर देकर मार डाला। इससे स्पष्ट है कि बलबन न कमजोर सेनानायक को देख सकता था न शक्तिशाली सेनानायक को।

सीमा-क्षेत्र को बलबन ने दो भागों में बाँट दिया। सुनाम और समाना बाला भाग उसने अपने छोटे पुत्र बुग़ खाँ को दे दिया और मुलतान तथा सिंध अपने बड़े बेटे-मुहम्मद को।

दो फारसी कवि थे—अमीर खुसरो और अमीर हसन। मुहम्मद के संरक्षण में ये दोनों लूट का हिन्दू माल खा-खाकर मोटे हो रहे थे। मुहम्मद ने एक दूसरे फारसी कवि शेख सादी को भी अपने साथ रहकर हिन्दू माल पर मस्त रहने के लिए आमंत्रित किया। मगर अत्यधिक वृद्ध होने के कारण शेख सादी ने इस न्यौते को स्वीकार नहीं किया।

मुहम्मद के विरोध के बावजूद मंगोल बलबन के राज्य पर आक्रमण करते रहे। एक बार तो उन लोगों ने सतलज नदी पार कर ली थी मगर मुहम्मद और बुग़ खाँ की संयुक्त सेना के दबाव के कारण उन्हें पीछे हटना पड़ा।

१२८६ ई० में मंगोल एक बड़ी सेना लेकर आए। परवर्ती संग्राम में मुहम्मद मारा गया। अब बलबन ८० वर्ष का हो चुका था। पुत्र की मृत्यु से उसका हृदय शोक सन्तप्त हो उठा। समाप्त तेज और झुकी कमर होने के उपरान्त भी किसी तरह उसने एक सेना एकत्रित की और मुग़लों के विरुद्ध भेजा। लाहौर पर पुनः कब्ज़ा तो हुआ मगर उसके उत्तर का सारा क्षेत्र मंगोलों के अधिकार में ही रहा।

बड़े पुत्र की मृत्यु से सन्तप्त बलबन को एक दूसरा रोग लग गया। जिन साजों को उसने सताया, भोगा और मारा था उनकी भयावनी यादों और उनके प्रेतों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। अपने नारकीय जीवन के अन्तिम कुछ महीनों में वह सोते-सोते ही एकाएक बड़े जोरों से प्रलाप करने, गला फाड़कर चीख उठने या दहाड़ें मार-मारकर रोने लगता था।

अपने अन्त को समीप जानकर उसने अपने छोटे पुत्र बुग़ खाँ को अपने

पास ही रखवा। मगर क्या एक शीतान लुटेरे और उसकी सन्तान में कभी पितृ-भक्ति और सन्तति स्नेह बन सकता है? बड़े होने पर क्या एक पशु का एक बेटा अपने माँ-बाप की चिन्ता करता है? मुस्लिम शासकों एवं दरबारियों का पारिवारिक सम्बन्ध बस इसी प्रकार का था। इस प्रकार के प्रलापों एवं दुःस्वप्नों के बीच अपने पिता को छोड़कर बुग़ खाँ लखनौटी बंगाल चला गया। बुग़ खाँ की खानगी को सुनकर बलबन ने अपने पोते और मुहम्मद के बेटे कैखूसरू को अपना उत्तराधिकारी बना दिया।

भारत में जंगली मुस्लिम-शासन की सङ्गन्ध को और घनीभूत कर बलबन १२८७ के मध्य में मर गया।

उसका राज्य एक लम्बी बरबादी और सम्पूर्ण उजाड़ का दृश्य प्रस्तुत करता है। यह काल्पनिक और खुशामदी वर्णन कि बलबन शिक्षा का संरक्षक और महान् भवन-निर्माता था, चापलूस इतिहासकारों की वही झूठी बकवास है जो उन लोगों के प्रत्येक खूनी शासन के वर्णन के सम्बन्ध में है। बलबन और उसके सभी पूर्ववर्ती शासक, जो भारत का द्वार तोड़कर भीतर घुसे थे, भेड़िये, व्याघ्र और लोमड़ियों से अधिक श्रेष्ठ नहीं थे और न उनमें सभ्यता का ज़रा-सा भी चिह्न था। जंगली मुस्लिम शासकों एवं उनके दरबारियों के विषय में उनके चापलूस खुशामदियों ने जो यह कल्पित वर्णन किया है कि वे सभी दयालु, उदार, कला-प्रिय तथा साहित्य के संरक्षक हैं, पर विश्वास करना मानन-ज्ञान का अपमान करना है।

यद्यपि बलबन ने मुहम्मद के पुत्र कैखूसरू को सुलतान मनोनीत किया था, मगर फ़ख़रुद्दीन के नेतृत्व में दिल्ली के दरबारियों ने उसे सुलतान नहीं बनने दिया। इसके बदले बुग़ खाँ के १७ वर्षीय पुत्र कैकूबाद को उन लोगों ने १२८७ ई० में सुलतान बना दिया। सुलतान बनने के साथ ही वह व्यभिचार के जीवन में डूब गया। उसके दरबारियों ने उसका खुल्लम-खुल्ला अनुकरण करना प्रारम्भ कर दिया। सरकारी-शासन प्रबन्ध सुलतान निर्माता फ़ख़रुद्दीन के व्यभिचारी दामाद निजामुद्दीन के हाथ में आ गया। कैकूबाद इसके हाथों की कठपुतली था।

दिल्ली सुलतान के शिथिल शासन का लाभ उठाकर मंगोलों ने पंजाब पर चढ़ाई कर, समाना तक अपना अधिकार कर लिया। मलिक बकबक ने किसी प्रकार उन लोगों की गति रोकी और लाहौर क्षेत्र में उन्हें पराजित

करने में सफल हुआ। एक हजार मंगोल बन्दी बनाकर दिल्ली लाए गए। सभी को क्रूरतापूर्वक मार दिया गया।

पापी निजामुद्दीन अब सुलतान बनने के स्वप्न देखने लगा। अपने सम्भावित प्रतिद्वन्द्वियों के प्रति वदयन्त्र रचकर वह गुप्त रूप से एक-एक का सत्राया करने लगा। इन वदयन्त्रों का समाचार पाकर बुघ खाँ एक विशाल फौज लेकर दिल्ली की ओर चल पड़ा। स्पष्टतः उसका इरादा अपने पुत्र को बन्दी बनाकर गद्दी हथियाने का था। अपने पिता की नीति से परिचित कैकूबाद अपने पिता से फैसला करने के लिए सेना लेकर चल पड़ा। अयोध्या के समीप सरयू तट पर दोनों सेनाएँ आमने-सामने आ डटीं। ऐसी परिस्थिति में, जब दो शैतानी सेनाएँ हिन्दू क्षेत्र पर आपस में लड़ती हैं तब हिन्दू-विनाश की कोई सीमा नहीं रहती। भेड़ियों और चीतों की भाँति हिन्दू लोगों को मारकर और उनके घरों को लूटकर मुस्लिम सेना अपना व्यव एकत्रित करती थी। सूद में हिन्दू औरतों के साथ बलात्कार होता था तथा मार्ग स्थित मन्दिर मस्जिद बनाए जाते थे।

पिता एवं पुत्र के बीच की सारी सन्धि-वार्ताओं में व्यवधान डालकर निजामुद्दीन बुघ खाँ की सेना पर चढ़ाई करने के लिए कैकूबाद को उकसाने लगा। उसका विचार था कि बाप और बेटे लड़ाई में कट मरें तथा गद्दी उसके लिए झाली छोड़ दें। मगर कुछ बड़े-बूढ़े दरबारियों के प्रयास से मत-भेदों का निराकरण हो गया कि बाप बुघ खाँ अपने बेटे का आदर करे तथा बेटा अपने बाप की सलाह से अपने व्यभिचार पर लगाम लगाए।

इसके बाद दोनों सेनाएँ अपनी-अपनी जगहों को लौट गईं। निजामुद्दीन ने भी छहर देकर अल्पवयस्क सुलतान को मारकर समाप्त कर देने की मुस्लिम परम्परा को स्थगित कर दिया। कैकूबाद का व्यभिचार-नियन्त्रण थोड़े ही दिन तक टिका। वह पुनः उसी में डूब गया। स्वच्छन्द व्यभिचार, अबाध शराब सेवन तथा मूर्च्छाकारक नशीले द्रव्य-सेवन से सुलतान को लकवा चार गया। शारीरिक रूप से अनुपयुक्त होने के कारण तुर्की दरबारियों ने सुलतान के बाल-पुत्र शम्सुद्दीन कैमार को गद्दी पर ला बैठाया।

कुतुबुद्दीन के कुशासक दरबारी जलालुद्दीन खिल्जी और दिल्ली दरबार के एक कुलीन दरबारी में इस समय तक तीव्र प्रतिद्वन्द्विता और

साम्प्रदायिक ईर्ष्या पनपने लगी थी। जलालुद्दीन के प्रभाव एवं महत्वाकांक्षा को ताड़कर तुर्की लोग उसकी हत्या का वदयन्त्र रचने लगे। मगर जलालुद्दीन तुर्की लोगों से ज्यादा घूर्त और फूर्तिला था। सेना लेकर वह सीधा दिल्ली आया, लकवा-ग्रस्त कैकूबाद को बन्दी बनाया और मार दिया। अब जलालुद्दीन ने अपने आप को छोटे सुलतान शम्सुद्दीन का संरक्षक घोषित कर दिया। मगर वह सिर्फ संरक्षक बनकर ही संतुष्ट नहीं था। साथ ही उसने तुर्की दरबारियों का खतरा भी सूँघा। अपने को अधिक सुरक्षित और अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए जलालुद्दीन ने शिशु सुलतान को समाप्त कर मार्च, १२६० ई० में स्वयं को सुलतान घोषित कर दिया।

गुलाम वंश ने १२०६ ई० में डंका पीटकर कुतुबुद्दीन ऐबक के अधीन दिल्ली का राजसिंहासन छोड़ा था। ८४ खूनी वर्षों के शैतानी अधिकार के बाद यह सुलतान शम्सुद्दीन कैमार के साथ बुदबुदा कर समाप्त हो गया।

इन ८४ वर्षों में गुलाम वंश के सात पापी सुलतानों ने राज्य किया था। इसमें शिशु शम्सुद्दीन भी एक था जो यह नहीं जानता था कि बड़े मुस्लिम शैतान नृशंसता और क्रूरतापूर्वक उसे कुचलकर सुलतान बनना चाहते हैं और अन्त में एक अपहर्ता खिल्जी उसका खून करके सुलतान बन गया।

दिल्ली के हिन्दू राजसिंहासन का प्रथम मुस्लिम अपहर्ता गुलामों के बाजारों में बार-बार खरीदा-बेचा हुआ गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक था, जिसने १२०६ ई० से १२१० ई० तक शासन किया था। लाहौर में पोलो खेलते हुए गिरकर मरने पर उसका पुत्र आरामशाह उसी शहर में सुलतान घोषित हुआ। ८ महीने तक उसने किसी प्रकार शासन चलाया ही था कि उसके पिता के गुलाम और दामाद अल्तमश ने गद्दी छीनकर उसकी हत्या कर दी। खूबसूरत चेहरे और काले दिल वाले अल्तमश ने गुलाम वंश में सबसे अधिक समय तक यानी २५ वर्ष तक कुशासन किया। कुतुबुद्दीन के पुत्र आरामशाह की भाँति अल्तमश का वारिस पुत्र रुकनुद्दीन फ़िरोजशाह कुछ ही महीने सत्ता का सुखभोग कर पाया था कि दिल्ली-गद्दी पर बैठने को आतुर खूनी मुसलमानों ने उसकी हत्या कर दी। पाँचवाँ शासक अल्तमश की मर्दानी बेटी रजिया थी जो परम्परागत मुस्लिम बुर्का फेंक, सेल

के जवान में कूट पड़ी मगर मुस्लिम दरबारी-जीवन के विषाक्त और पापी वातावरण में कैसेकर पहले उसका शील धूल में मिला, फिर उसका शरीर। यह सारा काण्ड सिर्फ चार वर्ष में ही हो गया (१२३६ से १२४०)। यह सारा काण्ड सिर्फ चार वर्ष में ही हो गया (१२३६ से १२४०)। अपनी ही बहिन को पदच्युत कर, मारने वाला उसका अपना ही वेशर्म-व्यभिचारी भाई मुइज्जुद्दीन बहराम शाह था, जिसे दो वर्ष १२४०-४२ ई० तक शासन करने के बाद छुरा घोंपकर दूसरे देश पारसल कर दिया गया।

अब अल्तमश का पोता अलाउद्दीन मसूद शाह गद्दी पर आया। १२४२ ई० से १२४६ ई० तक गद्दी पर रहने के बाद उसे भी एक हत्यारे के चाकू का शिकार बनना पड़ा, मानो मुस्लिम शाही परम्परा का यह रिवाज ही हो। दरबारी जीवन के रांक-एण्ड-रॉल ने अब बड़ी पीढ़ी के सिर पर ताज रख दिया। अल्तमश का बेटा नासिरुद्दीन मुहम्मद सुलतान बना। १२४६ ई० से १२६५ ई० तक अपने राज्य के सारे हिन्दू नगरों और ग्रामों में उसने अपने सेनापति उलुघ खाँ (बलबन) के सहयोग से सामूहिक नर-संहार कर हिन्दू खून की नदी बहा दी। सन्देह है कि गद्दी पर बैठने को आतुर बलबन ने शाही मुस्लिम रिवाज के अनुसार नासिरुद्दीन को यह विचार कर जहर दे दिया था कि वह बेमतलब जिन्दा रहकर और अपने शासनकाल को खींच-तानकर दूसरे का हक मार रहा है। १२३५ से १२८७ ई० तक का बलबन का शासन सचमुच एक शतान का नंगा खूनी नाच था, जिसके एक हाथ में मशाल थी और दूसरे में नंगी तलवार।

२१ वर्ष तक लगातार यह हिन्दू खून की नदी बहाता रहा, स्त्रियों पर बलात्कार तथा बच्चों का हरण कर उनके घरों में आग लगाता रहा और उसके बाद सारे शहर की ईंट-से-ईंट बजाता रहा। अपने व्यभिचारी जीवन के कारण वेशर्म पापी कंकूबाद को जिसे बीसवीं साल भी नहीं लगा था, गद्दी पर बैठने के तीन वर्ष के भीतर ही लकवा मार गया था, अतएव उसे गद्दी छोड़नी पड़ी और बाद में उसकी भी हत्या कर दी गई। यह बलबन का पोता था। इसका व्यभिचारी और दुराचारी शासन १२८७ से १२९० ई० तक रहा। उगमग चलते इसके शिशु पुत्र को नाम-मात्र के लिए गद्दी पर बैठाया गया। मगर इस शिशु सुलतान शम्सुद्दीन कैमार तथा लकवा-ग्रस्त उसके पिता की एक दूसरे अपहर्ता मुस्लिम शतान ने हत्या कर दी—मगर इस बार वह एक खिलजी था।

हिन्दुत्व पर अग्नि-गोलों की वर्षा करनेवाला ११ शासकीय गुलाम वंश एक खिलजी की ठोकर से उड़ गया। गुलाम वंश के हाथ से नीचे गिरी मशाल और तलवार को उठाकर खिलजियों ने हिन्दुस्तान में घुसने वाले मुसलमानों के झुण्डों के अखण्ड खूनी-नृत्य को जारी रखा।

हिन्दू जीवन और सम्पत्ति के दाव पर हिन्दू ताज की गेंद खेलने के लिए गुलाम वंश के ११ मुस्लिम खिलाड़ी मैदान में उतरे और आँसू मूँदकर गलत खेल खेलते गए। इनमें से सिर्फ तीन को रेफरी अल्ताह ने सीटी मारकर आउट किया। नासिरुद्दीन के बारे में सन्देह है कि उसे बलबन ने जहर दे दिया था। शेष सातों को खूनी मुस्लिम दरबारी-खेल के शाही मैदान से उठाकर बाहर गिद्धों की जेवनार के लिए सड़क के किनारे फेंक दिया गया। इन सातों का गला कटा हुआ था; जिबह किए गये मेमने की भाँति।

मुस्लिम शासन के ऐसे छथ और छिन्न, चकमे और चाकूबाजी युक्त शासन के काल्पनिक गुणों एवं सुधारों (प्रजा की उन्नति के सुधारों) का प्रश्न-पत्र देकर भारतीय छात्रों को परीक्षा एवं कक्षा-भवन में इस पीढ़ी की प्रशंसा में विस्तार से लिखने के लिए कहा जाता है। भारत की इतिहास-शिक्षा का यह छिछलापन अत्यधिक शोक का विषय है।

(मदर इण्डिया, अप्रैल, १९६७)

जलालुद्दीन खिल्जी

इस्लाम के नाम पर हिन्दुओं के सिरों का शिकार करना ७वीं शताब्दी से ही बर्मान्ध मुस्लिम सुटेरों का एक बीभत्स, क्रूर और खूनी खेल रहा है। बाद में जब एक के बाद दूसरा मुस्लिम शासक इस्लाम की रक्त टपकाती तलवार और जग बरसाती मशाल से खचाखच हिन्दू-सिर गिराने तथा भयानक हिन्दू घर जलाने लगता है तो पाठक और दर्शक साँस रोककर बैठ जाते हैं।

क्या मजाक है कि इस्लाम की उन्मादी आग से भारत को जलानेवाला पहला मुस्लिम खानदान एक गुलाम खानदान था। इस पाशविक मुस्लिम खानदान की जड़ मजबूत करनेवाला कुतुबुद्दीन अन्तर्दृष्टि दुष्ट दल के सरदार मुहम्मद गौरी का एक दीन-हीन पिछलग्गू गुलाम था।

कुतुबुद्दीन और उसके गुलाम उत्तराधिकारियों के क्रूर कारनामों ने भारत के परवर्ती मुस्लिम शासकों के सामने लूट और अत्याचार की एक ऐसी मिशाल पेश की, जिसके आधार पर उन्होंने भी अपनी तूती बजाई। व्यभिचार और कपट, मुस्लिम दरबारी जीवन की आन थी। हर पुत्र ने अपने पिता का खून बहाकर बड़ी शान से उसके हरम पर अपना कब्जा किया था।

गुलाम खानदान का अन्तिम प्रमुख शासक बलबन था। उसके बाद गद्दी अंबराल में पड़ गई। उसका व्यभिचारी पोता गद्दी पर बैठा। जब कामुक जीवन की एकप्रेस गति के कारण उसे लकवा मार गया तो उसके शिक-पुत्र को मायावी दरबारियों ने गद्दी पर बैठा दिया और शासन-सूत्र तुर्की दरबारियों के एक गुट के हाथ में आ गया। उस गुट के दरबारियों में ऊपरी घेतबोल बकर था मगर भीतर-ही-भीतर वे एक-दूसरे की जड़

काटने में लगे हुए थे। मगर अ-तुर्की दरबारियों के मामले में भी वे सभी एक थे। अ-तुर्की दरबारियों में एक घूत और प्रभावशाली दरबारी जलालुद्दीन खिल्जी था।

अ-तुर्की दरबारियों का सफाया करने वाले तुर्की लोगों में ऐतामुर काछन तथा ऐतामुर सुख नामक दो दरबारी भी थे। इन दोनों का प्रथम शिकार जलालुद्दीन था मगर वह इन दोनों से अधिक तेज और घूत निकला। अपने तिकड़मी दिमाग तथा भेदक दृष्टि के कारण जलालुद्दीन ने समय के संकेतों को समझा। अपने सारे गुणों, खिल्जियों और अमीरों को अपने चारों ओर जमाकर उसने बहारपुर में अपनी स्थिति दृढ़ कर ली।

एक सैनिक टुकड़ी लेकर ऐतामुर काछन बहारपुर की ओर चला। इरादा था जलालुद्दीन खिल्जी को शम्सी महल में निमन्त्रण देकर वहीं दफना देना। उसकी योजना को भाँपकर जलालुद्दीन मार्गस्थित एक झाड़ी में छिप गया तथा नेता सहित अधिकांश सैनिकों को उसने दफना दिया।

जलालुद्दीन के अनेक पुत्र थे। उन लोगों ने दिल्ली को घेर लिया और शिशु सुलतान को बन्दी बनाकर बाद में मार डाला। ऐतामुर सुख ने खिल्जी सेना का पीछा किया मगर एक खिल्जी-तीर खाकर वह धोड़े से नीचे गिर पड़ा। खिल्जियों ने अनेक कुलीनों को मारकर उनके पुत्रों को अपनी हिरासत में ले लिया।

जियाउद्दीन बरकी अपनी तारीखे फ़िरोजशाही में लिखता है—“शहर में खासी हलचल मच गई। शिशु-सुलतान को छुड़ाने के लिए छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सभी लोग शहर के बारह द्वारों से निकल-निकलकर बहादुर-पुर की ओर चल पड़े। खिल्जियों की महत्वाकांक्षा से सभी उत्तेजित थे, साथ ही जलालुद्दीन की ताज प्राप्ति के विरोधी भी। मगर अपने पुत्र के बन्दी होने के कारण कोतवाल ने सामूहिक उत्तेजना को शान्तकर नागरिकों को वापिस किया। बदायूँ द्वार पर नागरिक बिखर गए।” (पृष्ठ १३४-३५, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)।

हमेशा विजेताओं की ओर सरकने वाली गिरगिटी मुस्लिम राजभक्ति के अनुसार कुछ तुर्क जलालुद्दीन से आ मिले। लकवाग्रस्त सुलतान के रक्त से अपना हाथ न रंगना चाहने के कारण जलालुद्दीन ने एक नायक को खोज निकाला, जिसके पिताजी की हत्या सुलतान कैकूबाद ने की थी। कैकू-

बाद को अलवाह के घर भेजने का सन्देश लेकर वह "किलुघड़ी" की ओर चल पड़ा। "किलुघड़ी" में पहुँचकर उसने अन्तिम हिचकियाँ लेते हुए सुलतान को मारकर उसके शरीर को यमुना में फेंक दिया। (वही, पृष्ठ १३५) हत्याओं के खूनी खेल में मुसलमान इतने ही हृदयहीन और भाव-शून्य होते हैं।

नाम के गिज़ सुलतान तथा उसके लकवाग्रस्त पिता कैकूबाद की हत्या-कर जलालुद्दीन ने प्रमुख दरबारियों को अपनी ओर मिलाया और अपनी स्थिति दृढ़ कर ली।

तरक्कीयास्ता और अपहर्ता जलालुद्दीन एक खिल्जी होने के कारण पुरानी दिल्ली आने का साहस नहीं कर सका क्योंकि वहाँ की मुसलमानी जनता सिर्फ़ तुर्कों को ही गद्दी का वारिस मानने की अभ्यस्त थी।

अगर गुलाम खानदान की ही पीढ़ी चलती तो बलबन का पुत्र मलिक छाजू गद्दी का वारिस होता। जलालुद्दीन ने करी का कुशासन सौंपकर उसे वहाँ भेज दिया।

बरनी बतलाता है—“जलालुद्दीन नगर में नहीं गया” दिल्ली जाने में अक्षम हो (उसने) किलुघड़ी की ही अपनी राजधानी बनाया। अनेक व्यवसायियों को दिल्ली से ला-लाकर (वहाँ) बसाया गया” (वही, पृष्ठ १३५-३६)। तेरहवीं शताब्दी के इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि बात पुरानी दिल्ली की हो रही है। इसपर भी आज के इतिहासकार यह नगारा पीट रहे हैं कि पुरानी दिल्ली का निर्माण १७वीं शताब्दी में शाहजहाँ ने किया था।

दिल्ली के गुलाम खानदान के दो अन्तिम छोटे सुलतानों के रक्त से अपने हाथ रंगकर जलालुद्दीन खिल्जी मानो यह सौगन्ध खाकर गद्दी पर बैठा कि गुलाम खानदान के हाथों से गिरी हिन्दू-खून टपकाती तलवार और हिन्दू घर जलाने वाली मशाल को उठाकर पाशविक नृत्य करने का उत्तराधिकार वह अपनी वंश-परम्परा को बड़े जोर-शोर के साथ देगा।

हिन्दुस्तान की रक्त-स्नात खूनी मुस्लिम गद्दी पर बैठने वाले जलालुद्दीन की उपाधि भी इसी की भाँति खूँकार थी—“सुलतानुल् हालिम जलाद कुत्या बाउद्दीन किरौजशाह खिल्जी।” उनके अत्याचारी इतिहास को

लिखने वाले दलाल इन वर्णसंकर मुसलमानों की बड़ी मारी-भरकम उपाधि देते थे।

फ़रिश्ता के अनुसार जलालुद्दीन १२८८ ई० में गद्दी पर बैठा। अमीर खुसरो के मिक्ताहुल् फ़तुह के अनुसार इसे १२६० ई० होना चाहिए। बरनी दोनों के बीच का समय १२८६ ई० बतलाता है। यानी ये तथ्यांकित चाटुकार मुस्लिम इतिहासकार अपने दरबारियों और शाहबादों की प्रशंसा लिखने के अलावा और किसी भी चीज़ से मतलब नहीं रखते थे। वहाँ तक कि एक शासक या वंश के अन्त तथा दूसरे के प्रारम्भ जैसी महत्वपूर्ण घटनाओं की सही तारीख़ लिखने से भी उन्हें कोई मतलब नहीं था।

जलालुद्दीन के सुलतान बन जाने के बाद ही बरनी के चापलूस मुख से ख़ुशामद का वही स्वर गुँज उठा, मानो ग्रामोफोन का रिकार्ड हो—“उसके चरित्र, उसके न्याय और उसकी श्रद्धा की महानता ने धीरे-धीरे जनता की घृणा को पोंछ डाला। जागीर प्राप्ति की लालसा ने लोगों का प्यार जीतने में सहायता दी” (वही, पृष्ठ १३६)। मुस्लिम इतिहासकारों की त्रास खूबी का यह एक नमूना है। उनका पहला स्वार्थ था अपनी गर्दन बचाना, जिसके रहते वे बिना झेंपे आँख मूँदकर तोते की तरह झूठी बातें रटते चले जाते थे।

उसके उपजाऊ हरम में जन्मे तीन बच्चे, जिनका वह पिता भी हो सकता था, बड़े ‘प्रवीण’ थे क्योंकि वे उसके हिन्दू-हत्याभियान में सहयोगी होने के योग्य हो गये थे। “इन तीनों को अलग-अलग तीन राजमहल दिए गये” (वही, पृष्ठ १३६)। यानी विजय-मण्डल, श्री तथ्यांकित होजवास एवं निजामुद्दीन आदि अनेक हिन्दू राजमहलों में जलालुद्दीन, उसके तीनों पुत्र और दरबारियों ने अपना कच्चा जमा लिया।

एक वर्ष बाद जब जलालुद्दीन को विश्वास हो गया कि मुस्लिम लोग एक तरक्की यास्ता खिल्जी के माथे पर ताज देखने के अभ्यस्त हो गये हैं तो वह “नगर में जाकर अपने राजमहल पर उतरा” और अपने पूर्वजों की गद्दी पर बैठ गया।” (वही, पृष्ठ १३६)। यानी जिसे हम आज दीवाने-खास कहते हैं वह दिल्ली के लाल किले का एक प्राचीन राजपूती महल है।

जलालुद्दीन के गद्दी तशीन होने के एक साल के भीतर-ही-भीतर अन्तिम गुलाम शासक बलबन के भतीजे मलिक छाजू ने अपने को सुलतान

बोधित कर करी से दिल्ली की ओर कूच कर दिया। जलालुद्दीन भी उससे टकराने के लिए आगे आया। दोनों सेनाएँ बदायूँ से २५ मील दूर आपस में भिड़ गईं।

जैतानों के हथार बर्बाद मुस्लिम-नृत्प का एक दिन भी बिना विद्रोहों के नहीं गुजरा है। ऐसे समय जब भी दो मुस्लिम सेनाएँ आपस में टकराने आगे बढ़ती थीं उस समय सारे हिन्दुओं से अन्न छीनकर उनके खेतों को जला दिया जाता था, हिन्दू घरों को लूटकर हिन्दू नारियों पर बलात्कार किया जाता था, हिन्दू बच्चों का अपहरण कर उनका खतना कर दिया जाता था, हिन्दू नागरिकों को गुलाम बनाकर खुले-आम बेच दिया जाता था और ताड़ा कटी गाय के खून से मन्दिर को "शुद्ध" कर उसे मस्जिद बना दिया जाता था। यही कारण है कि अनेक मध्यकालीन मन्दिर आज मस्जिद के रूप में हमारे सामने खड़े हैं।

छाबू खाँ के मुख्य सत्ताहकार पकड़े गये। क्रूर पिता के दुष्ट पुत्र अस्कनी खाँ ने "उसकी गर्दन पर जुआ रखकर और उसे बाँधकर सुलतान के पास भेज दिया। ऊँटों पर चढ़े, जूआँ से दबे गर्दन के पीछे बँधे हाथों और घुल से सने लोगों को सुलतान के सामने पेश किया गया।" (वही, पृष्ठ १३२)।

मुसलमानों की कपटी और गिरगिटो राज-भक्ति से परिचित जलालुद्दीन ने उन्हें मुक्त करके सभी की बड़ी आवभगत की और उन्हें शानदार भोज दिया। मलिक छाजू सुलतान में तजरबन्द कर दिया गया मगर भरपूर शराब और माँसी के साथ।

बरनी कहता है कि ऐसी परिस्थिति में बलबन "विद्रोहियों के साथ बुरी तरह पेश जाता और न जाने कितना खून बहाता! अगर सुलतान और उसके अनुयायी उसके हाथ में पड़ जाते तो हिन्दुस्तान से खिल्जियों का नामो-निशान तक मिट जाता।" (वही, पृष्ठ १३६)। मगर यही बरनी बलबन के शासनकाल का वर्णन करने के समय गाल फुला-फुलाकर जानवर-गुल्ल बलबन की बड़ाई का तराना छेड़ते नहीं थकता था।

जलालुद्दीन खिल्जी का भतीजा और दामाद वही कुख्यात अलाउद्दीन खिल्जी था जो अपने क्रूर-कारनामों के कारण मुस्लिम अत्याचारियों के बीच अपना विशिष्ट स्थान रखता है। मलिक छाजू से छीने गये करी का

शासन इसके हाथ में सौंप दिया गया। करी की जागीर पर जमाने के एक वर्ष के भीतर-ही-भीतर अलाउद्दीन ने मलिक छाजू के सहयोगियों को अपनी ओर मिलाकर दिल्ली पर आक्रमण करने का षड्यन्त्र रच दिया। अलाउद्दीन अपनी पत्नी और उसकी माता (शासक सुलतान की पत्नी) यानी अपनी सास से बहुत घृणा करता था।

अपने चाचा और ससुर से दिल्ली छीनने लायक शक्तिशाली बनने के लिए अलाउद्दीन शाही मुस्लिम सेना लेकर किसी हिन्दू राज्य पर बढ़ बैठने के अवसर की ताक में रहने लगा ताकि अपनी दुरभिसन्धि को पूरा करने योग्य वह काफी लूट ही नहीं बटोर सके वरन् शाही सेना भी उसे अपने नेता के रूप में देखने की अभ्यस्त हो जाए।

जलालुद्दीन अपनी मूर्खता के लिए विख्यात था। उसने एक बार एक हजार ठगों को पकड़ा, नाव पर लादा और बंगाल की राजधानी लखनौटी खाना कर दिया ताकि वे दिल्ली के मुस्लिम पड़ोस को तस्त न कर लखनौटी के हिन्दू पड़ोस को ही लूटें। उसकी मूर्खता से तंग आकर नमकहराम बदमाशों का एक गुट शराब की चुस्कियों के बीच उसे हटाने की बातें करने लगा।

मुसलमानों ने हमेशा शराब को बुरा बताया है मगर उनके भारतीय शासन का प्रत्येक पन्ना तीखी और तेज शराब से भीगा हुआ ही नहीं है वरन् अफ्रीम आदि नशीली वस्तुओं से लिप्त भी है। नारी-जाति की मुक्ति की वे हमेशा डींग हाँकते हैं मगर सारे संसार में इन्हीं लोगों ने नारी-जाति को ऐसे खोफनाक बुरक्रे में ढक रक्खा है, जिसे देखकर ही दिल दहल उठता है। सिर से पैर तक ढकी उनकी माताएँ, बहनें, पत्नियाँ ऐसी लगती हैं मानो चलता-फिरता जिन्दा कैंदखाना हो।

जलालुद्दीन के प्रति चलने वाले अनन्त षड्यन्त्रों में से एक षड्यन्त्र का प्रणेता सिद्दीमौला नामक दरवेश भी था। "वह लोगों से कुछ नहीं लेता था, फिर भी उसके व्यय को देखकर लोग विस्मित रह जाते थे—"ऐसा विश्वास बरनी हमें दिलाना चाहता है। यानी दरवेश के पास गुण्डों का एक गिरोह था जो हिन्दुओं को लूट-लूटकर उसकी आपूर्ति करता रहता था। अन्त में, यह ज्ञात हुआ कि दरवेश से सम्बन्धित एक काजी जलाल काशनी अनेक असन्तुष्ट और उरुरतमन्द कुलीनों के बीच सुलतान-द्रोह की बातें

किया करता है। उन लोगों में यह तय हुआ कि "शम्भू के दिन मस्जिद जाने पर सुलतान को समाप्त कर दिया जाय।" सचमुच उनके चुनाव की शारीक करनी होगी। इस कुकर्म को करने के लिए मस्जिद से श्रेष्ठ स्थान और कौन-सा हो सकता है, यह अवश्य ही उन लोगों ने सोचा होगा।

इस षड्यन्त्र की मनक सुलतान को मिल गई। उसकी आज्ञा पर एक व्यक्ति ने सिंही को जगह-जगह से चाकू द्वारा चीर दिया और महल के आरोसे पर खड़े सुलतान-पुत्र अरकली खाँ के संकेत पर एक महावत ने उसे हाथों के पैरों तले कुचल डाला।

षड्यन्त्र, हत्या और लूट से लिपटा मुस्लिम शासन हमेशा दुर्भिक्ष और बकान का मारा रहा है क्योंकि खेती करने योग्य आवश्यक शान्ति (और समय) हिन्दुओं को मिल नहीं पा रही थी और मुसलमान लूटपाट से ही पेट पालना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। परिणामतः दुर्भिक्ष अनिवार्य था। जलालुद्दीन का शासन भी दुर्भिक्षग्रस्त रहा। बरनी हमें बतलाता है—"दिल्ली में भयंकर महंगाई थी। एक सेर अनाज का दाम एक जित्त हो गया था। शिवालिक में भी दुर्भिक्ष का व्यापक प्रभाव था। उस देश के हिन्दू सपरिवार दिल्ली आते थे और भूख से बेहाल होकर यमुना में डूब जाते थे।" (वही, पृष्ठ १४७)।

१२६० ई० में जलालुद्दीन ने उज्जैन और मालवा को लूटा। "वहाँ के महाकालेश्वर तथा अन्य प्रसिद्ध मन्दिरों को उसने भ्रष्टकर प्रतिमाओं को तोड़ा और काफ़ी लूट बटोरी।"

इसके बाद उसने रणथम्भोर के प्रसिद्ध हिन्दू दुर्ग पर अपनी नज़रें गड़ाईं। मगर और राजपूतों द्वारा सुरक्षित इस दुर्ग को जीतना उतना आसान नहीं था जितना खुले मैदान में असुरक्षित मन्दिर को, जहाँ निःशस्त्र और धार्मिक पुजारी पूजा-पाठ किया करते थे। दुर्ग को अभेद्य और सुदृढ़ देखकर जलालुद्दीन यह कहते हुए भाग निकला कि "बिना अनेक मुसलमानों की कड़ी कसरत और यह इस दुर्ग पर अधिकार नहीं कर सकता, इसी कारण वह इसका मूल्य एक मुसलमान के बाल के बराबर भी नहीं समझता। अगर अनेक मुसलमानों को कटवाकर वह इसे जीते और लूटेगा तो शहीदों की शिखराएँ और अनाथ बच्चे उसके सामने खड़े होकर उसकी लूट की खुशी को विषाद में बदल देंगे।"

इस कथन से ऐसा लगता है कि अस्सी वर्षीय बूढ़ा सुलतान जलालुद्दीन सचमुच सठिया गया था। बिना एक भी मुस्लिम-बाल खोये उसने रण-थम्भोर को जीतने की तमन्ना की थी? उसने यह नहीं बताया कि वह बाल सिर का होगा या दाढ़ी का। कुछ भी हो, अनेक मुस्लिम दाढ़ियाँ मँड़ दी गईं। राजपूतों की लपकती-चमकती तलवारों ने हिन्दुत्व के एक प्रसिद्ध और मजबूत गढ़ रणथम्भोर से सिर पर पैर रखकर भागती बेहाल मुस्लिम सेना के सैकड़ों सिर काटकर जमीन पर लुढ़का दिए।

रणथम्भोर से भागे बूढ़े जलालुद्दीन के सामने अब एक नई आफ़त आई। १२६२ ई० में कुख्यात हलाकू के पोते अब्दुल्ला का मुगल गिरोह मध्य एशिया से आकर पंजाब पर झपट पड़ा। हतप्रभ जलालुद्दीन रणथम्भोर की कमर-तोड़ मार से पिटी-पिट्टाई सेना लेकर लड़खड़ाता दिल्ली से निकला। मुगल आक्रमणकारियों एवं जलालुद्दीन की सेना में कई झड़पें हुईं। प्रत्येक झड़प में बरनी जलालुद्दीन की विजय का नगाड़ा बार-बार पीटता रहा, फिर भी यह स्पष्ट है कि जलालुद्दीन को समझौते की चिन्पी लगानी ही पड़ी। बरनी हमें बतलाता है कि "(सिन्ध की) बातचीत चली, सुलतान ने अब्दुल्ला को अपना पुत्र कहा। उपहारों का आदान-प्रदान हुआ। अब्दुल्ला वापिस चला गया मगर अपने अनेक कुलीनों, नायकों और सेना-पतियों के साथ चंगेज़खाँ के पोते उलुघ ने यहीं रहने का निश्चय कर लिया। सुलतान की एक बेटी—जिन बेटियों की संख्या असंख्य थी—की शादी उलुघ के साथ कर दी गई। वे मुसलमान हो गये और किलुधड़ी, गियासपुर, इन्द्रप्रस्थ और तालुक में उनको महल दे दिया गया।" (वही, पृष्ठ १४७)। यानी हिन्दुओं से छीने गये महल इन सभी लोगों को दे दिए गये।

इस वर्ष के अन्त में जलालुद्दीन ने माण्डवगढ़ पर छावा बोल दिया। इस प्रसिद्ध और खूबसूरत राजपूत-राजधानी को नोच-खोचकर इसके भव्य मन्दिरों एवं महलों को मुस्लिम मस्जिद और मकबरा बना दिया गया। मुस्लिम इतिहासों में यह एकदम झूठ लिखा गया है कि माण्डवगढ़ में मुसलमानों ने अनेक भव्य-भवनों का निर्माण किया है। वास्तव में बहुत से भवनों का नाम बदला गया और कुछ का विनाश और विध्वंस किया गया। रणथम्भोर की अपेक्षा उज्जैन को एक खुला, असुरक्षित और आसान शिकार पाकर जलालुद्दीन ने इसपर पुनः चढ़ाई कर दी। यहाँ के अनेक

मन्दिरों और पाठशालाओं को हिन्दू तीर्थ-यात्रियों ने मुक्तहस्त धन और सम्पत्ति का दान दिया था। तीर्थ-यात्रियों के भयंकर नर-संहार के साथ-साथ हजारों नारियों का अपहरण, शीलभंग एवं धर्म परिवर्तन हुआ और पशेष्ट मात्ता में लूट भी बढोरी गई।

जससी वर्षीय इस बड़े चाचा की कहानियों जैसी अनोखी और आसान लूट-बढोर के कारनामों को देखकर दंग अलाउद्दीन ने इस कुकर्म में उससे बाड़ी मार से जाने की ठानी और कमर कसकर तैयार हो गया। प्राचीन और विख्यात भारतीय नगर भिलसा पर उसने धावा बोल दिया। "उसने कुछ हिन्दू पूजा की ताम्र-प्रतिमाओं को, अनेक लूट के माल के साथ उपहार-स्वरूप सुलतान के पास भेज दिया। इन प्रतिमाओं को (पुरानी दिल्ली के) बदारूँ द्वार पर बिखेर दिया गया। मुसलमानों ने यह विचार करते हुए उन प्रतिमाओं को पैरों से खूब रौंदा कि इस प्रकार के कारनामों से हिन्दुओं का अपमान कर दे लोग इस्लाम का गौरव बढा रहे हैं।" (वही, पृष्ठ १४८)।

हिन्दू-भिलसा के इस आक्रमण से जलालुद्दीन को यह पूर्ण विश्वास हो गया कि उसी के अनुसार उसका भतीजा-दामाद भी एक पक्का लूटेरा बन गया है। बस, इसी बात पर उसने अलाउद्दीन को अवध की जागीर भी दे दी।

एक बार जब जलालुद्दीन बिदिना में था तब उसने दूर दक्षिण के देव-गिरी दुर्ग के वैभव और हाथियों की क्पाति सुनी थी। सुलतान की आज्ञा के बिना उसने चुपचाप इसे लूटने का निश्चय कर लिया ताकि हिन्दू-धन से पुष्ट होकर वह स्वयं सुलतान को अपनी मुस्लिम ललकार से पछाड़ सके। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए दिवालिया होने का बहाना बनाकर उसने अवध और करी क्षेत्र का 'लूट-कर' सुलतान के पास नहीं भेजा। एक 'कन्धे' (?) मुस्लिम लूटेरे की भाँति उसने सुलतान से चन्देरी-क्षेत्र लूटने की आज्ञा माँगी ताकि लूट-कर के उस हिन्दू-धन से वह सुलतान का कु-कर चुकता कर सके। हिन्दुओं के नर-संहार द्वारा निर्धारित कु-कर से कुछ अधिक प्राप्ति की आशा में सुलतान ने अलाउद्दीन की प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस बहाने से एकत्रित धन द्वारा अलाउद्दीन ने मुस्लिम गुण्डों की एक बृहद् बाहिनी तैयार की और देवगिरी की ओर निकल पड़ा। एलिचपुर तथा घाटिलजौरा होकर उसकी सेना आगे बढ़ी। मार्गस्थित

सारे हिन्दू-गृहों और क्षेत्रों की जीवनोपयोगी सामग्रियों को लूटता-सो-टता, हजारों असहाय नारियों और बालकों का अपहरण और शीलभंग कर उनका धर्म-परिवर्तित करता हुआ वह आगे बढ़ता गया। अपने हजार वर्षीय शासनकाल में जहाँ कहीं भी मुस्लिम सेनाएँ गईं, टिड्डीदल की भाँति उन लोगों ने तबाही और बरबादी ही फैलाई, स्त्रियों और बच्चों को लाद-कर ले गए और नुची-खुची लाशें पीछे छोड़ गए। लोगों ने हिटलर तक के नर-संहार को गिन डाला, मगर कोई भी यह नहीं गिन सकता कि कितनी नारियों की इज्जत इन लोगों ने लूटी है और कितने आदमियों की गर्दन इन लोगों ने काटी है।

घाटिलजौरा से आगे बढ़ने के बाद वह सुलतान को सूचनाएँ नहीं भेज सका। इसके बदले में हमारे इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी के चापलूस चाचा अलाउल्-मुल्क उन हिन्दुओं के विरुद्ध, जिन्हें वह 'काफ़िर' कहता है, अलाउद्दीन के काल्पनिक अभियान की उल्टी-सीधी कल्पित सूचनाएँ सुलतान जलालुद्दीन के पास भेजता रहा।

देवगिरी का शासक रामदेव राय इस बात से अनजान था कि मुस्लिम अत्याचारी आ रहे हैं। उसके पुत्र के नेतृत्व में उसकी सैन्य-बाहिनी का एक बड़ा भाग कहीं दूर किसी खतरनाक मुहिम पर था। तबाही के देवता मुस्लिम सेना के अचानक आगमन से आशंकित और आतंकित होकर रामदेव राय ने जहाँ तक हो सका एक सेना बढोरी। उसने अपने एक कुलीन पुरुष के नेतृत्व में उस सेना को अलाउद्दीन की प्रगति रोकने भेजा। घाटिलजौरा के समीप संग्राम हुआ। अन्त में हिन्दू-सेना को पीछे हटना पड़ा। अलाउद्दीन उसे दबाता हुआ देवगिरी की ओर बढ़ा जहाँ अब सेना के नाम पर इने-गिने दो-चार पहरेदार ही थे। नर-संहार बचाने के लिए रामदेव राय को आत्म-समर्पण करना पड़ा। पर क्या नर-संहार बच सका? अलाउद्दीन ने उस असुरक्षित दुर्ग की ईंट से ईंट बजा दी। पाशविक अत्याचारों को देखकर धरती काँप उठी। सारे मन्दिर मस्जिद बनाए गए। बेशुमार घोड़े, हाथी, मोती, स्वर्णशिलाएँ, जवाहरात, सिक्के और कीमती वस्त्रों का भण्डार लेकर अलाउद्दीन वापिस लौटा।

१२६६ ई० में सुलतान सुदूढ़ ग्वालियर पर अपनी लोलुप नज़र गड़ाए

उसी के समीप पड़ाव डाले पड़ा था तभी उसके पास अलाउद्दीन के देवगिरी-विजय का समाचार पहुँचा।

सठियाये डूबे सुलतान ने उसकी जीत को अपनी ही जीत माना। क्यों न मानता? क्या वह उसके भाई का पुत्र और उसकी पुत्री का पति नहीं था? मगर वह बेचारा अलाउद्दीन में चरित्रगत मुस्लिम दसावाजी का ताल-मेल नहीं बैठ सकता।

अनेक दरबारी ही नहीं, स्वयं सुलतान भी अलाउद्दीन के व्यवहार से सन्निकित और दुविधा में था। वह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि विजयी अलाउद्दीन की अगवानी में वह जाये या दिल्ली लौटकर उसकी प्रतीक्षा करे।

दुविधा में डूबा जलालुद्दीन अन्त में दिल्ली ही लौटा और लूट की कमाई लेकर अलाउद्दीन अपने स्थान करी। अलाउद्दीन ने ऐसा दिखाव किया मानो बिना शाही आज्ञा के देवगिरी को लूटकर उसने एक महान् अपराध किया हो और अब सुलतान के क्रोध से भयभीत हो। अपने अपराधों की क्षमा-याचना करते हुए उसने सुलतान को एक पत्र लिखा। उसने हिन्दू-लूट के उपहार के साथ उनसे मिलने की भी इच्छा प्रकट की। पूरे एक वर्ष तक वह अनुपस्थित रहा। इस बीच सुलतान जलालुद्दीन के साथ उसका कोई भी सम्पर्क नहीं था।

इस मायापूर्ण पत्र को भेजकर अलाउद्दीन ने बंगाल की राजधानी जगन्नीटी पर धावा करने की तैयारी की। अपनी दुष्टता के अनुरूप अलाउद्दीन सुलतान के क्रोध से भयभीत होने के बहाने अपनी दिल्ली यात्रा स्थगित कर, बकाया और चालू कु-कर चुकाने से बचता रहा। उसने यहाँ तक सचाचार भेज दिया कि मैं हमेशा अपने रुमाल में जहर लेकर घूमता रहता हूँ। यदि स्वयं सुलतान करी आकर और क्षमादान देकर मुझे दिलासा नहीं देंगे तो मेरे लिए जहर खाकर मर जाने के अलावा और कोई चारा नहीं रहेगा।

गन्देह-मुक्त सुलतान जलालुद्दीन पुलकित होकर अलाउद्दीन की अस्थिरता से स्तब्ध बैठे और अपने भतीजे-दामाद से मिलने करी चल पड़े।

कर्पा चतु का प्रारम्भ हो चुका था। करी के समीप गंगा तट तक सुलतान घा पहुँचे। अश्व-पति के रूप में अलाउद्दीन का भाई अल्तमश बेग

या अल्तमश खाँ जलालुद्दीन की नौकरी करता हुआ, भीतर-ही-भीतर अलाउद्दीन से मिला हुआ था। अलाउद्दीन को जहर खाकर मरने से रोकने तथा सुलतान के क्षमादान का भरोसा देने के बहाने वह सुलतान से पहले अलाउद्दीन से मिलने चला आया था। जब उसने देखा कि सुलतान एक बड़ी सैन्य टुकड़ी लेकर आए हैं तो शीघ्रता से आगे आकर उसने सुलतान से प्रार्थना की कि बड़ी मुश्किल से मैंने अलाउद्दीन को जहर खाकर मरने से रोका है। अगर सुलतान जल्दी-से चलकर खुद उसे भरोसा नहीं देंगे तो न जाने वह कब जहर खा लेगा। साथ ही सुलतान को बिकराल सेना के साथ आते देखकर वह कुछ और बात सोच कहीं जल्दी से जहर न खा ले।

इस चलती-फिरती माया से धोखा खाकर सुलतान अपनी सेना को इसी पार ठहरने का आदेश दे; कुछ अंगरक्षकों के साथ गंगा के उस पार चले गये।

सुलतान जलालुद्दीन का दिमाग एकदम उलझा हुआ था। अलाउद्दीन की दुष्टता के बारे में कुछ कुलीन उसे सदा सचेत करते आए थे। दूसरी ओर असुरक्षित हिन्दू-मन्दिर के पुजारी-भक्षी अलाउद्दीन को उसने शर्म से मुँह छिपाये भय से काँपते पाया। उसने देखा कि सार्वभौमिक सुलतान की अगवानी के लिए अलाउद्दीन बीच धारा में भी नहीं आया। इसलिए वह बड़ी लगन से कुरान का पाठ करने लगा ताकि अगर अलाउद्दीन के दिमाग में कोई बुरा विचार हो तो वह निकल जाए। अल्तमश बेग ने सुलतान को यह विश्वास दिलाया कि लूटे हुए हिन्दू खजाने का बेश कीमती उपहार लेकर पश्चात्ताप के आँसू बहाता हुआ अलाउद्दीन उनसे घाट पर ही मिलेगा।

बरनी लिखता है—“सन्ध्या की नमाज से पहले सुलतान नदी तट पर पहुँचकर अपने कुछ अनुचरों के साथ (नाव से) नीचे उतरे। अपने अफसरों के साथ पूर्ण सम्मान प्रदर्शित करता हुआ अलाउद्दीन स्वागत में आगे बढ़ा। सुलतान के निकट पहुँचकर अलाउद्दीन उसके चरणों पर गिर पड़ा। पुत्र की भाँति उसे प्यार करते हुए, उसकी आँखों और गालों को चूम, दाढ़ी को पुचकार, गाल पर प्यार की दो हल्की-हल्की चपत लगाकर सुलतान ने कहा—‘मैंने छुटपन से ही तुम्हारा लालन-पालन किया है, फिर तुम मुझसे इतना क्यों डरते हो?’ सुलतान ने अलाउद्दीन का हाथ अपने हाथ में से

लिया और इसी समय अलाउद्दीन ने मारक संकेत दे दिया। समाना के मुहम्मद सलीम ने अपनी तलवार से सुलतान पर वार किया। मगर ओछा पड़ने के कारण इस वार से उसी का हाथ कट गया। तब उसने दूसरा प्रहार कर सुलतान को घायल कर दिया जो यह चिल्लाते हुए नदी की ओर दौड़ रहे थे—'आह! तू दुष्ट अलाउद्दीन! यह तूने क्या किया?' जाल में फँसे सुलतान के पीछे दौड़कर इस्तियारुद्दीन हुद ने उन्हें जमीन पर पटक, उनका सिर काटकर दिया। उसके बाद खून टपकाते सिर को लेकर वह अलाउद्दीन के पास चला आया।" विरोध करने वाले सुलतान के अंगरक्षकों को काटकर फेंक दिया गया। इस प्रकार कपटपूर्ण पितृ-हत्या का घोर अपराध गंगा के पवित्र तट पर सम्पन्न हुआ।

एक भाते पर सुलतान का सिर टांगकर एक शानदार जलूस निकाला गया। कटे मुण्ड से रक्त का टपकना अभी बन्द भी नहीं हुआ था कि खूंखार षड्यन्त्रकारियों ने शाही चंदोवा अलाउद्दीन के सिर पञ्च तान दिया और हाथियों पर चढ़कर लोगों ने अलाउद्दीन को सुलतान घोषित कर दिया।

सुलतान की हत्या के दो वर्ष के भीतर सुलतान पर प्रथम प्रहार करने वाला सलीम कुष्ठ का शिकार हो गया। दूसरे, सुलतान का सिर उतारने वाला इस्तियारुद्दीन भी शीघ्र ही पागल हो गया। उसे सुलतान का भूत दिखाई देता रहता था जो बदला लेने के लिए हाथ में रक्त टपकाती तलवार लेकर उसका सिर उतारने उसके समीप ही खड़ा रहता था।

अलाउद्दीन की हत्या का समाचार सुनकर गंगा के दूसरे तट पर स्थित उसकी सेना अहमद चाप के अनुशासन में दिल्ली लौट गई। वर्षा और कीचड़ के बीच कृष करती हारी घकी निरुत्साहित सेना दिल्ली पहुँचकर बिखर गई और सभी अपने-अपने घर आराम करने चले गए। अत्यन्त भयभीत होकर सुलतान की एक पत्नी मलिका-ए-जहान ने सुलतान के सबसे छोटे पुत्र रुकनुद्दीन इब्राहिम को गद्दी पर बैठा दिया।

इस बात से नाराज होकर जलालुद्दीन का बड़ा बेटा अरकली खाँ सुलतान ही में बैठा रहा। अलाउद्दीन के लिए यह एक शुभ संकेत था। मार्ग में सिक्के बिखेरता वह सीधा दिल्ली की ओर चला। नैतिकता से हीन मध्य-कालीन मुसलमानों की सुलतान-भक्ति चन्द चाँदी के सिक्कों की चमक पर गिरावट की तरह रंग बदलती रहती थी। कर्ण छोड़ने के पाँच महीने के

भीतर अलाउद्दीन अनेक मलिकों और अमीरों द्वारा संचालित एक विमान वाहिनी लेकर दिल्ली से पाँच मील दूर जा डटा। तब मलिका-ए-जहान अपने पुत्र रुकनुद्दीन के साथ सुलतान चली गई और अपने चाचा के खून की मेहंदी हाथों में रचाकर १२६६ ई० में अलाउद्दीन ने अपने को दिल्ली का सुलतान घोषित कर दिया।

जलालुद्दीन और अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में एक व्यक्ति रहता था, जिसका नाम अमीर खुसरो था। लड़ाकू मुस्लिम साहित्य में उसे एक कवि के रूप में चित्रित किया गया है। मगर वह किसी भी मुस्लिम दरबारी से कम चापलूस नहीं था। तथाकथित हुमायूँ के मकबरे के समीप स्थित एक हिन्दू महल के खण्डहरों में यह दबा पड़ा है। यहाँ हम पाठकों को पुनः सचेत कर देना चाहते हैं कि वे इस बात पर गम्भीरता से विचार करें कि मुस्लिम दरबारियों और शाहजादों की लाश के निवास के लिए भव्य मकबरा है, जबकि उनका अपना कोई भी भवन या महल नहीं था। लगता है इतिहासकारों ने कभी भी मुस्लिम लाश की कब्र पर खड़े शानदार इमारतों के इस विरोधाभास पर जरा भी ध्यान नहीं दिया है कि उनके विलास और व्यभिचार-प्रिय जीवित और झगड़ालू 'जीव' के रहने और कहने का अपना कोई भी महल नहीं था।

इस स्पष्ट विरोधाभास की व्याख्या आसानी से की जा सकती है, यदि यह समझ लिया जाय कि प्रत्येक मुसलमान चाहे वह राजा हो या रंक, कवि हो या दलाल, विजित हिन्दू-महलों में ही रहते थे। यही कारण है कि उनके जीवनकाल का पता-ठिकाना नहीं दिया गया है। मगर उनकी मृत्यु के बाद लीजिए और देखिए! आसमान से एक आलीशान इमारत उतरती है और उन लोगों की सड़ी-गली लाश पर आकर खड़ी हो जाती है। चिरागें अलाउद्दीन का करिश्मा हो जाता है। इतिहास ने इस रहस्य को खोलने का प्रयास भी नहीं किया। इसका बस एक ही उत्तर है कि मुस्लिम आक्रमणकारी अपहृत हिन्दू-भवनों में रहते थे और उसी महल में उन लोगों को गाड़ दिया जाता था जो उनके पाशविक अत्याचारों का प्रत्यक्ष गवाह भी है। यही कारण है कि उनके तथाकथित मकबरों में हिन्दू वास्तु-कला प्रत्यक्ष परिलक्षित होती है। अतएव स्पष्टतः जलालुद्दीन उसी महल में रहता था, जिसे हम आज हुमायूँ का मकबरा कहते हैं और खुसरो उसी के समीप स्थित

उसी महल में रहता था, जिसमें वह आज गड़ा पड़ा है। इस सच्चाई को समझ सकने के कारण लोगों ने भारतीय इतिहास तथा वास्तु-कला पुस्तकों में तथाकथित हिन्दू-अरबी वास्तु-कला की गण्य गढ़ने का प्रयास किया है। खुसरो की पृष्ठभूमि या उसके दुर्गुणों को बिना जाँचे और परखे अजानी लोग प्रति वर्ष उसके मकबरे पर एकत्रित होते हैं। उन्हें यह जान लेना चाहिए कि अमीर खुसरो भारत को इसलिए प्यार करता था कि आक्रमण-कारी मुसलमानों ने लगातार भारत का खून बहाया है। बड़ी उमंग के साथ वह भारत के 'ध्वार' के गीत गाता है क्योंकि इसकी 'भूमि को तलवार के पानी से पवित्र कर यहाँ से काफ़िरपन की गन्दगी दूर की गई है।'

इसी उहरीले दरबारी और चापलूस शायर अमीर-खुसरो को अनेक भारतीय रागों और सितार जैसे वाद्ययन्त्र के आविष्कार का श्रेय भी दिया जाता है। यह एक अनोखा उदाहरण है कि किस प्रकार मुसलमानों ने जो भारत में सिर्फ मृत्यु और विनाश ही लेकर आए, उन्हीं भवनों और दुर्गों के निर्माण का सेहरा अपने सिर पर बाँध लिया, जिसका उन लोगों ने अपहरण किया और उन्हीं रागों तथा वाद्ययन्त्रों का आविष्कार कर दिखाया जो पहले से ही मौजूद थे। 'सितार' संस्कृत शब्द 'सप्ततार' का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ होता है सात तारों वाला वाद्य-यन्त्र। इस धारणा के बारे में कि अमीर खुसरो ने कुछ रागों का आविष्कार किया है, वह जोर देकर कहा जा सकता है कि भारतीय संगीत और नृत्य कला अति प्राचीन काल से ही विकसित और परिपक्व होकर हमें प्राप्त हुई। पवित्र, निष्ठावान और सात्विक जीवन व्यतीत करने वाले मन्त्र-द्रष्टा हिन्दू कवियों और सन्तों ने इन गम्भीर कलाओं का विकास किया है। ठीक इसके विपरीत-मुस्लिम दरबारी जीवन अफीम, शराब, व्यभिचार और भ्रष्टाचार की कीचड़ में घँसा हुआ था। यहाँ तक कि अति प्रभावशाली छात्र भी ऐसे बातावरण में राग-साधना नहीं कर सकते। अतएव इस बात की ज़रूरत भी सम्भावना नहीं हो सकती कि कोई अमीर खुसरो इस प्रकार के गम्भीर शास्त्रीय रागों और अटिल वाद्य-यन्त्रों के आविष्कर्ता होने का दावा भी कर सकता है।

अतएव आज मंदिर धड़ले से पीढ़ी-दर-पीढ़ी इन झूठी बातों को पूरी तरह परखकर उनकी असत्यता का भण्डाफोड़ कर देना चाहिए और फिर उन्हें इतिहास की पुस्तकों से बाहर निकाल फेंकना चाहिए। ऐसी असंगत बातों को मानना मानव-विवेक का घोर अपमान है।

(मदर इण्डिया, अगस्त, १९६७)

: ११ :

अलाउद्दीन खिल्जी

मुस्लिम अत्याचार के हजारवर्षीय काले युग में जन्मा और पला प्रत्येक भारतीय मुस्लिम शासक, चाहे उसका कुछ भी नाम रहा हो, अकबर या औरंगजेब, अहमदशाह या अलाउद्दीन, वह बलात्कार, अत्याचार, कपट और दुष्टता का साक्षात् अवतार था। सभी एक-दूसरे से बढ़कर शैतान थे। इस सच्चाई को पहचानने के लिए सभी को साम्प्रदायिकता का चश्मा उतारकर उन्हें देखना, जाँचना और परखना होगा। फिर भी इस समान रूप से गन्दे और बीभत्स इतिहास के कुछ नाम साधारण जनता की चेतना पर अपने खूँखार कारनामों के कारण बड़ी बुरी तरह छापे हुए हैं। ऐसा ही एक नाम अलाउद्दीन खिल्जी का है जो अपनी भयंकर दुष्टता में साक्षात् जंगली हिंस पशु ही था।

जुलाई, १२६६ ई० में अलाउद्दीन ने दिल्ली से अपने चाचा और ससुर को लोभ-लालच देकर दूर कर्ग में बुलाकर उसकी हत्या कर दी। सुलतान जलालुद्दीन की हत्या का समाचार सुनकर उसकी पत्नी ने उसके सबसे छोटे पुत्र रुकनुद्दीन इब्राहिम को दिल्ली की गद्दी पर बैठा दिया। उस समय हिन्दू नारियों को सताकर बलात्कार करने तथा हिन्दू बालकों एवं निःशस्त्र पुजारियों की हत्या करने में अपनी धाक जमाने वाले जलालुद्दीन का बड़ा बेटा अरकली खाँ मुलतान की हवा खा रहा था।

अलाउद्दीन कर्ग से दिल्ली के लिए चला। गंगा और यमुना में बाढ़ घाई हुई थी। उस साल वर्षा का तीव्र वेग होने के कारण उसकी सेना की कीचड़ और दलदल में से होकर चलना पड़ा था। सावधानी से दिल्ली की ओर बढ़ता हुआ अलाउद्दीन शाही सेना एवं अरकली खाँ के विरोध के प्रति भी सचेत था। अरकली खाँ मुलतान में मुँह छिपाकर नहीं बैठता तो वह

वह अपने पिता जलालुद्दीन की गद्दी पर अपना दावा ही नहीं ठोकता बरन् अपने पिता की हत्या का बदला भी ले लेता। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अलाउद्दीन जैसे प्रेतान से तलवार टकराने का साहस उसमें नहीं था।

जलामुद्दीन की विधवा पत्नी मलिका-ए-जहान ने अपनी सेना एकजिह की ओर अलाउद्दीन की प्रगति रोकने उसे भेज दिया। मगर इस सेना को अविश्वसनीय पाकर वह छोटे सुलतान के साथ कायर अरकली खाँ की शरण में मुलतान भाग गई।

अलाउद्दीन को तूकटोर का बली जानकर सुलतान की भाड़े की सेना लड़ने को तत्पर न हुई। उधर अलाउद्दीन भी लड़ाई छोड़ना नहीं चाहता था। मृत सुलतान के अमीरों और मलिकों को अपनी ओर मिलाने के लिए, अपने कूच-काल में हिन्दू-घरों को उजाड़कर बटोरे गये धन और बिलसती हिन्दू-स्त्रियों का शीलभंग कर उनके नाक-कानों से नोचे हुए जवाहरातों को उसने उपहार स्वरूप बाँटना प्रारम्भ कर दिया।

सुलतान की हत्या और हत्यारे अलाउद्दीन के दिल्ली-सीमा प्रवेश के बीच पाँच महीने का समय व्यतीत हो चुका था। भयंकर भूल करने वाली इतिहास सम्बन्धी पाठ्य-पुस्तकें विशेष रूप से अलाउद्दीन की सीरी (श्री) और मुगल सम्राट् शाहजहाँ को पुरानी दिल्ली के निर्माण का श्रेय देती हैं। ये दोनों ही धारणाएँ—घाँखों में गड़ने वाली भयंकर ऐतिहासिक भूलें हैं। अक्षम और अपूर्ण फारसी लिपि में जिसे सीरी लिखा है वह वैभव की देवी "श्री" ही है जोकि एक संस्कृत शब्द है। धन की देवी के नामों पर स्थानों और नगरों का नाम रखने की परम्परा हिन्दुओं में थी। दिल्ली का यह 'श्री' भाग प्राचीन हिन्दू नगर-अंशला का ही एक भाग था। पुरानी दिल्ली में एकाएक प्रविष्ट होने का साहस न बटोर सकने के कारण अलाउद्दीन और उसके पूर्वज जलालुद्दीन ने इसी स्थान पर अपना तम्बू खड़ा किया था। बीस वर्ष के सारे शासनकाल में जिसके हाथ खून से चिप-चिप ही करते रहे, जिसने हिन्दुओं की पीठ में छुरा घोंपकर उनकी लाशों को कुत्तों को खिला देना अपना धर्म समझा, जिसने रक्त रंजित खाली हिन्दू महलों को अपने वाप-दादा की जागीर समझा, उस पापी अलाउद्दीन ने 'श्री' या तपोविषय भुवनेश्वर का एक भाग भी बनाना तो दूर रहा भारत भर में कहीं एक दीवार भी खड़ी नहीं की। वह इतिहास, जो उसे अनेक

महलों और नगरों के निर्माता होने का श्रेय देता है, सरासर बकवास करता है।

तारीखें फ़िरोजशाही में लिखा है—(वही, पृष्ठ १६०, पंख ३)—
"१२६६ ई० के अन्त में अलाउद्दीन ने एक बड़ी सेना लेकर बड़ी शानो-शोकत व तड़क-भड़क के साथ दिल्ली में प्रवेश किया। वह कुस्क-ए-तान (लाल-प्रासाद) की ओर बढ़ा जहाँ उसने निवास किया।" भारतीय इतिहास के विद्वानों और छात्रों को इतिहासकार बरनी के इस पर्यवेक्षण को पढ़कर एकदम जाग जाना चाहिए, तन्द्रा त्याग देनी चाहिए, घाँखें खोल लेनी चाहिए और डंके की चोट पर कह देना चाहिए कि वे अब अधिक मूर्ख नहीं बनेंगे। यह लाल-प्रासाद वही है जिसे हम आज दिल्ली का लाल-किला कहते हैं। ऐसी स्पष्ट स्वीकारोक्ति रहने के बावजूद भी हमारे इतिहासकार इस गण्य पर विश्वास करके मूर्ख बन रहे हैं कि लाल-किले का निर्माण १६वीं शताब्दी में मुगल सम्राट् शाहजहाँ ने किया था।

यह लाल-किला मुस्लिम-पूर्व का हिन्दू किला है। दिल्ली के प्रत्येक मुस्लिम विजेता ने इसमें निवास किया था। अतएव यह स्वीकार करना एक भयंकर भूल होगी कि पाँचवीं पीढ़ी वाले मुगल सम्राट् शाहजहाँ से पहले लाल-किले का अस्तित्व ही नहीं था। दिल्ली में लाल-किले के पर्यटकों को सरकार "ध्वनि और प्रकाश" में लाल-किले के वृत्त सुनाती है। ग़लत पाठ्य-पुस्तकों की परम्परा के अनुसार सरकार-संचालित लाल-किले का लेखा भी शाहजहाँ से ही प्रारम्भ होता है जबकि इसे कम से कम शाहजहाँ से १२०० वर्ष पूर्व से प्रारम्भ होना चाहिए क्योंकि प्रकबरनामा तथा अग्निपुराण दोनों ही यह स्वीकार करते हैं कि राजपूतों की तोमर जाति के हिन्दू राजा अनंगपाल ने ३७६ ई० में एक भव्य और आलीशान दिल्ली का निर्माण किया था।

मृत सुलतान के दरबारियों के विरोध-स्वर को शांत करने के लिए, छिनी हिन्दू सम्पत्ति और लूटे-भूषटे हिन्दू महलों को उपहारस्वरूप बाँटने के अलावा अलाउद्दीन ने उन्हें भारी-भरकम उपाधियों से भी विभूषित किया और ख्वाजा खातिर को वजीरे अजम बना दिया।

अलाउद्दीन के खास गुर्गे चार थे—उसका भाई उलुघ खाँ, नुसरत खाँ, अफ़र खाँ और साला अलप खाँ। इन चारों खाँनों ने जो कारनामा

कर दिखाया है वह किसी इन्सान का इतिहास नहीं बरन् एक हिंस्र पशु का जीवन-चरित्र है।

मुलतान में रहने वाले मृत सुलतान के पुत्रगण अलाउद्दीन की आँखों में काँटों की तरह खटक रहे थे। इसलिए उसने पहले इन लोगों से निपट लेने की ठानी। मृत सुलतान के बच्चों, पत्नियों, नौकरों, गुलामों और सहायकों को घेरने के लिए उसने उलुघ खाँ और जफर खाँ के अधीन एक विशाल बाहिनी तैयार की। जीवन की आशंका से कम्पित होकर उस अस-हाय दल ने आत्म-समर्पण की सूचना भेज दी। अलाउद्दीन ने भी उनको यथोचित आदर-सम्मान देने का वचन दे दिया।

अलाउद्दीन ने इस प्रकार के पूर्ण समर्पण की कल्पना भी नहीं की थी। दिल्ली में समाचार पहुँचने के साथ ही अलाउद्दीन ने एक विशेष समारोह करने की आज्ञा दी। मुलतान में इन लोगों को बन्दी बनाकर सैनिकों ने दिल्ली प्रयाण किया। मगर इस दल को बीच में ही रोक, उनके 'यथोचित आदर सत्कार' कर्म को विधिवत् पूरा करने का भार अलाउद्दीन ने नुसरत खाँ को सौंपा ताकि कोई भी सही-सलामत, बिना अंग-भंग के, दिल्ली पहुँचकर गिड़गिड़ाते हुए अलाउद्दीन से दया की भीख न माँग सके।

अलाउद्दीन की आज्ञा को लेकर नुसरत खाँ ने इस दल को दिल्ली के बाग़ पर स्थित एक सुनसान जंगल में रोका। इसके बाद क्रूर और गन्दे कामों की बिसमिल्लाह हुई। शाही बन्दियों के सारे स्वर्णभूषण और सम्पत्ति को नोच लिया गया। सुन्दर और जवान नारियों पर बलात्कार करने के लिए उन्हें अनग छोट लिया गया। शिशुओं और बूढ़ों को, जिन का कोई भी कामुक उपयोग नहीं था, हलालकर ठंडा कर दिया गया। मगर कुछ इने-गिने लोगों को जिन्दा छोड़ा भी गया तो तपती लोहे की शलाकाओं से उनकी आँखों को फोड़कर। मृत सुलतान जलालुद्दीन के एक दामाद उलुघ खाँ (उसके दामादों की संख्या अनगिनत थी), उसके अनेक पुत्रों, एवं सिपहसालारे आज़म अहमद चाप की आँखें फोड़ दी गईं। बाद में हलाल करने के लिए जलालुद्दीन के अन्ध पुत्रों को हाँसी के दुर्ग में भेज दिया गया। अहमद चाप को दिल्ली लाकर हथकड़ी तथा बेड़ी से जकड़कर उसी के परवर्ती महल के एक गन्दे तहखाने में फेंक दिया गया। अन्ध अरकली खाँ के सभी पुत्रों को हलालकर उनकी नुसरत पत्नियों और दासियों को

अलाउद्दीन और उसके दरबारियों के हरमों में हाँक लिया गया। एक मुसलमान अपने ही रक्त और मांस के निमित्त मुसलमान के ही साथ कितना नीच व्यवहार कर सकता था, उसका यह एक जीता-जागता उदाहरण है। काफ़िर तो रहे दर किनारे।

अपनी श्रेष्ठ और अतुलनीय दुष्टता के पुरस्कार-स्वरूप नुसरत खाँ को मुख्य मन्त्री का पद मिला। दिल्ली गद्दी के उत्तराधिकारियों के बीच अपना स्थान सुरक्षित देखकर अलाउद्दीन की चुनिन्दा दुष्टता का दूसरा चरण प्रारम्भ हुआ। उसने नुसरत खाँ को मृत सुलतान के उन सारे दरबारियों की सम्पत्ति छीन लेने की आज्ञा दी जिन्हें अपनी ओर मिलाने के लिए अलाउद्दीन ने रुपया लुटाया था। पाठकों को यह नहीं समझ लेना चाहिए कि ऐसी कुख्याति, कपट और क्रूरता सिर्फ अलाउद्दीन की ही बपोती थी। कासिम से लेकर उसके वंशजों ने दुष्टता की जो एक परम्परा कायम की थी, अलाउद्दीन उसी परम्परा का पालन कर रहा था। फ़र्क सिर्फ इतना ही था कि बरनी ने संयोग से अलाउद्दीन की शैतानियत के खूनी वर्णन को प्रशंसा में कुछ अधिक पन्ने रंग डाले, जबकि अपने स्वामी की लूट में हिस्सा बँटाने वाले इन मुस्लिम इतिहासकारों ने दूसरे मुस्लिम शासकों के क्रूर कर्मों के विवरण को जहाँ-तहाँ छोड़कर और अपनी समझ से लीपा-पोती कर स्वामी-चाटुकारी में ही समय गँवाया है।

अलाउद्दीन की ताजपोशी के एक वर्ष के भीतर ही एक विशाल मुगल सेना सिन्धु पारकर पंजाब को रौंदने लगी। बढ़ते मुगलों को रोकने के लिए अलाउद्दीन ने एक सेना भेज दी। जालन्धर के समीप संग्राम हुआ। बिजयी मुस्लिम सेना ने हाथ में आए सारे मुगलों का सिर काट फेंका। गर्घों और ऊँटों पर लादकर इन कटे मुण्डों को अलाउद्दीन के पास पार्सन कर दिया गया, जिसके लिए ये सड़े-गले सिर उसकी बिजयी बाहुओं की डालियों में खिले मधुर सुगन्ध देने वाले लाल गुलाब के फूलों जैसे थे। अफ़्रीका की जंगली जाति भी अपने शत्रुओं की खोपड़ियों की माला पहनकर इठलाती फिरती है। उन लोगों की सभ्यता की यही निशानी है।

जालन्धर जाते और वापिस आते समय मार्ग में मिलनेवाले हिन्दू घरों और नगरों को लूटकर अलाउद्दीन की सेना काफ़ी माल भी बटोर लाई थी। सारे हिन्दू मन्दिरों को मस्जिद बना, गौओं को काट, हिन्दू नारियों

जाने से बचा सका। यह विद्रोह तभी काबू में आया जब नुसरत खाँ ने यह आश्वासन दे दिया कि वह हिन्दू लूट की और अधिक छानबीन नहीं करेगा। मगर इस उषल-पुषल का लाभ उठाकर अनेक हिन्दू बन्दी दूर-स्थित हिन्दू सरदारों की शरण लेने भाग निकले।

हिन्दू-लूट, हिन्दू-गुलाम तथा कुचली-भसली हिन्दू नारियों का पासल लेकर सेना पहुँची ही थी कि इस विद्रोह की सूचना से क्रोधित होकर अलाउद्दीन ने विद्रोह में भाग लेने वाले सारे लोगों की स्त्रियों और बच्चों को जेल में सड़ा डालने की आज्ञा प्रसारित कर दी। इस आज्ञा का साफ़ मतलब यही था कि मुस्लिम भेड़िये बड़े प्रेम से उन नारियों की इज्जत लूट सकते हैं।

अलाउद्दीन का इशारा भाँपकर नुसरत खाँ ने, जो अपने भाई की हत्या का बदला लेने के लिए छुटपटा रहा था, आज्ञा दी कि "हत्याओं की पत्नियों की बेइज्जती करके उनके साथ भयंकर दुर्व्यवहार किया जाय, तदुपरान्त उन लोगों को दर-दर भटकने वाली वेश्या बनाने के लिए दुष्ट पुरुषों को सौंप दिया जाय। उसने बच्चों को उनकी माताओं के सिर पर रखकर कटवा डाला। इस प्रकार का अपमान किसी भी धर्म या मत में कभी नहीं हुआ है।" (वही, पृष्ठ १६४-६५, ग्रंथ ३)।

मुसलमान होते हुए भी बरनी ने यह सत्य ही लिखा है कि इस्लाम को छोड़कर संसार के और किसी भी धर्म में मातृत्व का ऐसा अपमान नहीं हुआ है। सामूहिक रूप से नारियों के साथ बार-बार बलात्कार करना, लाखों नागरिकों की नजरों के सामने, खुले मैदान में उनके सिर पर उनके बच्चों को रखकर काट डालना और ऐसी वीभत्स बर्बरता से अपना मनोरंजन करना अलाउद्दीन तथा नुसरत खाँ के दिमाग की ही विशेषता नहीं थी; हिन्दुस्तान के मुस्लिम शासनकाल के हजार वर्षों में से एक भी दिन ऐसा नहीं गुजरा जब दिन में सूर्य ने तथा रात्रि में तारों ने इन पाशविक अत्याचारों को न देखा हो। इन्हीं कारणों से इनका नाम 'प्लेच्छ' सार्थक होता है।

गुजरात के बलात्कार के बाद ही मुगलों के हाथ से सीबीस्तान (शिव-स्थान) को छीनने की आज्ञा जफर खाँ को मिल गई। जफर खाँ ने घेरा शरकर दुर्ग को तबाह कर डाला। उसने हजारों सैनिकों, उनकी पत्नियों

और उनके बच्चों के साथ मुगल सरदार सालवी और उसके भाइयों को जंजीरों में जकड़कर दिल्ली भेज दिया। इन लोगों के साथ दो ही प्रकार का व्यवहार होता था—या तो उनको मारकर भस्म कर दिया जाता था या फिर हाथ, पैर, आँख तोड़-फोड़कर उन्हें अपंग और णंग बना दिया जाता था। बच्चों को गुलाम और अगर मुसलमान नहीं हुए तो उन्हें मुसलमान बनाकर उनसे भी दो ही काम लिये जाते थे—गुदा-भंजन और गृह-रंजन। स्त्रियों के साथ सामूहिक रूप से बलात्कार किया जाता था, जिसके शेर होल्डर होते थे मुस्लिम दरबारी, उनके गिरोहपति शाह-जादे, सुलतान और काजी। उसके बाद उन लोगों को वेश्यालय के कचरे में फेंक दिया जाता था। कौन उन लोगों के खाने-पीने का खर्च बरदाश्त करे?

इस अभियान में जफर खाँ ने काफ़ी दाम कमाया। उससे आतंकित होकर मुगल मुसलमानों को हराने का विचार छोड़ बैठे। स्पष्टतः कपट और दुष्टता में जफर खाँ मुगलों से सबाया था। अलाउद्दीन का भाई उत्तुष खाँ जफर खाँ के इस बढ़ते प्रभाव से चिढ़कर उसकी शक्ति की काट-छाँट करने के लिए अलाउद्दीन के कान भरने लगा।

मुसलमानों में कृतज्ञता नाम की चीज न होने के कारण, अलाउद्दीन भी जफर खाँ को दूर लखनौटी अभियान पर भेजकर, "जहर देकर या आँखें फोड़कर रास्ते से निकाल फेंकने का" विचार करने लगा। (वही, पृष्ठ १६५, ग्रंथ ३)।

सिन्ध की पराजय के प्रतिकार के लिए क्रोधित मुगल एक विशाल-बाहिनी लेकर मावारून नहर से निकले। इनका सरदार कटलघ खाँ था। कुछ लोग इसे अमीर दाऊद खाँ का पुत्र मानते हैं, तो कुछ जुद का। यानी वह संभवतः वर्ण-संकर था क्योंकि मुस्लिम आक्रमणकारियों के फलते-फूलते हरम में बच्चों का प्रतिशत प्रायः संदेहास्पद ही होता था। आश्चर्य-जनक तीव्रता से कूच करती मुगल फ़ौज दिल्ली के बाहर तक आ पहुँची। "दिल्ली में गम्भीर चिन्ता फैल गई; पास-पड़ोस के गाँवों के नागरिकों ने दिल्ली की दीवार के भीतर शरण ली।" एक बार फिर यहाँ पुरानी दिल्ली का वर्णन किया गया है। फिर भी लोगों को वही रटाया जाता है कि इसके ३०० वर्ष के बाद मुगल सम्राट शाहजहाँ ने इसकी नींव डाली थी।

अलाउद्दीन "(पुरानी) दिल्ली से बाहर निकला और उसने सीरी (श्री) में अपना खेमा लगाया।" अनेक कुलीनों ने अलाउद्दीन को यह सलाह दी कि उसे शक्तिशाली मुगलों से सन्धि कर लेनी चाहिए। मगर हरम की औरतों के बीच अपनी प्रतिष्ठा से चिन्तित अलाउद्दीन ने उत्तर दिया—“मगर मैं तुम्हारी सलाह मान लूँ तो मैं अपना मुँह किसे दिखाऊँगा? मैं अपने हरम में कैसे जा सकूँगा? कुछ भी हो, कल मैं कीली के मैदान के लिए कूच करूँगा।” यह कीली वही है जिसे आज लोग अम और भूल से तुगलकाबाद का किला कहते हैं। यह प्राचीन युक्त नगर-दुर्ग मुसलमानों के आगमन के पूर्व से ही विद्यमान था। कुछ दिन तक यहाँ निवास करने के कारण मुस्लिम अपहर्ता तुगलक ने इसे अपने नाम में स्यान्तरित कर दिया था। अलाउद्दीन ने श्री से किले की ओर कूच किया, जिसे प्रथम और अपूर्ण फारसी लिपि में सीरी और कीली लिखा गया है। परवर्ती धनधोर संशय में जफर खाँ ने चूर होती मुस्लिम सेना का उत्साह बढ़ाने के लिए एड़ी-चोटी का जोर लगाया। मुगल-विजेता होने की अपनी पूर्ववर्ती ख्याति को कायम रखने के विचार से जफर खाँ के अर्ह ने उसकी बुद्धि को नष्ट कर दिया। वह मुगलों के बीच घुस गया और वहीं मारा गया। हालाँकि नाम के लिए मुगलों की जीत जरूर हुई मगर उन लोगों को इतनी अधिक क्षति उठानी पड़ी कि और अधिक समय तक वे शत्रु-क्षेत्र में ठहरने की हिम्मत नहीं कर सके। अतएव वे लोग वापिस लौट गए।

यह मुगल आक्रमण अलाउद्दीन के लिए वरदान प्रमाणित हुआ। उनके प्रतिजयन से राक्षस-हन्ता के रूप में अलाउद्दीन की ख्याति ही नहीं बढ़ी बल्कि बिना किसी विरोध और निन्दा का भागी बने उसे उस जफर खाँ से मुक्ति भी मिल गई जो उसकी गद्दी के लिए एक भयंकर खतरा बन रहा था।

अलाउद्दीन की सेना अब नये-नये हिन्दू क्षेत्रों को लूटकर नये गुलामों, नये मुसलमानों, नई हिन्दू नारियों और असीम सम्पत्ति को लूटने के लिए हिन्दुस्थान के विभिन्न भागों में फैल गई। पाप और दुराचार से अपने बढ़ते साम्राज्य को तथा काम-तुष्टि के लिए हिन्दू नारियों से लदी गाड़ियों को अपने द्वार पर प्रतिदिन जमा होते देख, अत्यन्त सन्तुष्ट होकर अला-

उद्दीन व्यभिचार में आकण्ठ डूब गया। बरनी के अनुसार “प्रतिषेध उसके यहाँ दो-तीन पुत्र उत्पन्न होते रहते थे।” निश्चय ही पुरुषों की संख्या की तो कोई गिनती ही नहीं थी।

बरनी हमें बताता है कि अपनी अज्ञानता और निरक्षरता के कारण अलाउद्दीन का दिमाग धूम गया और वह पैगम्बर मुहम्मद बनने का स्वप्न देखने लगा। अलाउद्दीन यह डींग हँका करता था कि—“सर्वशक्तिमान अल्लाह ने पैगम्बर को चार दोस्त दिए, अल्लाह ने मुझे भी चार दोस्त बख्से—अपने चारों दोस्तों की सहायता से मैं एक नया धर्म और मत चला सकता हूँ। मेरी और मेरे दोस्तों की तलवारें इसे स्वीकार करने के लिए सभी लोगों को खींचकर ला सकती हैं।” (पृष्ठ १६६, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)। मगर अलाउद्दीन इसमें सफल नहीं हो सका अन्यथा संसार भर के लोगों को धर्म के नाम पर उस खूंखार बबरता की चक्की में पीसकर रख दिया जाता, जिस खूंखार बबरता पर अलाउद्दीन से पहले और उसके बाद सिर्फ उन्हीं लोगों का पाशविक एकाधिकार रहा जो इस्लाम के नाम की क्रसमें खाने में होशियार थे।

अपने धनवान बने दरबारियों के जोड़-तोड़ बैठाने वाले शराबखोर गुटों से अब अलाउद्दीन को दुरभिसन्धि की गन्ध आने लगी। उसने शराब पर प्रतिबन्ध लगाकर यह आदेश जारी कर दिया कि कोई भी दरबारी बिना सुलतान की आज्ञा और जानकारी के एक-दूसरे से मिलने, एक-दूसरे के घर नहीं जा सकता। प्रत्येक दरबारी को उसने नजरबन्द-सा कर दिया। शराब पीने की पूरी मनाही हो गई। इस प्रतिबन्ध को असफल होना था ही। स्वयं नम्बरी शराबी होने के कारण उसे इसकी खुली अवज्ञा सहन करनी पड़ती थी। बाद में उसे मिलने-जुलने वाला प्रतिबन्ध भी उठाना पड़ा।

अलाउद्दीन ने अब पर्वतीय गढ़ रणथम्भोर को चकना-चूर करने की ठानी। वीर पृथ्वीराज चौहान के वंशज हम्मीरदेव इसके शासक थे। दो मुस्लिम राक्षस उलुघ खाँ और नुसरत खाँ ने इस गढ़ को घेर लिया (१२६६-१३०१ ई०)। मिट्टी का ऊँचा ढेर बनाने के लिए जब एक दिन नुसरत खाँ दुर्ग की दीवार के समीप आया तब हिन्दू सैनिकों ने दुर्ग से एक विशाल चट्टान लुढ़काकर उसे जमीन पर सुला दिया। दो दिन की बेहोशी के बाद वह सदा के लिए सो गया।

अपने चार सहायकों में से एक की मृत्यु से अत्यन्त घातंकित होकर अलाउद्दीन दिल्ली से रणथम्भोर आया। उसके वहाँ पहुँचने के साथ ही उसके मार्ग पर चलते हुए, उसके भतीजे अकत खाँ ने विद्रोह का आयोजन किया और एक शिकार अभियान में अलाउद्दीन पर प्रहार कर उसे जकड़ी कर दिया। उसे मृत जानकर अकत खाँ अपने तम्बू में वापिस लौट आया और अपने प्रापको सुलतान घोषित कर दरबारियों का समर्थन प्राप्त करने के लिए उपहारों की वर्षा करने लगा।

अपने दरबारियों पर भरोसा न होने के कारण अलाउद्दीन कुछ दूर पर स्थित अपने भाई उलुघ खाँ के तम्बू में चला गया। उसकी वापिसी से बागियों के पड़ाव में खलबली मच गई। वह भयंकर प्रतिशोध लेने वाले सुल्तान के रूप में कुख्यात था। आतंक से अकत खाँ नौ-दो ग्यारह हो गया। बड़ी दौड़-धूप के बाद अलाउद्दीन ने अकत खाँ और उसके भाई कटलख खाँ को मौत के घाट उतारा। इसके बाद अकत खाँ के सिर को एक भाले पर लौंकर सेना में चारों ओर घुमाया गया। इसके बाद प्रसिद्ध मुस्लिम परम्परा के अनुसार उसने उस सिर का विशेष प्रदर्शन करने के लिए दिल्ली भेज दिया।

दिल्ली से अलाउद्दीन की अनुपस्थिति का लाभ उठाते हुए उसके भानजे उमर और मंगू खाँ ने एक विद्रोह की सृष्टि कर दी। इस विद्रोह की कमर तोड़ दी गई। रणथम्भोर के समीप अलाउद्दीन के तम्बू में दोनों को गिरफ्तार करके लाया गया। बरनी बताता है—“सुलतान के क्रूर और अदम्य क्रोध ने अपने भानजों को भी क्षमा नहीं किया। उसने अपनी नजरों के सामने उन दोनों को सजाएँ दीं। तरबूज की फाँक की भाँति एक चाकू से उनकी छाँसों को निकालकर उन्हें अन्धा कर दिया गया।” (वही, पृष्ठ १७५, ग्रंथ ३)। इसके बाद उसने उनके परिवार के लोगों और उनके हुरम की नारियों को व्यभिचारी कुलीनों में बाँट दिया।

इस विद्रोह के बाद ही दिल्ली के कोतवाल के एक गुलाम हाजी मौला का विद्रोह हुआ। स्पष्ट रूप से यह गुलाम पहले एक हिन्दू था। अलाउद्दीन से अधिकार-पत्र पाने का बहाना कर वह पदासीन कोतवाल के पास गया। ज्योंही कोतवाल उससे मिलने अपने घर से बाहर निकला उसने उसे नीचे पटक, उसका सिर उतार लिया। एक दूसरे विदेशी दरबारी

अज्जज को भी बारी मौला हाजी ने बुलवाया। मयभीत अज्जज अपने घर से बाहर नहीं निकला। साथ ही उसने अपना पहरा भी दुगुना कर दिया।

परवर्ती वर्णन में इतिहासकार बरनी (वही, पृष्ठ १७६-७७, ग्रंथ ३) एक बार फिर लाल-किले और उसके भीतर के तथाकथित दीवाने खास के छज्जों तथा भरोखों का वर्णन करता है। इस प्रकार के पुष्ट प्रमाणों के होते हुए भी भारतीय इतिहास की पाठ्य-पुस्तकें लोगों के कानों में बार-बार यही घंटी बजाती हैं कि इसके तीन सौ वर्ष बाद शाहजहाँ ने लाल-किले और पुरानी दिल्ली का निर्माण किया है। बरनी कहता है—“हाजी मौला तब लाल प्रासाद की ओर बढ़ा और वहाँ एक छज्जे पर बैठकर सभी कैदियों को मुक्त कर दिया। खजाने से स्वर्ण टंकाओं की चेलियाँ-ला-लाकर लोगों में छितरा दी गईं। शस्त्रागार से शस्त्र एवं शाही अस्त-बल से थोड़े लाकर बागियों में बाँटे गए। (सुलतान शम्सुद्दीन का पोता और अली का वंशज अलावी दिल्ली में रहता था) लाल प्रासाद से घुड़-सवारों का एक दल लेकर मौला हाजी अलावी के घर से उसे धसीट लाया और लाल प्रासाद की गद्दी पर बैठा दिया।” (वही, पृष्ठ १७६)।

चार दिन के बाद ही अलाउद्दीन का एक गुर्गा सेना के साथ गजनी द्वार से होकर पुरानी दिल्ली में घुस आया। पुरानी दिल्ली की सड़कों और गलियों में भयंकर मार-काट मच गई। हाजी मौला मारा गया। बाकी बारी लाल प्रासाद में घुस गये। अलावी का सिर काटकर और एक भाले पर टाँगकर सारे शहर में घुमाया गया। खूनी मुस्लिम शासन के हजार वर्षों तक दिल्ली के अभागे नागरिकों का प्रायः हर रोज ऐसा वीभत्स मनोरंजन किया जाता था।

रणथम्भोर को घेरने वाली अलाउद्दीन की सेना बड़े संकट में थी। अपने बार-बार के आक्रमणों से वीर राजपूतों ने शत्रुओं को काफ़ी क्षति पहुँचाई थी। उधर कपटी और दुराचारी मुस्लिम सेना ने ग्रामीण क्षेत्रों में लूट-पाट मचाकर ऐसी नोच-छोंच की कि सारा ग्रामीण अन्न-धन उनके पेट में समा गया था। परिणामस्वरूप दुर्ग-रक्षकों का आपूर्ति-स्रोत संकट-ग्रस्त हो गया था।

फिर भी मुस्लिम सेना में हाथ-तोबा मची ही रही। तब दिल्ली के

मूंह में यह गन्दगी फैकना (और उसे खाना) मुकादमों (नजराना भुगतान करने वालों) से अपेक्षित होनता की स्वीकृति है। इस्लाम का गौरव बढ़ाना (हमारा) कर्तव्य है—अल्लाह उन लोगों से (यानी काफ़िरों से, हिन्दुओं से) घृणा करता है क्योंकि वे कहते हैं—उन लोगों को कुचलकर रखो। हिन्दू लोगों को दबाकर रखना हम लोगों का खास धार्मिक कर्तव्य है क्योंकि ये लोग पैगम्बर के कट्टर शत्रु हैं। पैगम्बर ने हमें उन लोगों को हलाल कर देने, तूट लेने और बन्दी बना लेने की आज्ञा दी है क्योंकि पैगम्बर ने कहा है—‘उन लोगों को इस्लाम में बदल दो या हलाल कर दो अथवा गुलाम बनाकर उनकी धन-सम्पत्ति को नष्ट कर दो’—उस महान् उपदेशक (हानिक) ने जिनकी विचारधारा हम लोग मानते हैं, हिन्दुओं पर जजिया लगाने की स्वीकृति दी है। दूसरी विचारधाराओं के उपदेशकों ने सिर्फ़ एक ही विकल्प को माना है—‘मृत्यु या इस्लाम’।”

अच्छी तरह से समझने के लिए इस उद्धरण को दो बार पढ़ना चाहिए। यह उद्धरण पूरी तरह से इस्लाम के उस जुल्म को प्रकट करता है, जो उसने अपने जन्म से ही इन सारी शताब्दियों के बीच भारत और सारे संसार पर डाला है। वार्ता आगे बढ़ती है—

“सुलतान ने अपनी ओर से कहा—‘ओह! काज़ी, तू बहुत बड़ा विद्वान् है—यह एकदम कानून के अनुसार है कि हिन्दुओं को कुचलकर और दबाकर रखना चाहिए—हिन्दू लोग तबतक हुक्म नहीं मानेंगे, समर्पण नहीं करेंगे जबतक कि उन लोगों को एकदम गरीब न बना दिया जाये। इसलिए मैंने यह आज्ञा प्रसारित कर दी है कि हर वर्ष उन लोगों के पास सिर्फ़ गूदारे भर के लिए ही अनाज, दूध और दही छोड़ा जाये—जिससे वे लोग न कभी सम्पत्ति जमा कर सकें और न संगठित हो सकें।” (पृष्ठ १८५, ग्रन्थ ३, इलियट एवं हाउसन)।

“रणपम्भोर से लौटने के बाद सुलतान (दिल्ली की) प्रजा के साथ बड़ी बुरी तरह पेश आया और उन्हें अच्छी तरह निचोड़ा।” (वही, पृष्ठ १८८)। उसी रात मार्ग में ही मर गया था।

१३०३ ई० में अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी थी। रति के समान सुन्दर सौन्दर्य देवी चित्तौड़ की रानी पद्मिनी को पाने की लालसा उसके मन में थी। मुस्लिम सेना पर भयंकर प्रहार करते हुए वीर राज-

पूतों ने दुराचारी मुस्लिम शत्रुओं को अतुलनीय क्षति पहुँचाई। इसी बीच अलाउद्दीन को चित्तौड़ में व्यस्त पाकर मुगलों ने दिल्ली पर धावा बोल दिया। घेरा डालने के एक महीने के भीतर अलाउद्दीन को चित्तौड़ से घेरा उठाकर मुगल आक्रमणकारी तुरघ खाँ का सामना करने दिल्ली भागना पड़ा। मुगलों से युद्ध करने के लिए अलाउद्दीन तैयार नहीं था। उसकी उत्तम सैन्यवाहिनी को राजपूतों ने चित्तौड़ में ही काट फेंका था। अतएव यह संयोग की ही बात थी कि उसे आते देख मुगल आक्रमणकारी दिल्ली हथियाने से निराश हो वापिस भाग गये।

ठीक इसी समय अलाउद्दीन के कपट और दुराचार से ऊबकर दिल्ली के उपनगर मुगलपुरा में रहने वाले नये मुसलमानों ने विद्रोह कर दिया। चालीस हजार आदिमियों की हत्या कर अलाउद्दीन ने इसका भयंकर प्रति-शोध लिया। इसके कुछ महीने के बाद ही हत्यारे अलाउद्दीन ने अगस्त, १३०३ ई० में इसे जीता। दुर्ग में मुस्लिम सैनिक रखकर उसने नाम के लिए इसकी गद्दी पर भालोर राज्य-परिवार के सबसे छोटे सदस्य मालदेव को बैठा दिया।

यह कहा जाता है कि चित्तौड़ पर अपने प्रथम आक्रमण के दौरान जब अलाउद्दीन की चित्तौड़-विजय की सारी आशाएँ धूल में मिल चुकी थीं, शासक राणा भीमसिंह के पास उसने यह समाचार भेजा कि वह दर्पण में पद्मिनी की एक झलक देखकर सन्तुष्ट हो, घेरा उठा, दिल्ली लौट जाएगा।

दर्पण में पद्मिनी की एक झलक देखने के बाद उसकी लालसा और भड़क उठी। उसने धोखा देने की गाँठ बाँध ली। अपने अतिथियों का पूरा मान-सम्मान करने वाले उदार राजपूतों ने दुर्ग के बाहर तक अलाउद्दीन का साथ दिया। राजपूत शासक राणा भीमसिंह स्वयं अलाउद्दीन के साथ उस के तम्बू तक आया। कपटी और मायावी अलाउद्दीन ने राणा भीमसिंह को उसके अंगरक्षकों के साथ गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद उसने दुर्ग में यह समाचार भेज दिया कि यदि पद्मिनी उसे नहीं सौंपी गई तो सारे साथियों के साथ राणा भीमसिंह को तड़पा-तड़पाकर मार डाला जायेगा।

इसके उत्तर में वीर राजपूतों ने एक साहसी योजना बनाई। उन्होंने

अलाउद्दीन के पास यह समाचार भेज दिया कि अपनी अन्य राजपूत दासियों के साथ पश्चिमी अलाउद्दीन के तम्बू में पहुँचा दी जायेगी।

इसके बाद दासियों के बदले वीर, प्रवीण और सशस्त्र राजपूत छिपकर पालकियों में बैठ गये। सात सौ पालकियों का यह कारवाँ जब अलाउद्दीन के पड़ाव के पास पहुँचा तब अलाउद्दीन से यह निवेदन किया गया कि अन्तिम बिदाई लेने के लिए पश्चिमी को राणा भीमसिंह से मिलने का कुछ समय दिया जाये।

अपने द्वार पर उपस्थित ७०० राजपूत 'रमणियों' के साथ भावी काम-कैलि की कल्पना से अत्यन्त आनन्दित होकर अलाउद्दीन ने राणा भीमसिंह को मुक्त कर दिया। राणा भीमसिंह ज्यों ही राजपूत-कारवाँ के पास पहुँचे, बुनिन्दा वीर राजपूतों की सुरक्षा में उन्हें चित्तौड़ भेज दिया गया। साथ ही अन्य राजपूत वीरों ने अपना-अपना छप्पवेश उतार फेंका और 'जय एकलिंग' की गर्जना के साथ हिन्दू रोष से अलाउद्दीन के पड़ाव पर टूट पड़े, सनेक शतान्दियों से हिन्दुस्तान को लूटने, बरबाद करने और प्रपन्नानित करने वाले तुर्कों, अरबी, अफगानी, अबीसीनियायी आदि मुन्कों के सिर और घड़े गाजर-मूली की तरह काट-काटकर फेंकने लगे।

मुस्लिम दुष्टता के घोर अन्धकार में सूर्य की भाँति चमकती वीर राजपूतों की देशभक्ति की इस मध्यकालीन वीर-गाथा में दो वीर राजपूत नक्षत्रों की भाँति चमक उठे। उसी समय से वे दोनों वीर पौराणिक हो गये। इनकी देशनिष्ठा और इनका महान् वलिदान राजस्थान के लोकगीतों में प्रसर हो गया। वे दोनों गोरा और बादल थे। चित्तौड़ के राज्य-परिवार से गठ-बन्धन होने के बाद ये दोनों पश्चिमी के साथ लंका से आए थे। ये दोनों राणा भीमसिंह के सुरक्षा दल में थे। ज्यों ही अलाउद्दीन के खेमे में यह आवाज गूँजी कि राणा भीमसिंह भाग रहे हैं, त्यों ही उनके साथ जाने जाने सुरक्षा दल का पीछा किया गया। उस लड़ाई में जिस भी मुसलमान ने इन दोनों के पास जाने का साहस किया, गोरा और बादल ने उन्हें काटकर फेंक दिया। इसपर राणा भीमसिंह सुरक्षित और सकुशल दुर्ग में प्रविष्ट हुए, उधर रक्त बहते घावों और घाघातों के बीच पहाड़ की तरह खड़ा ये दोनों वीर संज्ञाहीन होकर दुर्ग द्वार पर ही गिर पड़े। देवी कार्य की निष्ठापूर्वक सम्पन्न करने वाली तूफ़्त स्वर्गीय मुस्कान उन दोनों के घघरी पर कीड़ा कर रही थी।

राजपूतों ने अलाउद्दीन को दर्पण में पश्चिमी का सौंदर्य देखने की अनुमति दे दी थी, यह विचारधारा एकदम बे-सिर-पैर की अफ़वाह है। इस अफ़वाह की कल्पना एक मुस्लिम कवि जायसी ने की थी। राणा भीमसिंह ने अपनी पत्नी पर किसी भी नीच मुसलमान की तज़र कभी पड़ने नहीं दी। अलाउद्दीन ने चित्तौड़-विजय से निराश होकर नाक बचाने के लिए आत्म-समर्पण और सन्धि की सलाह दी थी। पश्चात्ताप के वहाने वह भीमसिंह को सन्धि की बातचीत करने अपने तम्बू तक ले आया था। उसने कुरान की कसमें खाई थी कि उसका इरादा धोखा देने का नहीं है। स्वभावगत हिन्दू सादगी और वीरता की परम्परा के अनुसार राणा भीमसिंह, जो मुसलमानों की कपटी माया के पूर्ण जानकार नहीं थे, कपट-जाल में फँस गये। थोड़े-बहुत अंग-रक्षकों के साथ अलाउद्दीन के तम्बू तक चले आए। तुरन्त ही मुसलमान उनपर भपट पड़े और उन्हें बन्दी बनाकर यह समाचार चित्तौड़ भेज दिया कि अन्य रमणियों के साथ अगर पश्चिमी चित्तौड़ का सारा धन और स्वर्ण लेकर उसके पास नहीं आएंगी तो भीमसिंह को मुक्त नहीं किया जायेगा। इसी का प्रतिकार लेने के लिए वीर राजपूतों ने, उसके द्वार पर उसकी माँग के अनुसार, ७०० नारियों की डोलियाँ भेजने के वहाने, ईंट का जवाब पत्थर से दिया।

इस संग्राम में नाक कटवाकर ही अलाउद्दीन को मुगल आक्रमण-कारियों का सामना करने दिल्ली जाना पड़ा था। मगर अपने व्यभिचार की धधकती प्यास बुझाने वह पुनः पश्चिमी की खोज में दिल्ली से चित्तौड़ आया। अपने पूर्ववर्ती अभियान में उसने क्षेत्रीय राजपूतों को मुसलमान बना डाला था। इन्हीं नये मुस्लिम राजपूतों को उसकी सेना में आगे होकर एक विदेशी दुष्ट के लिए अपने ही भाई-बन्धुओं से लड़ना पड़ा। सोमवार २६-५-१३०३ ई० को चित्तौड़ का पतन हुआ। मगर मुस्लिम सेना के दुर्ग के भीतर पहुँचने से पूर्व ही, इस्लामी पीड़ा और शिकार के तरक में जाने के बदले, राजपूत रमणियाँ सती हो गईं। राख में हाँ मलते हुए हताश, आवेश में अलाउद्दीन ने दुर्ग के हजारों बच्चों और वृद्धों का रक्त बहाया।

१३०५ ई० में ऐबक खाँ के अधीन एक दूसरी मुगल सेना ने भी पर आक्रमण कर दिया। मुलतान को लूटने के बाद ये लोग दक्षिण

और बड़े शहर अलाउद्दीन का क्षेत्रीय प्रतिनिधि गाजीवेग तुगलक अचानक इन भुगलों पर झड़ पड़ा। नर-संहार में कटी लाशें छोड़कर भुगलों को भागना पड़ा। जिन भुगलों को बन्दी बना लिया गया था उन लोगों को पुरानी दिल्ली और श्री की सड़कों पर हाथियों से कुचलवा दिया गया। इस घटना ने मुगल इतने भयभीत हो गये कि काफ़ी दिन तक इधर नज़र फेरने की उनकी हिम्मत नहीं हुई।

१२०६ ई० में दक्षिण को लूटने के लिए मलिक काफ़ूर के अधीन अलाउद्दीन ने एक सैनिक अभियान की आयोजना की। गुजरात में स्थित एक दूसरे सेनापति अजय खों को भी सर्वेसर्वा मलिक काफ़ूर से जा मिलने का आदेश भेज दिया गया। इस बहाने से कि देवगिरी के राजा रामदेव राय ने वार्षिक नजराना नहीं भेजा है, देवगिरी को घेरकर ध्वस्त कर दिया गया। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह थी कि अपने गुजरात अभियान में अलाउद्दीन राजा करण की पत्नी पर ही बलात्कार कर सका था। उसकी पुत्री ने अपने पिता के साथ देवगिरी जाकर शरण ली थी। इस बार उसे पकड़कर मलिक काफ़ूर ने अलाउद्दीन के पापी और दुराचारी पुत्र खिज़्र खों के हarem में भेज दिया। सारा महाराष्ट्र रोड़ा गया। अनेक मन्दिर, मस्जिदों में बंदन दिए गये तथा कुशों, सड़कों, धर्मशालाओं आदि अनेक विजित भवनों के शारे में बड़े जोर-शोर के साथ झूठ-मूठ यह लिख दिया गया कि इनका निर्माण अलाउद्दीन ने पल भर में 'मानो जादू से' कर दिया। यह मुस्लिम झूठ एक आम बात थी।

१२०६ ई० में अलाउद्दीन ने आन्ध्र की राजधानी वारंगल को लूटने की आज्ञा मलिक काफ़ूर को दी। इसके शासक नरपति का दमन कर सारे आंत को लूट-खसोटा गया।

१२१० ई० में मलिक काफ़ूर बल्लाल राजाओं की राजधानी द्वार-समुद्र पर चढ़ बैठा। मुस्लिम युद्धों के एक ही धक्के से इस राज्य का अन्त हो गया। उसके बाद मलिक काफ़ूर बिना किसी विरोध के दक्षिण भारत के भीतर तक प्रविष्ट हो गया। कहानियों जैसी कल्पनालीत अजय खों से कहा मलिक काफ़ूर एवं अन्य मुस्लिम सेनापति ६१८ हाथी, २०,००० घोड़े, १५,००० मन स्वर्ण तथा अन्य कीमती हीरे-जवाहरातों के साथ दिल्ली वापिस लौटे। सारी लूट का यह पाँचवाँ ही भाग था जो

शाही हिस्सा था। शेष चार भाग मुस्लिम सैनिकों का हिस्सा था। सारी लूट की कल्पना पाठक स्वयं करें।

अलाउद्दीन की सेना ने भारत के एक विशाल भाग पर भाड़-सी फेर दी थी। इसके पूर्व १२०५ ई० में मध्य-भारत के माण्डवगढ़, उज्जैन, धार और चन्देरी को वह लूट चुका था।

देवगिरी के राजा रामदेव राय को दिल्ली में अलाउद्दीन के सामने नतमस्तक होने के बाद देवगिरी वापिस लौटने की अनुमति दे दी गई। लज्जा और पीड़ा से वे कुछ वर्षों के बाद ही मर गये। उसके पुत्र ने दुष्ट अलाउद्दीन की अधीनता अस्वीकार कर दी। तब मलिक काफ़ूर ने एक बार फिर देवगिरी में खून की नदी बहा दी। रामदेव राय के पुत्र को पकड़कर मार डाला गया। इस अभियान से दक्षिण भारत का एक विशाल भाग मुस्लिम चंगुल में फँस गया। मलिक काफ़ूर एक बार फिर कुबेर का सा खज़ाना लूटकर दिल्ली ले आया।

अपने उच्चतम शिखर पर पहुँचकर अलाउद्दीन की शक्ति का ह्रास प्रारम्भ हुआ। अलाउद्दीन की अप्राकृतिक भोग-तृष्णा की तुष्टि के लिए बालपन में ही उड़ाकर लाया गया हिन्दू बालक मलिक काफ़ूर धीरे-धीरे अलाउद्दीन का सर्वाधिक विश्वस्त सेनापति बन गया। वह इतना शक्ति-शाली हो गया था कि अलाउद्दीन, उसकी पत्नी तथा उसके पुत्र के झगड़े से लाभ उठाकर उसने उसकी पत्नी और पुत्र को बन्दी तक बना लिया। ईर्ष्या से जलते हुए अनेक दरबारियों ने उसकी हत्या का पड़्यन्त्र रच दिया। उधर गुजरात के मुस्लिम सेनानायक ने खुली बगावत कर दी। राणा हम्मीरदेव ने भी चित्तौड़ वापिस ले लिया। दक्षिण में राजा रामदेव के दामाद हरपाल देव ने देवगिरी पर साहसिक आक्रमण कर दिया। मुस्लिम दुर्गपति दुम दबाकर भाग खड़ा हुआ और देवगिरी हिन्दुत्व में वापिस लौट आया। सारे धर्म-स्थानों को पवित्र कर उनमें पावन-प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की गई। अलाउद्दीन का स्वास्थ्य गिर रहा था। राज्य के चारों ओर से आने वाली उल्टी खबरों ने उस शैतान की मृत्यु-घड़ी को और करीब ला दिया। सच्चे इतिहास की ओर ध्यान न देकर खुशामद की आमद को चाटने वाले मुस्लिम इतिहासकारों में, सदा की भाँति, अलाउद्दीन की मृत्यु-तिथि के बारे में भी मतभेद है। ३१-१२-१२१५,

२-१-१३१६ या १६-१२-१३१६ को उसकी मृत्यु हुई। इस प्रकार भारत की हजार वर्षों के मुस्लिम शासन की सर्वाधिक क्रूर कड़ी का अन्त हो गया। एक अपहर्ता, जल्लाद और हत्यारा, विध्वंसक और लूटेरा होने के कारण अलाउद्दीन के पास निर्माण करने योग्य समय, शांति, सम्पत्ति और सुरक्षा का पूर्ण अभाव था। इनपर भी उसे तथाकथित कुतुब-मीनार के एक भाग, सम्पूर्ण या आंशिक रूप से नगर 'श्री' तथा अनेक महलों के निर्माण का खेप दिया जाता है। इस विषय पर लोगों के उलझे विचारों का एक समुदाय महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोष के ग्रन्थ ३, पृष्ठ ५०६ पर प्राप्त होता है कि "अलाउद्दीन के फलते-फूलते (?) शासनकाल में, मानो जादू ने, अनेक महलों, मस्जिदों, स्नान-गृहों, दुर्गों, मकबरों और विद्यालयों का निर्माण हो गया।" पाठकों को इससे यही समझना चाहिए कि अलाउद्दीन के शासनकाल में मुसलमानों के उपयोग के लिए इन विजित हिन्दू महलों का मस्जिद और मकबरों में रूपान्तर कर दिया गया था। यह लेख, कि अलाउद्दीन ने अनेक मकबरों का निर्माण किया था, बहुत ही दुष्टतापूर्ण और पटवन्धमय है। क्या साशों पर कब्र और मकबरा बनाना ही उसका धन्धा था? सामूहिक रूप से नर-हत्या और नर-संहार का रक्त अपने मुँह पर पोतने वाला कभी भी अपने शिकार की लाश पर अव्य भवन नहीं बनाएगा। पल भर में, 'मानो जादू से' ही इन आलीशान इमारतों को बना डालने का दावा अलाउद्दीन के लिए भी किया गया है। साथ ही भारत के अनेक जयवाचारी मुसलमान के लिए यही दावा किया गया है। अतएव वास्तविक जादू जादुकार इतिहासकारों की कलमों और भोले-भाले हिन्दुओं की मूर्खता और अंधविश्वास में छिपा हुआ है।

(मदर इण्डिया, सितम्बर, १९६७)

: १२ :

कुतुबुद्दीन खिलजी

हिन्दुस्तान का मुस्लिम-कुशासन एक हजार वर्ष का लम्बा खूनी नाटक है। मगर इसके कुछ दृश्य दुखान्त होने के साथ-साथ मजेदार और मनोरंजक भी हैं। खिलजी-वंश का अन्तिम किशोर शासक कुतुबुद्दीन खिलजी था। इस रक्त-रंजित खूनी मुस्लिम रंगमंच पर उसने ऐसा ही एक दृश्य पेश किया है। इस सुलतान को औरत बनने का बड़ा शौक था। बड़े चाव से वह औरतों का परिधान पहनता, लम्बी नितम्ब-चुम्बी चोटी रखता, महीन-से-महीन मलमल का घूँघट मुँह पर डालता, काजल-बिन्दो करता, नकली बलस्थल बनाता, बलखाती-इठलाती नई दुल्हन के समान लजाता-शर्माता, बड़े नाजो-अदा के साथ बीच दरबार में खुले-आम जनाना-पोशाक में गद्दी पर बैठता था।

इस प्रहसन का रंगमंच दिल्ली अंचल के हजार-खम्भों वाला श्री का भव्य हिन्दू महल होता था; या फिर सफ़र में होने के कारण सुलतान का तम्बू।

दरबार की प्रारम्भिक भूमिकाओं और राज्य के काम की लीपा-पोती होती थी। शाही घुड़कियों के साथ उन्हें जैसे-तैसे पूरा करके शाही दरबार वासना की तुरही और व्यभिचार का बँड बजाता हुआ गुदा-भंजन और काम-रंजन की धारा में हा-हा ही-ही करता एक नंगा-बलब बन जाता था।

कुतुबुद्दीन के शाही दरबारी बलब ने पापवात्य डंग, रॉक-एण्ड-रॉल, नग्न-पेट-नृत्य, बस्त्र-त्याग-नृत्य और रात्रि-बलब के अश्लील उछल-कूद की शुरुआत की थी। पिथकड़, अफीमची और नशेबाज मुस्लिम लुच्चे और गुण्डे, अपनी-अपनी पसन्द के गुदा-भोग या मैथुन का नापाक इरादा लेकर, हरम की सीन्दर्य कहलाने वाली अपहृत हिन्दू नारियों पर भूखे भेड़ियों और

गिर्हों की भाँति टूट पड़ते थे और उन्हें शाही-माहौल में घसीट लाते थे। यही सपटना और घसीटना इस शाही स्तव का प्रमुख आकर्षण था।

शाही अर्किस्ट्रे की कामोत्तेजक धुन पर अत्यन्त वीभत्स और घृणित काम-वेष्टा का प्रदर्शन होता था। तरह-तरह के मोड़-सोड़, उछल-कूद और जोड़-घोट से मानव शरीर पसीने-पसीने हो जाता था।

और तब सप्ताह के अनोखे और अद्वितीय नाटक के दूसरे चरण का प्रारम्भ होता था। वह था—नाज़ और नखरों के साथ स्वयं सुलतान के कामुक और घृणित हाव-भाव का अलबेला और रंगीन प्रदर्शन।

सुलतान एक साधारण वेश्या की भाँति भड़कीली पोशाक पहनकर कामुक संगीत की सुर-ताल पर गिरकता और मटकता था। एक बँले-डाँसर और होटल नर्तकी की भाँति बड़े नाज़ और नखरों के साथ वह धीरे-धीरे गद्दी से उतरता था और मस्ती में उछलते-कूदते लोगों के साथ मिलकर ताक-धिना-धिन नाचने लगता था।

भाँति-भाँति के भद्दे इशारे कर, अपने कूल्हे हिलाता, नकली छातियाँ धुलबुलता और आँखें नचा-नचाकर कनखी मारता हुआ सुलतान, शराब और अफीम के नशे में अपने हाथ मटका-मटकाकर न जाने कितनी तरह की धाव-धमिमाएँ दिखाने लगता था।

संयोग से जियाउद्दीन बरनी ने अपनी तारीखे फ़िरोज़शाही में इस किशोर सुलतान की काम-केलियों और उछल-कूदों का एक वीभत्स वर्णन लिखा है। इनसे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि सिर्फ़ सुलतान कुतुबुद्दीन ही इन कामवेष्टाओं का अकेला स्पेशलिस्ट था। वह हिन्दुस्तान की कुचलने-मसजने और निगलने-बकाने वाले अपने भुक्खड़ मुस्लिम बाप-दादाओं के शाही मुस्लिम-दुराचार के जाने-बूझे और धिसे-पिटे मार्ग पर ही चल रहा था।

इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों ने हजार वर्ष तक बड़े जोर-शोर से चलने वाले व्यवहार के इन बुराई काले-कारनामों को झिझकते हुए नजर-अन्दाज किया है। धूर्तता से इसपर लोपा-पोती की है। इसे “महान् और अद्भुत” मुस्लिम संस्कृति बताया है, जिसे भगवान् ने भारत के किसी पूर्वजन्म के दुर्भाग्य से ही हिन्दुस्तान में भेजा था।

यह व्यवहारी-कीड़ाएँ शाही मुस्लिम दरबारियों और कुलीनों के परिवारों में शताब्दियों तक विकसित हुई और पनपी हैं।

खिल्जी खानदान के दो ही सुलतानों ने काफ़ी दिन तक शासन किया था। इस खानदान की नींव डालने वाला जलालुद्दीन अन्तिम गुलाम सुलतान की हत्या करके गद्दी पर बैठा था। इसे आठ वर्षों के शासनोपरान्त ही उसके भतीजे और दामाद अलाउद्दीन ने अपनी तलवार से काट फेंका था। २० वर्षों के शैतानी-शासन के बाद अलाउद्दीन की मृत्यु हो गई थी जिसे सम्भवतः उसके सेनापति मलिक काफूर ने जहर दे दिया था। परवर्ती चार वर्षों में दो सुलतान हुए। पाँच-वर्षीय बाल-सुलतान की गद्दी पर बैठने के कुछ महीनों के भीतर ही, उसके बड़े भाई कुतुबुद्दीन ने काट डाला। कुतुबुद्दीन खिल्जी-खानदान का अन्तिम सुलतान था क्योंकि उसकी हत्या कर गद्दी पर बैठने वाला तासिरुद्दीन एक धर्म-परिवर्तित हिन्दू था। दो महीने के शासन के बाद ही तुग़लकों ने इसे भी उखाड़ फेंका।

अलाउद्दीन का २० वर्षीय शासनकाल इतना क्रूर था कि उसे अपनी मृत्यु के पूर्व ही असहाय हो अपने सिर पर अपने साम्राज्य की छतों का टूट-टूटकर गिरना देखना पड़ा था।

जब अलाउद्दीन बीमारी में अशक्त पड़ा था, उसके सेनापति मलिक काफूर ने उसकी पत्नी और उसके पुत्र को महल से निकालकर कैद कर लिया। अलाउद्दीन की सज़ाह पर मलिक काफूर ने एक प्रभावी कुलीन अलप खाँ की भी हत्या कर दी थी।

अपने पापी और गुणहीन-पुत्र खिज़ खाँ को अपने बाद सुलतान बनाने की विशेष हिदायत और तमन्ना करने के बाद भी, अलाउद्दीन के राज्य का अत्यधिक विस्तार करने वाले उसके सेनापति मलिक काफूर ने मृत सुलतान अलाउद्दीन की इच्छा की उपेक्षा कर दी। वह मुस्लिम रिवाज के अनुसार उसके परिवार के एक-एक सदस्य की हत्या करने में जुट गया।

अलाउद्दीन की मृत्यु के दो दिन बाद ही ४ जनवरी, १२१६ ई० को मलिक काफूर ने कुलीनों की सभा को खिज़ खाँ की मृत्यु की सूचना देकर पाँच वर्षीय बाल-शाहजादे शहाबुद्दीन को सुलतान घोषित कर दिया और संरक्षक होने के बहाने सारी शक्ति अपने हाथ में ले ली।

ग्वालियर दुर्ग के तहख़ाने में खिज़ खाँ को फिकवा दिया गया। तपते

साथ लोहे से उसकी आँखें फोड़ देने का विशेष आज्ञा-पत्र लेकर उसके पीछे-ही-पीछे मलिक काफूर भी आ धमका। बड़ी बेरहमी के साथ इस हुक्म को गमोल किया गया। यह इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि मुस्लिम धर्म-वर्तन-प्रक्रिया बड़ी जल्दी एक व्यक्ति को पक्का मुस्लिम शैतान बना देती है, जिसके कारण बड़ी लगन और स्फूर्ति के साथ मलिक काफूर ने मध्यकालीन खूनी मुस्लिम रंगमंच पर अपना कदम रक्खा था।

मृत सुलतान का दूसरा पुत्र शादी खाँ श्री के अपहृत हिन्दू महल में बन्दी था। जिस जगह बड़ी शान से वह शाहजादा बनकर लात मारता था वहीं अब दीन-हीन बन्दी बनकर लात खाता था। उस महल के तहखाने में मलिक काफूर के हज्जाम ने "उस्तरे से तरबूज की फाँक की भाँति (सादी खाँ की) आँखें बाहर निकाल दीं।"

मृत सुलतान की सारी अपहृत हिन्दू जायदाद जप्त करके डकारने के बाद मलिक काफूर अलाउद्दीन के रिश्तेदारों और दरबारियों को मारने तथा अपंग करने पर जुट गया। जब वह अपनी स्व-स्वीकृत खूनी भूमिका निभाने में तल्लीन था, अपनी सुलतानी का सपना देखने वाले मलिक काफूर का सिर सुप्तावस्था में ही काट दिया गया। उसका सिर काटने के बाद ही उसके सारे समर्थकों का सिर भी कुलम कर दिया गया।

इस नये गुट ने शाहजादे मुबारक खाँ को बन्दीगृह से मुक्तकर उरो बाल-सुलतान शहाबुद्दीन का संरक्षक बना दिया जो अभी तक सुलतान घोषित था। मुबारक खाँ तकदीर का सिकन्दर था क्योंकि अन्धे होने वालों की सुन्नी में इसका नाम भी था। संयोग से मलिक काफूर सिर्फ ३५ दिन तक ही जीवित रहा और इसकी आँखें बच गईं।

मुबारक खाँ गद्दी पर नाम-मात्र के बाल-सुलतान शहाबुद्दीन की किल-कारियाँ न देख सका। उसने उसे गद्दी से उतार, बन्दी बना, ग्वालिघर दुर्ग के तहखाने में फिक्का दिया। वहाँ उसे शीघ्र ही निकटतम शाही रिश्तेदार होने का पिछा-पिछा मुस्लिम इनाम लेने के लिए अन्धा होना पड़ा। इसके बाद १७ वर्षीय किशोर मुबारक खाँ की सुलतानी का नगाड़ा बज उठा — "सुलतानुस् शाहिद कुतुबुद्दुन्या बाउद्दीन।"

नये सुलतान कुतुबुद्दीन ने अपनी स्वाभाविक खूनी प्रवृत्ति और प्रकृति से यह सिद्ध कर दिया कि उसकी रगों के रक्त में वे ही कीटाणु मचल रहे

हैं, जो भारत के मुस्लिम शासकों के लिए आवश्यक भी हैं और अनिवार्य भी।

मलिक काफूर और उसके गिरोह को खत्म करने वाले व्यावसायिक मुस्लिम हत्यारों के दल से कुतुबुद्दीन को खतरे की बू आई। अपने आतंक-कारी प्रभाव के कारण अपनी खूनी-योग्यता की डींग हाँकने वाला यह खूनी गिरोह खुले-आम दरबार के हर मामले में अपनी टाँग अड़ाता था। "इस-लिए मजबूर होकर सुलतान कुतुबुद्दीन ने अपने हुक्म से इस हत्यारे-दल के लोगों को अलग-अलग जगहों में भेज दिया और वहाँ उन सभी को मरवा डाला।" (पृष्ठ २१०, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)।

१३१७ ई० में अपने पिता अलाउद्दीन की गद्दी पर बैठने वाले इस १७ वर्षीय किशोर में अन्य अनिवार्य मुस्लिम-दुर्गुण भी थे। मुस्लिम गिरोह कूर कर्म के लिए हिन्दू घरों और क्षेत्रों पर आक्रमण कर सुन्दर हिन्दू किशोरों को उड़ा लाते थे। कुतुबुद्दीन का नर 'माशूक' भी एक अपहृत हिन्दू बालक ही था। खतना करने के बाद इसका नाम हसन रख दिया गया था। "कुतुबुद्दीन इतना अविवेकी और अदूरदर्शी था कि परिणामों से लापरवाह होकर उसने मृत मलिक काफूर की सारी सेना इस लौंडे को सौंप दी। साथ ही उसे मलिक की सारी जायदाद और जागीर भी दे दी।" अपनी चाह, बाह और आह की अन्धी भोग-धारा में वह इतना डूब चुका था कि उसने इस किशोर को वजीर भी बना दिया। वह उसपर इतना आशिक हो गया था कि उसकी पलभर की जुदाई भी नहीं सह सकता था।

"गद्दी पर बैठने के बाद कुतुबुद्दीन फिजूल-खर्ची और मौज-मस्ती में डूब गया।" लोगों को अपनी ओर मिलाने के लिए "गद्दी पर बैठने के दिन उसने अपनी आज्ञा से पूर्ववर्ती शासन के कैदियों और निर्वासितों को, जिनकी संख्या १७,००० से १८,००० तक थी, मुक्त कर दिया।" (वही, पृष्ठ २११)।

मुस्लिम इतिहासकारों की घिसी-पिटी परम्परा एवं रीति-रिवाज के अनुसार अपनी तारीखे फिरोजशाही में बरनी पहले उसके भोग-विलास एवं हत्यारी गतिविधि का व्योरा देता है। फिर कुतुबुद्दीन के मनगढ़न्त गुणों को खोज निकालने आकाश-पाताल छान मारता है। गुणों की पुष्प-अर्चना करने के बाद वह पुनः यह बयान लिखकर लोगों को दबका-बबका कर देता

है कि—“सुलतान व्यभिचार में खुले आम, सारे दिन और सारी रात डूबे रहने लगे और जनता (मुसलमान) उनकी तक्राल करने लगी। सुन्दरता आसानी से उपलब्ध नहीं होती थी। एक लोण्डे, खूबसूरत हिजड़े या हसीन औरत का दाम ५०० से १००० और २००० टंका तक हो गया था।” (वही, पृष्ठ २१२)।

भारत के मुस्लिम बादशाहों की सम्प्रदाय और शासन-कुशलता की कृत्रिमियों पर बड़े जोर-शोर से पातसन-पालिश करने का तरीका बताने और निष्ठा देने वाले लोगों को यह विवरण तथा पर्यवेक्षण पढ़कर अपनी बन्द आँखें खोल लेनी चाहिए। उन लोगों को जान लेना चाहिए कि मुस्लिम राजाओं ने भारत को जीलहरण और हत्या के खूनी खेल का अखाड़ा बना दिया था। यही उनकी संस्कृति थी और यही सम्प्रदाय। एक भी मुसलमान शासक, यहाँ तक कि बड़ी आन, बान और शान से बड़ाई पाने वाला अकबर भी इसका अपवाद नहीं था। शासक के दुराचार का खुशामदी या वास्तविक वर्णन करना, इतिहासकार के मूढ़ पर निर्भर करता था। अगर सुलतान अपनी सनक में अपने गुण-लेखकों पर लूट का माल बड़ी दरिया-दिली से न्योछावर कर देता था तो घर आकर लेखक उसकी बड़ी तारीफ़ हाँक देता था। अगर दूसरे ही दिन सुलतान लेखक का अपमान या असम्मान कर देता, उसकी उपेक्षा कर देता अथवा चढ़ाई करके उसके हरम के लोण्डों और बेगमों को छीन लेता तो वही लेखक घर आकर उसी इतिहास में उसी सुलतान का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख देता था। इसलिए साधारण नियमों के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि मुस्लिम इतिहास अपने स्वामी की स्तुति या निन्दा का उद्देश्य-प्रेरित झूठ का बंडल है। इसका दूषित वर्णन अल्प ही है और अक्षम्य भी क्योंकि हजार वर्ष के लम्बे-चौड़े अत्याचारी उन्माद में मुस्लिम दुराचार, पशुता और बर्बरता से घायल हिन्दु-स्तान की पीड़ा और वेदना का सही वर्णन करने का सामर्थ्य मानव-जाति की भाषा में नहीं है।

“बाजाओं की इतनी अवहेलना और प्रतिबन्धों की इतनी उपेक्षा होती थी कि मरेजाम शराब का दुकानें खुली रहती थीं। सैकड़ों शराब के पीपे ताँबों से गहूर में आते रहते थे। जीवन की आवश्यक वस्तुओं एवं अन्न के दाम बहुत बढ़-चढ़ गए थे” प्रत्येक घर में ढोल और नगाड़े बजाये गये

क्योंकि बाजार के लोगों ने अलाउद्दीन की मृत्यु पर खूब खुशियाँ मनाई थीं।” मुस्लिम शासक के कल्पित गुणों की चिकनी-चुपड़ी बातें करने वाले लोग इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी के इन शब्दों को ध्यान से पढ़ लें। इसका एक-एक अक्षर समझ लें। प्रत्येक मुस्लिम शासक की मृत्यु से दलित और पीड़ित जनता इसी प्रकार खुशियाँ मनाकर चैन की साँस लेती थी।

“मजदूरी २५ प्रतिशत बढ़ गई थी” (व्यापारी) जनता की चमड़ी तक उधेड़ लेते थे—झूठ, छीन-झपट और गबन के दरवाजे एकदम खुले हुए थे, कर-बसूली के अफसरों के लिए सुनहरी अवसर आया हुआ था—मुसलमानों में व्यभिचार फैल गया था और हिन्दुओं ने विद्रोह कर दिया था। कुतुबुद्दीन मौज-मस्ती और व्यभिचार में गहरा डूब चुका था—अपने चार महीने और चार दिन के शासनकाल में कुतुबुद्दीन ने शराब पीने, मुजरा सुनने, मजलिसों में मजा लेने तथा अपनी वासना-तृप्ति के अलावा और कुछ नहीं किया।” मुस्लिम शासन के हजार-वर्षीय शैतानी-नाच में यह बात हर एक मुस्लिम शासक पर लागू होती है।

अल्प खाँ के विद्रोह को दबाने के लिए एक सेना गुजरात भेजी गई। स्वाभाविक मुस्लिम क्रूरता और बर्बरता से इस विद्रोही स्वर को दबा दिया गया। गुजरात की राजधानी अनहिलवाड़ को एक बार फिर लूटा गया।

कुतुबुद्दीन ने मृत सुलतान के पुराने नौकर मलिक दीनार की पुत्री से भी शादी की थी। इसे गुजरात का गवर्नर बनाकर भेज दिया गया।

१३१८ ई० में सुलतान कुतुबुद्दीन एक सेना लेकर देवगिरी की ओर चला। शाही खजाना खाली हो गया था। देवगिरी को हरपाल देव ने अपने अधिकार में कर लिया था। अपनी अनुपस्थिति में राज की देखभाल के लिए कुतुबुद्दीन पूर्ण सत्ता के साथ दिल्ली में एक अपहृत हिन्दू छोकरे को नियुक्त कर आया था जिसका प्रारम्भिक नाम था ‘बरलिदा’ (शायद बन्दा) और मुस्लिम नाम शाहिन।

प्रारम्भिक आक्रमणों एवं तत्कालीन बलात् धर्म-परिवर्तन का फायदा उठाकर कुतुबुद्दीन कपट से दुर्ग जीतने में सफल हुआ। दुराचारी किशोर सुलतान ने अब एक ऐसा भयंकर और बर्बर अपराध किया, जो मुस्लिम बर्बरता का सर्व-साधारण ही नहीं सर्वप्रिय रोमांचकारी नृशंस कारनामा भी था। अपने ही आदमियों के धोखा खाकर हरपाल देव को

भावना पड़ा। अब उसका पीछा कर उसे बन्दी बनाकर लाया गया। कुतुबुद्दीन की माता से हिन्दू शासक हरपाल देव के सारे शरीर की चमड़ी चाकू की तीव्र धार से उछेड़ ली गई। उसके बाद उसके शरीर को देवगिरी दुर्ग के द्वार पर उसी तरह लटका दिया गया, जिस प्रकार बूचड़ और कसाई लोग कटे बकरों को अपनी दुकान पर मौस बेचने के लिए लटका देते हैं। एक बार फिर सारे मराठा-खेव को इस्लाम के नाम पर सूटकर तबाह और बरबाद कर दिया गया।

एक खूबसूरत हिन्दू लड़के परवारी को उसने जबरदस्ती मुसलमान बनाकर हसन नाम से अपना माशूक बनाकर रक्खा था। इसे खुसरू खाँ की उपाधि दी गई। जिस प्रकार अलाउद्दीन ने अपने भूतपूर्व माशूक मलिक काफूर को, जो पहले हिन्दू था, मालाबार पर चढ़ाई करने भेजा था उसी प्रकार कुतुबुद्दीन ने अपने माशूक खुसरू खाँ को एक अभियान पर भेज दिया।

चारों ओर मुस्लिम दुराचार का वातावरण होते हुए भी इस हिन्दू युवक के हृदय में देशभक्ति की चिनगारी सुलग रही थी। सुलतान ने उसे सेनापति बना दिया था। मगर उसने अपने हिन्दू साथियों एवं असन्तुष्ट मुसलमानों से बराबर सम्पर्क बनाए रक्खा था ताकि हिन्दुस्तान से मुस्लिम दुराचार और बलात्कार को उखाड़ फेंकने का कोई मार्ग वह निकाल सके।

अलाउद्दीन के खचेरे भाई एवं कुतुबुद्दीन के दूर के चाचा मलिक अशामुद्दीन ने देवगिरी के असन्तुष्ट लोगों से मिलकर एक षड्यन्त्र का सूत्रपात किया। इसमें पहरेदारों से बरधित घटिसाकुन के अपने हरम में शराब पटकते हुए सुलतान की हत्या करनी थी। इसके अनुसार तलवार ताने कुछ घुड़सवार अन्दर प्रवेश कर उसकी हत्या करते और तब शाही चादर अशामुद्दीन पर तानी जाती। किसी प्रकार सुलतान को इसकी हवा लग गई। सभी षड्यन्त्रकारियों को शाही तम्बू के सामने एक लाइन में खड़ा कर गुर्रों की तरह हलाल कर दिया गया।

दिल्ली लौटकर सुलतान ने यघर्षों खाँ के २६ पुत्रों को गिरफ्तार कर लिया। इसमें मासूम बच्चे भी थे। "उन लोगों को षड्यन्त्र का कोई ज्ञान नहीं था, फिर भी उन सभी को पकड़कर भेड़ों की तरह हलाल कर दिया गया। सारी सम्पत्ति को जिसे मृत सुलतान के चाचा धानी उनके पिता ने

अपने (पाप, दुराचार, अपराध और लूट के) लम्बे जीवनकाल में बटोरा था, अपने नाम से शाही खजाने में जमा कर दिया तथा (उसके) परिवार की स्त्रियों और लड़कियों को घर से बाहर निकालकर सड़क पर छोड़ दिया।"

दिल्ली वापिस लौटते समय सुलतान ने अपने प्रमुख पहरेदार को खालियर-दुर्ग में बन्दी मृत सुलतान के पुत्र "खिज्र खाँ, सादी खाँ और मलिक शहाबुद्दीन को एक ही झटके में खत्म करने के लिए" भेज दिया, जो सिर्फ आँखों से अन्धे ही नहीं थे वरन् भोजन और वस्त्र के लिए उसी पर निर्भर भी थे। इन बेबस और लाचार अन्धों को मारकर वह उनकी माताओं और पत्नियों को दिल्ली घसीट लाया। ऐसे क्रूर-कारनामे रोज की बारदातें थी। सुलतान क्रोध, दुराचार, क्रूरता, प्रतिशोध और निर्दयता में पामल हो गया था। निर्दोष लोगों के रक्त में उसने अपना हाथ डुबो दिया और अपने अनुचरों तथा साथियों को भेदी-भेदी घृणित गालियाँ देने लगा। देवगिरी से वापिस लौटने के बाद कोई भी आदमी, चाहे वह उसका दोस्त हो या अजनबी, शासन के मामले में साहस से उसे सलाह नहीं दे सकता था। अदम्य और क्रूर क्रोध ने उसे इतना जकड़ लिया था कि उसने गुजरात के शासक जफर खाँ की हत्या कर दी। कुछ ही समय के बाद उसने एक धर्मान्तरित हिन्दू मलिक शाहदीन का सिर उतार दिया जो उसका माशूक हो नहीं था वरन् जिसे सुलतान ने एक बार अपना प्रमुख-प्रतिनिधि भी बना दिया था।

कुतुबुद्दीन "अपने दरबार में औरतों के कपड़े पहनकर और मामूली गहनों से सज-धजकर आया करता था। सुलतान ने अपने दो दरबारियों को सरे आम बेइज्जत और अपमानित भी किया था। एक का नाम मलिक ऐनुल मुल्क मुलतानी था तथा दूसरे का मलिक कश बेग, जो कम-से-कम १४ विभागों की देख-रेख करता था। सुलतान ने हजार खम्भे वाले महल की छत से कमीनी औरतों द्वारा इन दोनों कुलीनों को बुरी-बुरी गन्दी गालियाँ दिलवाई।"

श्री के हजार खम्भों वाले इस महल के वर्णन से ही पाठकों को यह विश्वास हो जाना चाहिए कि यह महल और 'श्री' नगर मुस्लिमपूर्व का हिन्दू निर्माण है। ऐसे सहस्र स्तम्भों वाले निर्माण, जैसाकि हम आज भी

राजेश्वरम तथा मदुराई आदि स्थानों में देखते हैं, पूर्णतः हिन्दू कला के आधार पर बने हुए हैं। यह भी ध्यान देने की बात है कि ऐसे भवन जिन्हें इन लोगों ने बरबाद किया, जलत किया और नापाक किया, जो अपने स्वयं की संस्था से ही विख्यात हैं—जैसे चौसठ खम्भा, हमें पुराने हिन्दू अधिकार की याद दिलाते हैं। शर्त है, हमारी जनता के पास देखने की आँखें और विचारने का दिमाग होना चाहिए।

इस्लाम में धर्मान्तरित गुजरात के एक हिन्दू को सुलतान ने अपने गृह-प्रबन्ध का भार सौंप दिया। उसका नाम था तोबा। अपने गृह-प्रबन्ध अधिकार का वह पुरा-पुरा उपयोग करता था। वह कुलीनों को माँ-बहन लगा कर बन्दी-बन्दी गालियाँ सुनाता था। वह उनके वस्त्रों को गन्दा कर देता था और कभी-कभी महफिल में जाकर सुलतान और दरबारियों के बीच बन्दी का फव्वारा भी छोड़ आता था।

गुजरात को अब एक-दूसरे धर्मान्तरित हिन्दू, खुसरू खाँ के मामा के हाथ में सौंप दिया गया। इसका मुसलमानी नाम हिसामुद्दीन था। मुस्लिम दुराचार और पाशविकता के जिकार ये धर्मान्तरित हिन्दू बहुत जल्दी मुस्लिम स्टैंडल के कुर-भोगी जगत के रूप में पूरी तरह खिल उठते थे। मुस्लिम ट्रेनिंग बड़ी पक्की होती थी। मुस्लिम आक्रमणों के दौरान उड़ाकर लाए गये अन्य अभाग्य हिन्दू बालकों की तरह हिसामुद्दीन को भी प्रायः बेटों में पीटा जाता था।

गुजरात को पूरी तरह अपने अधिकार में पाकर, हिसामुद्दीन ने अपने पूर्ववर्ती हिन्दू समर्थकों की सहायता से मुस्लिम नाम और व्यभिचार का कुत्ता उतार फेंकने का एक प्रयास किया। मगर मुस्लिम गुर्गों ने उसे बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिया। दरबार में बन्धकी के बतौर रखे हिसामुद्दीन के भाई के इशक में सुलतान इतना आसक्त था कि उसने हिसामुद्दीन को बेटों से पीटने की आज्ञा देकर भी बाद में उसे मुनित ही नहीं दी, बरन् अपनी महफिलों का प्रबन्ध करने के लिए वहाँ महल में नौकरी भी दे दी।

अन्यत्र देवगिरी की निगरानी करने वाले मलिक मक लखौ ने सुलतान से बिछोड़ कर दिया। उसे दवाने के लिए एक सेना भेजी गई। लखौ तथा उसके सहयोगियों को बन्दी बनाकर दिल्ली लाया गया। मक लखौ को नाक काटकर फेंक दिया गया और मरे-आम बेइज्जत किया गया।

धर्मान्तरित खुसरू खाँ के मालाबार प्रदेश से स्थानीय सरदार भाग खड़े हुए। अपने इस्लामी स्वामियों के लिए उसने दो शहरों को लूटा। वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो जाने के कारण वह दिल्ली न लौट सका। स्थानीय मुस्लिम व्यापारी तत्की खाँ को कई पीढ़ियों से मुसलमान होने का घमण्ड था। वह यह सोच अपना घर छोड़कर नहीं भागा कि यदि वह खुसरू खाँ का, हिन्दू पूर्वज होने के कारण, उद्दण्डतापूर्वक अपमान भी कर देगा तो भी कई पीढ़ियों से मुसलमान होने के कारण खुसरू खाँ उसे कुछ नहीं कहेगा। इसपर खुसरू खाँ ने लूट के माल को बहुत ही कम समझा। उसने तत्की खाँ को लूट ही नहीं लिया, उसका सिर भी उतार दिया।

खुसरू खाँ हमेशा हिन्दुस्तान के मुस्लिम अपहरण एवं विध्वंस का प्रतिशोध लेने का मौका खोजता रहता था। इसलिए उसने दिल्ली से दूर होने का फायदा उठाना चाहा। उसने कुछ अन्य धर्मान्तरित सरदारों से, जिन्हें दमन, पीड़ा और यन्त्रणा ने मुसलमान बनाया था तथा कुछ मुसलमानों से, जो अपनी कुछ माँगों के कारण सुलतान से नाराज थे, बातचीत करनी आरम्भ कर दी। इन लोगों में से चन्देरी के मलिक तमार, मलिक तलवाघा याघद एवं मलिक अफगान के पास बथेष्ठ फौज थी। इन तीनों ने खुसरू खाँ से जलकर, सुलतान का कृपापात्र बनने सुलतान के कान विषाक्त करने प्रारम्भ कर दिए।

मगर खुसरू खाँ के विरोध में सुलतान ने कुछ नहीं मुना। उल्टे उसने मलिक तमार की पदावनति कर उसके महल-प्रवेश पर रोक लगा दी। याघद की आँखें फोड़कर बन्दीखाने में फिकवा दिया।

दरबार में व्यभिचार इतना रम चुका था कि सुलतान और उसका पी० ए० बहाउद्दीन एक ही औरत के लिए आपस में झगड़ पड़े। जिस औरत की उसे ब्याहिन थी सुलतान ने उसे नहीं दिया। क्रोध में पागल होकर उसने पड़्यन्त्र में खुसरू खाँ की सहायता करनी स्वीकार कर ली।

भारत से पापी और अन्यायी मुस्लिम शासन का तख्ता पलटने की तैयारी में खुसरू खाँ ने अनेक गुजरातियों को बुलाकर उन्हें सुलतान के महल एवं अन्य महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त कर दिया था। अपने पापों के बोझ से लदे सन्देहशील मुसलमानों की यह आदत थी कि वे महल के मुख्य-द्वार को अपनी आँखों के सामने बन्द करवाते थे तथा चाबी सारी रात

अपने पास रखते थे। खुसरू खाँ ने सुलतान को बहला-फुसला और समझा-बुझाकर चाबी अपने पास ले ली ताकि उसके गुजराती साथी दिन का काम समाप्त करके राति में उससे मिल सकें। डाल, तलवार, धनुष और भालों से सुसज्जित होकर प्रायः ३०० गुजराती महल के निम्नतम भाग में खुसरू से मिलने आते थे।

खुसरू खाँ से ईर्ष्या करने वाले एक काजी जियाउद्दीन ने इसकी शिकायत सुलतान से करती चाही। खुसरू ने उसे ऐन वक़्त पर पकड़ा था। शिकायत सुलतान से करती चाही। खुसरू ने उसे ऐन वक़्त पर पकड़ा था। खुसरू के हिन्दू मामा 'रणधोल' के नेतृत्व में हमेशा की भाँति रात में गुजराती पार्टी महल में आई। हजार खम्भे वाले अपहृत हिन्दू महल में, जहाँ अब विदेशी मुस्लिम दरबार और कुशासन होता था, उन लोगों ने अपने हथियार छिपा रखे थे। ठीक आधी रात के बाद जब सारा महल सो चुका था, हिन्दू देशभक्त पार्टी के सदस्य जहरिया ने चुगलखोर काजी जियाउद्दीन को उसके व्यभिचारी बिछोने से नीचे घसीटकर मार डाला। एक चीख महल में गुँज गई। अपने अन्य वीर साथियों के साथ जल्दी से जहरिया महल के ऊपरी कक्ष की ओर बढ़ा। महल के महत्त्वपूर्ण स्थानों पर गुजराती पहरेदारों का ही पहरा था। खुसरू सुलतान के पास था। जब सुलतान ने उससे इस हल्ले-गुल्ले के बारे में पूछा तो उसने बताया कि कुछ शाही घोड़े रस्सा टुटकर उछल-कूद कर रहे थे, उनको लोग बापिस खूंटों में बाँध रहे हैं। ठीक उसी समय जहरिया की टुकड़ी सुलतान के कक्ष तक पहुँच गई और उसने पहरेदारों को मार गिराया। भय से सुलतान सुन्न हो गए। इशाल के इरम की हजार औरतों की भीड़ में गुम हो जाने के लिए सुलतान ने जटपट चप्पल पहनी। खुसरू ने यह भाँपा कि अगर सुलतान को एक बार भागने का मौका मिल गया तो फिर स्त्रियों की भीड़ में उसे खोजना एक-दम कठिन हो जाएगा। वह सुलतान के पीछे लपका। द्वार में गुम होते उसके लम्बे लहराते बालों का झोंटा उसने पकड़ा और उसे खींचकर जमीन पर डे मारा। जहरिया के भाने ने फुर्ती से उसका सिर उतार दिया।

इसके बाद वीर हिन्दू महल और झरोखों के सभी काँटों को, जिन्होंने भूमने का हुस्ताहस किया, उखाड़ फेंका और सफ़ाई-अभियान में लग गए। मशालें जला लीं और सुलतान के सिर-हीन शरीर को गैलरी के बाहर नीचे शंख में फेंक दिया। सुलतान के अंगरक्षक भयभीत होकर

अपने-अपने घर अपनी-अपनी पत्नियों के चुकों में छिपने भाग गए। अनेक हिन्दू नारियों को सुलतान और अन्य मुसलमानों ने पीलहीन कर अपने-अपने शयनागारों में सजा रखवा था। एक बार फिर स्वतन्त्रता की मुक्त साँस लेने के लिए सभी नारियाँ मुक्त कर दी गईं। अपहृत और असह्य हिन्दू नारियों पर जुल्म ढाने में अलाउद्दीन की एक कुख्यात विधवा पत्नी नौ-दो-ग्यारह हो रही थी। उसे पकड़कर उसका सिर कलम कर दिया गया।

साफ़ कर देने योग्य सारी वस्तुओं को साफ़ कर दिया गया। एक शताब्दी के बाद सारा महल पुनः हिन्दू-अधिकार में वापिस आ गया। बहुत बड़ी संख्या में मशालों और बत्तियों को जलाकर प्रकाश का प्रबन्ध किया गया। एक दरबार बुलाने की आयोजना की गई और प्रमुख दरबारियों को दरबार में फौरन हाज़िर होने की सूचना भेज दी गई।

महल पर हिन्दुओं के पूर्ण नियन्त्रण के साथ-साथ दिन का भी आगमन हुआ। मुस्लिम दरबारी, कुलीन और कप्तान अपने नए मालिक के सामने अपनी राज-भक्ति की सौगन्ध खाने महल में दौड़ आए। हिन्दू तलवार के एक ही वार ने अलाउद्दीन खिल्जी के खानदान का अन्त कर दिया। १३२० ई० के मध्य, एक प्रातःकाल खुसरू खाँ सुलतान नासिरुद्दीन की उपाधि लेकर गद्दी पर बैठा। मुसलमानों द्वारा अपहृत गुजरात की राजकुमारी देवल देवी उसकी राज-रानी बनी।

नए शासन और शासक के प्रति जिन लोगों के मन में ज़रा भी रंज या गम था उन सभी लोगों को घिसी-पिटी मुस्लिम परम्परा के अनुसार मार दिया गया। व्यभिचार के लिए जिन नारियों को घसीटकर लाया गया था, उन सभी को उनके घर पहुँचा दिया गया। अन्त में, इस व्यभिचारी और खूनी मुस्लिम शासन को जैसे-का-तैसा न्याय मिला और एक बार सभी नारियों और बालकों को व्यभिचार और विलास के कामुक वातावरण से मुक्ति मिली।

काजी जियाउद्दीन का परिवार भाग गया। उनका महल नए सुलतान नासिरुद्दीन के मामा रणधोल को दे दिया गया। रणधोल रायरामन बने और बहाउद्दीन को अजामुल मुल्क की उपाधि मिली।

ऊपरी तौर से खुसरू नासिरुद्दीन की उपाधि लेकर गद्दी पर आसीन

हुआ था। मगर उसका वास्तविक ध्येय अपनी मातृभूमि को मुस्लिम जुए से स्वतन्त्र कर अपने आपको मुस्लिम नाम से मुक्त करना और एक गौरव-शाली हिन्दू के रूप में जीवन-यापन करना था। गद्दी पर बैठने के चार-पाँच दिन के भीतर-ही-भीतर इस भूतपूर्व हिन्दू महल में, जहाँ से एक शताब्दी के मुस्लिम विनाश ने हिन्दू मूर्तियों को बाहर फेंक दिया था, पुनः राजपूत परिवार के देव एवं देवी भगवान् शिव और माँ भवानी की प्रतिष्ठा की गई।

मुसलमानों ने अपने क्रूर भारतीय-आक्रमण के प्रारम्भ से ही, छः सौ वर्ष तक, वेद और गीता जैसे पवित्र हिन्दू-ग्रन्थों का अपमान किया था। उन्हीं मुसलमानों को 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' समझाया गया। कुरान का आसन बनाया गया। मस्जिद में परिवर्तित हिन्दू मन्दिरों एवं महलों का पुनरुद्धार किया गया और उनमें पावन-प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की गई।

हिन्दुओं को अपनी ही मातृभूमि में अपमानित और दलित होकर एक गच्छत और नीच जाति बनना पड़ा था। वे घोड़ों पर नहीं चढ़ सकते थे। आभूषण नहीं पहन सकते थे। हथियार नहीं रख सकते थे। उन्हें मुस्लिम सुन्नों की काम्याग्नि में झोंकने के लिए अपनी पत्नियों, पुत्रियों और बच्चों को सादर समर्पित करना पड़ता था। अब वे हिन्दू सिर ऊँचा कर चल सकते थे।

हिन्दुओं के सम्मान ने उरा चैन की साँस ली और भविष्य का पागल बादशाह जन-भुनकर कबाब हो गया। इसका वर्तमान नाम मुहम्मद फ़ख़रुद्दीन था। नासिरुद्दीन की सुलतानी के दो महीने बाद ही १३२० ई० के अगस्त में फ़ख़रुद्दीन एकाएक दिल्ली से सरक गया। वह देवलपुर की ओर रवाना हुआ। वहाँ उसका पिता गाजी मलिक भावी दिल्ली सुलतान गिया-सुद्दीन तुगलक का चमचा बनकर रहता था। फ़ख़रुद्दीन के इस अचानक शायब होने से नासिरुद्दीन शक्ति हो गया। घुड़सवारों का एक दल उसके पीछे-पीछे भी गया। मगर उसकी टोह न लग सकी।

तुगलक पिता एव पुत्र ने हिन्दुओं को, जिन्होंने नासिरुद्दीन के शासन-काल में मुग़ल की दो-चार मांस ली थी, नष्ट करने के उद्देश्य से दिल्ली शासनाधीन पड़ोसी नगर सरस्वती पर चढ़ाई के लिए सशक्त सैन्य वाहिनी भेज दी। इसे मुस्लिम इतिहासकारों ने 'सरसुती' लिखा है। मुसलमानों की-

गिरगिटि राजभक्ति के बीच नासिरुद्दीन अपनी स्थिति दृढ़ नहीं कर पाया था। फिर भी उसने बिद्रोही तुगलकों के दमन के लिए दिल्ली से एक सेना भेज दी। दिल्ली सेना के एक ही तीव्र प्रहार ने 'सरसुती' ले लिया। अब सेना देवालयपुर की ओर बढ़ी।

तुगलक जोड़ा घबराया। दोनों ने ही हिन्दू-भूमि को चाट खाने वाले पड़ोसी मुस्लिम सरदारों की सहायता पाने के लिए बड़े जोर-शोर से हाथ-पैर पटकें। हिन्दुओं को गुलाम बनाकर, दिल्ली गद्दी पर अपने दावे की कील ठोकने वाले मुस्लिम कुलीनों ने तुगलकी-बिद्रोहियों का ही साथ दिया, क्योंकि लक्ष्य दोनों का एक ही था—हिन्दू-दमन। उछ का मलिक बहराम एक बड़ी फौज लेकर तुगलकों से आ मिला। दोनों की मिली-जुली सेना देवालयपुर से बाहर निकली। "काफ़िर हिन्दुओं का नाश करो", यह सन-सनी पैदा करने वाला नारा ही काफ़ी था और हर एक घृणित मुस्लिम अपने-अपने बिलों से निकलकर, बिद्रोही मुसलमानी झण्डे के नीचे आकर सड़ा हो गया।

दलिया नगर के दक्षिण में दोनों सेनाएँ टकराईं। इसमें दिल्ली सेना को काफ़ी क्षति उठाकर पीछे हटना पड़ा।

दिल्ली में उपलब्ध सैनिक-शक्ति को जमा कर स्वयं नासिरुद्दीन श्री के राजमहल से निकला। उपवन को सम्मुख और दुर्ग को पीछे रख उसने लहरावत के सामने अपनी सेना खड़ी की। "भाग्य की मयानी में मये हुए, या जुए में दाँव पर सभी कुछ लगा देने वाले खिलाड़ी के समान, दिल्ली और किलुघड़ी का शाही खजाना एकदम झाड़-बटोरकर वह अपने साथ ले आया था। जनता का सारा खजाना उसने सेना में तनख्वाह व इनाम के बतौर बाँट डाला। इस्लाम के सामान के तुगलकी-सरपरस्त के हाथ में पड़ जाने की आशंका से क्रोधित होकर उसने एक दिहराम भी अपने पीछे नहीं छोड़ा।" (वही, पृष्ठ २२७)। नासिरुद्दीन की उदारता से बाँटी गई सारी धनराशि को लेकर कायर व कपटी मुसलमानों ने उसका साथ छोड़ दिया और चुपचाप खिसक गये।

दिल्ली के समीप पहुँचकर तुगलकी सेना ने इन्द्रप्रस्थ में अपना तम्बू लगा दिया। अपने जीवन और भविष्य को दाँव पर लगाने का खतरा मोल न लेकर, ऐनुल्-मुल्क सुलतानी अपने अनुचरों के साथ, संग्राम-पूर्व की पहली

राशि को, नासिरुद्दीन का साथ छोड़, मध्यभारत के उज्जैन एवं धार को लूट, अपने राज्य की नींव डालने सरक गया। परवर्ती संग्राम में खुसरू ने वीरव्रति पाई। अब गाजी मलिक ग्री के प्राचीन हिन्दू हजार खम्भे वाले महल की ओर बढ़ा और वहाँ "गाजी गियासुद्दीन दुन्या बाउद्दीन तुगलक शाहसु सुलतान" की भारी मरकम उपाधि लेकर सुलतान बन बैठा।

हिन्दुस्तान के विदेशी मुस्लिम शासक परिवार में खिल्जी वंश ने चार सुलतानों की रक्त-रंजित कड़ी जोड़ी। इसमें जलालुद्दीन का शासन आठ वर्ष का था। उसकी हत्या कर उसके भतीजे-दामाद ने प्रायः २० वर्ष तक राज्य किया। शायद उसे भी मलिक काफूर ने जहर दे दिया था। उसकी मृत्यु के बाद काफूर ने उसके बाल-पुत्र शहाबुद्दीन को गद्दी पर बिठाया। शहाबुद्दीन का शासन सिर्फ कुछ महीने का ही था, क्योंकि उसके बड़े भाई मुबारक खाँ ने उसकी हत्या कर दी, जिसे बाल-सुलतान का संरक्षक बनाया गया था। अपने मुँह पर बाल-सुलतान तथा छोटे भाई की हत्या का रक्त पोतकर मुबारक खाँ कुतुबुद्दीन के नाम से चार वर्ष चार महीने गद्दी पर जमा रहा।

युद्ध या शासन के अधिक व्यभिचार में भगन यह किशोर सुलतान लम्बे-लम्बे बाल और लम्बी चोटी रखकर, जनाना पोशाक पहनना ही पसन्द करता था। जनाना शृंगार कर वह दरबार भी जाता था। उसके एक हिन्दू भाग्य के गुजराती वीर ने एक रात उसके पापी और व्यभिचारी जीवन का अन्त कर डाला। उसने सुलतान नासिरुद्दीन की उपाधि लेकर प्राचीन हिन्दू राज-सिंहासन को विदेशी बंगुल से मुक्त करने का साहसी और सराहनीय कदम उठाया। इस प्रयास में उसने अपने प्राणों की आहुति दे दी और दो महीने के बाद ही मलिक गाजी तुगलक ने एक बार फिर हिन्दुस्तान में हिन्दुओं को जलाने तथा काटने के लिए जलतान सुलतानों के खानदानों की टूटी खूनी जंजीर को जोड़ दिया। इसके बाद वही खूनी किस्सा फिर चालू हो गया।

(मदर इण्डिया, अक्टूबर, १९६७)

गियासुद्दीन तुगलक

कुछ विचित्र धारणाओं के कारण सारे संसार की शिक्षा-संस्थाओं में भारतीय इतिहास की शिक्षा एवं शोध एक मस्जौल बनकर रह गया है, एक मज्जाक हो गया है।

वे लोग व्यंग्य और उपहास से खिल्ली उड़ाते हुए, बड़ी घृष्टता से, मुसलमानों की झूठी महानता, नकली दयालुता और लुटेरे कर-प्रबन्ध आदि न जाने कितनी नई-नई बातों की खूबियों का मनमाना बयान अनुमान से ही गढ़ते रहते हैं। वे भूल जाते हैं या फिर जानबूझकर अनजान बन जाते हैं कि तूफान की तरह भारत में घुस पड़ने वाला मुस्लिम-गिरोह जानवरों और बर्बर जंगलियों का गिरोह था, जिनमें सभ्यता और संस्कृति की छाया भी नहीं थी। उन लोगों को इस्लामी अन्ध-विश्वास ने पूरी तरह पकीन दिला दिया था कि हिन्दुओं की हत्या करना, गायों को काटना और सभी काफिर तारियों पर, चाहे वे चीनी हों या जापानी, अंग्रेज हों या हिन्दुस्तानी बलात्कार करना बड़ा महान् और गौरवशाली काम है। इस काम से उनके लिए इस्लामी जन्नत में एक ऊँचा ओहदा रिजवं हो जाता है। इसलिए वे लोग प्रत्येक आक्रमण के बाद या तो सारे कैदियों की हलाल कर देते थे, या जन्नत का मज्जा यहीं लूटने के लिए उनको गुलाम बना लेते थे, या मुस्लिम बाजारों में बेच देते थे।

इन जानवरों के जंगली शासन को "महान् और न्यायी युग" मानना विद्या का अपमान करना है। छात्रों को बहकाने वाली ऐसी धारणाएँ साधारण तर्क का भी गला घोट देती हैं। ये आग उगलने वाले जंगली बर्बर, भूखे भेड़ियों के झुण्ड की भाँति भारत में आ घुसे थे। ये किस प्रकार हिन्दुओं की उन्नति की चिन्ता करने वाले गुण-सम्पन्न और दयालु शासक

बन बैठे ? इस निगमन से तर्क-शास्त्र के दूसरे नियम की भी हत्या होती है। सभी जानते हैं कि नक्ति बोर पद लोगों को भ्रष्ट करता है तथा निरंकुश शक्ति घोर सबोच्च पद, खास तौर से भ्रष्ट लोगों को, एकदम पतित बना देता है। कोई भी व्यक्ति आसानी से यह अनुमान लगा सकता है कि इन बंदर जंगलियों ने, इन क्रूर मुस्लिम आक्रमणकारियों ने, भारत में मशाल और तलवार लेकर, हजार वर्ष तक चलने वाले अपने लम्बे इस्लामी नाच के दौरान, अपने चंगुल में फँसी अभागी और असहाय नारियों, बच्चों और मनुष्यों पर क्या-क्या नारकीय जुलम न ड़ाया होगा।

शताब्दियाँ बीत गईं। संसार काफ़ी आगे बढ़ चुका है। मगर हाल ही की तीन घटनाएँ स्पष्ट करती हैं कि मुस्लिम-जगत् का विशाल भाग अभी भी मध्यकालीन बंदर और जंगली अन्ध-विश्वास तथा इस्लाम की खूनी धाकाधवा के अंधेरे तहखाने में चिपके पड़े रहने में ही अपना गौरव समझता है—

(१) जुलाई, १९६७ ई० में इसरायली प्रतिनिधि-मण्डल ने संयुक्त-राष्ट्र की साधारण सभा में अरबों के खूँखार कारनामों का भण्डाफोड़ किया है। छः दिन के युद्ध अभियान में दुम दबाकर भागने से पहले अरबों ने मुस्लिम चंगुल में फँसे यहूदियों पर जो बंदर अत्याचार किया था वह अब जग-विख्यात है। (२) प्रायः उसी समय उनके धर्म-भाई पूर्वी पाकिस्तान के एक शहर में सभी अ-मुसलमानों (यानी काफ़िरों) को लूट रहे थे, उनके घरों में आग लगा रहे थे, उनकी स्त्रियों पर बलात्कार कर रहे थे। क्योंकि एक मुस्लिम लड़की को एक बौद्ध लड़के से प्यार हो गया था। (३) हाल ही में लोगों ने मिस्र को यमन के नागरिकों पर जहरीली गैस का प्रयोग करते पकड़ा है।

२०वीं शताब्दी में भी ऐसा क्रूर और नृशंस अत्याचार हो सकता है, तब कोई भी आदमी आसानी से यह अनुमान लगा सकता है कि एक के बाद दूसरे मुड़े मुस्लिम खानदानों ने लगातार, मध्यकालीन इस्लामी उन्माद में शारों और फँसकर, हिन्दुस्तान पर क्या-क्या अत्याचार नहीं किया होगा ? उसपर वे लोग जिहाद का नारा बुलन्द करते हुए, यह क्रिसम बाकर हिन्दुस्तान में घुसे थे कि वे इसे लूटेंगे और नष्ट करेंगे, भारत भूमि को अत्याचारपूर्वक लूटने वाले इस्लामी खानदानों और मुसलमानी

सुलतानों की लम्बी खंज़ीर की एक कड़ी तुगलक खानदानों के खानदान की भी है।

मुस्लिम लुटेरा गाजी मलिक खिल्जी-खानदान का विनाश करने में सफल हुआ था। प्राचीन हिन्दू नगर श्री हजार-खम्मा भवन में उसकी ताजपोशी हुई। धन की देवी का निवास-स्थान श्री एक फलते-फूलते नगर की ओर संकेत करता है। अरबी-फारसी की अपूर्ण लिपि में श्री को सीरी बनाकर इसके निर्माण का श्रेय धूर्तता से एक खिल्जी को दिया क्योंकि खिल्जियों ने संयोग से प्राचीन विशाल हिन्दू राजधानी दिल्ली के श्री नगर को अपना मुख्य केन्द्र बना लिया था।

१३२० ई० में इस अपहर्ता ने सुलतान बनकर 'सुलतानुल् गियासुद्दीन दुन्या वाउद्दीन तुगलक शाह' का लम्बा-चौड़ा पट्टा धारण किया। इन पशुओं के रिवाज के अनुसार उसने अपने पूर्वजों के हरम की सारी अपहृत औरतों को अपने चंगुल में दाब लिया। इनका अपहरण करके उसके पूर्वजों ने इनकी बड़े परिश्रम से जमा किया था। इस हरम की दादियाँ, चाचियाँ, बहनें, भतीजियाँ, माताएँ, शाहजादियाँ, साधारण सुन्दर नारियाँ और नई उड़ाई लड़कियाँ प्रकट रूप में गद्दी के व्यभिचारी सुलतान की वैश्याएँ थीं और गुप्त रूप में दरबारियों तथा साहसी सेवकों के मनोरंजन का खिलौना। देवगिरी दुर्ग से घसीटकर लाई गई गुजरात की राज-कन्या भी इन्हीं में से एक थी। कमानुसार पहले उसे अलाउद्दीन के पुत्र खिज़्र खाँ की पत्नी बना पड़ा। बाद में वह कुतुबुद्दीन फिर धर्मान्तरित खूसरू यानी नासिरुद्दीन की भोग्या बनी। अब उसपर बलात्कार करने की बारी गियासुद्दीन की थी क्योंकि हिन्दुस्तान का प्रमुख लुटेरा सरदार और मुस्लिम दुष्ट होने के कारण व्यभिचारी व्यवहार का खुला लायसेन्स इसी के पास था।

उस ठसाठस भरे उपजाऊ हरम में गियासुद्दीन को सन्तानों की कमी नहीं थी। बड़ा पुत्र गद्दी का बारिस था। उसे उलुघ खाँ की उपाधि मिली। परवर्ती चार पुत्र बहराम खाँ, जफ़र खाँ, महमूद खाँ और नुसरत खाँ थे।

हम अभी देखेंगे कि गियासुद्दीन सभी भारतीय मुस्लिम शासकों की भाँति एक हिंस्र जंगली जानवर ही था। फिर भी एक मुस्लिम इतिहासकार चाणलूसी में इस खानदान के बाप को न्यायी, दयालु और उदार शासक कहते नहीं सकते। उदाहरण के लिए इन चाणलूसी में से जिहाउद्दीन बरनी को

ही लिखा जाए। उसने गियासुद्दीन के बारे में लिखा है—'वे जब गद्दी पर बैठते थे तब अपने चरित्र की महानता, कुलीनता और उदारता से विशिष्ट प्रतीत होते थे। उन्होंने अपने सभी साधियों और परिचितों में इनाम बाँटा' (पृष्ठ २२६, ग्रन्थ ३, इलियट एवं हाउसन)।

ऐसे वर्णनों ने सारी दुनिया के इतिहासकारों को अन्धा बनाकर भटका दिया है। इन लोगों ने जरा-सी समझदारी से भी काम नहीं लिया कि आखिर इन वर्णनों का मूल्य कितना है, इनमें सच्चाई कितनी है, और ऐसी प्रशंसा लिखने वाले का उद्देश्य क्या है? इन लोगों ने ऐसी प्रशंसा की तुलना मुस्लिम लुटेरों के वास्तविक कारनामों से भी नहीं की। अगर ये लोग ऐसा करते तो इन लोगों को इस खेल का राज तुरन्त मालूम हो जाता।

अमीर खुसरो गियासुद्दीन तुगलक का समकालीन था। उसे एक महान् मुस्लिम कवि के रूप में माना जाता है। मगर उसकी दो कविताओं से यह भण्डाफोड़ हो जाता है कि वह किस प्रकार चापलूसी करता, हिन्दू-हत्या और विनाश देख-देखकर खुशी से लोटन कबूतर बन जाता था। सुलतान गियासुद्दीन की चापलूसी के बारे में अमीर खुसरो का वर्णन करते हुए बियाउद्दीन बरनी ने लिखा है—'कहा जाता है कि उनके (गियासुद्दीन) शासन की खूबियों से प्रेरित होकर अमीर खुसरो ने एक शेर पढ़ा था— जिसका भावार्थ है—

"उसने ऐसा कोई काम नहीं किया, जो विवेक और समझदारी से भरा हुआ न हो, उसके बारे में कह सकते हैं कि सैकड़ों विद्वानों की विद्वत्ता उनके ताब के नीचे छिपी हुई थी।"

बरनी ने आगे लिखा है—'अपने स्वभाव की उदारता से गियासुद्दीन ने देश का भूमि-कर सद्-नियमों पर आधारित करने का फरमान जारी किया।'

सुलतान गियासुद्दीन पर इतनी उदारता से बारी गई बरनी की यह साक्षी थोड़ी ही छानबीन से कोरी बकवास प्रमाणित हो जाती है। उसके अनुसार गद्दी पर बैठते ही गियासुद्दीन ने अपने साधियों और परिचितों को बड़ी दरिवादिगी से इनाम दिया। यह पुरस्कार देशद्रोह और विश्वासघात को मिलने वाले शार्ड-भतीजावाद का एक गन्दा उदाहरण है। अपने पाप और अपराध के सहयोगियों में लूट के माल को बड़ी दरिवादिली से बाँटने

वाला एक डाकू-सरदार अपने आपको समाज-सुधारक नहीं कह सकता। दूसरे उसने एक विशेष भूमि-कर पद्धति अपनाई थी। मुस्लिम चापलूसों का यह बड़ा प्यारा नारा है। इसका सिर्फ यही मतलब है कि उसके पूर्वजों ने जो भूमि-कर लोगों पर लादा था वह काफी कड़ा नहीं था। उसे और कठोर बनाकर गरीब हिन्दू जनता की चमड़ी उधेड़ने के लिए नये-नये अत्याचारी नियमों को ईजाद किया गया। (मुगल सम्राट् अकबर आदि सभी लोगों के) ये बहु-प्रशंसित भूमि-कर नियम जनता से धन चूसने के योजना-बद्ध क्रूर कारनामे थे। इन्हें निचोड़ने के लिए पाशविक यातनाओं की मशीन में लोगों को कूटा-पीसा जाता था। कौड़ों से उनकी मजदूरी होती थी। इन क्रूर मुस्लिम-करों को चुकाने के लिए अभागे लोग अपनी पत्नियों और बच्चों तक को बेच देते थे।

खुसरो के दूसरे शेर ने उसकी इस्लामी दुष्टता को तंग किया है। वह कहता है कि उसे हिन्दुस्तान पसन्द है क्योंकि "इसकी जमीन तलवार के पानी से पाक और साफ़ की गई है और (यहाँ से) काफ़िरपन के बादल छंट गए हैं।" मुस्लिम शासनकाल में मुस्लिम दरगाहों पर भेंट चढ़ाने और सिजदा करने के लिए हिन्दुओं को मजबूर किया जाता था। बड़े शोक और शर्म की बात है कि हिन्दू लोग आज भी आँख मूँदकर यही काम करते चले आ रहे हैं। प्रत्येक वर्ष ये लोग खुसरो की दरगाह पर जमा होते हैं। ये बड़ी उमंग से उसकी कविताओं का पाठ करते हैं। मगर खुसरो हिन्दुओं की हत्या, हिन्दू बच्चों के खतने, हिन्दू स्त्रियों के बलात्कार और हिन्दू महलों के इस्लामीकरण से बड़ा प्रसन्न होता था।

गियासुद्दीन की कर-प्रणाली भी जनता के खून की अन्तिम बूंद तक को चूस लेने वाली एक क्रूर प्रणाली थी। बरनी ने अपनी नासमझी से इसका भण्डाफोड़ भी कर दिया है। उसके अनुसार गियासुद्दीन ने यह हुक्म जारी किया कि "एक बार में इतना न छीना जाए जिससे खेती के कामों में खलल पड़े। हिन्दुओं से इतना ही कर वसूल किया जाय, जिससे वे लोग धन के उन्माद में बिद्रोह न कर सकें और समूह में जमा न हो सकें।" (वही, पृष्ठ २३१)।

प्रत्येक मुस्लिम शासक की भाँति गद्दी पर बैठते ही गियासुद्दीन ने भी चारों ओर अपनी नज़र दोड़ाई कि किस हिन्दू-क्षेत्र को कुचला जाए

और किस हिन्दू-नगर को लूटा जाए। हरम के वर्णसंकर बड़े पुत्र उलुघ खाँ को वारंगल एवं आन्ध्र (तेलंगाणा) क्षत्र के हिन्दू राज्यों पर चढ़ाई करने के लिए भेजा गया। पूर्ववर्ती मुस्लिम लुटेरे दक्षिण में इस्लामी धावा करने के लिए प्राचीन हिन्दू दुर्ग देवगिरी को मुस्लिम अड्डा बना ही चुके थे।

वहाँ पहुँचकर उलुघ-खाँ ने दुर्ग-स्थित सैनिकों को मजबूर किया कि वे लोग अपने भूतपूर्व सह-धर्मियों को लूटने-खसोटने में उसका साथ दें। वहाँ मुस्लिम सेना ने ऐसा आतंक फैलाया और अत्याचार किया कि "उलुघ खाँ के डर और भय से तद्दूर देव, उसके राय और दरबारियों ने गढ़ी में जाकर शरण ली। वारंगल पहुँचकर इन लोगों ने माटी-दुर्ग को घेर लिया। उसने तब आन्ध्र की जमीन को बरबाद करने; लूट बटोरने और खाना-दाना लाने के लिए अपने कुछ अफसरों को भेज दिया। वे लोग बहुत-सा माल-मत्ता और खाना-दाना लादकर ले आए। अब सेना पूरे यक्रीन के साथ अपना घेरा कसने लगी।" (वही, पृष्ठ २३१)।

पिछले जमाने में मुस्लिम कारनामों का स्वाद महाराष्ट्र ने चखा था। इस बार तेलंगाणा ने।

भारतीय इतिहास के छात्र प्रायः विस्मित होते हैं कि भारत इतना कमजोर कैसे हो गया। किस प्रकार सिर्फ छः शताब्दियों में विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारी अफ़ग़ानिस्तान से तेलंगाणा तक सिर्फ फँले ही नहीं वरन् साँप और चूहों के भाँति हिन्दुस्तान के भीतर तक पैठकर हिन्दू-जन और धन को जल्दी ही हथियाने भी लगे। इसके चार कारण हैं—

(१) हिन्दुस्तान अहिंसा परमोधर्म के रोग से ग्रसित होकर जर्जर हो चुका था। इसकी बीर-परम्परा नष्ट हो रही थी। देशद्रोही बढ़ रहे थे। शक्ति क्षीण हो रही थी। इस रोग का निवारण करने श्री शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट प्रभृति विद्वान् इसका उपचार भी कर रहे थे। रोग का निवारण तो हुआ, बौद्ध धर्म यहाँ से निःशेष तो हुआ, मगर रोग के बाद की दुर्बलता अभी तक शेष थी। इसी संक्रमण काल में मुस्लिम आक्रमणकारियों का तूफ़ानी हमला हिन्दुस्तान पर हुआ, जिनके प्रहारों को रोकने में हिन्दुस्तान ने अपनी दुर्बलावस्था में भी असीम शौर्य को परिचय दिया। उस

समय तक अरब देशों में एक लोकोक्ति प्रचलित हो गई थी "हिन्दू तलवार के समान तीखी और तेज़।"

(२) यद्यपि इस्लाम ने हिन्दुस्तान में हिन्दुत्व को काफ़ी नोँचा और ख़खोरा, बड़ी बुरी तरह उसे घायल और लहू-लुहान किया, फिर भी अपनी अपूर्व जीवनी-शक्ति और अप्रतिम विरोध का परिचय देकर उसने एक प्रकार की विजय प्राप्त की है। अरब, सीरिया, ईरान, इराक़, तुर्की, मलाया, जावा, सुमात्रा और अन्य अफ़्रीका देशों की दशा देखिए। मुस्लिम दुष्टता के सामने इन सभी देशों ने अपने घुटने टेक दिए। इधर हजार वर्षों के मुस्लिम आक्रमणों के बावजूद हिन्दुस्तान के हिन्दू बहुत बड़ी संख्या में गौरव से सिर उठाए अपने धर्म का पालन कर रहे हैं। हिन्दुओं की यह जीत कोई छोटी-मोटी मामूली जीत नहीं है।

(३) हिन्दुओं को इन्सान की नैतिकताओं में अत्यधिक विश्वास था। समर-भूमि में सेनाओं से ही लड़ने की उनकी आदत थी। वे सपने में भी नहीं सोच सकते थे कि इन्सान के वेश में जानवर आएँगे। वे खेतों को तबाह और घरों को बरबाद करेंगे। उधर मुसलमानों की रणनीति एकदम भिन्न थी। हिन्दू राजाओं तथा उनकी सेनाओं को ललकारने के बदले मुस्लिम गुण्डों ने खेत-खलियानों को जलाना, लूटना तथा स्त्रियों तथा बच्चों का हरण करना शुरू कर दिया। ऐसे नारकीय कृत्यों के कारण सेनाओं के सुसंगठित और चौकियों के सुरक्षित रहने पर भी हिन्दू शासकों को शान्ति-सन्धि स्वीकार करनी पड़ी। वे अपने क्षेत्र और प्रजा की तबाही न देख सके। इस महँगी शान्ति (?) को खरीदकर हिन्दू शासकों को हिन्दुत्व में इस्लामी घुसपैठ सहनी पड़ी। मगर मुस्लिम आक्रमणकारी सन्धि-नियमों पर हमेशा लात मारते रहे। उनकी लूट कभी बन्द नहीं हुई।

(४) जाँक की भाँति हिन्दुत्व पर चिपके इस्लाम के फलने-फूलने का चौथा रहस्य इसके धर्मान्तरण की काली-करतूतें हैं। हजारों की संख्या में इस्लाम की तोंद भरने वाले इसके सर्वोत्तम अफसर और सन्त कासिम, गज़नवी और गौरी जैसे अनेक उत्पाती लुटेरे थे। मध्यकालीन भारत में हर धर्म परिवर्तन करने वाला हिन्दू रातों-रात पक्का देशद्रोही होकर इस धर्मान्तरण के जादू से अपने आपको पक्का तुर्की या अरबी समझने लगता था और इस्लाम के नाम पर हिन्दुस्तान को नष्ट-भ्रष्ट करना अपना

पवित्र धार्मिक कर्तव्य मानने लगता था। इन नीच उपायों को निष्फल करने के ही उपाय थे—शठे शाठ्य समाचरेत—यानी (१) प्रतिक्रिया के साथ भीषण प्रतिकार और प्रत्याक्रमण, तथा (२) प्रतिशोध के साथ पुनर्धर्मान्तरण और प्रति-धर्मान्तरण। जो राष्ट्र अपनी पिछली भूलों से सबक नहीं सीखता, उसका भविष्य अन्धकारमय ही रहता है। छोटा-सा इसरायल नहीं खूँवार मुस्लिम राष्ट्रों की घुड़कियों के बीच भी सीता ताने अकेला खड़ा है क्योंकि उसका युद्धानुशासन प्रतिकार के लिए तैयार है। उसकी राष्ट्र-निष्ठा में किसी प्रकार का (अहिंसा जैसा) रोग नहीं।

बरनी के इतिहास 'तारीखे फ़िरोज़शाही' के आधार पर गियासुद्दीन के शासन काल की समीक्षा करते हुए हम पाठकों, शिक्षकों और शोधकों को इन इतिहासों में भरी हुई कोरी बकवासों से सचेत कर देना चाहते हैं। सर इलियट पृष्ठ २३१ की पाद-टिप्पणी में लिखते हैं कि "गियासुद्दीन के चरित्र और शासन की बड़ाई में बहुत से पन्ने रंगे हुए हैं, मगर इनको ऐसे चालू ढंग से लिखा गया है मानो इनका कोई मूल्य और महत्त्व नहीं है।" वारंगल के घेरे के बारे में बरनी के वयान का एक अंश देकर हम पाठकों के सामने यह प्रमाणित करेंगे कि यह मुस्लिम इतिहास किस प्रकार भरी बकवासों से भरा हुआ है। ध्यान देने की बात यह है कि मुस्लिम इतिहासकार अपनी घातक प्रकृति के कारण सबसे पहले हिन्दुओं से हुई प्रत्येक मुठभेड़ और लड़प पर "इस्लाम की महान् विजय" का झूठा रंग पोतते हैं। बात में किशकते और शर्माते हुए वे लोग कुछ ऐसी बातें लिख देते हैं, जिनसे मुस्लिम हार का भण्डा-फोड़ हो जाता है।

पाठक मुस्लिम इतिहास की इस स्वाभाविक दुष्टता और भ्रष्ट शिक्षा का उदाहरण बरनी की इन पंक्तियों में देख सकते हैं। वे लिखते हैं कि "वारंगल (वारंगल) के माटी-दुर्ग एवं पाषाण-दुर्ग में बहुत-से हिन्दू सैनिक थे। प्रतिदिन तीव्र लड़पे होने लगीं। दुर्ग से भीषण अग्नि वर्षा होती थी और दोनों ओर के बहुत लोग मारे जाते थे। मगर मुसलमानी सेना सुविधाजनक स्थिति में थी। दुर्ग-सैनिक संकट में फँस गए। माटी-दुर्ग अब हाथ में आने ही वाला था कि उन लोगों ने आत्म-समर्पण कर देने का निश्चय कर लिया। राय कहरदेव ने सन्धि की बातचीत करने के लिए एक प्रतिनिधि-मण्डल भेजा। उन लोगों ने खजाना, हाथी, जवाहरात और कीमती चीजें

उपहार में दीं और गिड़गिड़ाए कि ख़ाँ इन्हें स्वीकार कर ले... ख़ाँ ने कोई भी शर्त स्वीकार नहीं की। दुर्ग को ध्वस्त करने और राय को बन्दी बनाने का उसने पक्का इरादा कर लिया। इस प्रकार चारों ओर से घिरे हुताश हिन्दू समझौते की बातें चला रहे थे। तबतक लगभग एक महीना हो चुका था और दिल्ली से सुलतान का कोई भी समाचार नहीं आया... ख़ाँ और उनके दरबारियों ने अनुमान किया कि मार्ग की कुछ चौकियाँ नष्ट हो गई हैं... सैनिकों में घबराहट और आशंका फैल गई... सभी लोगों ने अपना-अपना रास्ता नापा... शायर उबैद और शेख़जाद-इ-दिमाक्षी... मलिक तमार, मलिक तिगिन, मलिक मल्ल अफ़ग़ान और मलिक काफ़ूर के पास गए और (उनसे) कहा कि उलुघ ख़ाँ उनको ईर्ष्या और जंका की नज़रों से देखते हैं... अतएव उन लोगों ने भागने का मन्सूबा बाँधा... सेना में घबराहट फैल गई... घिरे हुए लोगों ने आक्रमण करके सामान लूट लिया। उलुघ ख़ाँ अपने लोगों के साथ देवगिरी तक पीछे हट गया..."

क्या यह वर्णन साफ़-साफ़ स्वीकार नहीं करता कि वारंगल के राय लहर देव ने गियासुद्दीन की मुस्लिम सेना को बड़ी बुरी तरह हराया? उसने लोगों के भागने का मार्ग बन्द कर दिया। उसने पत्राचार एवं आपूर्ति मार्ग बन्द कर दिया। उसने मुस्लिम सेना की हालत इतनी पतली कर दी कि उनमें परस्पर तीव्र मतभेद हो गया। शत्रुओं की हिन्दू लूट और हिन्दू सामान एक बार फिर हिन्दुओं को वापिस मिल गया। मुस्लिम आक्रमणकारी दूर देवगिरी खदेड़ दिए गए। शत्रुओं के ही इतिहासकार द्वारा पराजय की इस स्पष्ट स्वीकृति के बावजूद शिक्षक एवं अनुसन्धाता धुंधले मुस्लिम दावों में भटक जाते हैं। अतएव आन्ध्र के हिन्दू बड़े गौरव से यह प्रमाणित कर सकते हैं कि उन लोगों ने तुगलक की मुस्लिम सेना को छठी का दूध पाद दिला दिया था। यह मार इतनी कमरतोड़ और करारी थी कि "सैनिक परस्त हो गए, जिधर मौका मिला भाग निकले..." भागने वाले कुलीनों ने भी अपना-अपना रास्ता पकड़ा, उनके सिपाही और गुलाम नष्ट हो गए, उनके घोड़े और हथियार हिन्दुओं के हाथ लगे। मलिक तमार (गलती से) अपने कुछ सवारों के साथ हिन्दू-क्षेत्र में घुस गए और वहीं ख़त्म हो गए। हिन्दुओं ने अवध के मलिक तमार को मारकर उसकी चमड़ी उलुघ ख़ाँ के पास देवगिरी भेज दी। (उन लोगों ने) मलिक मल्ल अफ़ग़ान,

शायर उबैद आदि बहुत लोगों को बन्दी बनाकर देवगिरी भेज दिया।" (वही, पृष्ठ २३१-२३२)।

अच्छे आधुनिक इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी को एक अच्छा इतिहासकार मानते हैं। जब एक सम्मानित इतिहासकार इतनी झूठी उड़ान भर सकता है कि मुस्लिम जीत रहे थे तो कोई भी आसानी से यह अनुमान नया सकता है कि इन इतिहासकारों ने हजार वर्ष के मुस्लिम दुष्कर्मों को कितना तोड़ा-भरोड़ा होगा।

आधुनिक इतिहासकारों को चाहिए कि वे मुस्लिम इतिहासों का अच्छी तरह मन्थन करें। एक-एक बात की तह तक पहुँचें। बरनी ने मलिक तमार की चमड़ी और मलिक मल्ल अफ़ग़ान तथा उबैद आदि अनेक लोगों को बन्दी बनाकर उलुघ खाँ के पास जीवित देवगिरी भेजने का वर्णन किया है। हिन्दू लोग स्वभाव से इतने क्रूर नहीं होते कि वे खिसियाकर एक लाश की चमड़ी उधेड़ेंगे। अगर हजार बार में एक बार हिन्दुओं ने आदर्शवाद को ताक पर रखकर ऐसे क्रोध और यथार्थवाद का परिचय दिया है तो यह एकदम न्यायसंगत है। इन लड़ाइयों में हिन्दुओं ने इस यथार्थवाद का परिचय हर जगह दिया होता तो आज हिन्दुत्व की यह दुर्दशा न होती क्योंकि शठ-शठ की ही भाषा समझता है। दूसरे अफ़ग़ान और उबैद को बन्दी बनाकर हिन्दू राजा उलुघ खाँ के पास क्यों भेजेंगे? फिर उन्हें ही जिन्दा क्यों भेजा? उनकी भी चमड़ी छीलकर ही भेजते। इससे प्रकट होता है कि मुस्लिम बयानों में शैतानी कल्पना का कितना रंग चढ़ा हुआ है। इन्हें सावधानी से छाटना-फटकना होगा। इस झूठी ढेरी में से इतिहास के वास्तविक दानों को बड़े परिश्रम से चुनना होगा।

जब तैमूराना के वीर हिन्दुओं के हाथों मुस्लिम संकट एवं पराजय का समाचार गियासुद्दीन के पास पहुँचा, तब उसने "बाणियों की पत्नियों और पुत्रों को कंद कर लिया।" विचारणीय है कि हिन्दुओं ने मुस्लिम बन्दिनों को जीवित उनके छोर ठिकाने पहुँचा दिया था। मगर उनके अपने जाति-भाई मुस्लिम-सुलतान गियासुद्दीन ने क्रोध में आकर उनकी पत्नियों पर बलात्कार किया। उनके बच्चों को बाजारों में बेच दिया। बरनी ने आगे लिखा है कि "सीरी के मैदान में सुलतान ने एक आम दरबार बुलाया। वहाँ शायर उबैद और मलिक काफ़ूर को उन्होंने अन्य बन्दिनों के साथ

जिन्दा झूली पर चढ़ा दिया। उन्होंने उन लोगों को ऐसी कठोर सजाएँ दीं कि देखने वाले काफ़ी दिनों तक भय से काँपते और सिहरते रहे। सुलतान के भीषण प्रतिशोध से सारी नगरी थर्रा उठी। (वही, पृष्ठ २३३)। यह सुलतान इंसान था या हैवान? मगर मुस्लिम इतिहासकार सदा की भाँति उसे "न्यायी, बुद्धिमान्, उदार और दयालु" कहते शर्म से गड़ते नहीं और इसी बात को तोते की तरह रटने वाले हमारे इतिहासकार शर्म से मरते नहीं।

पराजय की पीड़ा से छटपटाते हुए सुलतान ने "एक शक्तिशाली वाहिनी" देवगिरी में धूल चाटने के लिए उलुघ खाँ के पास भेज दी और एक बार फिर वारंगल पर आक्रमण करने का आदेश दिया। "तदनुसार वह तैलंग क्षेत्र में प्रविष्ट हो गया और उसने बिदार दुर्ग को जीतकर उसके मुखिया को कंद कर लिया।" (वही, पृष्ठ २३३)।

यहाँ हम पाठकों का ध्यान "बिदार" शब्द की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। बड़े भ्रम से आधुनिक इतिहास पाठ्य-पुस्तकें बिदार की भव्य और आलीशान अट्टालिकाओं के निर्माण का श्रेय कभी इस मुस्लिम सुलतान को देती हैं तो कभी उस मुस्लिम शैतान को, जबकि जियाउद्दीन बरनी ने जो उन्हीं लोगों का एक चापलूस इतिहासकार था, साफ़-साफ़ स्वीकार किया है कि मुसलमानों ने बिदार में तोड़-फोड़ मचाई थी। अतएव मान्य इतिहासकार और इतिहास के छात्र इस बात को नोट कर लें कि बिदार को मुसलमानों ने बनाया नहीं, बरबाद किया है। बिदार के सुनसान और उजाड़ खण्डहर अभी भी देखने वालों का दिल दहला देते हैं। मुस्लिम गुण्डों ने जिस प्रकार मध्यकालीन भारत के अन्य नगरों को लूट और आग-जनी से बरबाद किया था, उसी प्रकार उन लोगों ने बिदार का भी नाश किया। इसलिए बिदार से सम्बन्धित पाठ्य-पुस्तकों और पर्यटक-साहित्य में उचित सुधार होना चाहिए। पर्यटकों को बतलाया जाना चाहिए कि उन भव्य-भवनों का जो कुछ भी शेष है वह हिन्दू-निर्माण है, तथा जो तबाही और बरबादी वे लोग देख रहे हैं वह मुस्लिम दुष्टता का कारनामा है। क्या आज से हमारे इतिहासकार और इतिहास यह हास्यास्पद भंडा लहराना बन्द करेंगे कि बिदार मुस्लिम वास्तु-कला का अद्भुत नमूना है? क्या इसके हिन्दू-नगर होने का दावा करने में वे अभी भी जर्माएँगे या

करेंगे? क्या हमारे वास्तु-कला शिक्षक पाठ्य-पुस्तकों में अभी भी सुधार करने से जी चुराएंगे?

फलते-फूलते हिन्दू-नगर बिदार को खाकर इस्लामी महामारी वारंगल की ओर बढ़ी। कुछ मास पूर्व वे लोग यहाँ से मार खाकर, हताश-निराश होकर, जान लेकर भागे थे। इस बार धर्मन्तरित हिन्दुओं को आगे रखा गया। उन्हें बलि का बकरा बनाकर आतंक और यातनाओं के जोर से मुसलमानों ने इसपर अपना अधिकार कर लिया। बरनी का बयान है कि "अपने सारे कुलीनों, अधिकारियों, नारियों, बच्चों, हाथियों और घोड़ों के साथ सहरदेव (मुस्लिम शैतानों के) अधिकार में आ गये। विजय की सूचना दिल्ली भेज दी गई। तुगलकाबाद और सीरी में (मुसलमानों ने) बड़ा जश्न मनाया गया।" हाथियों, खजानों, रिश्तेदारों और आश्रितों के साथ सहरदेव को बन्दी बनाकर शैतान तुगलक सुलतान के पास दिल्ली भेज दिया गया। "वारंगल का नाम बदलकर सुलतानपुर रख दिया गया", और सारे तेलंगाना को मुस्लिम अत्याचार का तीखा स्वाद चखना पड़ा।

यहाँ हम पाठकों का ध्यान तुगलकाबाद और सुलतानपुर की ओर खींचना चाहते हैं। बरनी ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि वारंगल का नाम बदलकर सुलतानपुर रख दिया गया था। फिर भी भूतपूर्व हिन्दू नगरों के मात्र नाम परिवर्तन के काले जादू से मोहित परवर्ती मुस्लिम, ब्रिटिश और उनके पिछलगू हिन्दू इतिहासकार बरनी के इस बयान को बिना समझे यह स्वीकार कर लेते हैं कि प्रथम तुगलक लुटेरे गियासुद्दीन ने सुलतानपुर यानी वारंगल शहर को बनवाया और बसाया था। इन गप्पों से आजकल की पाठ्य-पुस्तकें भरी हुई हैं। ये भारतीय नगरों के विध्वंसकों को उनके निर्माता होने का श्रेय प्रदान करती हैं।

तुगलकाबाद शब्द भी काफ़ी महत्वपूर्ण है। अपहर्ता गियासुद्दीन ने दिल्ली की सुलतानी छोदी थी। इसके बाद ही तेलंगाना के राजा लहरदेव को बन्दी बनाकर तुगलकाबाद भेजा गया। क्या इतने कम समय में और ऐसे कमर-तोड़ संघामकाल में एक शहर बनकर तैयार हो सकता है? उसपर ६६ प्रतिशत जनता विरोधी और विद्रोही थी। स्पष्ट है कि प्राचीन हिन्दू शहर दिल्ली के जिस भाग को अपना हैड-ऑफिस बनाकर गियासुद्दीन ने अपना शासन जमाया था, उसी स्थान का नाम बदलकर उसने तुगलका-

बाद रख दिया। उसने इसका 'निर्माण' नहीं किया था। अपने पाँच से भी कम वर्ष के शासनकाल में उसके पास न समय था न धन। एक सम्पूर्ण नगर का नक्शा और निर्माण कोई मज़ाक नहीं है। योजना और पृष्ठभूमि तैयार करने में ही कई वर्ष लग जाते हैं। उसपर उस युग के जंगली, बवंर, कामुक, पापी, निरक्षर, अज्ञानी, शराबी और अफीमची मुस्लिम हैवान ऐसे भव्य नगरों के निर्माण करने के विचार का सपना भी नहीं देख सकते थे। उधर बरनी ने तुगलक-शासन के प्रारम्भ से इस जादुई तुगलकाबाद का वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया है। इधर भारत-सरकार का पर्यटक-साहित्य अपने विवेक का गला घोटकर लोगों को समझाता है कि गियासुद्दीन ने तुगलकाबाद का निर्माण किया है।

अतएव दिल्ली के इस तुगलकाबाद की ऊँची-मोटी प्राचीर और इसके बरबाद महलों का निर्माण गियासुद्दीन ने नहीं किया था। ये प्राचीन हिन्दू नगर विशाल दिल्ली के ही अंग हैं। इस प्राचीन दिल्ली के १५ अंग थे। ये उसके १५ उपनगर कहलाते थे। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने इसके एक-एक अंग को चबाना प्रारम्भ कर दिया था। अतएव पर्यटक यह स्मरण रखें कि गियासुद्दीन ने इसका निर्माण नहीं किया था वरन् इसी ने सर्व-प्रथम इस हिन्दू नगर की जड़ में मुस्लिम-मशाल लगाई थी। इस तथा-कथित तुगलकाबाद की पाषाण-प्राचीर के भीतर खण्डहरों की दीवारों पर उस भयंकर मुस्लिम गुण्डागर्दी के धूम्र-दाग अभी तक मौजूद हैं।

तेलंगाना की विजय या बरबादी के बाद लुटेरे तुगलक-शैतान की समझ में आ गया कि उस क्षेत्र पर उसका रक्त-चूसक पंजा गड़ा नहीं रह सकेगा। अतएव उसने चाबुक से चमड़ी उधेड़कर और यातनाओं के हाहा-कार से आसमान को घेरकर "एक वर्ष का कर" एक साथ बसूल कर लिया। (पृष्ठ २३४, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)।

उसके बाद तुगलक शाहजादा कटक में महानदी के किनारे-किनारे 'जाज नगर' की ओर बढ़ा। प्रतीत होता है कि उसे यहाँ से दुम दबाकर भागना पड़ा था क्योंकि बरनी के अनुसार वहाँ से शाहजादा सिर्फ ४० हाथियों को लेकर ही वापिस लौटा। मुस्लिम-नाक बचाने के लिए, हो सकता है कि ४० हाथियों वाली कहानी भी गढ़ ली गई हो। हमें सिर्फ यही शान्त होता है कि जाज नगर (यज्ञ नगर) के वीर हिन्दुओं के हाथों अपना

साथों सामान जवाकर, खाली हाथ हिलाता शाहजादा वापिस लौट आया। पर पतित मुस्लिम इतिहासकार प्रत्येक मुस्लिम आक्रमण में किसी-न-किसी बहाने मुस्लिम-विजय की बांसुरी, चाहे वह बेसुरी ही क्यों न हो, जरूर बजाएंगे। तदनुसार बरनी का बयान है कि तुगलक शाहजादे ४० हाथी लेकर आए और उन्हें अपने पिता गियासुद्दीन के पास दिल्ली भेज दिया। हमारे इतिहासकारों को ऐसी ही पंक्तियाँ सावधानी से पढ़नी हैं। इन्हीं पंक्तियों को पढ़कर सर एच० एम० इलियट ने सटीक टिप्पणी जड़ी कि मुस्लिम इतिहास "एक घृष्ट और मजदार घोड़ा" है।

इधर गियासुद्दीन की सेना तेलंगाना को लूटने में तल्लीन थी उधर मुगलों ने तुगलक-राज्य की उत्तरी सीमा पर प्रहार कर दिया। हमेशा की भाँति बरनी ने हमें विश्वास दिलाया है कि "इस्लाम की सेना ने उन लोगों को हरा दिया और उनके दो सेना-नायकों को बन्दी बनाकर दरबार में भेज दिया।" यहाँ पर बरनी ने हमें बतलाया है कि "सुलतान तुगलकाबाद को अपनी राजधानी बना चुके थे। यहाँ उनके कुलीन और दरबारी अपनी-अपनी पत्नियों और बच्चों के साथ रहने लगे थे।" (वही, पृष्ठ २३४)।

कम-से-कम इसे पढ़कर और समझकर इतिहासकारों और पर्यटकों को यह विश्वास हो जाना चाहिए कि गियासुद्दीन और उसके गुर्गे भूतपूर्व हिन्दू नगर में ही रहते थे। धूर्तता और मक्कारी से बरनी ने यह जोड़ा है कि उन लोगों ने "घर बनाया" था। मगर हम अब जान चुके हैं कि मध्य-कालीन चापलूस मुस्लिम इतिहासकारों के शब्द-कोश में "निर्माण" का अर्थ है—अपना कब्जा, निवास योग्य मरम्मत और झाड़-बुहार। अतएव जहाँ कहीं भी मुस्लिम इतिहासकारों ने यह लिखा है कि मुस्लिम गुण्डों ने मस्जिद, महल या नगर बनाया है तो इसका सिर्फ़ यही मतलब होता है कि उन लोगों ने नष्ट और त्यक्त हिन्दू महलों, मन्दिरों और नगरों पर अपना अधिकार कर लिया, जहाँ-तहाँ उसकी मरम्मत कर दी और मुस्लिम-निवास के लिए मुस्लिम-निर्माण हो गया।

शाहजादे उसुफ खाँ यानी मुहम्मद तुगलक को तेलंगाना से दिल्ली वापिस बुला लिया गया। उसे प्रमुख-प्रतिनिधि बनाकर स्वयं गियासुद्दीन दूर बंगाल की झाड़-फूँक करने चला। जब कभी और जहाँ-जहाँ भी मुस्लिम सेना ने हूच किया, आतंक और अत्याचार उनके दाएँ-बाएँ ही रहे। नारियों

को मसला-कुचला, गायों को काटा-खाया, घरों को लूटा-जलाया, लोगों को सताया-मारा, बच्चों का हरण-वरण हुआ, लूटे मन्दिर मस्जिद बने तथा सारे क्षेत्र को तलवार और मशाल से काट-जलाकर मसान-सा सुनसान कर दिया। फिर वे शान से आगे बढ़ गये। बरनी ने इस बात को स्वीकार किया है। उसका बयान है कि "सारे खुरासान और हिन्दुस्तान में सुलतान का आतंक और आदर फैल चुका था। सिन्ध और हिन्द के सारे देश तथा पूर्व से पश्चिम तक के सारे राणा और राजा बहुत वर्षों तक उनके डर से थर-थर काँपते रहे।" (वही, पृष्ठ २३४)।

एक मुस्लिम अत्याचारी नासिरुद्दीन लखनौटी से हिन्दू बंगाल पर शासन कर रहा था। गियासुद्दीन के आगमन से भयभीत होकर उसने आत्म-समर्पण कर दिया। अब गियासुद्दीन की प्रत्येक तृष्णा को तृप्त करने और हर प्रकार का टैक्स वसूल करने के लिए दोनों की मिली-जुली मुस्लिम सेना हिन्दू बंगाल को चूसने लगी। गियासुद्दीन के हजार पुत्रों में से एक पुत्र तातार खाँ भी साथ ही था। वह अपनी बबरता और क्रूरता के लिए विख्यात था। वह मुस्लिम गुण्डों की एक सेना लेकर बंगाल के एक भाग को निचोड़ने निकला जो व्यभिचारी मुस्लिम शासन की प्रारम्भिक अवस्था में ही खोखला हो चुका था।

एक दूसरा मुस्लिम अपहर्ता बहादुरशाह बंगाल के दूसरे भाग पर शासन करता था। उसकी राजधानी "सोनार गाँव" यानी सोने की नगरी थी। इसका सारा सोना मक्का जाने वाली विदेशी मुस्लिम सड़कों पर बिखर चुका था ताकि हिन्दुस्तान के दुश्मन उसे खा-पीकर मोटे हों और दुगने उत्साह से हिन्दू-खून चूसने को तैयार हो सकें।

बहादुरशाह लूट के सजीव और निर्जीव माल का बँटवारा गियासुद्दीन से करना नहीं चाहता था। उसने विरोध किया मगर हार गया। उसे जानवर की भाँति गले में फन्दा डालकर गियासुद्दीन के पास धसीटकर लाया गया।

उस क्षेत्र से जितने भी हाथी बटोरे जा सकते थे, सभी को बटोर-सँभट कर दिल्ली हाँक लाया गया। बंगाल के हिन्दुओं को दर-दर का भिखारी बनाकर मुसलमानों ने "इस अभियान में बहुत लूट" बटोरी। नासिरुद्दीन ने पूर्ण समर्पण कर दिया था। इधर गियासुद्दीन को भी हिन्दू बंगाल पर

मुस्लिम अत्याचारों का सिलसिला जारी रखने के लिए कोई-न-कोई गुर्गा चाहिए था। अतः उसने नासिरुद्दीन को "एक राज-छत्र और एक राज-दण्ड देकर" वापिस बंगाल भेज दिया। एक मुस्लिम जोंक को बंगाल की प्राचीन राजधानी सखनोटी पर चिपकाकर उसे शासक के रूप में मान्यता दे दी गई। उधर बहादुरशाह के गले में रस्सी बांधकर, जानवरों की भाँति चारों हाथ-पैरों से बसाकर दिल्ली लाया गया।

अब षड्यन्त्र प्रारम्भ हुए। घिसी-पिटी मुस्लिम परम्परा के अनुसार उलुघ खाँ अपने पिता की हत्या करने के लिए खुजला रहा था। हरम का एक वर्ण-संकर पुत्र और कर भी क्या सकता है? उसका पिता विजय की खुशी में मस्त हुआ दिल्ली आ रहा था। पितृ-भक्ति का दिखावाकर मुहम्मद तुगलक प्रमुख सेना से कई पड़ाव भागे घा गया। दिल्ली पहुँचने से पूर्व ही वह अपने पिता की हत्या कर देना चाहता था ताकि स्थानीय दरबारी और अफसरों के विरोध का भय न रहे।

गियासुद्दीन एवं उसकी सेना के पहुँचने का अनुमान लगाकर मुहम्मद ने दिल्ली से आठ मील दूर एक स्थान पर लकड़ी का एक चमत्कारी मकान बनवाया। यह जरा-से इशारे से ही एक साथ चरमराकर गियासुद्दीन की गर्म और फूली खोपड़ी पर बरस सकता था। इस मकान के जन्तर-मन्तर को हरी पत्तियों और फूलों से भली-भाँति ढँककर सजा दिया गया। बरनी के अनुसार यह स्थान अफगान पुर है। यानी बरनी ने इस प्राचीन हिन्दू नगर का मुसलमानीकरण कर दिया। वे लोग हिन्दू जनता के साथ-साथ हिन्दू नगरों-महलों का भी खतना कर देते थे, उनका नाम बदल देते थे।

गियासुद्दीन अपने हरम-वंशज मुहम्मद तुगलक के गन्दे और खूनी खेल से परिचित नहीं था। इस बहानेवाज पितृ-भक्त पुत्र ने इस सजे-धजे ढाँचे में डेरा डालने के लिए गियासुद्दीन को फुसला लिया। बहाना भी जोरदार था—विजय प्राप्त करके लौटने वाले सुलतान का स्वागत करने के लिए दिल्ली निवासियों को तैयारी के लिए कुछ समय तो मिलना चाहिए।

गियासुद्दीन इस स्थान पर दोपहर बाद पहुँचा। हत्या करने की सारी की सारी तैयारी पूरी करके गद्दी का बारिस उलुघ खाँ अपने विजयी पिता का स्वागत करने के लिए आगे धाया और रात को आराम करने के लिए उसे उस मायावी काष्ठ-गृह में ले गया।

अँधेरा होने लगा। लूटकर लाए गए हिन्दू माल से तैयार किया गया सजीज खाना तैयार था। इसे मुस्लिम लुटेरों की विशाल पंगत को परोस दिया गया। अपहृत हिन्दू-नारियाँ सुलतान की शय्या के चारों ओर सजा दी गईं।

दावत खत्म हुई। मुस्लिम लुटेरों की सुलतानी सेना के मनोरंजन के लिए शराब का दौर चला। सुलतान शराब से बेहोश हो गए। मुहम्मद तुगलक ने सुलतान को अपहृत और बन्दी हिन्दू-नारियों के झुण्ड में अपने रक्त-स्नात जीवन की अन्तिम सुखद साँस लेने के लिए सुला दिया।

आधी रात हो गई। मुहम्मद और उसके सहयोगी पड़ाव के महत्त्वपूर्ण स्थान पर जा डटे। नशे में बेहोश गियासुद्दीन के सहयोगियों को बेड़ियों से जकड़कर मारक संकेत दे दिया गया। एक पहरेदार इन षड्यन्त्रकारियों से मिला हुआ था। एक सीढ़ी से ऊपर चढ़कर उसने बीम का आधार हटा दिया। एक हाथी का धक्का लगा और एक वर्ण-संकर पुत्र द्वारा एक वर्ण-संकर पिता की हत्या करने का घिसा-पिटा मुस्लिम ड्रामा एक बार फिर खेला गया। सारा ढाँचा चरमराकर सुलतान और उसकी अंक-शायिनी नारियों पर बरस पड़ा। पड़ाव में हलचल मच गई। साजिश से अनजान लोग इस भयंकर आवाज से घबराकर सिर छिपाने और जान बचाने के लिए भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। बहुत लोग समझ नहीं पाए कि क्या हो गया है। कुछ लोगों ने यह समझा कि मुस्लिम कुकर्मों का प्रतिशोध लेने के लिए हिन्दुओं ने धावा कर कत्लेआम मचा दिया है। वे लोग "या अल्लाह! या अल्लाह!" की चीख-पुकार मचाते जान बचाकर भाग खड़े हुए। इस हड़कम्प में मुहम्मद के एक सहयोगी ने लकड़ी के उस ढाँचे में आग लगा दी ताकि शतान जल भी जाए।

इस खूनी दृश्य को चमकाते हुए सूर्य उदित हुआ। मुहम्मद ने दूतों द्वारा दिल्ली समाचार भेज दिया। साथ ही अपने प्यारे पिता की इस 'दर्दनाक' मौत पर दिखावटी आँसू बहाते हुए उसने अपने सुलातान होने का ढोल भी पिटवा दिया। यह ड्रामा १५२५ ई० में खेला गया था। गियासुद्दीन के शासन को पाँच वर्ष भी नहीं बीते थे कि उसका अन्त हो गया। भारी शोर-गुल करते हुए षड्यन्त्रकारियों ने आग बुझाने के लिए मलबे पर जल की इतनी वर्षा की कि वहाँ एक गहरा तालाब-सा हो गया। बीम गिरने और

बाग लगाने से गियासुद्दीन किसी प्रकार बच भी गया हो तो वह डूबने से न बच सका।

गियासुद्दीन की आधी जली लाश को दिल्ली लाकर मुहम्मद ने तथा-कथित तुगलकाबाद की विनाश प्राचीर के बाहर एक अपहृत हिन्दू मन्दिर में दफना दिया।

अच्छा हो कि इतिहासकार, भारत-सरकार और पुरातत्त्व विभाग इस सच्चाई को समझ लें कि गद्दी अपहर्ता गियासुद्दीन पाँच वर्ष भी शान्ति से शासन नहीं कर सका। इस बीच वह लगातार आन्ध्र, मुगलों और बंगाल से लड़ता ही रहा। वह तुगलकाबाद का निर्माण नहीं कर सकता था। उसने प्राचीर-युक्त प्राचीन हिन्दू नगर का नाम बदल दिया था। मुस्लिम नाम होने से ही उसे गियासुद्दीन का निर्माण मान लेना भोलेपन की पराकाष्ठा है। इसी प्रकार यह मान लेने से कि पितृ-हन्ता मुहम्मद तुगलक ने उस पिता की कब्र पर, जिसकी उसने हत्या की थी, एक भव्य मकबरा बनवाया है, यही प्रमाणित होगा कि भारतीय इतिहास सुनी-सुनाई बातों पर, बाँस मूँदकर लिखा गया है। सिर्फ़ इसीलिए कि कहीं मुस्लिम अहं को ठेस न पहुँचे। एक सरसरी छानबीन ही हिन्दू-भवनों पर उनके दावों का पर्दा-प्राण कर देगी। वह भवन, जिसे हम गियासुद्दीन का मकबरा मानते हैं, प्राचीन हिन्दू दुर्ग का ही एक भाग है। इस दुर्ग को चौथी शताब्दी में राजा अर्नगपाल ने बनवाया था। हम इसे भ्रम से तुगलकाबाद कहते हैं। यह हिन्दू शैली के अनुसार सुरक्षा के लिए एक झील से घिरा हुआ है तथा इसकी बालकानों की पंचमुखी है।

गियासुद्दीन के पंचवर्षीय अल्प शासन-काल के प्रारम्भ से ही गियासुद्दीन बरनी ने तुगलकाबाद को उसकी राजधानी बतलाया है। इस बात से भी यह प्रमाणित होता है कि संयोग से प्राचीन हिन्दू राजधानी के अनेक नगरों में से एक नगर को अपने निवास के लिए चुनकर गियासुद्दीन ने उसका नाम तुगलकाबाद रखा दिया था। उसने इसका निर्माण नहीं किया था।

आशा है इतिहास-लेखक, शिक्षक, पुरातत्त्व-विभाग और पर्यटक इस विचार को अपने दिमाग से निकाल देंगे कि गियासुद्दीन ने तुगलकाबाद बनाया था या पितृ-हन्ता मुहम्मद ने अपने पिता की कब्र पर कोई मकबरा

बनवाया था। मक्कार मुस्लिम इतिहासकारों के 'बनाना' का मतलब "मुस्लिम उपयोग के लिए छीनना और मुस्लिम निवास के लिए उसकी मरम्मत करना" है। मुस्लिम आक्रमणकारियों और उनके अधीनस्थ लेखकों ने "निर्माण" का मायावी प्रयोग किया है। मस्जिदों तथा मकबरों के छव-वेश में छिपे प्रत्येक भवन के स्रोतों की एक बार फिर सावधानी से छान-बीन होनी चाहिए।

इतिहासकारों, सरकारी अधिकारियों और पर्यटकों को अपनी साधारण समझ त्यागकर इन तथाकथित मुस्लिम-भवनों के स्रोत की परीक्षा नहीं करनी है। उन्हें इन निर्णायक प्रश्नों को अपने आप से ज़रूर पूछना चाहिए कि क्या एक व्यभिचारी, शराबी, अफ्रीमची और अशिक्षित सुलतान लगातार लूटमार में व्यस्त रहकर सिर्फ़ पाँच वर्ष में एक सम्पूर्ण नगर का निर्माण कर सकता है? उसपर भी वह उस शहर को क्या हिन्दू शैली (यानी काफ़िर-शैली) के अनुसार बनवाएगा? क्या वह शहर बन जाने के बाद उसे तुरन्त ही खाली भी कर देगा?

अनोखी और हास्यास्पद मुस्लिम व्याख्याएँ सीधी-सादी जनता को समझाती हैं कि तुगलकाबाद को 'बनाया' गया और फिर उसे तुरन्त खाली भी कर दिया गया। क्या वे हमें यह समझाना चाहते हैं कि मुस्लिम सुलतान, जिन्हें इन नगरों के निर्माण का श्रेय दिया जाता है, कारीगर और मजदूर, जिन्होंने इन नगरों के निर्माण में सहायता दी थी; तथा मुस्लिम जनता, जिन्होंने इन नगरों को आबाद किया था; जन्मजात मूर्ख थे? उन्होंने निर्माण किया और निवास किया क्या सिर्फ़ इसलिए कि दो-चार दिन के बाद पल्ला झाड़कर उससे अलग हो जाएँ? लोग पूर्वजों के बनाए मकान को तो छोड़ते नहीं, फिर यहाँ तो एक पूरे नगर का प्रश्न है? इसपर लोग "पानी की कमी" का घिसा-पिटा रोना रोने लगते हैं। सीधे-सादे लोग इसे उसी प्रकार मान भी लेते हैं। कोई भी यह नहीं पूछता कि नगर बनने से पहले पानी का जो स्रोत मौजूद था, वह कहाँ गया? क्या इधर नगर बना और वह सूख गया? क्या नए कुएँ और नए तालाब खोदे नहीं जा सकते थे? क्या यह अरबी जमीन है जहाँ पानी का अकाल है?

वास्तविक व्याख्या यही है कि मुस्लिम अपहर्ता ने हिन्दू नगरों पर कब्जा किया, अपनी गुण्डागर्दी से हुई टूट-फूट की मरम्मत की और उनमें

रहने लगे। साथ ही अपने इस्लामान्ध विवेक को सन्तुष्ट करने के लिए उन लोगों ने इन अपहृत हिन्दू नगरों और महलों का उसी प्रकार इस्लामीकरण कर दिया, जिस प्रकार वे लोग हिन्दुओं का मुसलमानीकरण कर देते थे। फिर हिन्दू आश्रमों के कारण ये हिन्दू नगर और महल निवास करने योग्य नहीं रहे तो उन्हें खासी कर दिया या फिर खतरा जानकर उसे त्याग दिया। बहुत दिनों तक मुस्लिम बंगुल में रहने के कारण लोग इनके निर्माण का श्रेय भ्रम से कभी इस सुलतान को देते हैं तो कभी उस सुलतान को। ठीक इसी प्रकार मुस्लिम कब्रों पर बने मकबरा-भवनों के बनाने का पट्टा वे उनके उसी बारिद को दे देते हैं, जिसने अपने पूर्वज को मारकर उस महल में गाढ़ा था।

ऐसे घुंघुले, सन्देहास्पद, मायावी और कपटी इतिहास-लेखन ने हिन्दु-स्तान के इतिहास को जहरीला और विषाक्त बना दिया है। अगर हिन्दु-स्तान को जिन्दा रहना है तो इस जहर और विष से हिन्दुस्तान के इतिहास को स्वच्छ और निर्मल करना ही होगा।

(मदर इण्डिया, नवम्बर, १९६७)

: १४ :

मुहम्मद तुगलक

कुछ निष्ठाहीन भारतीय इतिहासकार उमंग और उत्साह से मुहम्मद तुगलक की एक विचारवान सुलतान के रूप में प्रशंसा करते हैं, जिसकी सारी सुधारवादी योजनाएँ गड़बड़ा गई थीं। मगर कुछ निष्ठावान इतिहासकार उसे पागल और सनक्री करार देते हैं।

मुहम्मद तुगलक का २५ वर्षीय शासनकाल छुरेबाजी, अकाल और दमन की लम्बी कहानी है। प्रमुख रूप में हिन्दू उसके शिकार थे और आंशिक रूप में वे मुसलमान, जिन्होंने उसके अत्याचारों का विरोध किया था। उसके पागलपन की भी एक पद्धति थी, एक तरीका था, एक सलीका था। उसका मुस्लिम दिमाग इस्लामी यातना के नये-नये ढंग खोज निकालने में बेजोड़ था। इन खोजों का उपयोग वह आँख मूँदकर बड़े धड़ल्ले से सभी पर करता था।

इस्लामी रिवाज के अनुसार तर्क का लोभी मुहम्मद तुगलक १३२५ ई० में अपने अपहर्ता पिता गियासुद्दीन की हत्या कर गद्दी पर बैठा था। उसकी हत्या-प्रणाली भी अनोखी थी। दिल्ली से एक पड़ाव दूर उसने एक विचित्र काष्ठ-गृह बनवाया। उस दिखावटी-भ्रदालु और विनम्र पुत्र ने अपने पिता से एक रात इस गृह में आराम फरमाने की प्रार्थना की। सुलतान गियासुद्दीन सन्ध्या की शराबी-दावत में बेहोश होकर बड़े आनन्द से अपने गैतान-पुत्र द्वारा तैयार इस मृत्यु-जाल में कैसे बेखबर झपकी ले रहे थे कि हांभी की एक टक्कर से सारा ढाँचा उनके सिर पर बरस पड़ा। कहीं सिर चूर-चूर होने से बच गया तो? उस मलबे में आग लगा दी गई। कहीं बेशर्म जान नहीं जली तो? आग बुझाने के बहाने इतना पानी बरसाया गया कि कम-से-कम वह डूब तो मरे।

इन सभी सुलतानों के चारों ओर नीचे मुस्लिम चापलूस लेखकों का एक दल घेरा हुआ रहता था। चांदी के चंद सिक्कों की चमक पर के दिन को रात लिखने में भी संकोच नहीं करते थे। इस कुख्यात जाति के दो बुजामंदी टट्टू मुहम्मद तुगलक के पास भी थे। एक था जियाउद्दीन बरनी और दूसरा इब्न बतूता। बड़े शोक के साथ लिखना पड़ता है कि आंख मूंद-कर इन बेजम दलालों के झूठे रेकाड़ों को भारतीय इतिहास का मूल आधार माना गया है। इन दलालों और चापलूसों ने नारकीय यातनाओं के हाहाकार के बीच रहकर भी अपने क्रूर भोगी संरक्षकों के क्रूर-कारनामों का सिलसिलेवार वर्णन नहीं किया है। फिर भी उन लोगों ने इन खूनी सुलतानों के खूनी कारनामों की कई झलकियाँ और झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। जहाँ-तहाँ लिखे इन खूनी कारनामों के वर्णन का ढंग भी प्रशंसात्मक है, निन्दात्मक नहीं। साथ ही सभी सुलतानों को इन लोगों ने "न्यायी, बुद्धिमान और रहस्यदिल" माना है।

इन लोगों के हिसक और पाशविक अत्याचारों की ओर से आंख मूंद-कर भारतीय इतिहास को चापलूसी की ऐसी ही चाशनी में डाला गया है। कल्पना के ऐसे ही रंगों में रंगा गया है। इस रंगीन इतिहास को केवल भारतीय स्कूलों और कालिजों में पढ़ाया ही नहीं जाता बल्कि बड़े गौरव से संसार के सामने पेश भी किया जाता है। यह हमारे राष्ट्र का अपमान है कि इस खूनी मुस्लिम कुशासन के झूठे और रंगीन वर्णन किशोर छात्रों को रोज रटाए जाएँ, जो नर-संहार, बलात्कार और शराब में गرق रहते थे; जो समरकन्द, गजनी और बुखारा के बाजारों में 'गुलामों' को अग्नि-पौने दामों पर बेच देने के लिए हिन्दू स्त्रियों, बच्चों और मनुष्यों का शोक निर्घात करते थे। (इन सभी काले कारनामों को ताज पहनाने और सम्मान देने के लिए भारत की राजधानी दिल्ली की सड़कों के नाम इन्हीं दुष्ट लोगों के नाम पर रखे गए हैं)।

किस प्रकार सरासर झूठ लिखने के लिए, अपने आपको इतिहासकार मानने वाले इन चापलूसों का पैट और उनकी जेब भरी जाती थी, इसका रूप इब्न बतूता के शब्दों में ही देखिए। यह मुहम्मद तुगलक के काले कारनामों पर सहानुता का झूठा रंग पीतने के लिए काले महादेश अफ्रीका के तानजियर स्थान से आया था।

वह लिखता है कि "दिल्ली पहुँचने पर राजा अनुपस्थित थे मगर राजमाता ने मेरा स्वागत किया। मुझे उपहार में बेहतरीन कपड़े, २००० दीनार और रहने के लिए एक महल मिला। सुलतान के लौटने पर मेरी और जोरदार खातिर हुई। मुझे ५००० दीनार वार्षिक की आय वाले गाँव, १० सुन्दर नारियाँ (स्पष्ट है कि ये हिन्दू नारियाँ थीं जिन्हें वैश्यावृत्ति के लिए घसीटकर लाया गया था), एक सजा-सजाया घोड़ा तथा ५००० दीनार नकद प्राप्त हुए।" (पृष्ठ ५८६, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)।

स्पष्ट है कि मुस्लिम लेखकों पर लूट का हिन्दू माल समय-समय पर बड़ी दरियादिली से न्योछावर किया जाता था। इससे उनका इस्लामी मूड बना रहता था, और वे अपने मालिकों की झूठी बड़ाई हाँकने में कमी नहीं करते थे।

इब्न बतूता ने एक गप्प गियासुद्दीन के मकबरे के बारे में भी हाँकी है, जो दिल्ली के तथाकथित तुगलकाबाद की भारी भरकम दीवारों के पास खड़ा है। अन्धे पुरातत्त्व-वेत्ता इस कहानी को तोते की तरह रटते चले आ रहे हैं। बतूता ने बतलाया है कि "गियासुद्दीन एक न्यायी और गुणवान शासक थे। इन्होंने चार वर्ष तक शान्ति से निरंकुश शासन किया था। उन्हें एक मकबरे में गाड़ा गया है, जिसे उन्होंने खुद बनवाया था।" (वही, पृष्ठ ६०८)। इस बयान का प्रत्येक शब्द सफेद झूठ है। हमने देखा है कि गियासुद्दीन का जीवन खून-खराबे से भरा हुआ था। वह जबतक जिन्दा रहा, हिन्दुओं की लूट और हत्या का सिलसिला कभी बन्द नहीं हुआ। दूसरे, उसके चार वर्षीय छोटे शासनकाल में उसे उसके धूल-पुत्र ने जाल में फँसा-कर एकाएक मार डाला था। फिर भी गियासुद्दीन ने अपना मकबरा स्वयं ही बनवाया, मानो किसी ने उसके आकस्मिक अन्त की भविष्यवाणी कर दी हो। कल्पित मुस्लिम-कुतर्क का यह विशेष उदाहरण है।

साफ़ है कि इब्न बतूता झूठ बोल रहा है। यह बात स्वीकार करने में उसके मुस्लिम अहं को ठेस लगती है कि सुलतान गियासुद्दीन एक हड़पे गए हिन्दू महल में गाड़ा गया है। जरूरी है कि हम संसार के सारे इतिहास-कारों, वास्तुकारों, राज्य लेखागारों एवं पुरातत्त्व विभाग के कर्मचारियों को यह बात भली-भाँति समझा दें कि प्रत्येक मध्यकालीन मुस्लिम को, चाहे

वह कवि हो या सन्त, दरबारी हो या शासक, "हिन्दू महल या मन्दिर में ही गाया गया है।"

अपने निरपेक्ष सज्जनों में इमन बतूता ने लिख मारा है कि (वही, पृष्ठ ६११) "मुहम्मद को खून बहाना, सभी बातों से अधिक पसन्द है। मृत्यु-दण्ड प्राप्त व्यक्ति सदा उसके द्वार पर रखे जा सकते हैं। उसका उग्र और क्रूर कारनामा कुख्यात हो चुका है (पृष्ठ ६१२) सुलतानी महल के प्रथम द्वार के बाहर कई मंच हैं जिनपर बैठकर जल्लाद लोगों को हलाल करते हैं। ऐसा रिवाज है कि जब कभी सुलतान किसी आदमी की हत्या की आज्ञा देते हैं तो उसे सभा-हॉल के द्वार पर भेज दिया जाता है। वहाँ उसका शरीर तीन दिन तक पड़ा रहता है। जो कुछ भी मैंने उनकी नम्रता, उदारता, न्याय और दयालुता के बारे में कहा है, उसके बावजूद सुलतान को खून-खराबा बहुत पसन्द है। मैंने प्रायः लोगों को हलाल होते और उनके शरीर को वहाँ पड़े देखा है। एक दिन मैं महल में जा रहा था कि मेरा छोटा मित्रका। मैंने नजर उठाई तो देखा कि तीन हिस्सों में कटा एक आदमी का घड़ था। सुलतान मामूली भूलों की बड़ी (भयंकर) सजाएँ देता था। विद्वान्, धार्मिक या कुत्सीन किसी को भी नहीं छोड़ता था। रोजाना सैकड़ों लोगों को जंजीरों में जकड़कर सभा हॉल में लाया जाता था। उनके हाथ और पैर एक-दूसरे से बँधे होते थे (पृष्ठ ६१३); कुछ को मार दिया जाता था और बाक़ी की या तो बड़ी पीड़ाएँ दी जाती थीं या उन्हें कोड़ों से अच्छी तरह पीटा जाता था।" यानी कोड़ों की मार यातना में शामिल नहीं थी। इस प्रकार बतूता ने हमें सावधान किया है कि उसकी सुलतानी प्रशंसा को सम्भीरता से ले लिया जाए।

स्पष्ट है कि यह मुस्लिम सुलतान अपने सभी पूर्वजों एवं वंशजों की भाँति अपने दरवाजे पर खून के तालाब तथा कुचली-मसली लाशों के ढेर को जमा रखना बहुत पसन्द करता था। यह ढेर उन लोगों के लिए एक शुभ-सन्केत था—जो अमाने और असहाय हिन्दुओं तथा विद्रोही मुस्लिमों के अल्लेखीय काम के काम की शुरुआत करते थे।

कभी-कभी स्पेशल ट्रैनिंग प्राप्त पशुओं को भी इस काम पर नियुक्त किया जाता था। इमन बतूता बतलाता है—“हल के आकार का चाकू से भी तीक्ष्ण लोहा नर-हत्यारे हाथियों के दाँतों में पहनाया जाता था। जब

आदमी उसके सामने फेंके जाते थे तो हाथी उनके चारों ओर अपनी सूँढ़ लपेटकर उसे हवा में ऊपर उछाल देते थे और अपने दाँतों पर उसे रोक, ज़मीन पर दे मारते थे। उसके बाद अपना पैर उसकी छाती पर रख देते थे तब ऊपर लिखे लोहे से हाथी उनकी आज्ञा का पालन करते थे।" (वही, पृष्ठ ६१५)।

इसीके बारे में नीच चापलूस बरनी ने लिखा है कि नर-संहारक, पितृहन्ता, शैतान मुस्लिम मुहम्मद, "की पुस्तकों और अक्षरों के हस्त-लेखों के आगे सर्वाधिक प्रवीण लेखकों (के लेख भी) पानी भरते थे। उनकी रचना की सहजता, शैली की उच्चता एवं कल्पना की उड़ान ने सर्वाधिक प्रवीण शिक्षकों एवं प्राध्यापकों को भी काफ़ी पीछे छोड़ दिया था। अगर रचनाओं का कोई शिक्षक उसका मुकाबला करता तो वह हार जाता। फ़ारसी कविताएँ उनकी ज़बान पर थीं—कोई भी विद्वान् या वैज्ञानिक, लेखक या कवि, बुद्धिमान् या हकीम उनसे तर्क में जीत नहीं सकता था।" (वही, पृष्ठ २३५-३६)। इन मुस्लिम पापियों के काले कारनामों पर इसी प्रकार के भड़कीले भाषणों और चापलूसियों का मायावी पर्दा पड़ा हुआ है। इससे हमारे प्राध्यापकों और शिक्षकों, शोधकर्ता विद्वानों, पुरा-तत्त्व वेत्ताओं और राज्य-लेखागारों तथा वास्तुकारों और इतिहासकारों की आँखें चूंधिया जाती हैं और वे संसार को बतलाते हैं कि शैतान मुस्लिम शासक सद्गुणों के अवतार थे।

इसी नीच, चापलूस दलाल बरनी ने यह बयान किया है कि—“जो कुछ विचार सुलतान करते थे वह भले के लिए करते थे मगर उन योजनाओं को लागू और चालू कर उसने लोगों को असन्तुष्ट किया तथा अपने खजाने को खाली कर दिया।" (वही, पृष्ठ २३६)। भलाई की योजनाओं से लोग असन्तुष्ट हो गए? हिंस्र एवं पाशविक मुस्लिम शासनकाल के बयानों में बिखरे इन वर्णनों ने सारी दुनिया के विद्वानों को मोफिया का इंजेक्शन लगा दिया है।

बरनी बतलाता है कि मुहम्मद ने रचनाएँ कीं; किताब लिखीं। हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि तुगलक जैसे हिंसक पशु ने, अपनी खूनी इस्लामी तलवार की तीक्ष्ण नोक को, हिन्दू रक्त की अमिट लाल रसाही में डुबोया और मुस्लिम कुकर्मों को लिख-लिखकर इतिहास का प्रत्येक पन्ना रंग

जाता। इतना तो खुद बरनी भी मानता है कि—“सुलतान के दिमाग ने अपना सन्तुलन खो दिया था। अत्यन्त आवेश की दुर्बलता एवं क्रूरता में वह बहुत कठोर हो गया था। छोटे-बड़े लोगों का मन अपने सुलतान से विरक्त हो चुका था। जब सुलतान देखता था कि उसका हुक्म कारगर नहीं हो रहा है तो वह और कठोर हो जाता था तथा जंगली घास-फूस को तरह लोगों को काट फेंकता था।”

अपने पिता का खून अपने मुँह पर पोतकर मुहम्मद तुगलक ने गद्दी पर बैठने के बाद अपनी रियाया से ५ प्रतिशत से १० प्रतिशत अधिक लगान वसूल करने का निर्णय किया (आज की धर्म-निरपेक्ष सरकार की भाँति) जो क्रूर इस्लामी लगान के नीचे पहले से ही कराह रही थी। “इस (काम) को पूरा करने के लिए वह तबतक टैक्स बढ़ाता रहा जबतक कि रैयत की कमर टूट नहीं गई। इन टैक्सों को इतनी क्रूरता से वसूल किया जाता था कि लोग भोख तक माँगने लगे। घनी लोग विद्रोही हो गए। जमीन बंजर हो गई। खेती का काम बन्द हो गया। दूर-क्षेत्रों की रियाया अपने ऊपर इन संकटों के आ पड़ने की आशंका से जंगलों में भाग गई। (इससे) भयानक दुर्भिक्ष की स्थिति उपस्थित हुई। हजारों लोग मर गए। समाज झिन्न-भिन्न हो गया। परिवार टूट गए।”

एक कायर के समान सुलतान मुहम्मद मुगल आक्रमणकारियों एवं अपने बागी मुग़लों से सदा डरता ही रहता था। बगावत तो एक संक्रामक बीमारी हो गई थी। जिसे देखिए उसीने बगावत कर दी। इस बगावत से छुटकारा पाने के लिए उसने दूर देवगिरी जाने का निर्णय कर लिया। मगर वहाँ भी अकेले जाने की उसमें हिम्मत नहीं थी। उसे डर था कि कहीं विरोधी या अनजान लोग उसकी हत्या न कर दें। इसलिए १५ उपनगरों वाली शचीन दिल्ली के हजारों निवासियों को घर-बार छोड़, सामान बोझ, हजार मील दूर पार्सल कर देने की राक्षसी योजना उसने बनाई। इस पूर्व मकर खुनी मुस्लिम द्वारा शासित, दिल्ली के निवासियों के लिए यह संकट एकदम असम्भाव्य था। हजार मील दूर एक अनजान जगह में, जहाँ के लोग उनकी सगल से दूर मराठी और कन्नड़ बोलते थे, जाकर रहने का विचार ही उन लोगों को साल रहा था। इधर मुहम्मद कुछ भी सुनने और समझने की तैयार नहीं था। दिल्ली की पूरी तरह से सुनसान कर वह

एक तीर से दो शिकार करना चाहता था—(१) पड़ोसकारि दरबारियों की जड़ खोद देना, और (२) मुगल आक्रमणों के संकटों से दूर भागकर सुरक्षित होकर ऐश करना।

इस विपत्ति से बचने के लिए लोग अपना घर छोड़कर जंगलों में भाग गए। चिढ़कर सुलतान ने हाँक का प्रबन्ध किया। जल्दाद टुकड़ियों ने जंगलों में आग लगा दी। वहाँ छिपा रहना अब मुश्किल हो गया। बरनी का बयान है कि (वही, पृष्ठ २३६)—“सभी कुछ नष्ट कर दिया गया। बरबादी इतनी अधिक थी कि राज-भवन के महलों, नगरों या उपनगरों में एक बिल्ली या कुत्ता भी नहीं बचा। अपने परिवारों, आश्रितों, पत्नियों, बच्चों, नौकरों और दासियों के साथ (लोगों को) जबर्दस्ती बाहर निकाल दिया गया। अनेक व्यक्ति मार्ग में ही मर गए। जो देवगिरी पहुँचे वे प्रवास की पीड़ा को न सह सके—निराश होकर मौत की कामना करने लगे।” विदेशी मुस्लिम जोंकों का यह धारा-प्रवाह आगमन स्थानीय निवासियों के लिए एक जानलेवा भयंकर फन्दा बन गया था।

सुलतान के वास्तविक उद्देश्य का पर्दाफ़ाश करते हुए इब्न बतूता हमारे इतिहासकारों को झूठा प्रमाणित कर देता है, जो उसके झूठे उद्देश्य की बड़ाई हाँकते नहीं अघाते कि अपनी राजधानी को पूर्णरूपेण केन्द्रीय बनाने के लिए ही उसने देवगिरी अपनी राजधानी बदली थी। पृष्ठ ६१३ पर बतूता का बयान है—“उसका उद्देश्य था कि दिल्ली के निवासी अपमान एवं गालियों से भरा हुआ खत सुलतान को लिखते थे। वे उसे (गोंद से) बन्द कर और ‘राजा के अलावा कोई न पढ़े’ लिखकर रात में सभा-हॉल में फेंक देते थे। जब सुलतान उसे खोलते थे तो उन्हें ज्ञात होता था कि उन खतों में उनका अपमान कर उन्हें गालियाँ दी गई हैं। बस, उन्होंने दिल्ली को बरबाद करने का निश्चय कर लिया। उन्होंने दिल्ली निवासियों को देवगिरी जाने की आज्ञा दे दी। सुलतान के डिहोरची ने डोल बजा दिया कि तीन दिन के बाद कोई भी दिल्ली में न रहे। खूब अच्छी तरह खान-बीन की गई कि कोई रह तो नहीं गया है। उनके गुलामों ने गली में दो आदमियों को खोज निकाला—एक कोढ़ी था, दूसरा अन्धा। उन दोनों को सुलतान के सामने पेश किया गया। उन्होंने कोढ़ी को मार देने की आज्ञा दी और अन्धे को दिल्ली से दोलताबाद घसीट कर ले जाने की। यह ४०

दिन का सफर था। रास्ते में इस बेचारे गरीब के अंग-प्रत्यंग बिखर गए। सिर्फ उसका एक पैर ही दौलताबाद पहुँचा। दिल्ली एकदम सुनसान हो गई। अब लोगों द्वारा छोड़ा गया भाल-असबाब ही वहाँ पड़ा था। एक बन्ध्या को, महल की छत पर चढ़कर, और दिल्ली के चारों ओर देखकर, जिसमें न प्रकाश था न धुआँ, सुलतान ने कहा—“अब मेरा हृदय सन्तुष्ट हुआ है, मेरी इच्छा पूर्ण हुई है।”

एक इंडियट की भाँति मुहम्मद ने—“दूसरे प्रान्तों के निवासियों को दिल्ली आकर इसे आबाद करने का हुक्मनामा लिख भेजा।” मजबूर करने पर “उन लोगों ने अपने-अपने क्षेत्रों को नष्ट कर दिया मगर दिल्ली को आबाद नहीं किया।” अगर उसका विचार दिल्ली को अपनी राजधानी बनाए रखने का नहीं था तो उसको आबाद करने की इतनी फ्रिक उसे क्यों हुई? यह प्रश्न किसी भी इतिहासकार ने नहीं पूछा।

सतत प्रबलमान ब्याभिचारी मुसलमानों ने देवगिरी की हिन्दू जनता के जीवन में विष घोल दिया था। क्रुद्ध होकर हिन्दू जनता ने उनका जीना मुश्किल कर दिया। धर्मान्ध बरनी कहता है—“देवगिरी के चारों ओर, जो एक काफिर जमीन थी, मुसलमानों की बहुत-सी कब्र तैयार हो गई। उन लोगों ने काफिर जमीन में अपना सिर दफना दिया और प्रवासियों की बहुत बड़ी संख्या में से केवल थोड़े बहुत ही अपने-अपने घर लौटने के लिए जिन्दा बच सके।”

मुहम्मद ने देखा कि उसका पागल प्लान देवगिरी में भी उसे शान्ति और बँन नहीं दे सका क्योंकि उसकी पापी छाया जहाँ भी पड़ी वहीं के लोगों ने बगावत कर दी। इसलिए उसने उसी कठोरता से यह फरमान जारी कर दिया कि सभी जिन्दा बचे दिल्ली-प्रवासी और मुर्दा-दिल्ली प्रवासियों का कोटा पूरा करने के लिए कुछ देवगिरी-निवासी अपना-अपना भाल-भत्ता पैक कर दिल्ली खाना हो जाएँ। फलस्वरूप दक्षिण यात्रा में जो जिन्दा बचे वे दिल्ली लौटते हुए मार्ग में मर गए।

अब एक नया जोश मुहम्मद में पैदा हुआ—विश्व-शासक बनने का। “सारी दुनिया के निवासियों का दमन कर उन्हें अपने शासन में लाने के लिए सम्भव सैनिकों की जबरत थी। यह एक असम्भव योजना थी। बिना असीम धन के ऐसा होना सम्भव नहीं था। इसलिए उसने ताँबे के सिक्के

चलाए और आज्ञा दी कि सोने और चाँदी के बदले उसी का प्रयोग किया जाए।” इस पागल प्लान का प्रभाव उल्टा हुआ। बहुत से घरों में टुकड़ालें खुल गई। लोग सुलतान के सिक्कों की तकल करने लगे क्योंकि सुलतान के पागल हुक्मनामे के अनुसार उसका मूल्य सोने के बराबर हो गया था। लोग सोने और चाँदी के सिक्कों को जमा करने लगे। सरकारी लगान का भुगतान ताँबे के सिक्कों से होने लगा। खजाने में ताँबा-ही-ताँबा भर गया। सुलतान का हथियार सुलतान पर ही बरस पड़ा। इस इंडियट योजना को हमारे इतिहासकार मुद्रा-सुधार मानते हैं। मगर बरनी हमें बतलाता है कि किराये के मुस्लिम सिपाहियों और गुण्डों की भारी-भरकम फ़ौज जमा कर सारे संसार पर शासन करने की लालसा से ही इस सुलतानी-खुजलाहट का जन्म हुआ था। “खजाना ताँबे के सिक्कों से भर गया। इसका दाम इतना नीचे गिर गया कि वह वर्तनों के टूटे टुकड़ों के बराबर हो गया। जब ताँबे के सिक्कों के दाम मिट्टी के ढेलों से भी कम हो गए और कोई काम का नहीं रहा तब सुलतान ने अपना हुक्म वापिस ले लिया।” इंडियट मुहम्मद क्रोध से एकदम उबल उठा और अपनी “रियाया का ही दुश्मन हो गया।” (वही, पृष्ठ २४१)।

एक जुटेरी मुस्लिम सेना को तैयार करने का मुहम्मदी इरादा विफल हो गया था। लगान के बहाने और मुद्रा-सुधार के जादू ने काम नहीं किया। फिर भी वह सारी दुनिया को जीतने की तमन्ना में तिलमिला रहा था। उसने अपनी पहली लोभी नज़र खुरासान और इराक़ पर डाली। अपने मन में उसने यह लड्डू फोड़ लिए थे कि इन देशों के अफसरों को घूस देकर मिलाया जा सकता है और ये राज्य पके आम की तरह उसकी गोद में आ टपकेंगे। “वे लोग लुभावने प्रस्तावों और मायापूर्ण प्रतिनिधित्व लेकर उनके पास आए और (सुलतान से) धन ठग लिया। इच्छित दरबारी मिलाए नहीं जा सके और जो मिले वे बेकार थे। मगर (हर हालत में) उनका खजाना खाली हो गया।”

हताश होने पर भी उसकी संसार-विजय की खुजलाहट ख़त्म नहीं हुई। सुलतान ने “खुरासान-अभिमान के लिए एक बड़ी सेना जमा करनी शुरू कर दी। भरती दफ़्तर में तीन सौ पचहत्तर हजार थोड़े नामजद हुए। पूरे एक वर्ष तक उनको खाना-दाना दिया गया।” मगर बाद में बेतन देने

लिए एक पैसा भी नहीं बचा। "सेना टूट गई। सभी ने अपना-अपना रास्ता नापा।" लूटमार करने के लिए मुस्लिम गिद्धों का यह विशाल गिरोह हिन्दुओं पर टूट पड़ा।

पश्चिम में राज्य-विस्तार का प्लान बचल-भाग्य ने चौपट कर दिया तो क्या हुआ, मूख मुहम्मद ने पूर्व की ओर नज़र फेरी। उसने तिब्बत पर आक्रमण करने का विचार किया। एक विशाल सेना वहाँ भेजी गई। हिन्दु-स्तान के जिस गाँव, श्वेत या नगर से होकर मुस्लिम सेना गुज़रती थी, उस जगह को लूटना मुस्लिम सेना अपना पवित्र धार्मिक कर्तव्य समझती थी। छोटी हो या बड़ी, मुस्लिम सेना की यात्रा एक बुलडोजर की यात्रा होती थी। चारों ओर तबाही-बरबादी फैल जाती थी। सारे मन्दिर निर्जीव होकर भस्मिद्ध बन जाते थे। गृह पत्नियाँ वेश्याएँ हो जाती थीं। उन पर सामूहिक बलात्कार होता था। बच्चों का खतना कर दिया जाता था। कोमल बच्चों को लूट ली जाती थी। सामूहिक नर-संहार से धरती लाल हो जाती थी। सारे क्षेत्र में आग लगाकर आकाश को भी लाल कर दिया जाता था।

तिब्बत को जाने वाली मुस्लिम सेना हिमालय की पवित्र घाटियों में जा पहुँची। खूनी मुस्लिम-ड्रामे का अभिनय हुआ। इस शैतानी-मुस्लिम नाच से सभी पहाड़ी हिन्दू जातियाँ रोषान्वित होकर एक साथ शैतान मुस्लिम-गिरोह पर टूट पड़ीं। उन्होंने घाटी का मार्ग बन्द करके भागने का रास्ता रोक दिया। उन लोगों ने एक साथ झपटकर, एक प्रहार में इन हिंसक पशुओं को नष्ट कर डाला। "इस पराजय की सूचना देने के लिए सिर्फ १० पड़सवार दिल्ली लौट सके।" उसपर भी पागल मुहम्मद को मुस्लिम सेना के सम्पूर्ण-विनाश का पता कई दिन तक नहीं लग सका था। इस पराजय से सनकी सुलतान की कमर टूट गई। हिन्दू पहाड़ियों के इस जाल में बेखबर फँसी उस व्यभिचारिणी मुस्लिम सेना की हड्डियाँ अभी भी साइट पर प्राप्त हो सकती हैं।

सनकी सुलतान के विरुद्ध कुलमुलता विरोध खुलेआम विद्रोह के रूप में भड़कता गया। यह धीरे-धीरे सुलतानों को तब तक निगलता रहा जब तक कि सनकी सुलतान के जंगली-जीवन का अन्त न हो गया। इस भड़कते साँबे का आकार-प्रकार तरह-तरह का था।

(१) पहला विद्रोह सुलतान में बहराम अबिया ने किया था। उस समय सुलतान अपनी 'बहु-प्रशंसित' दक्षिण की राजधानी देवगिरी में था। इस विद्रोह ने सिद्ध कर दिया कि दूर देवगिरी में भी सुलतान शाही-शान्ति से ऐश नहीं कर सकता। भयभीत होकर सुलतान उत्तर की ओर भाग आया। संग्राम में अबिया मारा गया। "उसका सिर कलमकर सुलतान के पास भेज दिया गया और उसकी सेना को काट-काटकर फैला दिया गया।" ठीक इसी समय सुलतान ने देवगिरी को खाली करने और दिल्ली को एक बार फिर आबाद करने की आज्ञा दे दी क्योंकि उसकी मूर्खता उसी पर बरस पड़ी थी।

खुजाने का धन खत्म होने के कारण सुलतान हिन्दुस्तान की पिछी-पिटी मुस्लिम शाही परम्परा के अनुसार गंगा-यमुना क्षेत्र के हिन्दुओं को तरह-तरह की यातना देकर धन-निचोड़ने लगा। बरनी कहता है—"भारी-भारी करों और लगानों से देश बरबाद हो गया। हिन्दुओं ने अपना-अपना अन्न-भण्डार जला दिया और अपने-अपने पशुओं को भटकने के लिए खोल दिया। सुलतान की आज्ञा पर कलक्टरों और मेजिस्ट्रेटों ने देश को नष्ट कर डाला (अछूता एक को भी नहीं छोड़ा)। इन निवासियों में से जिन लोगों ने छिपकर जान बचाई थी, वे लोग गिरोह बनाकर जंगलों में भाग गए और डाकू बन गए। (भारत की डाकू समस्या भी इन्हीं लोगों की देन है)। इस प्रकार सारा देश तबाह और बरबाद हो गया।" (वही, पृष्ठ २४२)।

"इसके बाद सुलतान शिकार-यात्रा पर बारन गए। उनकी आज्ञा पर सारे प्रदेश को लूटा और बरबाद किया गया। हिन्दुओं के मस्तकों को काट-काटकर लाया गया और बारन-दुर्ग की प्राचीर पर सजाया गया।"

मुस्लिम इतिहासकारों के प्रिय शब्द "शिकार" के राक्षसी प्रयोग के सम्बन्ध में हम आधुनिक इतिहासकारों को सावधान कर देना चाहते हैं। अकबर, फ़िरोज़शाह, कुतुबुद्दीन आदि सभी मुस्लिम लुटेरों की शिकार-यात्रा के बारे में बार-बार लिखा गया है। यह कोई साधारण खेल नहीं था। मुस्लिम इतिहास में इस "शिकार" का अर्थ है—किसी झूठे बहाने से सुलतानों का राजधानी से निकलना, हिन्दू सिरों का आखेट करना, शिकार।

के सिरों को जमा करना तथा शिकार की जमीन और मकान को बरबद करना। ऊपर बरनी के उद्धरण से यह वास्तविकता स्पष्ट हो जाती है।

(२) बंगाल को दीमक की तरह चाट जाने वाले व्यभिचारी मुस्लिम चित्तरी ने सनकी सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। फखरु नामक एक गिरोहपति ने लखनौटी के गवर्नर किदर खाँ को मार डाला। उसके परिचारकों की पत्नियों और लोगों का कीमा बना डाला। फिर लखनौटी, सतगाँव और सोनारगाँव के खजाने को लूट लिया और बंगाल हमेशा के लिए सुलतान के हाथ से निकल गया।

फिर जब खाली हो गई। सुलतान अपनी सेना लेकर प्रान्तों को लूटने निकला। कन्नौज ने लेकर दलामू तक के सारे प्रदेश को उसने बरबाद कर डाला। हाथ में पड़ने वाले सभी (यानी हिन्दुओं) की उसने हत्या कर दी। बनेक निवासी जंगलों में भाग गए। मगर सुलतान ने जंगलों को घेर लिया और जो हिन्दु पकड़ में आया उसको मार डाला।

(३) सुलतान को हिन्दू हत्या में तल्लीन देखकर उसके खजाना-रक्षक इब्राहिम के पिता सैयद हसन ने दूर मालाबार में तीसरा विद्रोह कर दिया। उसने सुलतान के नगर-नायक को मारकर प्रान्तीय शासन अपने हाथ में ले लिया। सुलतान ने वहाँ एक सेना भेज दी। मगर वह सेना वहाँ पहुँचकर आगियों से मिल गई। गुस्से में आकर सुलतान ने पिता के विद्रोह के लिए उसके पुत्र को सपरिवार बन्दी बना लिया। उन्हें भयंकर यातनाएँ दीं। कन्नौज से लौटने के बाद सुलतान ने अपनी सेना ठीक की और मालाबार के लिए कूच कर दिया। "दिल्ली से तीन-चार पड़ाव ही वह गया होगा कि अन्न के भाव बढ़ गए। अकाल पड़ने लगा। राहुजनी तो मामूली बात हो गई थी। (जबकि मुसलमानों के आने से पहले तक लोग अपने धरों में ताजा तक नहीं लगाते थे)। देवगिरी पहुँचकर सुलतान ने मराठा प्रदेश के मुस्लिम सरदारों और कजवरों से धन की भारी माँग पेश कर दी।" खूबे-आम लोगों को मरताया-मारा गया। लोगों का अन्तिम कोर तक छीन लिया गया। "इस निर्मम कर बमूली के कारण बहुत से लोगों ने आत्म-हत्या कर ली।"

(४) कहीं भी सुख-शान्ति न मिलने पर सुलतान ने दक्षिण की लूटने का निश्चय कर लिया। वह आन्ध्र की ओर बढ़ा। इसी बीच उसे समाचार

मिला कि दूर पंजाब के नगर लाहौर में विद्रोह फैल रहा है। विद्रोह का दमन करने के लिए उसने एक बाहिनी देकर अहमद अय्याज खाँ को लाहौर भेज दिया।

जब सुलतान मुहम्मद की खूनी मुस्लिम सेना का प्लेग तेल्गाना (आन्ध्र) की फलती-फूलती जमीन पर उतरा तो संकामक हैजे ने इस प्लेग का दिल खोलकर स्वागत किया। सुलतान का मुस्लिम गिरोह मच्छर-मक्खियों की तरह मरने लगा। सुलतान खुद कै-दस्त का शिकार हो गया। आन्ध्र में हिन्दुओं पर परम्परागत मुस्लिम जुल्म डाने के लिए मलिक काबुल को वहाँ छोड़ सुलतान हड़बड़ाकर बारंगल से भाग निकला। बीमार होकर वह देवगिरी पहुँचा। दक्षिण के जिन क्षेत्रों को मुस्लिम गुण्डे चूस सकते थे वहाँ सुलतान ने अपने गुगों को नियुक्त कर दिया ताकि मुसंगठित रूप से लूट-पाटकर लगातार धन निचोड़-निचोड़कर वे लोग सुलतान के चित्तरी गिरोह के लिए धन भेज सकें। उसने साहब सुलतानी को नुसरत खाँ की उपाधि दी और बिदार में नियुक्त कर दिया। बिदार गौरवशाली हिन्दू नाम भद्रकेतु का अपभ्रंज है। मराठा देश की नियमित लूट एवं हिन्दू-हत्या का भार कटलघ खाँ को सौंप दिया गया। फिर अपने स्वास्थ्य की ओर से निराश होकर सुलतान दिल्ली की ओर चल पड़ा। मार्ग में साध देने के लिए उसने दिल्ली से आई हुई जनता को भी बटोर लिया। इन लोगों को उसने पहले दिल्ली में देवगिरी हाँक दिया था। अब अपने नए घरों को छोड़कर उन्हें वापिस दिल्ली की यात्रा करनी पड़ी।

मार्ग में सुलतान ने प्राचीन राजा भोज की विख्यात राजधानी धार नगरी में पड़ाव डाला। मुहम्मद एक श्रापित व्यक्ति था ही। इधर वह धार पहुँचा, उधर वहाँ "दुर्भिक्ष फैल गया। मार्ग की सारी चौकियाँ नष्ट हो गईं और सारे नगरों एवं क्षेत्रों में संकट तथा अराजकता व्याप्त हो गई।" जब सुलतान दिल्ली पहुँचा तो आबादी का हजारवाँ हिस्सा भी जिन्दा नहीं बचा था। इस शतान-मनकी सुलतान का दिल्ली पहुँचना था कि "उसने देखा, देश उजड़ा पड़ा है। दुर्भिक्ष लहरा रहा है और सारा कृषि-कार्य बन्द है।" अकाल की कठोरता का वर्णन करते हुए इब्न बतूता ने लिखा है कि "एक मन अनाज का दाम ६० दिहराम से भी अधिक हो गया था। संकट चारों ओर फैला हुआ था। परिस्थिति गम्भीर थी। शहर में मैंने एक दिन तीन

बोरतों को देखा जो एक ऐसे षोड़े की चमड़ी काट-कटकर खा रही थी, जिसको घरे हुए कई गहीने व्यतीत हो गए थे। चमड़ा पकाकर बाजारों में बेचा जाता था। जब बेलों को काटा जाता था तब लोगों की भीड़ चलू में खून लेने के लिए दौड़ पड़ती थी और जिन्दा रहने के लिए खून को पी जाती थी।”

(५) अकाल के बीच में पाँचवें विद्रोह का समाचार भी आ पहुँचा। सुलतान के मुलतानी गुर्गे बिहजद को मारकर इस बार शाहू अफगान खड़ा हो गया था। आतंकित होकर मलिक नावा दिल्ली भाग आया। क्योंकि सुलतान मुलतान कूच करने के लिए निकला ही था कि उसकी माँ मुखदुमा-ए-जहाँ मर गई। सुलतान ने इसकी कतई चिन्ता नहीं की। उसने कूच कर दिया। अपने अफगानों के साथ बासी शाहू अफगानिस्तान भाग गया। सुलतान दिल्ली वापिस लौट आया; उस दिल्ली में “जहाँ अकाल बहुत ही भयंकर था और आदमी आदमी को खा रहा था।”

इधर सुलतान ने पीठ फेरी, उधर सिन्ध में बगावत ने फिर अपनी छतरनाक तलवार उठा ली। अपने-अपने सरदारों के अधीन हिन्दू जातियाँ एकत्रित होकर मुसलमानों की विनाश-सत्ता को ललकारने लगीं। सुलतान ने सन्तम और समाना की ओर कूच कर दिया। ये दोनों स्थान उपद्रव के केन्द्र थे। “बागियों ने मण्डल बनाया, लगान रोका, अशान्ति पैदा की और राहगीरों को सूटने लगे। सुलतान ने उनके मण्डल को नष्ट कर दिया, अनुचरों को बिखेर दिया और सरदारों को बन्दी बनाकर दिल्ली ले आया।” बहुतों को मुसलमान बना दिया गया। उनकी पत्नियाँ मुस्लिम हर्षों में बाँट दी गईं। बच्चों को मुसलमान और फिर गुलाम बनाकर बेच दिया गया। कितने शोक की बात है कि आज के मुसलमान यह नहीं समझ पा रहे हैं कि उनके बाप-दादा और माँ-बहनों को उनके पावन हिन्दू घरों से निकालकर और न जाने कितनी पीड़ाएँ देकर मुसलमान बनाया गया था।

(६) सुलतान के खून से चिपचिपे हाथ अभी सूखे भी नहीं थे कि छठे विद्रोह का समाचार भी आ पहुँचा। वारंगल के वीर हिन्दुओं ने विदेशी मुस्लिम भेड़ियों को दबोच दिया था। एक वीर हिन्दू देश-भक्त कान्य नायक ने मुस्लिम बचेरों को हिन्दू तलवार का स्वाद चखाने का निश्चय कर

लिया। सुलतान का मुस्लिम गुर्गा मलिक काबुल इतना भयभीत हो गया था कि बिना पीछे देखे वह सीधा दिल्ली भाग आया। कान्य नायक का प्रत्याक्रमण इतना सफल रहा कि एक ही बार में आन्ध्र का मुस्लिम फन्दा कटकर नीचे गिर पड़ा। आन्ध्र मुस्लिम लूट-पाट से पूर्णतः मुक्त हो गया। हमें आशा है कि वारंगल के इस महान् हिन्दू देशभक्त की याद वहाँ के निवासियों के दिल में अब भी ताजा होगी।

(७) कान्य नायक के एक रिश्तेदार को कोढ़ों से मार-मारकर मुसलमान बनाया गया था। उसके बाद अन्य हिन्दुओं की पीठ पर कोढ़े बरसाने के लिए उसे गंगा-क्षेत्र के काम्पिल नगर भेज दिया गया था। कान्य नायक की सफलता से उत्साहित होकर उसने नये धर्म का फन्दा निकाल फेंका और बड़े गौरव से अपने आपको हिन्दू घोषित कर दिया। घृणित सुलतान के विरुद्ध यह सातवाँ विद्रोह था। कान्य नायक के इस वीर हिन्दू रिश्तेदार ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। गंगा का पावन क्षेत्र वापिस हिन्दुत्व की गोद में आकर चैन की साँस लेने लगा।

सनकी सुलतान का शैतानी राज्य उसके सामने ही चूर-चूर होने लगा। “सिर्फ देवगिरी और गुजरात ही (सुलतान के पास) बचे। दंगे चारों ओर भड़क उठे थे। ज्यों-ज्यों यह तीव्र होता गया त्यों-त्यों सुलतान उत्तेजित होकर अपनी प्रजा से कठोर-से-कठोर व्यवहार करने लगे। मगर उनकी नृशंसता से लोगों में घृणा और असन्तोष बढ़ता ही गया। वे कुछ दिनों तक दिल्ली में टिके... दाम बढ़ते गए, बढ़ते गए। मनुष्य और पशु भूख से मरने लगे। अकाल के बीच सरकार का कोई भी काम नहीं हो सकता था। दिन-ब-दिन दिल्ली के निवासियों की हालत पतली और दयनीय होती गई। इसलिए सुलतान ने उन लोगों को दिल्ली-द्वार से बाहर निकलकर अपने परिवार के साथ पड़ोसी क्षेत्र में बसने की अनुमति दे दी।” (वही, पृष्ठ २४६)।

भूख से मरने से बचने के लिए खुद मुहम्मद ने भी दिल्ली त्याग दी। यह दिल्ली से दूसरा सामूहिक पलायन था। पहला पलायन था सुलतान की आज्ञा पर देवगिरी प्रस्थान।

भूख से बेहाल होकर सुलतान (भूखे भेड़िये की भाँति) हिन्दुस्तान के लोगों का बचा हुआ माल भी नोच-नोचकर निगलने लगा। खुले आम, दिन

दहाते सारी जिनगी लूट-मार करने वाले सुलतान की खस्ता हालत देखने के काबिल थी। वह पैदल चलता था, गंगा-क्षेत्र के घने जंगलों के बीच में साधारण चोर की भाँति छिपकर रहता था और रोज-रोज खाने के लिए मुट्ठीभर दाने के लिए हिन्दू घरों में चुपचाप सन्ध लगाता था। हिमालय के नीचे, पवित्र गंगा के किनारे, स्वर्गद्वार के पास, पहाड़ियों के भीतर डाकुओं की भाँति सुलतानी गिरोह के लोगों ने घास-फूस की ओप-धियाँ भी खड़ी कर ली थीं। यहाँ से दिन-रात वे लोग हिन्दू क्षेत्रों पर डाका डालते थे और पाप के खाने-दाने पर अपना पेट पालते थे। दल का नेता ऐनुल्-मुल्क उसका दाहिना हाथ था। हिन्दू खेत-खलिहानों पर डाका डालकर जो भी खाना-दाना उसके हाथ आता था उसे बटोर-समेटकर लाना इसीके जिम्मे था।

अपने पक्षों को समेटे, भयभीत पक्षी की भाँति सुलतान अपनी ओपड़ी में ही छिपा रहता था। वह उत्सुकता से ऐनुल्-मुल्क की बाट जोहता रहता था कि कब ऐनुल्-मुल्क हिन्दू-घर का राशन लूटकर लाएगा और कब उसे दाना बुलाएगा। सुलतान सुलतान की असहाय हालत ऐनुल्-मुल्क ने भाँप ली। ऐनुल्-मुल्क की जबान में घुली घृष्टता और दिल में उठती तमन्ना को सुलतान ने भी ताड़ लिया। बूतरे से पूर्व ही सुलतान ने उससे छुटकरा पा लेना चाहा। साथ ही सुलतान की आज्ञा वह कहाँ तक मानेगा इसकी परीक्षा करनी भी बहरी थी। कटलघ खाँ की ओर से नज़राना आना बन्द हो गया था। उसपर नज़र रखने के बहाने उसने ऐनुल्-मुल्क को देवगिरी जाने की आज्ञा सुना दी।

सुलतान की सलाह सुनकर उसका जी धक् से रह गया। सुलतान की आज्ञा का पालन करने से तथा दक्षिण जाने से वह जी चुराता रहा।

(८) इस खस्ता हालत में गंगा-बास करते समय चार विद्रोह और हुए। आठवीं विद्रोही तत्तवार करी में निजाम मैन ने उठाई थी। उसकी शक्ति को नष्ट करने के बहाने तथा भविष्य में सुलतानी सत्ता को ललकारने का अवसर प्राप्त करते जाने की लालसा में ऐनुल्-मुल्क तथा उसके भाई ने "विद्रोहियों के बिगड़ कूच कर दिया, विद्रोह को कुचल दिया, निजाम मैन को बन्दी बना लिया और उसकी जिन्दा चमड़ी छीलकर उसे दिल्ली भेज

दिया।" उन दिनों लोगों का बड़ा प्यारा इस्लामी खेल था— "जिन्दा लोगों को चमड़ी छीलना।"

(९) नवाँ विद्रोह बिदार धानी भद्रकेतु में नुसरत खाँ ने किया था। सुलतानी गिरोह की भट्टी में ओंकने के लिए उसने लूट का हिन्दू माल भेजना बन्द कर दिया था। इसे घेर-घोटकर दिल्ली भेज दिया गया।

(१०) दसवाँ बारी अलिश था। हिन्दुओं को लूटकर दिल्ली माल भेजने के लिए इसे गुलबर्ग भेजा गया था। इस दुष्ट-अभियान को पूरा करने सायक मुस्लिम गुण्डे उसके गिरोह में नहीं थे। अतएव उसने एवं उसके भाई ने सुलतान की अवज्ञा कर दी और वे अपने मन के मुताबिक इस्लामी विनाश का मलबा बिखेरने लगे। उन लोगों ने धोखे से गुलबर्ग के नायक को मारकर उसका खजाना लूट लिया, फिर इसको राजधानी बनाकर उन लोगों ने और मुस्लिम गुण्डों को बटोरा तथा बिदार को घेरकर उसे भी अपने कब्जे में कर लिया। सुलतान ने इस तरबकी-यापता अलिश का दमन करने की आज्ञा देवगिरी के कटलघ खाँ को भेज दी। गुलबर्ग से बिदार तक इसको इसके भाइयों के साथ रोगदकर दिल्ली पहुँचा दिया गया। इधर सुलतान अपने चारों ओर असन्तोष की गर्मी महसूस कर रहा था। उसने इन दोनों को सुलतान के प्रति निष्ठावान रहने की सौगन्ध खाने को उकसाया। मरता क्या न करता। दोनों ने क्षमा माँग ली। सुलतान ने एक सेना देकर दोनों को गजनी पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया। वहाँ वे दोनों पराजित हुए और गर्दन झुकाए वापिस दिल्ली लौट आए। यहाँ दोनों की गर्दन कटकर ज़मीन पर लोटने लगी। सुलतान बहुत ही क्रोधित था।

(११) बारहवीं बगावत स्वर्गद्वार में हुई। ऐनुल्-मुल्क और उसके भाइयों ने सीना तान दिया था। उत्तेजित होकर सुलतान ने दूर अहमदाबाद तक की फौज बुला ली। गंगा के किनारे बंगरमऊ में टक्कर हुई। ऐनुल्-मुल्क पकड़ा गया। उसकी सेना को २४ मील तक खदेड़-खदेड़कर मारा गया। उसके दो भाई भी इस संग्राम में काम आए। बहुत-से विद्रोही जान बचाने के लिए गंगा में कूद पड़े और डूब मरे। जो बचकर उस पार पहुँचे उन लोगों को इस्लामी विनाश के प्रतिकार में हिन्दुओं ने मार गिराया। ऐनुल्-मुल्क को क्षमाकर अपनी ओर मिलाए रखना सुलतान ने श्रेयस्कर

समझा था। उसने उसकी पदोन्नति कर दी तथा कीमती उपहारों से उसका पेट भर दिया।

अब तक मुगलों ने २० बार आक्रमण किया था और लूटमार के साथियों ने ११ बगावतें। इससे मुहम्मद का साहस इतना टूट चुका था कि वह आध्यात्मिक शान्ति के लिए अल्लाह की ओर मुड़ा। बहराइन जाकर उसने मसूद की कब्र पर अझाजलि अर्पित की। यह वही मसूद था जो सुबुक्तगीन का एक गिरोह लेकर हिन्दुस्तान को लूटने आया था और लूट-पाट करते समय मारा गया था। आश्चर्य होता है कि किस प्रकार मुस्लिम मुल्ता एक लुटेरे डाकू की कब्र पर लोगों को सिर टेकने के लिए बाध्य करते हैं और लोग आसानी से मूर्ख बन जाते हैं।

अपनी इस विरक्ति में सनकी सुलतान धार्मिक शान्ति के लिए मिस्र के मुस्लिम खलीफ़ा की ओर झुका। अफ्रीका से मलाया और इण्डोनेशिया तक ही क्यों सारे संसार के धर्मान्वित मुस्लिम दादाओं को अपना आशीर्वाद और संरक्षण भेजने के लिए खलीफ़ा हमेशा तैयार रहता था क्योंकि उसको अपनी कामान्ति में झोंकने के लिए संसार भर से उड़ाई हुई चुनिन्दा सुन्दर नारियाँ मिलती रहती थीं। साथ ही जेब गरम करने के लिए काफ़िरों की लूटमार का मोटा भाग भी। बार, हार और मार से नाक कटवाकर मुहम्मद ने खलीफ़ा को कीमती नज़राना भेजा और धार्मिक शान्ति की वाचना की। खलीफ़ा ने भी उसे अपना आशीर्वाद और संरक्षण भेज दिया। बरनी लिखता है—“खलीफ़ा ने मुहम्मद की इतनी और ऐसी प्रशंसा की कि उसको लिखा नहीं जा सकता।” खलीफ़ा के दूत की भोगवानी करने के लिए सुलतान नंगे पांव गया और अपनी सभी भावी धोखणाओं में उसने अपनी पीढ़ीशन खलीफ़ा के बाद ही रक्खी।

जब सुलतान को यह प्रकीर्ण हो गया कि दिल्ली में अकाल की भयंकरता कम हो गई है और उसकी हत्या करने पर आमादा उसके कर्मचारी अब उतने क्रुद्ध नहीं हैं तो वह दिल्ली वापिस लौटा। वह ३ वर्ष तक राजधानी में रहा। वहाँ उसकी दिन दहलाने वाला दृश्य देखने को मिला। सारे हिन्दुस्तान में दिल्ली की हालत बड़ी दयनीय रही है। हजारों वर्षों तक हर रोज़, दिन और रात, मुस्लिम दुष्टों ने इसे बरबाद ही किया था।

मुस्लिम शासन के अन्त तक भारत की हालत एकदम खस्ता हो गई

थी। इसके भवनों की ईंट बिखर गई थी। बार-बार की लूट से घबराकर हिन्दू जंगलों में भाग गए थे या उनको गन्दी गलियों में फेंक दिया गया था। हिन्दुओं के खून की आखिरी बूंद और सारी जीवन-शक्ति मुसलमानों ने चूस ली थी। हिन्दू कंगाल हो गए थे। उधर मुसलमानों ने मौज-मस्ती और व्यभिचार की हद कर दी थी। ये भी कंगाल हो गए थे। हजार वर्षों के लम्बे नारकीय मुस्लिम शासनकाल में हिन्दुस्तान के फलते-फूलते उद्योगों और हरी-भरी खेतियों का सत्यानाश हो चुका था। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जंगली जीवन बिताने लगे थे। एक मजबूरी से, दूसरा स्वभाव से। और इन्हीं गुणहीन मुस्लिम पापियों ने मध्यकालीन भव्य हिन्दू महलों को अपने अधिकार में कर लिया। उल्टा-सीधा नाम देकर उनपर मस्जिद और मकबरे का साइन बोर्ड लगा दिया। फिर इस बात पर अकड़ने लगे कि हमने इसे बनाया है।

लगातार मुगल आक्रमणों से परेशान होकर मोहम्मद मुगल दादाओं को भी अपनाने लगा। उन्हें अपनी ओर मिलाकर उनके देशवासियों के विरुद्ध ही उनका उपयोग करने का उसने विचार किया था।

उसने “एक नीच, दुष्ट और मूर्ख व्यक्ति अजीज हिमार को मालवा का गवर्नर बनाकर धार भेज दिया।”

(१२) कटलख खाँ ने हिन्दू-लूट में से दिल्ली का हिस्सा भेजना बन्द कर दिया था। सुलतान ने उसको देवगिरी से वापिस बुला लिया। कटलख खाँ की अनुपस्थिति में “हिन्दुओं और मुसलमानों ने बगावत कर दी।” देवगिरी की विस्फोटक परिस्थिति पर काबू पाने के लिए क्रोध से कटलख खाँ के भाई निजामुद्दीन को भेजा गया। यह बारहवाँ विद्रोह था। कटलख खाँ की लूट-पाट से देवगिरी में एक खज़ाना जमा हो गया था। सुलतान इसको दिल्ली लाना चाहता था। मगर उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी। कहीं रास्ते में खज़ाना लुट गया तो ?

धार पहुँचने के साथ ही अजीज ने अपनी ताकत दिखानी चाही। “उसने अस्सी मुखिया लोगों और साधारण धनी व्यक्तियों को एक साथ पकड़ लिया। उनपर उपद्रव का आरोप लगाया तथा (भूतपूर्व हिन्दू) राज-महल के सामने सभी का सिर काट गिराया। जब सुलतान को इस दशा की सूचना मिली तो उसने अजीज को इज्जत की एक पोशाक तथा साधुवाद

का एक पत्र भेज दिया।" हत्यारे को इनाम देना मध्य-युग में कोई नई बात नहीं थी।

अनजाने ही बरनी यह रहस्य प्रकट कर देता है कि वह क्यों मुहम्मद को चिकनी-चपटी चापलूसी करता था। वह कहता है कि—"मैं १७ वर्ष और ३ महीने मुहम्मद के दरबार में रहा। मुझे बराबर इनाम और बहुत उपहार मिलते थे।" जो जिसका खाएगा उसका गाएगा भी। प्रतिष्ठित इतिहासकारों को यह नहीं भूलना चाहिए। इसलिए बरनी ने अपने स्वामी के बारे में जो कुछ भी अनाप-सनाप भर रखा है उसपर आंख मूंदकर पकीन नहीं कर लेना चाहिए।

गुजरात के हिन्दुओं की लूट को बटोरकर मुकबिल नामक एक मुस्लिम दुष्ट, गुजरात से खजाना ला रहा था। बड़ौदा और दम्भोई के बीच के मार्ग में स्थानीय हिन्दू-सरदारों ने खजाना वापिस अपने अधिकार में ले लिया। मुकबिल अपनी जान लेकर भाग गया।

इसके बाद ये हिन्दू सरदार खम्मायत की ओर बढ़े। वहाँ का मुस्लिम कांटा भी इन्होंने उखाड़ फेंका। यह चौदहवाँ विद्रोह था। इन घटनाओं से घबराकर सनकी सुलतान लूट के लिए रिजर्व अपनी सेना लेकर गुजरात के फडफडाते पर काटने के लिए दौड़ा आया। उधर कटलघ खाँ लूट मचाने के लिए एक निरंकुश राज्य की नींव डालना चाहता था। गुजरात के विद्रोही हिन्दू सिरों को काट-काटकर धरती पर गिराने के लिए उसने अपनी सेवाएँ सुलतान को समर्पित कर दीं। मुहम्मद स्वयं बहुत मक्कार था। वह कटलघ खाँ के इरादों को भाँप गया। सेनाओं की उपेक्षा कर वह खुद सेना लेकर निकला। अभी वह ३० मील ही चला होगा कि उसे यह समाचार मिला कि धार का अजीज भी बिना सुलतान की आज्ञा के, एक राज्य स्थापित करने के लिए गुजरात में घम गया है और दुश्मनों से लोहा ले रहा है। मगर हिन्दू युद्ध के लिए तैयार थे। अजीज मारा गया। सेना भाग गई।

"विद्रोह के बाद विद्रोह होता गया"—बरनी कहता है—"सुलतान ने मुझे बुलाया और कहा—"तू देखता है न, किस प्रकार विद्रोह पैदा होते जा रहे हैं।"

सुलतान गुजरात की ओर बढ़ा। दो लड़ाइयाँ हुईं। पहली दम्भोई के पास। दूसरी ब्रोच के समीप नर्मदा पर। हमेशा की भाँति बलात्कार, वेश्या-

वृत्ति धर्मान्तरण और गुलामी के लिए मुसलमानों ने हिन्दू नारियों और बच्चों को पकड़ा। सुलतान के एक गुर्गे मलिक मकबूल ने ब्रोच के सभी मध्यवर्गीय लोगों को हलाल कर दिया। इसके बाद सुलतान ने एक-एक कर ब्रोच, खम्मायत आदि नगरों को घेर लिया। भूले भेड़िये की भाँति उसने नागरिकों को एकदम नीच लिया। अपना पिछला बकाया और भावी दुर्दिन का एडवान्स उसे लेना था। जिसने इस नीच-खोच का विरोध किया वह पंगु हो गया या मर गया।

"जब सुलतान ब्रोच में था तब उसने देवगिरी के असन्तोष को दबाने के लिए जीन बन्दा और रुक यानेश्वरी के मझले बेटे को नियुक्त कर दिया। ये दोनों ही दुष्टों के नेता और भ्रष्टों के दादा थे। १५०० सैनिकों की टुकड़ी लेकर ये आये। इन लोगों ने मुश्किल से पहले पड़ाव तक यात्रा की होगी कि यह समाचार फैल गया कि सुलतान ब्रोच में इन सभी लोगों की हत्या कर देना चाहता है। अतएव इन लोगों ने बगावत कर दी। देवगिरी वापिस लौटकर इन लोगों ने गवर्नर निजामुद्दीन को पकड़कर तहखाने में फेंक दिया। इसके बाद सुलतान के सारे अफसरों का सिर उतार दिया। देवगिरी का खजाना गुप्तरूप से धारागढ़ चला गया था। उसको वापिस देवगिरी लाया गया।

इस बगावत का समाचार पाकर सुलतान सेना के साथ देवगिरी खाना हो गया। विद्रोही भाग गये। सुलतान ने देवगिरी को लूट लिया।

इधर सुलतान गुजरात से लौटा उधर ताथी नामक चमार ने बगावत का झंडा फहरा दिया। वह मारवाड़ दुर्ग की ओर बढ़ा। इसको लूटकर वह ब्रोच की ओर चल पड़ा। परेशान होकर सुलतान ने बरनी से कहा—"तू देख रहा है नये विदेशी अमीर चारों ओर कितना उपद्रव खड़ा कर रहे हैं?"

बरनी लिखता है कि एक बार तो उसकी इच्छा हुई कि वह सुलतान से यह कह दे कि "ये सभी हुजुरे आला की अत्यन्त निर्भयता (कूरता) के परिणाम हैं। मगर राजा की नाराजगी का डर मुझे लगा। मैं वह नहीं कह सका जो मैं कहना चाहता था।" क्या यह स्वीकृति साफ-साफ लोगों को नहीं बताती कि बरनी एक खुशामदी था, चापलूस था, जो हजूरिया था? सुलतान ब्रोच पहुँचा। इसे फिर अपने अधिकार में किया। ताथी सुलतान से बचता रहा। सुलतान यहाँ वहाँ उसका पीछा करता रहा। इस दौरान

ताथी ने मारवाड़ के गबनर आदि कई लोगों की गरदन साफ की। ये लोग उसके बन्दी थे।

अन्त में, कूर-भोगी सुलतान ने बासियों को मार भगाया। ताथी थड़ा और फिर धमरिला भाग गया। यहाँ उसे पनाह मिल गई।

सोलहवाँ विद्रोह देवगिरी में पनपा। बासी नेता हसन गंगू था। सुलतानी सैनिकों से उसने चारों ओर का क्षेत्र छीनकर अपने आपको राजा घोषित कर दिया।

देवगिरी हाथ से गया। सुलतान का दिल टूट गया। उसने बरनी को बुलाकर कहा—“मेरा राज्य रोगी हो गया है। कोई भी दवा इसे स्वस्थ नहीं कर पा रही है। अगर मैं एक स्थान पर विद्रोह का दमन करता हूँ तो दूसरी जगह दूसरा विद्रोह उठ खड़ा होता है।” उसने देवगिरी की आशा छोड़ दी। वह गुजरात में ही अपनी स्थिति दृढ़ करने में लग गया। ताथी का पीछा उसने अभी तक नहीं छोड़ा था। वह उनके पीछे लगा रहा।

स्वभावतः जंगली मुस्लिम क्रोध और धर्मान्ध इस्लामी वेष में वह राह के सारे क्षेत्रों की कुचलता-मसलता आगे बढ़ता रहा। कांडल में वह बीमार पड़ गया। वह तीन वर्ष तक यहाँ से हिल नहीं सका। पैरों पर खड़े होने लायक वह हुआ तो फिर थड़ा की राह लगा। उसका अन्तिम पड़ाव थड़ा से सिर्फ २६ मील दूर था। अल्लाहताला भी इस मुस्लिम सनकी राजा की दुष्टता से तंग आ चुके थे। उन्होंने इसके जीवन में पूर्ण विराम लगा दिया।

इस हिसक मुहम्मद तुगलक की नृशंस कार्यवाही एवं रोमांचकारी क्रूरता के कुछ अनोखे और बेजोड़ उदाहरण इन्हीं बतूता ने भावी लोगों के लिए लिख छोड़े हैं। बतूता बतलाता है—

(१) “मुहम्मद का एक फुफेरा भाई मसूद था। इसको उसने बन्दी बना लिया। पातना के नगर से मसूद ने स्वीकार कर लिया कि मैंने सुलतान के बिना शर्त पनाह रचा था। मसूद का सिर उतार दिया गया और रिवाज के अनुसार उसकी लाश उसी स्थान पर (सड़ने के लिए) तीन दिन तक छोड़ दी गई। दो वर्ष पूर्व ठीक उसी स्थान पर, कुटनी और व्यभिचारिणी होने का आरोप लगाकर उसने बहाउद्दीन की पुत्री यानी मसूद की माँ को पत्थरों की बर्षा करवाकर मरवा डाला था।”

(२) “एक बार सुलतान ने दिल्ली के समीप ही पहाड़ियों में हिन्दुओं से लड़ने के लिए अपनी एक सैन्य टुकड़ी मलिक यूसुफ बुघा को दी। यूसुफ के कुछ आदमी रवानगी के समय खिसक गये। कुछ दिल्ली क्षेत्र में पीछे ठहर गये। सुलतान ने सभी को खोज निकालने का कड़ा आदेश दे दिया। तीन सौ आदमी पकड़े गये। सभी को हलाल कर दिया गया।”

(३) “सुलतान की बहन के पुत्र बहाउद्दीन ने सुलतान से विद्रोह कर दिया। पीछा होने पर बहाउद्दीन ने राजपूत राजाओं से पनाह माँगी। इनमें एक कम्बिला का शासक भी था। मुहम्मद की सेना ने कम्बिला को घेर लिया। हिसक जानवर की क्रूरता से वे सभी लोग सभी नारियों पर बलात्कार करने और घरों को जलाने में तल्लीन हो गये। मुसलमानों की क्रूरता से अपने को बचाने के लिए कम्बिला-दुर्ग की सारी नारियाँ आग में जल मरीं। बाकी लोगों ने वीर राजा के नेतृत्व में शत्रुओं पर तीखा हमला कर दिया। जबतक एक भी व्यक्ति जिन्दा रहा वे लोग लड़ते-मरते रहे। किसी प्रकार उनके ग्यारह छोटे-छोटे बच्चे पकड़ में आ गये। इन सभी बच्चों का सतना कर दिया गया। अपनी शर्मनाक शुरुआत से अनजान उनके कुछ वंशज अब अपनी मुस्लिम-जागीर और सम्पत्ति का दिखावा करते हैं। इनमें से तीन के नाम नसर, बख्तियार और अबु मुस्लिम हैं।

बाद में बहाउद्दीन पकड़ा गया। उसके हाथ-पैरों को गर्दन से बाँधकर (यानी मुर्गी बनाकर) सुलतान के सामने पेश किया गया।

हरम की स्त्रियों और रिश्तेदारों को आज्ञा दी गई कि वे उसका अपमान करें, उसकी खिल्ली उड़ावें और उसपर धूकें। इसके बाद जिन्दा बहाउद्दीन की चमड़ी छील दी गई। फिर उसकी चमड़ी को चावल में पकाकर पुलाव बनाया गया। इस पुलाव को बहाउद्दीन की पत्नियों और बच्चों को खिलाया गया। बाकी पुलाव को एक बड़ी तश्तरी में रखकर हाथियों को दावत दी गयी। मगर हाथियों ने इसे छुआ तक भी नहीं। इसके बाद बहाउद्दीन की लाश में घास-फूस भरा गया। इसी प्रकार घास-फूस से भरी और भी बहुत-सी लाशें थीं। इनमें से एक लाश बहादुर बुरा की भी थी। इन सारी लाशों में बहाउद्दीन की लाश को भी शामिल कर दिया गया और सारे राज्य में इन लाशों को जुलूस में प्रदर्शित करने के लिए भेज दिया गया। यह रोमांचकारी प्रदर्शनी सिन्ध पहुँची। इस खूनी दृश्य को देखकर

वहाँ का गवर्नर किशलू खाँ इतना आतंकित हो गया कि उसने सारी लाशें जमीन में दफना दी।

सुलतान ने भी सुना कि उसकी प्रदर्शनी जमीन में दफन हो गई है। उसने किशलू खाँ को फौरन दरबार में हाज़िर होने की आज्ञा भेजी। किशलू खाँ की समझ में आया कि उसका शरीर भी प्रदर्शनी में जाने वाला है। वह बागी हो गया। सुलतान अपनी सेना लेकर उसपर टूट पड़ा। एक बार सुलतान बुरी तरह घिर गया। तब सुलतान ने अपने हमशक्ल इमामुद्दीन को अपनी पोशाक पहनाकर राज-छत्र के नीचे बैठा दिया। इमामुद्दीन घिर गया और मारा गया। सुलतान एक दूसरी सेना लेकर दूसरी ओर से वेखबर लोगों पर टूट पड़ा। किशलू खाँ के एक साथी काज़ी करीमुद्दीन को चमड़ी छील दी गई। किशलू खाँ का सिर काट मुलतान में उसके महल-द्वार पर टांग दिया गया।

यह मुहम्मद तुगलक था—एक खूंखार जंगली जानवर। इसकी इस्लामी दुष्टता को बड़ी सफ़ाई से छिपा दिया गया है। इसके बदले इस हिंसक जानवर को भलाई करने वाले सुलतान के रूप में चित्रित करने के कारण आधुनिक पाठ्य-पुस्तकें शर्म से पानी-पानी हो रही हैं, इस बलात्कार से चार-बार हो रही हैं। तुगलक के चरित्र को शलत डंग से पेश करने की कुख्याति में हमारे शिक्षकों, प्रोफेसरों और परीक्षकों को अब और नहीं डबना चाहिए। असहाय छात्रों से इस क्रूर-भोगी मुस्लिम राक्षस मुहम्मद तुगलक के कल्पित "सुधारों" और बेवुनियाद गुणों का मक्खन निकालने के लिए नहीं कहना चाहिए। इसने चौथाई शताब्दी तक हिन्दुस्तान को भूखे मारा है, उसकी पीठ में छुरा धोपा है और उसपर पाशविक बलात्कार किया है।

(मदर इण्डिया, दिसम्बर १९६७)

: १५ :

फ़िरोज़शाह तुगलक

मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के बाद फ़िरोज़ गद्दी हथियाने में सफल हुआ। बदस्तूर यह भी एक अत्याचारी शासक था। इसे भी भारतीय इतिहासकारों ने हिन्दुस्तान की भलाई करने वाले सुलतान के रूप में अंकित और चित्रित किया है।

मुहम्मद तुगलक ने थढ़ा शहर हथियाने के लिए शहर से २८ मील दूर अपना तम्बू ताना था। आज उसकी मृत्यु का तीसरा दिन था। असंतुष्ट सेना इधर-उधर भाग रही थी। अपने जिद्दी और विद्रोहात्मक व्यवहार के कारण मुहम्मद तुगलक ने सभी को अपना शत्रु बना लिया था। अब शत्रु उसके गिरोह, गुर्गों और अनुचरों से बदला चुकाने के लिए चारों ओर से उमड़ पड़े। टूटे खेमों और नेता-हीन सेना को भागते देख सामने से मुगल झपटे और पीछे से थढ़ा दुर्ग के सैनिक। सारा सामान और खजाना लूट लिया गया।

अति विलास से जर्जर और पौरुषहीन मुहम्मद तुगलक का कोई पुत्र नहीं था। फ़िरोज़शाह ही उसका निकटतम सम्बन्धी था। भागती सेना का नियन्त्रण सूत्र उसने अपने हाथ में लिया। यह तुगलक-वंश की नींव डालने वाले गियासुद्दीन तुगलक के एक हरम-भाई का पुत्र था। इसका जन्म १३०६ ई० में हुआ था।

फ़िरोज़शाह से दो पीढ़ी छोटा चापलूस इतिहासकार शम्स-ए-गिराज अफ़्रीफ़ ने भावुक और सीधे-सादे लोगों के लिए उसके दुष्ट शासनकाल का एक खुशामदी और कल्पित किस्सा लिखा है। "प्रशंसा की अबिराम धारा" इसमें बह रही है। (पृष्ठ २६६, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)। बरती के इतिहास में फ़िरोज़शाह के शासन-काल के एक भाग का ही वर्णन है। मगर

फिर भी इसके इतिहास का नाम तारीखे-फ़िरोज़शाही है क्योंकि इस इतिहास की अरेबियन नाइट का जन्त फ़िरोज़शाह के शासनकाल में ही हुआ था। अफ्रीका के इतिहास का भी यही नाम है। एक दूसरे इतिहास का नाम है "फ़तूहाते फ़िरोज़शाही" यानी फ़िरोज़शाह की दिग्विजय। यह दूसरी बात है कि उसे अपने सारे अभियानों में सिर पर पैर रखकर या दुम दबाकर भागना पड़ा था। इसे फ़िरोज़शाह ने स्वयं बोल-बोलकर लिखवाया है, अतः इसमें ऊट-पटांग वर्णन होना स्वाभाविक ही है। इन्हीं रंगीन इतिहासों की ऊपरी चमक देखकर हमारा इतिहास मूढ़ लोगों द्वारा लिखा गया है।

कुत्तयात खिलजी अलाउद्दीन की लाइन में तीन तुगलक प्यारे भाई थे—गियासुद्दीन, रजब और अदुबकर। दीपलपुर के हिन्दू राज्य को नष्ट-ध्वस्त करने के लिए अलाउद्दीन ने इन तुगलक-गुण्डों को खुला छोड़ दिया था। यह सुनकर कि वहाँ के हिन्दू शासक राणा मल्ल भट्टी की पुत्री अति रूपवती है, इन तुगलकों ने उसके अपहरण की योजना बनाई। मुस्लिम कुकर्मियों ने अपनी बेटों सौंप देने का समाचार राणा को भेज दिया। इस अपमानजनक साँप से राणा जल उठा। उन्होंने बड़ा कड़ा प्रतिवाद भेजा। इस उत्तर से उत्तेजित होकर और राणा की रानियों पर बलात्कार करने की लालसा लेकर खिलजी-तुगलक संयुक्त सेना राणा के राज्य की सारी स्त्रियों पर बलात्कार करने और मारे असुरक्षित नगरों तथा घरों को लूटने के लिए निकल पड़ी। प्रजा-हाहाकार कर उठी। इन गुण्डों के अमानुषिक अत्याचारों को सुन-सुनकर राजमाता अत्यन्त ही दुःखित हो गई। उनके विलाप को राजपुत्री नीला नहीं देख सकी। मुस्लिम विलास की बलिबेदी पर उसने अपनी पवित्रता और कौमार्य का बलिदान करने का संकल्प कर लिया ताकि हजारों स्त्रियों की पवित्रता और विनाश को रोका जा सके। अन्ततः मुस्लिम दारनामों के आगे राणा को झुकना पड़ा। उन्होंने अपनी पुत्री समर्पित कर दी। वह रजब के हरम में भेज दी गई। नामकरण हुआ कदवानो। इस प्रकार एक हिन्दू कलना के बलात्कार से फ़िरोज़शाह के समय का आदिर्भाव हुआ।

फ़िरोज़शाह का बलात्कारी बाप फ़िरोज़ के जन्म के ७ वर्ष के बाद ही मर गया था। इस प्रकार गियासुद्दीन और मुहम्मद तुगलक दोनों ने फ़िरोज़शाह की मुसलमानी कारनामों की शिक्षा देकर टेण्ड किया था।

फ़िरोज़शाह का उत्तराधिकार विरोधहीन था। गियासुद्दीन की बेटी अपने पुत्र को सुलतान घोषित कर रही थी जबकि फ़िरोज़ मुगलशाह और यट्टा की संयुक्त सेना का विजेता(?) था। विजय तो दूर रही, फ़िरोज़ को अपनी जान बचाकर भागना पड़ा था। बहाना भी उसके पास अच्छा था। पहला तो यही कि यह अभियान उसके मन लायक नहीं था। दूसरे उसे दिल्ली लौटने की भी जल्दी थी ताकि कोई दूसरा तख्त पर बैठकर उसका रास्ता ही बन्द न कर दे। कपटी और झूठे अफ्रीक ने डूब मरने लायक सारी पराजयों को महान् विजय का ताज पहनाया है। वह लोगों को बतलाता है—“मुगल भाग गये, वह पूर्ण विजयी हुआ।” (पृष्ठ २७८, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)। मगर पृष्ठ २८६ पर एकाएक भण्डाफोड़ हो जाता है। जनाव लिखते हैं—“सेना बुरी तरह फँस गई थी। उसे दिल्ली भागना पड़ा।”

पराजित और हतप्रभ सेना को लेकर फ़िरोज़ मुलतान की ओर चला और उसके बाद उसने दिल्ली पर आक्रमण करने का निश्चय किया। उसका खजाना खाली हो चुका था। खाने को दाना भी नहीं था। तब वह मुलतान, दीपलपुर, अयोध्या और सरस्वती (सरसुती) को लूटने में लीन हो गया। इन डकैतियों से उसे जो मिला उसी को बटोर लिया। नागरिकों एवं ग्रामीणों से उसने क्रूरतापूर्वक अस्त्र-शस्त्र और धन छीन लिया। लोगों को बन्दी बनाकर, पीड़ा और यातना की चक्की में पीस, मुसलमान बना उन्हें हिन्दुओं से ही लड़ने के लिए तैयार किया।

प्रायः लोग आश्चर्य करते हैं कि मुसलमानों के आगे भारत ने घुटने क्यों टेक दिए! उत्तर में बड़े विस्तार से बताया जाता है कि इस्लाम के दर्शन एवं नियमों से लाखों हिन्दू अभिभूत हो उठे और अपनी इच्छा से अपना धर्म त्याग, इस्लाम धर्म ग्रहण किया।

मुसलमानी कुतर्क एवं मिथ्यावाद का यह एक ज्वलन्त और अनोखा उदाहरण है। इसके दो उत्तर हैं—

(१) यह सरासर गलत है कि हिन्दुस्तान को इस्लाम ने आसानी से कुचला और रौंदा, उल्टे हिन्दू इस्लाम से ११०० वर्षों तक जान हथेली पर रखकर लड़ते रहे और अन्त में वे इस भीषण समर में सफलता प्राप्त करके भी रहे। इस लम्बे और समर की लम्बी काल-रात्रि के जाज्वल्यमान नक्षत्र

राणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी एवं सिक्ख गुरुओं ने इस विशाल मुस्लिम जज्जर पर ऐसे भयंकर बार किये कि पीड़ा से छटपटाकर अन्त में वह निर्जीव हो इसी भूमि पर लेट गया। निःसन्देह कूर मुस्लिम प्रहारों से हिन्दुत्व घायल हुआ, वर्षों और अपमानित भी हुआ, मगर हारा नहीं। कोई नहीं कह सकता कि हिन्दुत्व हारा है। अफ्रीका से इण्डोनेशिया तक के अन्य देशों पर एक बार नजर दौड़ाए। यही इस्लाम सफल हुआ है। पीड़ा और यातना को चक्को में इन देशों की सारी जनता को पीसकर उसने उन्हें मुसलमानी भाटा बना दिया है। सारी-की-सारी जनता मुसलमान हो गई है। जबकि पवित्र गंगा और बीर क्षत्रियों की धरती भारत में, अभी भी ४५ करोड़ हिन्दु सीना ताने खड़े हैं। क्या यह पराजय है?

फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि इस्लाम के हाथों जो पीड़ा और अपमान हिन्दुत्व ने भोगा है, वह बेमिसाल है। इस्लाम की काली सफलता का श्रेय इस्लाम के नियम एवं दर्शनों को नहीं मिल सकता। भरती के इस्लामी तरीकों ने इस्लाम का डंका बजाया है। मुसलमानी सन्तों के बारे में हम क्या कहेंगे? मुस्लिम इतिहासकार ही लोगों को बतलाते हैं कि जिन मुस्लिम धर्म-प्रचारकों को आज हम बढ़ाई करते हैं, उन्हीं के समकालीन लोग उनके नाम पर बूकते थे, और उनसे घृणा करते थे। इस्लामी धर्म और दर्शनों की काल्पनिक बकवास में अगर कुछ दम हो भी तो इस्लामी कालामों ने भारतीयों के हृदय में ऐसी अनास्था और घृणा कूट-कूटकर भर दी थी कि मुसलमान बनने के बदले वे अपनी स्त्रियों एवं बच्चों को जलाकर राख कर देना अच्छा समझते थे। भारत के सामने इस्लामी जीवन-पापन का जो मार्ग इतिहास पेश करता है, उसमें सिर्फ बलात्कार, लूट, कागडनी, पीड़ा, व्यविचार, वासना, तर-भोग, शराबी महफिल, वेश्यावृत्ति, दुर्क-बन्दी, जँवरे तहखाने और नशीली दवाई सेवन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

प्रत्येक धार्मिक और श्रद्धालु हिन्दू के हृदय में इस्लाम के प्रति इतनी घृणा भरी रहने के बावजूद भी यदि आज मुसलमानों की इतनी अधिक संख्या है तो इसका कारण मुसलमानी भरती के इस्लामी तरीकों में है, जिसे जामिन, मजदबी, मोरी, मिन्नी, और मुगल शांतानों के बाप ने अपनाया था। खून में नहलाया भी जाता था। अपने ही बाप और बेटों की कलेजों

पकाकर खिलाई भी जाती थी। इससे पहले किसी भी आक्रमणकारी ने बलात् धर्म-परिवर्तन के काले-जादू का प्रयोग नहीं किया था। बलात् धर्म-परिवर्तन के इस तरीके में भेद-नीति के कई तन्तु सूक्ष्म रूप में छिपे हुए थे। उन लोगों को विदेशी पोशाक पहन, विदेशी नाम धारण कर, मुक्ति पाने के लिए विदेशी तीर्थ-स्थानों का मुँह देखना पड़ता था। अ भारतीय प्रकीरों की कब्र पर ही नहीं बरन् मसूद जैसे लुटेरे की कब्र के आगे सिर झुका अपने आपको अरबी, तुर्की या ईरानी समझना पड़ता था।

इस तरीके ने एटम बम का काम किया और प्रलय की ऐसी आंधी बहा दी कि कल का धार्मिक, श्रद्धालु और सभ्य हिन्दू रातों-रात द्रोही, दुराचारी और गुण्डा बन जाता। यही इस्लामी यातना का कमाल था। वह पक्का मुसलमान बन जाता। मगर वे यहीं तक न रुके। वे लाखों लोगों को लगा-तार मुसलमान ही नहीं बनाते गए बरन् उन्हें तलवार की नोक पर मजबूर भी करते गए कि वे अपने ही भाइयों को (यानी पूर्ववर्ती भाइयों को) लूट लें और अपनी ही बहनों को मसल दें। सामूहिक धर्म परिवर्तन एवं बलात् भरती का यह एक रोमांचकारी उदाहरण है। मुट्ठी भर मुस्लिम गुण्डे भारत में आए और इस खूनी जोड़-गाँठ से दिन दूने और रात चौगुने बढ़े। दूसरे रक्त-रंजित उपायों का भी सहारा लिया गया। हिन्दू शासकों को ललकारने के बदले वे लूट और बलात्कार करने निकल पड़े तथा सेतों, ग्रामों, नगरों और शहरों के स्त्रियों, बच्चों और लोगों को यातना दे-देकर मुसलमान बनाने लगे। इस प्रजा-पीड़न प्रणाली के सामने हिन्दू शासक एवं उनकी सेना अपने आपको असमर्थ और हताश पाती थी तथा इस गुण्डा-गर्दी को रोकने के लिए उनकी माँगों के आगे झुक जाती थी।

इसी प्रजा-पीड़न प्रणाली ने दीपलपुर के हिन्दू शासक का मनोबल तोड़ दिया था। विवश हो उन्हें अपनी प्यारी बेटी का बलिदान मुस्लिम गुण्डागर्दी और व्यविचार की बलिबेदी पर करना पड़ा। न चाहते हुए भी उन्हें एक मुसलमान का नाना बनना पड़ा, जो बाद में इस्लामी-यातना का एक क्रूरतम संचालक हुआ।

फ़िरोज़शाह मुगलों से गद्दी हथियाने दिल्ली की ओर मुड़ा। मार्ग में पड़ाव डाला। यहाँ उसे एक पुत्र हुआ, जिसका नाम उसने फ़तह ख़ाँ रखा। इतिहासकार अफ़्रीक लोगों को बतलाता है—“सुलतान ने यहाँ एक नगर

की नींव डाली, जिसका नाम उन्होंने फतहबाद रखा।" (वही, पृष्ठ २८३)। कैसे दुःख की बात है कि ऐसी स्पष्ट जालसाजियों पर भी हमारे इतिहासकारों ने विश्वास कर लिया है। फिरोजशाह ने सिर्फ इतना ही किया कि इसका नाम बदल दिया। इसपर भी अफ्रीक जैसे नीच चापलूस पर, आँख मूंदकर विश्वास करके आज के इतिहासकार नगरों, ग्रहरों, महलों, बागों, महलों, पुलों, दुर्गों और भवनों की एक लम्बी सूची पेश कर उन सभी के निर्माण का श्रेय फतेहान और जमाबगस्त फिरोजशाह को देते हैं, जिसे अपने सुबह-शाम के भोजन के लिए भी डकंती करनी पड़ती थी।

८० वर्षीय ख्वाजा-ए-जहान ने पहले तो फिरोजशाह का विरोध करने के लिए कि उसका दिल्ली प्रवेश न हो सके, शक्ति का संचय किया था, मगर बाद में उसने अपना विचार बदल दिया क्योंकि फिरोजशाह में अपने कुत्सात पूर्वजों की घृतता, मक्कारी, चालबाजी और भयंकरता कूट-कूट-कर भरई हुई थी। फिरोजशाह से समझौता करने वह उसके पास गया। बुढ़ापे में बेचारा सठिया गया था।

फिरोजशाह ने उसकी खूब आभगत की। अपने खूनी स्वामी के आगे संकटपस्त व्यक्ति जिस इस्लामी तरीके से समर्पण करता है उस इस्लामी पद्धति का पूरा-पूरा पालन इसने किया। "गले में जंजीर बाँध, पगड़ी उतार, नमी गढ़न पर नंगी तलवार लटका, फिरोजशाह के सामने ख्वाजा हाज़िर हुआ और दरबार के नौकरों की कतार में खड़ा हो गया।"

इस सम्पूर्ण आत्म-समर्पण के उपरान्त भी फिरोजशाह ने बड़े प्रेम से उसकी गढ़न उतार दी। वह बूढ़ा आदमी आँखें बन्द किये अल्लाह की याद में ज़का नमाज़ पढ़ रहा था। पीछे से दो आदमी उसपर कूद पड़े और उस की गढ़न रोल दी।

अफ्रीक का इतिहास भी झूठों का पुलिन्दा है। शांतान फिरोज को उसने एक सच्चे साधु के रूप में चित्रित कर सारे दैवीय-गुणों एवं साधु नियमों पर काली पुताई कर दी है।

दिल्ली में घुसकर फिरोजशाह ने उन सभी से भयंकर बदला लिया जिन्होंने उसकी वापसी के विरोध में वदयन्त्र किया था। यद्यपि उसने सभी का दमन कर दिया मगर वे सभी असन्तोष से उबल रहे थे।

जुम्मे की नमाज़ के बाद अपने पूर्वजों के हरम का निरीक्षण करना

फिरोजशाह का स्वभाव था। हरम के एक छोर पर गियामुद्दीन की बेटी खुदाबन्दजादी अपने पति खसक मलिक के साथ रहती थी। अपने कामुक प्रवेश के समय फिरोजशाह इसके साथ कामुक व्यवहार करता था। फिरोजशाह का यह विश्वास था कि जुम्मे की नमाज़ का पुण्य उसके हरम-प्रवेश की कामुक कालिमा को धो-पोंछकर साफ़ कर देगा और उसका दामन पाक और साफ़ ही रहेगा। फिरोजशाह के व्यक्तिचारी व्यवहारों से तंग खुदाबन्दजादी के पति ने हत्यारों के एक दल को बाहरी-कक्ष के बाहर की झाड़ी में छिपा दिया, जिसमें फिरोजशाह उसकी पत्नी के साथ बैठता था। सदा की भाँति, जुम्मे की नमाज़ के बाद फिरोजशाह खुदाबन्दजादी एवं अन्य स्त्रियों के साथ रंगरेलियाँ मनाने आया। हत्यारे उसपर अपट पड़े। मगर उसकी अपहृत माता की जाति के एक हिन्दू राजपूत राय ने इन हत्यारों को उत्तला लिया। भयभीत सुलतान भवन से बाहर भागकर अपने अंगरक्षकों के बीच में जा छिपा। इस घटना से वह इतना भयभीत हो गया कि उसने हरम में जाना ही बन्द कर दिया। इसके बदले में उसने एक नया स्थान चुना, जिसके चारों ओर उसके विश्वासी आदमी तैनात रहते थे। यहाँ वह बटोरी हुई वेश्याओं में विहार करता रहता था।

अपने विरोधियों का सफ़ाया एवं दमन करते हुए फिरोजशाह ने दिल्ली में कई वर्ष व्यतीत कर दिए। अब खाली मुस्लिम खजाने को भरने की जरूरत महसूस कर उसने हिन्दू-लूट अभियान की योजना बनाई।

भारत के सभी मध्यकालीन मुस्लिम शासक चाहे वे दिल्ली के बादशाह हों या सुलतान, या बिदार, गुलबर्ग, बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुण्डा, हैदराबाद, मैसूर, अवध या बंगाल के छोटे शासक हों, सभी राजा के रूप में डाकू या डाकू के रूप में राजा थे। ये डाकू राज देश को लूटने के उद्देश्य से अपने लुटेरे गिरोहों को भेजते थे और लूट के माल से खाली खजाना भरते थे। नहीं, नहीं, ये डाकूओं से भी गए गुजरे थे। सचमुच के डाकू सिर्फ सम्पत्ति ही लूटते हैं और ये मुस्लिम गिरोह स्त्रियों पर बलात्कार करते थे, बच्चों का अपहरण करते थे, मन्दिर को अपवित्र कर मस्जिद या बेधमालम बनाते थे, बन्दियों को गुलाम बनाकर पश्चिम एशिया के मुस्लिम बाजारों में बेच देते थे और छोटे बच्चों को काम-तुष्टि के लिए रख लेते थे। फिरोजशाह भी एक ऐसा ही व्यक्ति था। एक ऐसा ही डाकू राजा था।

लूट और बलात्कार के लिए चारों ओर नजर दौड़ाकर, १३५३ ई० में फ़िरोजशाह ने बंगाल पर अपनी लोलुप दृष्टि गड़ाई। इसकी राजधानी लखनौटी थी। "अब वह कोसी के किनारे पहुँचा तो उसने दूसरी ओर शम्सुद्दीन की सेना को तैनात पाया।" फ़िरोजशाह के साथ ७०,००० मुस्लिम गुण्डों की सेना थी, जो सारे रास्ते हिन्दू क्षेत्रों को लूटती रही थी। दिल्ली की मुस्लिम सेना ने शम्सुद्दीन को घेर लिया। झड़पों का आरम्भ हुआ। दोनों ही मुस्लिम सेनाएँ समीपवर्ती हिन्दू घरों और खेतों को चूसती गईं और आपस में लड़ती रहीं। अन्त में फ़िरोज को फ़रार होना पड़ा। फ़िरोजशाह की हालत इतनी पतली हो गई थी कि उसे अपने सारे सामानों के साथ तम्बूजों को छोड़, जल्दबाजी में जिसे जला सका उसे जलाकर, सिर पर घेर रखकर भागना पड़ा था। बंगाल का मुस्लिम सुलतान शम्सुद्दीन उसकी पीठ पीछे ही था। अतः सुलतान फ़िरोजशाह दुम दबाए कुत्ते की तरह भागता ही गया, भागता ही रहा। इसपर भी झूठा इतिहासकार अफ़्रीफ़ बड़ी बेगमरी से इसे अपने स्वामी की हार नहीं, जीत मानता है। कम-से-कम भागने में तो वह जीत ही गया!

अपनी इस शर्मनाक हार का बदला लेने के लिए कायर सुलतान फ़िरोज ने एक बहुत ही नीच काम किया। बीबी पर जोर न चल सका तो न मही, गधे की गर्दन तो पकड़ी जा सकती है। मुसलमानी-क़त्लेआम, एक ऐसी घटना है, जिसे लोग सात क्या सात सौ जन्मों में भी नहीं भूल सकते। इसलिए उसने आज्ञा जारी की कि असहाय और गरीब बंगाली (यानी हिन्दू) जहाँ वहाँ भी मिलें उन्हें ख़त्म कर दिया जाए। "प्रत्येक सिर के लिए एक चाँदी का टंका दिया गया। सारी सेना इस काम पर जुट गई और कटे मुण्डों का ढेर लगाने लगी। कटे सिर १,५०,००० से भी ज्यादा थे।" किसानों, ग्रामीणों एवं नागरिकों को काट, कटे मुण्डों का ढेर लगाना मुसलमानी मनोरिवाज था। भारत में यह जैतानी नाच ११०० वर्ष तक होता रहा। "महान् और दयान्" अकबर भी इसी प्रकार अपना समय काटता था।

इससे यह स्पष्ट है कि हिन्दुओं की सामूहिक हत्या का खुला हुक्म दिया गया था। प्रत्येक कटे सिर के साथ सिपाही सिर वालों की सम्पत्ति

भी लाते थे। इस सम्पत्ति में से वे एक चाँदी का सिक्का रख सकते थे और शेष सुलतान को समर्पित होता था।

हिन्दू लखनौटी के विदेशी शासक शम्सुद्दीन ने सोनार गाँव को लूटने के लिए फ़िरोजशाह का पीछा छोड़ दिया। यहाँ की गद्दी पर भी एक दूसरा मुस्लिम लुटेरा फ़ख़रुद्दीन उर्फ़ फ़ख़्र बैठा हुआ था। इसे पकड़कर मार दिया गया। अब शम्सुद्दीन फ़ख़रुद्दीन के हरम में जाने लगा। उसके सभी साथी मारे जा चुके थे। फ़ख़्र का दामाद अफ़र खाँ हिन्दू घरों को लूटने के लिए अपनी राजधानी से बाहर था। आतंकित हो वह दिल्ली भाग गया। शम्सुद्दीन से हारा फ़िरोज अफ़र खाँ जैसे गुण्डे को पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। इस हथियार से वह शम्सुद्दीन को ठोक सकता था और फिर इसे ठिकाने लगाना कौन-सी बड़ी बात थी?

मुस्लिम दुराचारियों और नये मुसलमानों की भारी फ़ौज लेकर वह आगे बढ़ा। ये नये मुसलमान दुराचार का पाठ सीख रहे थे। साथ के दरबारियों में एक तातार खाँ भी था। कूच करती मुस्लिम सेना ने हमेशा गिद्धों की भाँति, मार्ग स्थित हिन्दू नगरों, शहरों और गाँवों को नोच-नोच कर खाया है। हिन्दू स्त्रियाँ घरों से घसीट लाई गईं और सुलतान से लेकर कुली तक ने उनपर बलात्कार किया। इसलिए इन अभियानों के दौरान काम-वासना के विभिन्न आसनों में नंगे बैठे अनेक मुसलमानों को व्यभिचार में लीन पाना एक साधारण दृश्य था। अनजाने ही अफ़्रीफ़ मध्यकालीन मुस्लिम लुटेरों के इस जीवन के पक्ष का दृश्य भी प्रस्तुत कर देता है।

अफ़्रीफ़ हमें बतलाता है—“समय-समय पर सुलतान शराब में डूब जाया करता था। शराब कई रंगों एवं स्वादों की होती थी। एक दिन सुबह नमाज़ के बाद सुलतान शराब की एक प्याली से अपना खुशक गला भिगो रहा था कि तातार खाँ उससे मिलने आया। रंग में भंग पड़ते देख सुलतान बिड़बिड़ा उठा। उसने उसे किसी बहाने पार कर देने को कहा।” (वही, पृष्ठ ३०६)। मगर तातार खाँ चकमे में आने वाला नहीं था। एक के बाद दूसरे परदे को चीरता हुआ, भारी कदमों से हरम के बर्जित स्थान के अन्तिम छोर तक चला आया। भारी कदमों की आहट से फ़िरोज एवं उसकी विवश हरमज़ादियाँ आड़ डूँढ़ने लगीं। नंगे शरीरों को चादर आदि से उन्होंने ढक लिया। बिसरती मुराहियों, प्यालों एवं बोतलों पर जल्दी से

एक चादर डाल दी गई, जिसके नीचे से वे सभी झांक भी रहे थे। विस्तर के नीचे छिपे सुलतान को तातार खाँ ने घसीटकर निकाला। जो चादर सुलतान ने लपेट रखी थी वह गिर गई और लीजिए, देखिए! तातार खाँ के सामने नंगा फ़िरोज खड़ा था। एक नीच हत्यारा और तबाही का देवता फ़िरोज! जिसे भारतीय इतिहास महान् निर्माता और प्रजा-पालक मानता है।

मुस्लिम गुण्ठों को शस्त्रों से सजाने एवं खिला-पिलाकर तैयार करने के लिए फ़िरोज नगरों को लूटता एवं हिन्दुओं की चमड़ी उधेड़ता छः महीने तक जौनपुर क्षेत्र में ही भटकता रहा। जब वह लखनौटी के पास पहुँचा उस समय तक शम्सुद्दीन मर चुका था और सिकन्दर गद्दी पर था। इकदाला के द्वीप में सिकन्दर ने सुरक्षा का उपाय किया। बंगाल की सेना ने दूसरी बार फ़िरोज की नाक लाल कर दी। उसे इतनी क्षति पहुँची कि घुस से घुट-घुटकर मर जाने के बदले, "सुलतान ने इकदाला दुर्ग में ८,८०,००० टंका का एक ताज और ५०० क्रीमती घोड़े भेजे। सिकन्दर की गद्दी के चारों ओर सात बार परिक्रमा कर दूत मलिक काबुल ने ताज सिकन्दर के सिर पर रख दिया। (यानी जफ़र खाँ और उसके सिरपरस्त फ़िरोजशाह की नाक कटवाकर बापिस भाग आना पड़ा)। सुलतान जौनपुर को और बढ़ा। (यानी छः महीने में ही एक नगर की नींव खुदी और वह बनकर तैयार ही नहीं हो गया, वरन् लोगों से भरे-पूरे एक खुशहाल और सम्पन्न नगर की बराबरी भी करने लगा।

बंगाली अभियान में सबकुछ छोड़कर सुलतान फ़िरोज ने हिन्दू क्षेत्र आज नगर को तोचने का निर्णय किया। "(हिन्दू राज्य होने के कारण) यह एक फलती-फूलती अवस्था में था। अन्न और फल भरपूर थे। इससे (मुस्लिम गुण्ठों की) सेना की तथा पशुओं की सारी आवश्यकताएँ पूरी हो गई और (बंगाली) अभियान की कठिनाइयों से राहत मिल गई।" (पृष्ठ ३१२, अन्व ६, दसियट एवं डाउसन)।

अफ़्रीक़ बतलाता है—"आज नगर (जगन्नाथपुरी) के हिन्दू राजा अदय नगर से बाहर गए हुए थे, अतएव फ़िरोज ने उनके महल पर अधिकार कर लिया। हिन्दू राजाओं को यह परम्परा रही है कि वे दुर्ग में कुछ-न-कुछ नया भाग बनाते-बोड़ते रहते थे। इसलिए वे दुर्ग काफ़ी विशाल हो गए

थे।" इस विवरण को पढ़कर इतिहासकारों की आँखें खुल जानी चाहिए कि खण्डहरों में बिखरे मध्यकालीन महल मुस्लिम-पूर्व के हिन्दू-निर्माण हैं। मुसलमानों ने इन्हें छीनकर मकबरा या मस्जिद बना दिया है। सुलतान की आज्ञा से इस नगर के असुरक्षित हिन्दू नागरिकों को मुस्लिम यातना-यन्त्र में पीसा गया। "कुछ निवासियों को बन्दी बनाया गया, शेष भाग गए। प्रत्येक प्रकार के पशुओं की संख्या इतनी अधिक थी कि कोई भी उनके लिए छीना-झपटी नहीं करता था। भेड़ों को गिना नहीं जा सकता था और प्रत्येक पड़ाव पर अनगिनत भेड़ें काटी जाती थीं।" मुस्लिम गिरोहों ने ११०० वर्ष तक मनुष्यों, पालतु-पशुओं, जानवरों, महलों, नहरों, बागों और खेतों का विनाश कर भारत को दर-दर का भिखारी बना दिया।

भूखे भेड़िये की भाँति फ़िरोज ने जगन्नाथ मन्दिर में प्रवेश किया, जो चार प्रमुख तीर्थों में से एक है और वह महमूद सुबुक्तगीन की नक़ल करते हुए मूर्ति को उखाड़कर, दिल्ली ले आया और उसे एक अपवित्र जगह पर रख दिया।

इस्लामी रीति-रिवाज के अनुसार जगन्नाथ पुरी के पवित्र मन्दिर एवं नगर को अपवित्र एवं नष्ट कर फ़िरोजशाह सागर तट के समीप चिल्का क्षेत्र की ओर बढ़ा। इस शैतान के भय से १ लाख लोगों ने भागकर चिल्का झील में शरण ली थी। काफ़िरों (यानी हिन्दुओं) के खून से सुलतान ने इस द्वीप को रक्त-पूर्ण कर दिया। इस कत्लेआम से बचे लोगों, खास तौर से स्त्रियों को "सिपाहियों में गुलाम के रूप में बाँट दिया गया" (यानी मुस्लिम नौकरों तक ने हिन्दू स्त्रियों के साथ बलात्कार किया है)। "बच्चों वाली, गर्भवती स्त्रियों को हथकड़ियों और बेड़ियों से जकड़ दिया गया और हिन्दुओं का नामोनिशान तक मिटा दिया गया।"

देर से आने वाली हिन्दू सेना ने, मुस्लिम सुलतान की अक़ल दुस्त कर दी। उसे भागना पड़ा। अफ़्रीक़ के वर्णनों से हम सुलतान की हालत का पतलापन नाप सकते हैं कि लखनौटी और जगन्नाथ पुरी में २ वर्ष और ७ महीने व्यतीत करने के बाद फ़िरोज अपने साथ ७३ हाथी ही ला सका था, अगर वह ७३ हाथी भी बढ़ा-बढ़ाकर नहीं लिखे गए हों तो सुलतान ऐसा ताबड़तोड़ भागा कि "मार्गदर्शक मार्ग भूल गए, सेना पहाड़ों पर चढ़ती-

उतरती बककर चूर-चूर हो गई। न रास्ता मिलता था न दाना। छः महीने तक सुलतान का कोई भी समाचार दिल्ली नहीं पहुँचा। छः महीने के बाद जब वह दिल्ली पहुँचा तो उसने खुदा का शुक्रिया अदा किया। इसी समय बड़े इतिहासकार नीच बरनी का इन्तकाल हो गया। "अपने शासन-काल में इतिहासकार नीच बरनी का इन्तकाल हो गया। "अपने शासन-काल के ऐतिहासिक विवरणों के न लिखे जाने से निराश होकर फ़िरोज़शाह ने अपनी रचना की इन पंक्तियों को छूँक-ए-शिकार की दीवारों पर स्वर्ण-अक्षरों में लिखवाया— "मैंने बड़े-बड़े हाथियों का शिकार किया है। मैंने अनेक महान् कार्यों को सम्पन्न किया है," (वही, पृष्ठ ३१६)। इससे मुस्लिम सुलतान एवं उसके चापलूस इतिहासकार की इस जालसाजी का अंशफोड़ हो जाता है कि मुफ्त में नाम कमाने के लिए हिन्दू भवनों पर ही नज़ली नामपट्ट और झूठी कीर्ति-कहानी खोद दी गई हैं।

सब कुछ गँवाकर और नाक कटवाकर, फ़िरोज़ दूसरी बार बंगाल और जगन्नाथपुरी से फटेहाल वापिस लौटा, मगर अफ्रीक लोगों को विश्वास दिलाना चाहता है कि "सुलतान निर्माण-कार्य में ही लगे रहते थे एवं फ़िरोज़ की शासन-कुशलता के कारण लोग प्रसन्न थे। वे फल-फूल रहे थे।"

नवीन-श्रेय-विजय प्रयास में असफल हो फ़िरोज़ ने दूर दौलताबाद में अपनी किस्मत आजमानी चाही। यह दौलताबाद सैकड़ों बार मुस्लिम तबाही का शिकार बना था। फ़िरोज़शाह मुश्किल से ही बयाना तक पहुँचा था कि राजपूतों के गुरिल्ला युद्ध से परत और त्रस्त होकर वह वापिस दिल्ली भाग आया। अफ्रीक की मूर्खता से मुस्लिम झूठ का एक पर्दा और साफ होता है जब वह दौलताबाद की कूच को "शिकार-अभियान" कहता है। 'नकटे इतिहासकार' अबुल फ़जल और उसके साथियों ने अकबर की तूटमार को उसी नाम से सम्बोधित किया है। फिर भी हमारे सीधे-सादे इतिहासकार नहीं समझ पाते कि "शिकार" का मुसलमानी अर्थ है— "हिन्दू मिर-तोड़, हिन्दू मौल-हरण अभियान।"

दक्षिण का पथ बन्द पाकर फ़िरोज़ १३६१ ई० में पंजाब के नगरकोट की ओर मुड़ा। छः महीने के घिराव के बाद विख्यात ज्वालामुखी मन्दिर की प्रतिमा के जाने मिर लूकाकर, "नगरकोट के राय को छत्र एवं सम्मान-शील वसलादि दे", किसी प्रकार वह जान बचाकर भाग सका।

मुहम्मद तुगलक की तबाही के बाद नगरकोट (काँगड़ा) के हिन्दू

शासकों ने अपनी हिन्दू स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त कर ली थी। नगरकोट के सम्पन्न ज्वालामुखी मन्दिर को देख-देखकर मुस्लिम चोरों की आँखें चमकने लगती थीं। हम लोगों को बतलाया जाता है कि इस कूच के दौरान फ़िरोज़शाह एक स्थान पर एक दुर्ग एवं एक नहर बनाने के लिए ठहरा था। यह आठवाँ आश्चर्य है कि आर० सी० मजूमदार, डा० ईश्वरीप्रसाद, श्री एस० आर० शर्मा, सर वेस्सले हेग एवं मोरले जैसे इतिहासकारों ने इस कल्पित बकवास पर विश्वास कर लिया है कि फ़िरोज़शाह जैसा शैतान एक महान् विद्वान् था, कि वह एक प्रजा-पालक और प्रजावत्सल शासक था, कि समय-समय पर प्रसारित उसकी आज्ञाएँ उसे सीधा, सच्चा, महान् और कुलीन प्रमाणित करती हैं। वह एक निर्माता था। ये सभी दावे सफ़ेद झूठ हैं।

सुलतान या बादशाह का शिकार पर जाना एक ऐसा घागा है, जिसमें सारे मुस्लिम इतिहास गुंथे हुए हैं। यह भी एक प्रकार की बकवास है। इस शिकार के बहाने वे साधारण जनता एवं शक्तिशाली हिन्दू राज्यों की आँखों में धूल झाँकते थे। हमारे आधुनिक इतिहासकारों ने इस बहाने का शाब्दिक अर्थ ले लिया है। साधारण-सी समझ का कोई भी आदमी इस दावे के पीछे छिपे धोखे और जालसाजी को आसानी से भाँप सकता है कि अपनी डाका डालने की योजना में फ़िरोज़शाह एक नहर एवं एक दुर्ग बनाने रुक गया? कोई भी इतिहासकार यह नहीं पूछता कि समय, सम्पत्ति और प्रेरणा कहाँ थी? इससे समझ लेना चाहिए कि जीवन-भर फ़िरोज़शाह ने ईंट के ऊपर ईंट तक नहीं रखी है। उसके भवन-निर्माता होने के सारे दावे सरासर झूठे हैं। जिन नहरों, नगरों और महलों के बनाने का वह दावा करता है वे सभी नगर, नहर और महल उसके जन्म के पहले से ही मौजूद थे। जिन मस्जिदों के बनाने का वह दावा करता है वे सभी हिन्दू मन्दिर थे, जिन्हें मुसलमानी उपयोग के लिए जलत कर लिया गया था।

इस हृदयहीन मूर्तिभंजक एवं कला-विध्वंसक ने जीवन-भर जो कुछ किया है उसका एक नमूना मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता के शब्दों में प्रस्तुत है— "सुलतान ने ज्वालामुखी मन्दिर की प्रतिमा को चूर-चूर कर (नगर में) कटी गायों के मांस में मिला, इस मिश्रण को (नगर के) सभी बाह्यणों की नाक के पास बाँध, प्रधान प्रतिमा को उपहार-स्वरूप मदीना भेज दिया।" क्या ऐसा क्रूर-भोगी शैतान किसी मानवीय भावना से पिघल

सकता है? क्या ऐसा विध्वंसक कभी निर्माता हो सकता है? हमारे सऊदी अरेबिया के इतावास को यह आज्ञा दी जानी चाहिए कि वह अरबी सरकार से ज्वालामुखी की प्रतिमा-प्राप्ति का प्रयास करे।

१३८० ई० में रोहिलखंड के कटेहर शासक के विरुद्ध उसने कूच का नयावा बजाया। कटेहर-शासक ने एक ही अपट्टे में वदायूँ के हर्ता मुस्लिम शासक सैयद मुहम्मद को उसके दो भाइयों के साथ काट गिराया था। राज्य की सीमा पर पहुँचकर सुलतान ने हिन्दू-हत्या-यन्त्र का चक्र घुमा दिया। "कत्लेआम इतना सामूहिक और इतना भेद-भावहीन रहा कि मृत सैन्यों को इन्हों को खुद इसे रोकने आना पड़ा।" (पृष्ठ ६६, 'दिल्ली मुलताने' नामक भारतीय जनता का इतिहास एवं सभ्यता क्रम की भारतीय विद्या भवन प्रकाशन की पुस्तक का छठा ग्रन्थ) एक बार फिर फ़िरोज की नाक कटी। फ़िरोजशाह ने हजारों की हत्या कर दी, २३,००० कृषकों, ग्रामिकों, कुँदों और बच्चों को बन्दी बना लिया। मगर वीर हिन्दू डटे रहे।

इस फ़िरोजशाह के बारे में सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि उसके हृदय में राज्य-विस्तार की आग धधकती रहती थी। उसने अपनी खूनी मुस्लिम तलवार को चारों ओर चमकाया था मगर हर दिशा से उसे हारकर, सभी सामान छोड़कर और सारी सेना कटवा-पिटवाकर दुम दवाकर ताबड़तोड़ भागना पड़ा था। इस सच्चाई को झूठे वर्णनों के केफ़न से ढकने का प्रयास किया गया है, जैसे अन्तिम समय में रोती औरतों को देखकर सुलतान के दरिया दिल का पिघल जाना, आदि-आदि।

फ़िरोज की लोभी आँखें अब यद्वा पर गड़ गईं। "जब कभी वह इस स्थान के बारे में वर्णन करता था तो वह अपनी दाढ़ी सहला-सहलाकर कहता था कि धिक्कार है मुहम्मद तुग़लक़ को कि वह इसे नहीं जीत सका।" फ़िरोज ने दिल्ली के कब्रिस्तानों का चक्कर लगाया, मृतकों के प्रेतों को जगाया ताकि वे यद्वा को भी कब्रिस्तान बनाने में सहायक हो सकें। "उस समय यद्वा के स्वामी राजा उनर के भाई जाम और उनका भ्रातृ-पुत्र (भतीजा) बबीनिया था। यद्वा की सैन्य-शक्ति के सामने मुस्लिम लुटेरा गिरोह देकार था। फ़िरोज एक बार फिर उजड़ गया।" खाने-दाने के लाले पर गये। थोड़ी में सशमक रोग फैल गया, मुष्किल से चौथाई ही बच पाये। बिजली-नी टूटती कट्टा-सैन्य-शक्ति के सामने से मुस्लिम लुटेरों का

गिरोह उल्टे पैर भाग खड़ा हुआ। रगेद-रगेदकर भागती सेना के सारे सामान छीन लिए गये।

यहाँ तक कि अफ़्रीक़ जैसे जूठे दलाल को भी स्वीकार करना पड़ा, "विजयी (?) होकर जब सुलतान पीछे हटे तो अनाज के लाले पड़ने लगे। इसके दाम दिन-दूने होने लगे। एक सेर का मूल्य एक और दो टंका हो गया और इस दाम पर भी अनाज नहीं मिलता था। चलने में असमर्थ नंगे और भूखे लोग जीवन की आशा त्याग बैठे। वे सड़ा मांस और कच्चा चमड़ा भी निगल गये। भूख से व्याकुल हो लोग पशु की खाल पकाकर खाने लगे। चारों ओर अकाल छा गया। सभी आँखों से मोत झाँक रही थी। सेना में एक भी घोड़ा नहीं बचा। खान और मलिकों को दुर्गम मार्ग पर पैदल ही चलना पड़ा। मार्ग-दर्शकों ने उन्हें जान-बूझकर कच्छ के खारे रन में भटका दिया। सुलतान ने कुछ मार्ग-दर्शकों का सिर कलम करवा दिया। किसी प्रकार खारे क्षेत्र से बचकर निकले तो रेगिस्तान में आ फँसे, जहाँ किसी भी पक्षी ने न तो कभी पर ही फड़फड़ाया था, न घास का तिनका ही दिखाई देता था। चार संकट उन लोगों के सिर पर सवार थे—दुर्भिक्ष, पैदल-यात्रा, रेगिस्तान की भयंकरता और प्रिय-जनों का वियोग।"

खूनी सुलतान और उसके हत्यारे गिरोह का कोई भी समाचार छः महीने तक दिल्ली नहीं पहुँचा। लुटेरी मुस्लिम सेना को मृत्यु एवं विनाश में धकेल, वीर और देशभक्त मार्ग-दर्शकों ने एक बार फिर अपना उत्तर-दायित्व पूर्णरूपेण निभाया।

दिल्ली की देखभाल का अधिकार एक दरबारी खान-ए-जहान के हाथों में था। सुलतान फ़िरोज एवं उसके गिरोह को शून्य में विलीन होते देख वह बड़ा प्रसन्न हुआ। सुलतान का सारा खजाना वह एक अपहृत हिन्दू महल में, जिसमें वह रहता था, उठा लाया।

थकी और भूखी सेना से परेशान, फटेहाल फ़िरोज अचानक गुजरात में आ निकला। भूखे गिद्धों की भाँति वे गुजरात की उपजाऊ ज़मीन पर टूट पड़े। सुलतान गुजरात के लुटेरे मुस्लिम शासक अमीर हुसैन से झगड़ बैठा। सुलतान की भूखी सेना की सहायता के लिए दौड़कर न आने का आरोप उसपर था। क्षेत्र को तबाह कर सुलतान हिन्दुओं को सता और मुसलमान बना अपनी सेना बढ़ाने में लीन हो गया। पिछली कठिनाइयों के कारण

सेना में असन्तोष और विरोध भड़क उठा। अफ्रीक लोगों को बतलाता है—“सुलतान फ़िरोज़ ने (गुजरात की लूट से प्राप्त) सारी सम्पत्ति सेना को खेबरने एवं सैनिकों को वेतन देने में खर्च कर दी ताकि वह थड़ा पर एक बार फिर चढ़ाई कर सके।” इसपर भी गुजरात की लूट काफ़ी नहीं थी। उसने आज्ञा भेजी कि दिल्ली क्षेत्र के सारे हिन्दुओं को लूट-लूटकर सारा धन उसके पास भेज दिया जाए, ताकि वह थड़ा के हिन्दू-क्षेत्र को कुचल घोर मसल सके।

फ़िरोज़ दुविधा में था। उस सम्पन्न क्षेत्र की चर्बी उतार, उसकी सेना को खिलाने में अधिक उपयुक्त कौन-सा गुण्डा होगा? जफ़र खाँ या मलिक नायब बरबक? उसने कुरान को जज बनाया। अफ्रीक बतलाते हैं—“बिना कुरान से पूछे सुलतान कभी भी कोई काम नहीं करते थे।” कुरान ने जफ़र खाँ के पक्ष में फैसला दिया।

फ़िरोज़ ने थड़ा की ओर प्रस्थान किया ही था कि उसकी फटी बिवाई में एक काँटा और घुस गया। जिन लोगों ने पहले अभियान में भाग लिया था वे दूसरी बार वीर राजपूतों से भिड़ने का साहस नहीं जुटा सके। “अपना-अपना सामान ले वे अपने घर चले गये।” इसे रोकने के लिए सुलतान ने पहरा कड़ा कर दिया। जो पकड़े गये उन्हें मुस्लिम यन्त्रणा-यन्त्र में पीसकर मार दिया गया। दिल्ली लौटने वाले को बन्दी बना लिया गया और कुछ लोगों का एक-दो दिन तक बाजारों में प्रदर्शन होता रहा।

दूसरी बार जब फ़िरोज़ थड़ा को तबाह करने लौटा तो अफ्रीक बतलाता है कि हिन्दू बड़े गौरव से याद करते थे कि किस प्रकार उन्होंने १३५१ ई० में मुहम्मद को धूल चटा दी थी और किस प्रकार फ़िरोज़ दुम दबाए जान लेकर भागा था।

सिन्ध के हिन्दू मुस्लिम भेड़ियों को अपना पसीना पिलाना नहीं चाहते थे। उन्होंने सारी फसल जला दी और सिन्धु के उस पार चले गये। अनाज की खोज में सुलतान की सेना हर घर को उलटने-पलटने लगी। प्रायः ४००० लोग सिन्धु पार नहीं कर सके थे। उन सबको बन्दी बनाकर यातना यन्त्र में डाल दिया गया।

विरोधी-क्षेत्र में अधिक दिन तक ठहरना खतरनाक था। अतएव सुलतान की सेना ने नदी पार करने की जी तोड़ कोशिश की। मगर थड़ा

की जलसेना ने पानी में ही मुस्लिम लुटेरों की कब्र बना दी। अपना नक़्दा चेहरा दिल्ली में न दिखाने से बचने के लिए सुलतान ने मुस्लिम लुटेरों की सहायक सेना भेजने का समाचार दिल्ली भेजा। लम्बी बीमगी होकर हुए नक़्दा अफ्रीक बतलाता है कि सुलतान ने निर्णय किया कि “मेरी सेना यहीं रहेगी और हम लोग यहाँ एक बड़ा नगर बनाएंगे।”

नाक-भौह चढ़ाने और कोड़े फटकारने के बाद भी दिल्ली से कोई सहायक सेना नहीं आ सकी। इसलिए उसने बदायूँ, कन्नौज, सन्दिता, अवध, जौनपुर, बिहार, चन्देरी, धार, दोआब, समाना, दीपलपुर, मुलतान, लाहौर आदि प्रत्येक मुस्लिम शासित-क्षेत्र को थड़ा अभियान के लिए हिन्दू क्षेत्रों को लूटकर धन और नये मुसलमान भेजने का आदेश दिया ताकि मुस्लिम सुलतान फ़िरोज़ एक नई नाक लगाकर अपना चेहरा दिल्ली में दिखाने योग्य बना सके।

मगर जबतक ये गरीब, भयभीत, आतंकित, पीड़ित और घेरे-बटोरे नये मुसलमान थड़ा पहुँचे, अल्लाह ने सुलतान के सिर पर संकट का एक नया घड़ा फोड़ दिया—अकाल की काली छाया उसे घेरकर सड़ी हो गई। हताश हो सुलतान ने जाम और बबीनिया को बहला-फुसला, झूठी सन्धि वार्ता के जाल में फाँसकर बन्दी बना लिया। दिल्ली प्रस्थान करने के समय फ़िरोज़ ने इन दोनों को मजबूर किया कि वे दोनों अपने-अपने हरमों को भी सुलतान के तम्बू में आ मिलने का समाचार भेज दें। इस प्रकार फ़िरोज़ ने किसी प्रकार नाक लगा ली और दो राजकीय बन्दियों की पताका फहराता दिल्ली वापिस लौटा। इस प्रकार थड़ा की अभेद्य दीवारों से सिर टकराकर दूसरी बार हारकर फ़िरोज़ दिल्ली लौट आया। इसके पहले भी दो मुस्लिम सैतान थड़ा की दीवार से सिर फोड़कर लौटे थे, एक अलाउद्दीन खिल्जी और दूसरा मुहम्मद तुगलक।

फ़िरोज़शाह का शासन लगातार हार की एक लम्बी भाग-दौड़ है। हिन्दू धन-सम्पत्ति की लगातार लूट और बरबादी की दुःखभरी कहानी है।

खुशामदी टट्टू अफ्रीक के अतिरिक्त फ़िरोज़शाह ने अपना कारनामा खुद भी लिखा है। उसके मुस्लिम पूर्वज जो सजाएँ लोगों को देते थे, उनका वर्णन फ़िरोज़शाह ने किया है—“हाथ-पैर और नाक-कान काट फेंकना आँखें निकाल लेना, गर्म-गर्म पियलता शीशा और राँगा गले में उँडेल देना।

मुसल से हाथ-पैरों की हड्डियों को कुचल देना, आग में जिन्दा जला देना ; हाथ, पैर और छाती में लोहे की कीलें ठोक देना ; नसों को कटवा देना, भारी से पीरकर दो टुकड़े कर देना । ये और इनसे मिलती-जुलती पीड़ाएँ दी जाती थीं ।" (वही, पृष्ठ ३७५) ।

फिरोज भी इन यातनाओं को काम में लाता था । यह बात उसीके उदाहरणों से सत्य सिद्ध हो जाती है—

(१) शियाओं की एक शाखा अपना धर्म त्याग बैठी । "मैंने सभी को एकट्ठा कर सजाएँ दी । सरे आम उनकी किताबों को जला, इस शाखा को नेस्तोनाबूद कर दिया ।"

(२) नास्तिकों की एक शाखा थी । मैंने बहुत लोगों के सिर काट, बन्दी बना, बाकी को निर्वासित कर दिया ।

(३) एक शाखा का नेता अहमद बहारी था । मैंने बहारी और उसके एक अनुयायी को तहखाने में जंजीरों से जकड़ दिया ।

(४) रुकनुद्दीन नामक एक आदमी अपने को महदी कहता था । इस अहम के डोह एवं दुष्टता को मैंने जनता में विख्यात कर दिया । लोगों ने उसे उसके कुछ अनुचरों एवं अनुयायियों के साथ मार डाला । लोग उसपर झपट पड़े । उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए और हड्डियों को चूर-चूर कर बिखेर दिया ।

(५) ऐन सहू का एक शिष्य गुजरात में अपने आपको शेख कहता था । मैंने उसे सजा देकर उसकी किताबों को जलवा दिया ।

(६) मैंने हिन्दू मन्दिरों को नष्ट कर उनके नेताओं की हत्या कर दी । बाड़ों को कोढ़ों से पीट-पीटकर सजाएँ दीं । मलूह गाँव में एक कुण्ड था । वहाँ एक मन्दिर था, जहाँ हिन्दू मर्द, औरतें और बच्चे पूजा करने जाते थे । कुछ (नये) मुसलमान भी वहाँ जाते थे । मेले के दिन मैंने नेताओं और शरारतों का मिर कटवा दिया । मैंने मन्दिर को नष्ट कर वहाँ मस्जिद बनवा दी (यानि फेंककर उस मकान को मस्जिद में परिवर्तित कर दिया) ।

(७) मुझे समाचार मिला कि सलिहपुर गाँव में हिन्दुओं ने एक नया मन्दिर बना लिया है । इस यातना भूल को रोकने एवं मन्दिर को नष्ट करने के लिए मैंने कुछ आदमी भेजे ।

(८) कुछ हिन्दुओं ने कोहाना गाँव में एक नया मन्दिर बना लिया था । मूर्ति-पूजक वहाँ एकत्रित होकर पूजा किया करते थे । उन्हें पकड़कर मेरे सामने पेश किया गया । मैंने आज्ञा दी कि उनकी विरोधी प्रवृत्तियों एवं दुष्टताओं को जनता में घोषित कर दिया जाए और राज-द्वार के सामने उन्हें कत्ल कर दिया जाए । उनकी पुस्तकों एवं प्रतिमाओं को खुले-आम जला देने की आज्ञा भी मैंने दी । मैंने अपनी काफिर प्रजा को इस्लाम ग्रहण करने की प्रेरणाएँ (यानी पीड़ाएँ) भी दी । मैंने घोषित किया कि धर्म-परिवर्तनकारियों को कर से मुक्त कर दिया जाएगा । अनेक हिन्दू मुसलमान बन गए ।

मुसलमान भाइयों को फिरोजशाह के इन शब्दों को ध्यान से पढ़ लेना चाहिए और इस गलत धारणा को त्याग देना चाहिए कि हिन्दुस्तान एवं पाकिस्तान के धर्म-परिवर्तित १५ करोड़ मुसलमानों के पूर्वजों ने सिर्फ मौज और तरंग में आकर इस्लाम धर्म ग्रहण किया था । हमारी सरकार को भी फिरोजशाह के "कुलीन" कारनामों से शिक्षा ग्रहण कर "कर-मुक्ति" का उल्टा मार्ग अपना लेना चाहिए ताकि इस्लाम ने जो बुराई की रस्सी हिन्दुस्तान के चारों ओर लपेट दी है वह खुल जाए ।

जब हमारी वर्तमान सरकार के पूर्वज फिरोज-सरकार के शासन की हमारे इतिहासों में "कुलीन" शासन माना जाता है तो हमारी सरकार इस "कुलीन" शासक का अनुकरण कर जिजिया का उलटा रूप मुसलमानों पर क्यों नहीं चला देती ताकि उन्हें अपने "सह-धर्मों पूर्वजों" की दवा के स्वाद का पता भी चले और हमारी अर्थ-व्यवस्था भी पुष्ट हो जाय क्योंकि हिन्दुओं को सिर्फ भारी करों के बोझ के नीचे कराहना ही नहीं पड़ा था, चरन् ११०० वर्ष तक उनकी धन-सम्पत्ति को लूट-लूट कर १/५ एवं ४/५ के आधार पर मुस्लिम अत्याचारियों और उनके गुर्गों के बीच बाँटा भी गया था । फिरोजशाह एवं अकबर की शैतानियत और हेवानियत में कोई फर्क नहीं था । इसलिए हम फिरोजशाह को अकबर का पूर्व रूप भी कह सकते हैं ।

उसकी स्वलिखित जीवनी "फतूहात-ए-फिरोजशाही" (यानी फिरोज-शाह की दिग्विजय) ही फिरोजशाह को नम्बरी झूठा साबित करने के लिए

काफ़ी है। हमने ऊपर देखा है कि वह अपने प्रत्येक अभियान एवं आक्रमण में बुरी तरह हारा है और "बिजयी होकर पीछे हटा" (?) है।

मुसलमानों की अपनी खास खूबी के अनुसार, फ़िरोज़शाह ने उन सभी लोगों से, जिन्हें पूर्ववर्ती शासक मुहम्मद तुग़लक़ से असंतोष और रोष था, मार-मारकर यह मुक्ति-नामा लिखा लिया कि उन्हें पूरा मुआवज़ा मिल गया है और अब उन्हें मुहम्मद तुग़लक़ से कोई शिकायत नहीं है। इन सभी मुक्ति-पत्रों को फ़िरोज़ ने मुहम्मद तुग़लक़ के साथ कब्र में गाड़ दिया। मतलब था फ़िरोज़शाह के दुराचारों से असंतोष भड़कने न जाए।

बूढ़े होने के साथ ही फ़िरोज़शाह के हाथ से शासन सरकने लगा। उसका बज़ीरे-बाज़म मक़बूल मर चुका था और उसका पुत्र ख़ान ज़हान बज़ोर था। फ़िरोज़शाह के आचारा पुत्र मुहम्मद ने ख़ान ज़हान की हत्या कर १३८७ ई० में अपनी सुलतानी का डंका पीट दिया। मगर उसकी आज़ाएँ चली नहीं, फ़िरोज़शाह ही सुलतान बना रहा। इसके बाद ही ३७ वर्ष तक शासन कर ७६ वर्ष की उम्र में फ़िरोज़शाह १३८८ ई० में मर गया। फ़िरोज़शाह हिन्दू माँ का पुत्र था और उसका बज़ीर मक़बूल एक पूर्ण हिन्दू ही था, जिसे मुसलमान बनाया गया था। जो क्रयामत इन पशुओं ने बरपा की है वह इस्लामी धर्म-परिवर्तन की पाशविकता का एक नमूना है।

भारतीय इतिहासों में फ़िरोज़शाह को आरती उतारी गई है। मगर उसके शासनकाल एवं उसके स्वलिखित विवरण का गम्भीर अध्ययन साबित करता है कि वह एक भयंकर मुस्लिम रक्त-पिशाच था, एक खतरनाक आदमख़ोर था, जिसने ३७ वर्ष तक हिन्दुस्तान के धन और जन का शिकार किया था।

(मदर इण्डिया, जनवरी, १९६८)

: १६ :

तैमूर लंग

ऐसा मालूम होता है कि मुस्लिम खानदानों के तारतम्य ने हिन्दुस्तान का जो खून बहाया था, वह काफ़ी नहीं था। इसीलिए उनके हजार-वर्षीय शासनकाल में तैमूर लंग, नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली जैसे स्पेशल आतंककारी हिन्दुस्तान में आए और अपनी तलवार से इसके घाव को और चौड़ा कर दिया ताकि खून का प्रवाह कभी मन्द न हो। वास्तव में ये इस्लामी प्लेग थे। सिन्धु के उस पार से आकर इन लोगों ने हिन्दुस्तान की हरी-भरी खुशहाल ज़मीन को तहस-नहस कर डाला। तूफ़ान का तेज़ झोंका आया और चला गया, मगर अपने पीछे खून का एक दलदल छोड़ गया। साथ ही हिन्दुस्तान को चाटने-खाने वाले अपने सहधर्मियों को इन इस्लामी राक्षसों ने यह बतला दिया कि अन्धड़ का जोश क्या कर सकता है। धर्मान्ध मुस्लिम शासक जिस काम को १५ वर्ष में पूरा करते थे, इन लोगों ने उसे १५ दिन में ही पूरा कर दिखाया।

१४वीं शताब्दी के अन्त में हिन्दुस्तान पर वज्र की तरह टूटने वाले इस्लामी प्रकोपों में एक प्रकोप था—जन्मजात राक्षस तैमूर लंग (तमर-लेग या सिर्फ़ तैमूर)। हैजे की तरह हिन्दुस्तान की हत्या करने के लिए गद्दी पर बैठने वाले अन्तिम मुसलमान खानदान (मुग़ल खानदान) की रगों में इसी तैमूर का पाशविक खून भी मिला हुआ था।

उम समय चारों ओर उथल-पुथल मची हुई थी। अराजकता फैली हुई थी। हिन्दुस्तान का रंगमंच मुस्लिम शैतानों के पैशाचिक नाच के लिए एकदम तैयार था, सिर्फ़ परदे के उठने की देर थी। मुस्लिम शैतान फ़िरोज़शाह तुग़लक़, जिसको भ्रम से लोगों ने देवता, विद्वान्, आदिष्कर्ता, उद्धारक और न जाने क्या-क्या बना दिया, १३८८ ई० में मर चुका था।

उसकी शासक प्रतिमा का भी जवाब नहीं था। उसने एक मनोछा मिक्सचर तैयार किया था। पहले उसने नगरकोट के हिन्दू मन्दिर ज्वाला पूखी की प्रतिमा को चूर-चूर किया फिर मन्दिर की गायों को काटकर उनका बीमा बनाया। उसके बाद इस प्रतिमा-चूरन एवं गोमांस को मिलाकर उसका एक मिक्सचर तैयार हुआ। इस मिक्सचर को एक थैली में डाल कर उसने इसे ब्राह्मणों की नाक पर बांध दिया ताकि वे सूँघ सकें और पोहों की भाँति खा भी सकें।

भारत के अन्य मुस्लिम शासकों की भाँति इस सुलतान ने भी भारत को दोबारा बनाने का पूर्ण प्रयास किया था। फलतः इसकी मृत्यु के साथ ही सुलतानी-कुर्सी के लिए एक हंगामा-सा खड़ा हो गया। एक बार तो इस के इब्राहिम बेटे ने अपने बड़े बाप के काँपते हाथों से गद्दी छीन भी ली थी लेकिन मजबूर होकर वापिस करनी पड़ी थी। इस घटना के बाद फ़िरोज़ शाह अपने शालिक के पास चला गया। उसका बड़ा बेटा फ़तह खाँ अपने बाप से पहले ही मर चुका था। अतएव फ़तह खाँ का बेटा गिया-सुदीन गद्दी पर बैठा। वह केवल ५ महीने राज्य कर सका। बाद में मुस्लिम रिवाज के अनुसार उसके भाइयों ने उसकी हत्या कर दी तथा उसके चाचा और फ़िरोज़ के बेटे मुहम्मद ने गद्दी भूषट ली। इसने पहले भी एक बार बाप की गद्दी से गिराने की कोशिश की थी। १३६० ई० से १३६४ ई० तक वह गद्दी पर जमा रहा और मुहम्मद तुग़लक़ द्वितीय के नाम से कुम्भास हुआ। सारे शासन काल में वीर राजपूत और बागी मुस्लिम ज़मींदार उसको घेँगूठा दिखाते रहे।

परेशान और तंग होकर गुस्से में सुलतान ने हजारों हिन्दुओं को घास-फूस की तरह कटवा डाला, जिन्हें उसके पिता ने गुलाम, मजदूर और नौकर बनाकर रखा था। इस जानवर का यह जंगली काम अपने खानदान के अनुकूल ही था। तर्क-शास्त्र की परिभाषा के अनुसार मनुष्य एक विवेक-शील पशु है। मगर फ़िरोज़शाह आदि मुसलमानों को कुलीन और महान् कहने वाले इतिहासकारों में, मालूम पड़ता है, विवेक नाम की कोई चीज़ है ही नहीं। मध्ययुग का प्रत्येक मुसलमान आतंक, यातना, हत्या और संहार का पुत्र था। ऐसे कूर-भोगियों और हत्यारों की कुलीन और महान् कहना बुद्धि की विकृति ही नहीं है, वैज्ञानिक मूर्खता की चरमसीमा भी है।

१३६४ ई० में मुहम्मद मर गया। उसका बेटा हुमायूँ उर्फ़ सिकन्दर गद्दी पर बैठा। शीघ्र ही सिकन्दर कपट और माया के मुस्लिम खेल का शिकार हो गया। १३६४ ई० में सन्देहात्मक परिस्थिति में उसकी मृत्यु हो गई। कदम-कदम पर फूट और विद्रोह का राज्य था। बंगाल, लाहौर, बाकी पंजाब, गुजरात, मालवा आदि क्षेत्र दिल्ली की सुलतानी से नाता तोड़कर स्वतंत्र हो गये थे। मुहम्मद पुरानी दिल्ली में दरबार करता था तो उसका भाई नुसरत शाह दिल्ली के ही एक उप-नगर में अपना दूसरा दरबार चलाता था। मगर वे दोनों भी विरोधी मुस्लिम लीडरों और गुण्डों के हाथों की कठपुतली थे।

ठीक इसी समय १३६८ ई० में हिन्दुस्तान पर तैमूर का प्रकोप प्लेग बनकर फैल गया। अपने जहन्नुमी-नाच से उसने सारे उत्तर भारत को बरबाद ही नहीं किया बल्कि अपने पीछे वह छोड़ गया—धर्मान्तरितों की भूखी माँद, कटी-सड़ी गायें, मस्जिद और मकबरों में बदले हुए मन्दिर तथा कुचली-मसली लाशें। गर्म-गर्म लाल लोहों, हसुओं, चिमटों तथा तलबारों से लोगों को काटने-खाने वाले ये लोग इस्लाम के स्व-नियुक्त फ़ौ-स्टा-इल अत्याचार की भरती के अफसर थे। असंख्य हिन्दुओं को सता-सताकर इन्होंने मुसलमान बनाया था। आज के करोड़ों मुसलमान अपनी इस्लामी परम्परा पर घमंड करते हैं। मगर इसका श्रेय कासिम, तैमूर, अलप्त-गीन, सुबुक्तगीन, बाबर और अकबर को है। इन लोगों ने हजार वर्षों तक इनके हिन्दू बाप-दादों पर बीभत्स और खूनी क्रूरताओं से यातनाओं की वर्षा की थी।

कूर मुस्लिम परिवार में जन्मा तैमूर एक तुर्क था। इसका पिता कुछ क्षेत्र का ज़मींदार था। इस नगर का नाम श्रीराम के पुत्र कुश के नाम पर रखा गया था। यह उन दिनों की याद दिलाता है, जब यहाँ भारतीय क्षत्रियों का राज्य था। कुछ लोग दावा करते हैं कि तैमूर का पिता लुटेरे बंगेज के वंश का था। दूसरे लोग यह दावा करते हैं कि वह एक गरीब चरवाहा था। यही तैमूर आगे चलकर एक आदमखोर मानव-हत्यारे के रूप में विकसित हुआ। मानव-हत्या मध्यकालीन मुस्लिम-संसार में घनी बनने का अनिवार्य नुस्खा था। तैमूर के पिता अमीर तुरघाई थे और माता तकिना ख़ातून। होनहार बिरबान् के होत चीकने पात के अनुसार

बचपनमें ही तैमूर में खनी बनने के लक्षण पैदा होने लगे थे। बड़ी जल्दी वह एक वैश्विक नर-हत्यारे के रूप में विकसित हो गया। अपने खानदानी धर्म कसाईगिरी में उसने अपने बाप को भी मात दे दी। अपनी बेजोड़ गिरोह बन्दी से तैमूर कई क्षेत्रीय अभियानों में निखर उठा और २५ वर्ष की कच्ची उमर में ही वह तुर्किस्तान का सुलतान बन बैठा।

लोग उससे बहुत घृणा करते थे। शीघ्र ही उसे अपने नये प्राप्त राज्य को छोड़कर मध्य-पूर्व के जंगलों में भाग जाना पड़ा—अपने भाई-बन्द सर्वात् जंगली जावबरो के सुखद साहचर्य में रहने के लिए।

साहजनी के अपने पेशे में वह कट्टर था। अपने निशाचरी कारनामों की सोचा के भीतर घाने वाले सारे घरों को उसने आतंकित कर रखा था। गुण्डों का कोई-न-कोई गिरोह हमेशा उसके पास तैयार रहता था। १३६६ ई० में उसने समरकन्द को जीता। एक बार फिर वह शासक हो गया।

इस नये शाही दबदबे की छाड़ में उसने खुरासान के शासक अमीर हुसैन पर छोबे से चढ़ाई कर दी और उसे मार डाला। १३७० ई० के अर्धत में उसके राजा होने की हुगहुगी बल्ख में भी पिट गई। बल्ख संस्कृत शब्द बाह्लीक का अपभ्रंश है। प्राचीन भारतीय साहित्य में इस देश का नाम बार-बार आया है। दिल्ली की कुतुब मीनार के समीप एक विज्ञात कीह-स्तम्भ है। इसपर खुदा हुआ संस्कृत का लेख बतलाता है कि किस प्रकार प्राचीन भारतीय राजा ने बाह्लीक को जीता था। मुसलमानों ने जानबूझकर प्राचीन अफगानिस्तान, सऊदी अरब, मिस्र, लेबनान, सीरिया, ईरान, इराक, बल्ख, खुरासान और तुर्की के भारतीय जिह्मों को पोंछ डाला है। यहाँ तक कि वहाँ की कीड़े जैसी अरबी लिखावट की अपेक्षाकृत एक आधुनिक चिप्पी है, क्योंकि अरब और तुर्की की प्राचीन भाषा संस्कृत-ध्वनि और संस्कृत-अक्षरों पर ही आधारित थी।

अमीर हुसैन पर तैमूर के पैशाचिक आक्रमण का अनुमान हम इस बात से लगा सकते हैं कि अमीर हुसैन तैमूर का साला था। हृदय से इस्लामी रीति-नीति को मानते हुए तैमूर ने अपने साले का खून कर डाला। उस समय अगर कोई केसपीयर होता तो वह कहता—“घोखेबाजी ! तेरा नाम मुसलमान है।”

नयी प्राप्त सम्पत्ति की शक्ति से भरपूर कपट का सच्चाई से पालन करते हुए तैमूर ने घास-पास के क्षेत्रों की लूट जारी रखी। एक-एक कर वह कंधार, ईरान और इराक का दमन करता गया। अब उसके मन में भी दुनिया को जीतने की इस्लामी तमन्ना पनपने लगी। इस तमन्ना को दाना-पानी देने के लिए उसने सामूहिक नर-संहार की फसल काटी। अपने ६६ वर्ष के जीवन-काल में तैमूर ३५ बड़े अभियानों पर निकला था और उसने पूर्व में हरिद्वार से लेकर पश्चिम में कैरो तक के क्षेत्रों को रौंद डाला था।

तैमूर के लिए काला अक्षर भैंस बराबर था। उसके जंगली कारनामों को उसके अनेक चापलूसों ने लिखा है, जो उसकी खूनी तलवार के नीचे कांपते रहते थे। उसका जीवन-चरित्र मुलफुजद-ए-तैमूरी व तुजक-ए-तैमूरी के नाम से विख्यात हैं। कल्पना की उड़ानों से भरपूर सभी मुस्लिम इतिहासों के समान इस इतिहास के भी अनेक संस्करण मिलते हैं। सर इलियट इन सभी को “एक घृष्ट और मजेदार घोखा” मानते हैं।

तैमूर के खूनी शासन में घटनाओं का रिकार्ड किस प्रकार रखा जाता था, किस प्रकार तैमूरी दरबार में उन घटनाओं के लेख की प्रामाणिकता तथा प्रभाव की परीक्षा होती थी, उसका वर्णन जफरनामा (विजय-गाथा) के लेखक शरफुद्दीन यज्दी ने तैमूर की मौत के ३० वर्ष के बाद किया है।

यज्दी बतलाता है कि दरबार में मँडराने वाले लोगों और चापलूसों ने इन वर्णनों को लिखा है। इन लेखों को “शाही मौजूदगी में पेश किया जाता था और बादशाह को पढ़कर सुनाया जाता था ताकि उसकी मंजूरी लेकर उसको सही किया जा सके।” पाठकों को यह बतलाने की जरूरत नहीं है कि जिन्दगी भर हजारों आदमियों की हत्या करने वाला पापी राक्षस तैमूर बड़ी आसानी से सच्चाई का गला भी घोट सकता था। अतएव उसका यह तथाकथित जीवन-चरित्र कल्पना और कोरी बकवास का रंगीन खूजाना हो गया है। इस जंगली जानवर के कामों और प्रेरणाओं की परीक्षा तथा तुलना करते हुए इन जीवन-चरित्रों का अध्ययन करना होगा। बाहुबल लिखी गई इन मीठी स्तुतियों, बोगस दावों और मायावी मंजूरीयों की ऊँचाई पर उड़ते इन बकवासी तारीफों के पुलिन्दों को पढ़कर हमारे इतिहासकार भी उसी तरंग पर थिरकने लगते हैं। यह थिरकना एकदम बन्द होना चाहिए। बचपन के भोलेपन से लिखे गये ये सारे इतिहास सर्वध

घोषित होने चाहिए। राष्ट्रनिष्ठ हिन्दुस्तान को चाहिए कि उनके तोता-रटने लेखों को राष्ट्रदोही घोषित कर दिया जाये।

सर इलियट कहते हैं कि "तैमूर के जीवन-काल में लिखी गई घटनाएँ एवं परबतों भुलफुजद तथा जफरनामे (की घटनाएँ प्रायः) एक ही हैं। इससे कोई सन्देह नहीं रह जाता है कि प्रलंकृत शैली में खजंदी ने या तो उनका अनुवाद किया है या फिर उन्हें इस तरह से पेश किया है कि वह तैमूर की भाषा पर लिखे गये इतिहास से पूरी तरह मेल खाये। उदाहरण के लिए इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि वह एक कट्टर शिया था।" (पृष्ठ ३६३, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)।

पश्चिम एशिया के बड़े भाग को निगलने के बाद तैमूर ने लिखा है कि—“काफ़िरों के खिलाफ़ एक अभियान चलाकर गाजी बनने की तमन्ना मेरे दिल में पैदा हुई क्योंकि मैंने सुना है कि काफ़िरों की हत्या करने वाला गाजी होता है। मैं अपने दिमाग में यह तय नहीं कर पा रहा था कि चीन के काफ़िरों के खिलाफ़ जाऊँ या हिन्दुस्तान के। इस बारे में मैंने कुरान से हुक्म लिया। मैंने जो पद निकाला वह यों है—‘हे पैगम्बर! काफ़िरों और नास्तिकों से लड़ाई छेड़ दो और उनसे बड़ी कठोरता से पेश आओ’।”

तैमूर का पुत्र मुहम्मद सुलतान उर्फ़ शाह रुख अपने चोरी-चकारी के इरादे का भी पर्दाफाश कर देता है। वह तैमूर से कहता है कि—“हिन्दुस्तान सोने व जवाहरातों से भरा हुआ है।” उसके मुँह से लार टपकने लगती है।

तैमूर अपने गुणों और गुट-नायकों को बुलाकर कहता है—“हिन्दुस्तान पर हम लोग उस देश के लोगों को मुसलमान बनाकर काफ़िरपन की गर्दगी से उस जमीन को पाक और साफ़ कर सकें। और उन लोगों के मन्दिरों तथा मूर्तियों को बरबाद कर हम लोग गाजी और मुजाहिद कहला सकें।” (वही, पृष्ठ ३६७)।

भारत के सभी मुस्लिम विजेताओं और लुटेरों के अनुसार तैमूर भी सच्चाई से यह स्वीकार करता है कि उसका इरादा चोरी करना, हत्या करना और यातना के जरिए हिन्दुओं को मुसलमान बनाना तथा हिन्दू मन्दिरों एवं मूर्तियों को छिनकार उन्हें मस्जिद या मकबरा बना देना है।

मार्च, १३६० ई० में उसने कटक के पास में सिन्धु नदी को पार किया

और तुलुम्ब के सारे निवासियों को मारकर उनसे सारा धन, घनाज इत्यादि छीन लिया। मध्यकालीन मुस्लिम सेनाएँ हर रोज़ मारकाट, लूट-पाट और शीलहरण में लगी रहती थीं। जीवन के दिन बिताने का बस एक वही उपाय उनके पास था। मृतकों के माल को खाकर ही उनकी सेनाएँ जिन्दा रहती थीं जिस प्रकार सड़ी-गली चीज में कीड़े कुलबुलते रहते हैं। शराब पीना और बलात्कार करना ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। जब उनका नर-संहार बन्द रहता था तब पराजित देश से लूटकर लाए हुए माल से वे लोग खरीद-फ़रोक़्त करते थे। अपने आपको सजाने-सँवारने, लोगों को घूस देने तथा भारत की लूट, हत्या, बलात्कार और शराबखोरी के अपने पापों का प्रायश्चित्त करने के लिए मक्का में गरीबों को दान देकर वे लोग अपने लूटपाट के माल को खर्च करते थे।

इस उपजाऊ जमीन में बाकी हिन्दुओं की जिन्दगी का गला घोटने वाले, धर्मन्धि इस्लाम के दम घोटने वाले बातावरण और घातक जहर से आतंकित होकर कश्मीर के राजा ने तैमूर से सन्धि करके उस जानवर को मनमानी लूट मचाने की छूट दे दी।

वहाँ से आगे बढ़कर वह जानवर उस नगर में पहुँचा जिसे वह शाह-नवाज कहता है (जबकि उस समय हिन्दुस्तान में इस मुस्लिम नाम का कोई नगर नहीं हो सकता था)। यहाँ तैमूर ने अपने स्वभाव का जंगली-पन दिखाया। उस बृहत् कृषि-केन्द्र का सारा अन्न उसने छीन लिया। जितना ढो सकता था उतना लूट लिया। बाकी को उसने जला दिया, ताकि उसकी तलवार से बचकर भाग जाने वाले लोग भूख की आग में जल मरें। सारे संसार में उन लोगों ने इन्हीं तरीकों से लोगों को इस्लाम धर्म में भरा है। इस इस्लाम धर्म में लोगों को दीक्षित करने के लिए उन्हें भूख से तड़पाया गया, कुचला गया, लूटा गया, कटार भोंककर मारा गया और तरह-तरह की यातनाएँ देकर सताया गया। घाँसू का कोई मूल्य उनके सामने नहीं था। दया-माया से उनका कोई नाता नहीं था। माँ-बाप के सामने उन लोगों ने स्त्रियों और बच्चों पर सिर्फ़ बलात्कार ही नहीं किया बरन् उनका मांस उनके माँ-बाप के मुँह में डूसा गया।

फ़तहबाद, राजपुर और पानीपत होकर तैमूर दिल्ली आ धमका। शत्येक नगर और ग्राम में उसने हत्या और हाहाकार का बाजार गर्म कर

दिया था। जो हिन्दू उसके हाथ में पड़ा, हलाल हो गया। स्त्रियों पर बलात्कार हुआ। बच्चों को या तो हलाल कर दिया गया या उनका खतना हुआ। फिर बाकी लुटेरा बनाने के लिए उन सबको अपने स्कूल में गुलाम बनाकर पाखिल कर लिया। सब घरों में आग लगा दी गई।

सुलतान, दीपलपुर, सरसुती, कैथल, समाना आदि नगरों में छाए गये तैमूर के क्रूर जुल्मों की कहानी उसके दिल्ली पहुंचने से पहले ही वहाँ पहुँच गई थी। इन घटनाओं को सुन-सुनकर वहाँ के हिन्दू नगर-सैनिकों एवं नागरिकों ने अपनी-अपनी पत्नियों और बच्चों को चिता में जला दिया, बसते कि उनको यह काम करने का समय मिल सका हो या ऐसा करने का साहम उनमें रहा हो, जिससे ये मुस्लिम जानवर उनकी आँखों के सामने उन्हें भयंकर यादनाएँ न दे सकें। सारे सामान को लूटने के बाद लोगों को संगकर कोड़े से पीटा जाता था। उनका अपमान करने, यातना देने और खत्म करने के लिए उन लोगों को शहर के बीच मैदान में घसीट लाया जाता था। औरतों पर बलात्कार कर उन्हें खत्म कर दिया जाता था। अपने जैसा ही बंबर जंगली बनाने के लिए बच्चों को गुलाम बना लिया जाता था।

मानव-जानि के इतिहास में किसी भी धर्म या जाति ने यातना-पीड़ा देकर, फेफड़ा निकालकर, कयामत बरपाकर, पाशविकता में बलात्कार कर, हलाल कर, पणहाय और अपंग बनाकर, घाले फोड़कर, हड्डियाँ चूर-चूर कर, जिन्दा जलाकर, गर्म लोहों से दागकर, गुदा-भोगकर, दीन-हीन गुलाम बनाकर, तबाही और बर्बादी फैलाकर इतना जुल्म नहीं डाला होगा, जितना इन जानवरों ने इस्लाम के नाम पर अफ्रीका से फिलीपाइन तक डाला है। तैमूर इन जानवरों का साहजादा था। इसीके खून से हिंसक जानवरों की एक लकीर कतार पैदा हुई थी। इन कतार को 'महान्' (?) मुगलिया साम्राज्य कहते हैं। १५२६ ई० से १८५८ ई० तक इस खान-दान ने हिन्दुस्तान पर अत्याचारों की मूसलाधार वर्षा की थी।

दिल्ली कुछ काले समय तैमूर अपनी जीवनी मुलफुजद-ए-तैमूरी में बहना है—“मैंने मेहाना में अपना माल असबाब भेज दिया था। मैंने जंगली और पहाड़ी के रास्ते निकर किया। मैंने २००० शैतान जैसे जाटों की हत्या की, उनकी पत्नियाँ और बच्चों को बन्दी बनाया और उनके

सारे धन तथा गायों को लूट लिया। समाना, कैथल और असपन्दी ने सारे लोग धर्म-विरोधी, बुतपरस्त, काफिर और नास्तिक हैं (जो) अपने-अपने घरों में आग लगाकर अपने बच्चों समेत दिल्ली भाग गये और सारा देश सुनसान कर गये।” यही वह मुस्लिम प्लेग है। इसीने हजार वर्ष तक भारत को बरबाद किया। इसीके नाम से लोग जान लेकर भागते थे। इसी इस्लामी प्लेग के मुस्लिम लुटेरों ने एक-एक कर हमारे देश को तोच-खाया और लूटा-जलाया।

पानीपत के उजड़े दुर्ग-भण्डार में तैमूर को १० हजार मन गेहूँ मिला। लालची मुस्लिमों की नर-हत्या की आग में भस्म होकर पानीपत-दुर्ग का नामोनिशान तक मिट चुका है।

तैमूर दिल्ली की ओर बढ़ता गया। पर-कटे भयभीत नये धर्मान्तरितों से तैमूर की सेना फूलती गई। सभी को उसने हथियार पकड़ने की आज्ञा दी। अब इन लोगों का नया जन्म होने वाला था। तैमूर कहता है—“दूसरे दिन मैंने एक टुकड़ी को जहाँनुमा के महल को लूटने की आज्ञा दी। गंगा के किनारे, एक पहाड़ी के ऊपर सुलतान फिरोजशाह ने इस महल को बनाया था।” ज्योंही अफवाह फैलाने वाला, हत्यारा, चोर डाकू और भूठा तैमूर एक दूसरे मुस्लिम आततायी को एक महल बनाने का श्रेय देता है, त्यों ही हमारे अन्धे और विवेकहीन इतिहासकार इसे फिरोजशाह की बपोती समझकर उसे कसकर चिपटा लेते हैं। शायद उन्हें मालूम नहीं है कि हर हिन्दू चीज पर अपना कब्जा कर लेता और उसपर अपना दावा ठोक देता हर मुसलमान की पाक ड्यूटी है। उनकी इस आदत और पड़वन्ध से लगता है हमारे इतिहासकार अनजान हैं। इस ऐतिहासिक साजिश के दो पहलू हैं। एक में हर मुसलमान सारे हिन्दुस्तान के निर्माण का श्रेय दूसरे मुसलमान को दे रहा है। दूसरे मुसलमान ने यह श्रेय स्वयं ले लिया। इस छीना-भपटी में लटके हमारे इतिहासकारों ने भारत के इतिहास को एक भूडों का पुलिदा बना दिया है। सिर्फ यहाँ के दुर्ग, शहरों, नगरों, नहरों, पुलों, भवनों और प्रासादों के बारे में ही उन्होंने भयंकर झम नहीं फैलाया है वरन् उन्होंने एक “इण्डो सारसेनिक” आर्ट की गप्प भी मार दी है, जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं था। यह है मुस्लिम नाम-बदल एवं धर्म-बदल जाड़ जो गिर पर चढ़कर बोल रहा है। मच्छाई

के प्रयास से ही इस जादू का पाश-बन्धन नष्ट होगा।

इसके बाद तैमूर ने लोनी दुर्ग को ध्वस्त कर दिया। यह यमुना की एक प्राचीन राजपूती नहर के बीच में था। यह नहर यमुना से निकालकर फ़िरोज़ाबाद नामक नगर तक लाई गई थी। इस नहर के निर्माण का मेहरा फ़िरोज़शाह के माथे में डना सरासर दिन-दहाड़े चोरी है। "अनेक राजपूतों ने अपने बौबों, बच्चों को घर में छोड़कर उसमें आग लगा दी। इसके बाद में वे लड़ाई के मैदान में कूद पड़े। नगर-सैनिक लड़ाई में मारे गये। बहुत-से लोग कैद किए गए।" (वही, पृष्ठ ४३३)।

तैमूर नामक राजा कहता है—"दिल्ली पर मेरे आखिरी हमले से पहले मुझे यह बताया गया कि हिन्दुस्तान में घुसने के समय से लेकर आज तक हम लोगों ने १ लाख हिन्दुओं को कैद किया है। ये सभी कैदी मेरे पड़ाव में थे। मैंने अपने दरबारियों से सलाह ली कि इन कैदियों का क्या किया जाये। उन लोगों ने बताया कि जंग के दिन इन एक लाख कैदियों को सामान के पान नहीं छोड़ा जा सकता। उसपर इन बुतपरस्तों और इस्लाम के दुश्मनों को आजाद छोड़ देना जंगी कायदों के खिलाफ़ होगा। उन लोगों की यह सलाह मुझे जंगी कानून कायदों के मुताबिक ठीक लगी। मैंने सारे पड़ाव में एलान कर देने का हुक्म दिया कि हर आदमी अपने-अपने काफ़िर कैदियों को हलाल कर दें और जो कोई भी हुक्म न मानेगा उसे मार दिया जाएगा और उसकी सारी चीज़ें वसूली करने वाले को दे दी जाएंगी। इस्लाम के गाज़ियों को जब इस हुक्म की जानकारी हुई तो उन लोगों ने अपनी-अपनी कटारें खींच लीं और अपने कैदियों को हलाल कर दिया। मोलाना नानिरुद्दीन उमर मेरा सलाहकार और एक तालीम-शासक आदमी था। उसने अपनी सारी जिन्दगी एक चिड़िया को भी न मारा होगा। अब, उसीने मेरा हुक्म पूरा करने के लिए अपनी तलवार से १५ बुतपरस्त हिन्दुओं को मार डाला जो उसके कैदी थे।"

एक लाख आर्दमियों की हत्या—दिल्ली पर आखिरी चढ़ाई और लड़ाई में विजय पाने के लिए एक लाख हिन्दुओं की हत्या का प्रकृत किया गया। क्या यह भी बतलाना होगा कि इस्लाम के नाम पर बरसने वाली पातला और पीढ़ा को इन १ लाख वीर और दृढ़ हिन्दुओं ने अपनी छाती पर रौंटा का थी। उक्त तक सही की? अपनी जान दे दी पर शान नहीं

छोड़ी? व्यभिचारी मुस्लिम जानवर बनने के बदले, वीर और धार्मिक हिन्दू के रूप में मिट जाना इन लोगों ने बेहतर समझा। तैमूर के इस बयान से यह भी ज्ञात होता है कि जो लोग एक वीर राजपूत के समीप जाने का साहस कभी नहीं करते थे, वे लोग भी असहाय हिन्दू कैदियों के पेट में अपना खूनी खंजर भोंककर गाज़ी कहलाने के मुनहरी मौके को अपने हाथ से नहीं जाने देते थे। तैमूर के वर्णन से यह भी मालूम होता है कि सारे संसार में इस्लाम धर्म एक खूनी धर्म के रूप में फैला था। इसमें प्रत्येक मुसलमान को कत्लेआम का अपना कोटा पूरा करना पड़ता था चाहे वह मुसलमान मुल्ला हो या दलाल।

संकट की ऐसी घड़ी में एक कमजोर मगर खूनी सुलतान मुहम्मद तुग़लक़ द्वितीय दिल्ली पर राज्य करता था। यमुना नदी के तट पर तम्बू लगाकर तैमूर की लुटेरी सेना गिद्धों और भेड़ियों के झुण्ड की भाँति ग्रामीण क्षेत्रों पर टूट पड़ी। प्रत्येक दिन सुलतान व तैमूर की सेना में झड़पें होने लगीं।

१७-१२-१३६८ ई० को तैमूर के हत्यारे दिल्ली में घुस पड़े। दिल्ली के एक दरवाजे से अपनी जान लेकर सुलतान और दूसरे दरवाजे से उसका सेनापति मल्ल खाँ नौ दो ग्यारह हो गया। मुस्लिम गिद्धों की खुराक बनने के लिए हिन्दू जनता वहाँ रह गई।

भरे दरबार में तैमूर ने अपनी जीत की खुशियाँ मनाई। शराब में गर्क मुस्लिम गुण्डों के बीच कैदी औरतें बाँट दी गईं। इसी कारण यह मुहावरा भी हिन्दुस्तान में चालू हो गया है कि—आखिरी वक्त में सब क्या खाक मुसलमान होंगे।

त्रिसप्तत नज़दीक आ रहा था। शाही खूनी-प्रथा के अनुसार इसे मनाने का निर्णय तैमूर ने किया। एक महान् नर-संहार का हुक्म हुआ। इसका कारण तैमूर ने दिया है—

(१) खंखार तुर्कों के एक दल ने पुरानी दिल्ली के एक द्वार पर जमा होकर, मनोरंजन का साधन ढूँढ़ते हुए कुछ निवासियों पर प्रहार कर दिया।

(२) तैमूर के हरम की आभिजात्यिका विदेशी मुस्लिम युवतियों ने बाहर में जाकर हजार खम्भा महल देखने की इच्छा प्रकट की (इसके निर्माण का मेहरा तैमूर ने झूठ-मूठ मुहम्मद तुग़लक़ के मिर में दे दिया है)।

दूरके में बंद इन स्थियों के 'भंगरखक' स्पष्टतः सारे रास्ते अपनी व्यभि-
चारिणी प्रवृत्ति का प्रदर्शन करते रहे।

(३) खूबसूरतियों का एक दल क्षतिपूर्ति के लिए बाप का माल
समझकर हर घर में घुसकर हिन्दुओं का सारा धन लूट-खसोट रहे थे।

(४) तैमूर की तबाही से घबराकर दूर-दूर जगहों के हिन्दू अपने
परिवार के साथ दिल्ली में आकर जमा हो गये थे। उन सबको अब घरों
से निकालकर एक केंद्रीय स्थान में हाँका जा रहा था।

वृष्ट ४४६-४७ पर तैमूर उस खूनी दृश्य का बड़ा नृशंस और
रोमांचकारी वर्णन करता है, जब उसकी निर्वाध तलवार चल रही थी—
"सिपाही हिन्दुओं को पकड़ने के लिए जब बड़े तो बहुतों ने अपनी तल-
वारें खींच लीं। इस लड़ाई से लगी हुई भाग सभी कुछ जलाती हुई सीरी
से लेकर पुरानी दिल्ली तक फैल गई। क्रोधित होकर तुर्क काटने-लूटने में
लग गये। हिन्दुओं ने अपने घरों में अपने हाथ में भाग लगा दी, अपनी
स्त्रियों और बच्चों को उसमें जला दिया, फिर लड़ने दौड़े और मारे गये।
हिन्दुओं ने लड़ाई में बड़ी फुर्ती और बहादुरी दिखाई। बृहस्पतिवार और
शुक्रवार की सारी रात लगभग पंद्रह हजार तुर्क काटने, लूटने और बर-
बाद करने में जुटे रहे। शुक्रवार की सुबह मेरी सेना मेरे काबू से बाहर
हो गई। शहर में आकर उन लोगों ने कुछ भी सोच-विचार नहीं किया,
काटने, लूटने और बंदी बनाने में तल्लीन हो गये। सारे दिन मार-काट
चलती रही (क्योंकि वह शुक्रवार था, हलाल करने और जिवह करने के
लिए मुसलमानों का पाक दिन था)। दूसरे दिन शनिवार था। सभी कुछ
वैसे ही चल रहा था। लूट इतनी ज्यादा थी कि हर आदमी के पास ५०
से १०० तक केरी थीं, जिसमें औरत, मर्द और बच्चे सभी थे, (साथ सारे
गहने और जवाहरात भी) हीरे, जवाहरात, माणिक, मोती, सोने-चाँदी
के गहने, घण्टियाँ, सोने-चाँदी के टके, सोने-चाँदी के बर्तन, कीमती कपड़े
और नक़्क़ा आदि लूट का बहुत अधिक माल हाथ लगा। हिन्दू औरतों के
सोने-चाँदी के गहने इतने हाथ लगे कि उनका हिसाब नहीं हो सकता था।
(क्या यह कहना होगा कि हिन्दू दिल्ली की यह सबसे बड़ी मुस्लिम डकैती
थी? इस सारी सम्पत्ति को इन मुस्लिम गुण्ठों ने अरब से लेकर अफ़गा-
निस्तान तक के प्रक़ा मदीना आदि शहरों में बहाया है)। मुसलमानों के
रहने के लिए सारा शहर खाली हो गया।"

तैमूर आगे लिखता है—"दूसरे दिन शनिवार को मुझे यह बताया
गया कि बहुत-से हिन्दू हथियार और राशन लेकर पुरानी दिल्ली की
मस्जिद-ए-जामी (जामा मस्जिद) में जमा हो गये और बचाव की तैयारी
कर रहे हैं। मेरे कुछ आदमी उधर जा रहे थे। हिन्दुओं ने उन लोगों को
घायल कर दिया। मैंने तुरन्त अमीरशाह मलिक और अली सुलतान
तबाची को काफ़िरों और बुतपरस्तों से अल्लाह के घर को खाली करवाने
का हुक्म दे दिया। उन लोगों ने काफ़िरों पर हमला करके सभी को ख़त्म
कर दिया। इसके बाद पुरानी दिल्ली लूट ली गई।"

क्या इस विवरण से यह साफ़-साफ़ मालूम नहीं हो जाता है कि मुसल
बादशाह शाहजहाँ के २०० वर्ष पूर्व पुरानी दिल्ली और इसकी तथाकथित
जामा-मस्जिद मौजूद थी, जिसके बनाने का झूठा श्रेय उसके माथे में टाँका
जाता है? अपनी बेवकूफी से तैमूर यह भी बतला देता है कि जामा-
मस्जिद एक हिन्दू मन्दिर था। अगर ऐसा नहीं होता तो हिन्दू कभी भी
वहाँ जमा नहीं होते। घटनाक्रम में तैमूर इस बात को भी प्रकट कर देता
है कि मुसलमान लोग प्रमुख हिन्दू मन्दिर को अपने अधिकार में कर उसे
जामा-मस्जिद (यानी प्रमुख मस्जिद) कहने लगते थे और अन्य छोटे हिन्दू
मन्दिर साधारण मस्जिद हो जाते थे। फिर यह लिख दिया जाता था कि
इनको मुसलमानों ने 'बनाया' है।

अब एक दूसरी मुस्लिम-स्वीकृति भी सामने आती है। महलों के
बनाने की कला से मुसलमान लोग अनजान थे। यहाँ के विशाल, भव्य हिन्दू
दुर्गों, महलों, मन्दिरों और नदी के घाटों को देख-देखकर उन लोगों की
आँखें विस्मय से फटी-फटी की रह जाती थीं। तैमूर लिखता है—"समर-
कन्द में एक मस्जिद-ए-जामी बनाने का मैं पक्का इरादा कर चुका था, जो
सारे संसार में बेजोड़ हो। इसलिए मैंने हुक्म दिया कि क़ैदियों में से सभी
(हिन्दू) राज-मिस्त्रियों, महल-निर्माताओं, कलाकारों और चतुर यान्त्रिकों
को जो अपनी-अपनी कलाओं में माहिर हों, छांट-छांटकर प्रलग कर
दिया जाये। इसके अनुसार हजारों कारीगरों को छाँटा गया।"

इस प्रकार महमूद गज़नवी की तरह तैमूर ने भी हम लोगों के लिए
यह स्पष्ट रिकार्ड छोड़ दिया है कि भारत में एक भी दुर्ग, महल या मस्जिद
बनाना तो दूर रहा, अरब की ज़मीन पर भी मुसलमानों ने कोई नाम लेने

साथक निर्माण नहीं किया है। वे हिन्दू कारीगर ही थे, जिन लोगों ने अफगानिस्तान से लेकर अरब तक के सारे मध्यकालीन स्मारकों को बनाया है। इसलिए भारत में कोई भी मुस्लिम वास्तुकार नहीं था, न कोई मुस्लिम वास्तु-कला ही थी। सारी मुस्लिम जमीन पर हिन्दू वास्तु-कला बिखरी हुई है, जिसको हिन्दू खून, हिन्दू-पसीने, हिन्दू-धन, हिन्दू-चातुरी, हिन्दू-प्रतिभा और हिन्दू हाथों ने बनाया है। इसलिए सारे संसार की वास्तु-कला और इंजीनियरिंग की पाठ्य-पुस्तकों में सब सुधार करने की आवश्यकता हो गई है जो लोगों को साफ-साफ यह बतला दें कि कम-से-कम एशिया की सारी प्राचीन और मध्यकालीन इमारतें परम्परागत हिन्दू-निर्माण कला के अद्वितीय नमूने हैं।

श्री, जहाँपनाह और पुरानी दिल्ली को अच्छी प्रकार लूट लेने के बाद, तैमूर कहता है—“मैंने दिल्ली के निवासियों की तबाही में और अधिक दिलचस्पी नहीं ली। (क्योंकि दिल्ली खाली हो चुकी थी)। (घोड़े पर) सवार होकर मैं नगरों के चारों ओर घूमा। श्री एक गोल शहर है। इसकी इमारतें बड़ी बलुन्द हैं, जो चारों ओर किलेबन्दी से (प्राचीर से) घिरी हुई हैं। पुरानी दिल्ली में भी एक ऐसा ही मजबूत किला है (और पुरानी दिल्ली में एक ही किला है, लाल किला)। मगर यह श्री से बड़ा है। श्री से पुरानी दिल्ली तक, जो अच्छी खासी दूरी पर है, एक मजबूत दीवार चली गई है। आबाद नगर के बीच में जहाँपनाह बसा हुआ है। इन तीन शहरों में ६० दरवाजे हैं—जहाँपनाह में १४, श्री में ६ और पुरानी दिल्ली में १०।”

तैमूर दिल्ली में १५ दिन तक रहा। यह समय उसने “मौज-मस्ती में, दरबार का आनन्द उठाने और बड़ी-बड़ी दावतें देने में गुजारा।” निश्चय ही इसमें एक मुसलमान का पहला धर्म हिन्दुओं को हलाल करना भी शामिल है। उधर मुस्लिम सुलतान मुहम्मद दूर गुजरात में जाकर ठिप गया था।

१५ दिन के खूनी नाच के बाद यह देखकर कि कोई भी हिन्दू अब हलाल होने के लिए नहीं बचा है, तैमूर ने हम लोगों को बतलाया है कि हिन्दुस्तान के दूसरे भागों में हिन्दुओं की हत्या करने, उनके बच्चों को कंद काने और उनका धन लूट लेने के लिए “मैंने फिर अपनी सलवार खींच ली।”

मगर १५ दिन की हाय-हत्या के बाद तैमूर ने दिल्ली छोड़ने में बड़ी जल्दबाजी की। इसका कारण यह था कि बगदाद की जनता वहाँ उसके गुर्गों के विरुद्ध खड़ी हो गई थी।

वापिस लौटते समय बारापत, मेरठ, हरिद्वार, जम्मू, नगरकोट आदि अनेक प्रसिद्ध नगरों को भी तैमूर बरबाद करता गया। प्रायः सभी हिन्दू नागरिकों को हलाल कर दिया, उनकी पत्नियों पर बलात्कार किया, चीखते-चिल्लाते निर्दोष बच्चों को या तो मार दिया या उनका खतना कर दिया, उनकी सम्पत्ति लूट ली, और मुस्लिम दुर्व्यवहार के लिए उनके मन्दिरों एवं महलों को मस्जिद और मकबरा बना दिया। उसने जम्मू के घायल राजपूत राजा को यातनाएँ देकर मुसलमान बना दिया और एक गाय को हलाल कर मुस्लिम गुण्डों के साथ उसे गोमांस खाने पर मजबूर किया। “इस प्रकार जब हम लोग उसे मुसलमान जाति में मिला चुके तब उसके जख्मों की दवा करने के लिए मैंने अपने हकीम को हुक्म दिया।” (पृष्ठ ४६२)।

ऐसे असंख्य हिन्दू राजपूतों एवं उनकी प्रजा को ये लोग बन्दी बना लेते थे। फिर उनके जख्मों की मरहम पट्टी करनी तो दूर रही, ये जान-बर उन लोगों को तरह-तरह की यातनाएँ देकर संसार में मुसलमानों की तादाद बढ़ाते थे। लाखों हिन्दुओं को मारकर, अपंग कर, अपमानित कर, धर्मान्तरित कर तैमूर उन लोगों का असीम धन अपने साथ बटोर-कर ले गया। जाते-जाते भी तैमूर मुलतान, लाहौर, देवलपुर आदि जगहों पर लूटमार जारी रखने के लिए अपने एक गुर्गों खिज खाँ को नियुक्त कर गया।

इस समय तक तैमूर ६३ वर्ष का हो चुका था। १३९९ ई० की फरवरी के अन्तिम चरण में रवाना होकर वह बगदाद पहुँच गया और बिद्रोह का दमनकर ८०,००० आदिमियों का खून पी गया। यातना और हाहाकार से उसने अब बौद्ध चीन को थराने का विचार किया। मगर अल्लाह ने उसके विचार को उसके दिल में ही दफना दिया। इस मुस्लिम पिशाच का साँस १८ फरवरी, १४०५ ई० को निकल गया।

खूनी नर-संहार और नृशंस बलात्कारों के रोमांचकारी वर्णनों से इन विचित्र मुस्लिम इतिहासों का प्रत्येक पन्ना खून से लाल है, मगर बीच-

बीच में कहीं-कहीं बड़े मज्ददार प्रसंग भी आ जाते हैं, जो उनकी बेवकूफी तथा अज्ञान का बड़ा बीज बोराहे पर फोड़ देते हैं।

तैमूर की तथाकथित जीवनियों में भी अनजाने एक ऐसा ही प्रसंग आ गया है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बलात्कार, कत्लेआम, गुदा-भोग और शराबखोरी में गक रहने वाले तैमूर और जहाँगीर आदि की स्थितिगत कहताने वाली जीवनियों को उन लोगों ने नहीं, उनके किसी दूसरे चापलूस गुण ने उन लोगों के लिए लिखा है।

इसका पर्यवेक्षण करते हैं सर एच० एम० इलियट कि अबुतालिब और मुहम्मद अफ़जल की हस्तलिपियों में "तैमूर ने अपनी मौत को भी लिख-बाया है। परबर्ती लिपिकार मुहम्मद अफ़जल से तैमूर संक्षेप में लिख-बाता है—'मैं अतरार गांव पहुँचा और मर गया।' मगर अबुतालिब यह लिखते हुए इस विषय का विशेष वर्णन करता है कि 'मैं सारी रात अल्लाह के नाम को रटते हुए बेहोश हो गया और मेरी पाक रुह अल्लाह-ताना और पाक परवरदिगार के पास चली गई।' (पाक और साफ़ तो वह भी ही। क्योंकि सारे संसार में जिन लाखों लोगों की हत्या उसने की थी, उन लोगों के खून में इसको धो-धोछकर पाक और साफ़ किया गया था)।" (पृष्ठ ३६४)।

आश्चर्य होता है कि किस प्रकार तैमूर यह लिखवा सका कि वह बेहोश हो गया और मर गया। मगर यह छोटी-सी बात सर इलियट के इस कथन की पुष्टि करती है कि मुस्लिम इतिहास "एक धृष्ट और मज्ददार घोडा है।"

सर इलियट इस बात को भी स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार अफ़जल "तैमूर को सुन्नी साबित करने की कोशिश करता है जबकि उसके कट्टर शिषा होने के पक्के सबूत मौजूद हैं।" इस बात को पढ़कर हमारे इतिहास-कारों की आँखें खुल जानी चाहिए कि मुस्लिम इतिहास, इतिहास लिखने के उद्देश्य से नहीं लिखे गए हैं बरन् अपने मतलब की गप्प लिख-लिखकर उन्हें इतिहास का बूकी उड़ा दिया है।

जहाँगीरनामा का आलोचनात्मक अध्ययन करते हुए सर एच० एम० इलियट इस बात को भी स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार लोगों ने यह गप्प लिख मारी है कि जिस जगह पर तैमूर ने जनता का खून बहाया था, जिस

जगह को उसने सुनसान कर दिया था वहाँ तैमूर ने जन-कल्याण के लिए सराय, कुआँ आदि बनवाये हैं। क्या कोई जन-हत्यारा जन-कल्याण की चीजें बना सकता है? अकबर, फ़िरोजशाह, शेरशाह और जहाँगीर आदि मुसलमानों के बारे में ऐसे ही बोगस दावे किए गये हैं। बड़े शोक की बात है कि स्कूलों और कॉलेजों के लिए पाठ्य-पुस्तक लिखने वाले एक भी इतिहासकार में इतना कहने का साहस नहीं है कि बेड़ियों से भी बदतर मुहम्मद तुग़लक, फ़िरोजशाह, शेरशाह और जहाँगीर आदि को महान् कल्याणकारी मानकर प्रशंसा करने वाला एक नम्बर का फ़ौड है।

तैमूर 'तैमूर लंग' के नाम से भी कुख्यात है क्योंकि लड़ाई में एक हाथ और एक पैर खोकर वह पंगु हो चुका था।

अपनी मौत से पहले १४०२ ई० में यूनान की प्रार्थना पर तैमूर ने तुर्की के बादशाह बयाजिद का अपमान किया था और यूनान के एक नगर का घेरा उठाने की आज्ञा दी थी। इस धृष्टता से क्रोधित होकर बयाजिद तैमूर पर टूट पड़ा। जुलाई, १४०२ ई० में लड़ाई फिजिया नामक स्थान पर हुई। इस लड़ाई में बयाजिद की सेना हार गई। उसे बन्दी बना, बेड़ियों से जकड़कर जंगली जानवर की भाँति एक लोहे के पिंजरे में बन्द कर दिया। इसके बाद विजयी तैमूर ने मिल को कुचलकर वहाँ की जनता के खून से होली खेली और सारी सम्पत्ति को लूट लिया।

३६ वर्ष तक तैमूर का जंगली शासन और शैतानी नाच चलता रहा। समरकन्द के एक प्राचीन हिन्दू महल में उसे दफनाया गया है। उदय होते सूर्य एवं उछलते सिंह का हिन्दू राज्य-चिह्न उसके मकबरे की भीतरी दीवार पर अंकित है। इस चिह्न को अभी तक वहाँ के लोग इसके संस्कृत नाम 'सूर-मादूल' यानी "सूर्य-शार्दूल" के नाम से ही पुकारते हैं जिसका अर्थ है सूरज और सिंह। संस्कृत से अनजान वहाँ की जनता यह मानती है कि 'सूर-सादूल' का अर्थ उन्हें मालूम नहीं है। फिर भी बिना समझे-बुझे मशीन और तोते की तरह वे लोग इस नाम को रटते चले आ रहे हैं।

इतिहासकार और पुरातत्त्व विभाग को इस प्रमाण से चौंक जाना चाहिए। उन्हें यह भ्रम त्याग देना चाहिए कि वह तथाकथित इमारत तैमूर की लाश पर बनाई गई है। संसार में ऐसा कौन है जो एक आतंककारी, आततायी और अभिशप्त आदमी के लिए एक आलीशान यादगार बन-वाएगा, वह भी उसकी मौत के बाद? फिर उसके मकबरे पर किसी भी प्रकार का रेखा-चित्र बनाना तो इस्लाम के एकदम खिलाफ़ है। एक मूर्ति-भंजक, बूत शिकन और धर्मान्ध कट्टर मुसलमान की कब्र पर ऐसा चित्र बनाना तो एक अतिरिक्त गुनाह है। एक कट्टर मुस्लिम की कब्र पर खुदी ऐसी कलाकृति न तो उसे इस्लामी जन्नत में शांति दे सकती है, न इस्लामी

जहन्नुम में। उसपर ऐसे बिज का नाम संस्कृत में तो कदापि नहीं होगा। इन सभी बातों पर हमारे इतिहासकारों एवं पुरातत्त्व-विभाग को विचार कर सारे संसार में बिखरे मध्यकालीन मकबরों, मस्जिदों, दुर्गों, महलों और शासकों के निर्माताओं के बारे में अपने विचारों को सुधारना चाहिए।

मुस्लिम साहित्य में कभी-कभी तैमूर को 'फिरदौस मकानी' यानी 'रबर्ब' का मालिक' कहा जाता है, जबकि उसे 'दोजख' का मालिक' होना चाहिए। शायद खून-खराबा और मार-काट, लूट-पाट और हाहाकार ही मुस्लिम लुटेरा, चाहे वह शाहजादा रहा हो या फकीर, जहन्नुम का ही मालिक था क्योंकि उसने औरत, मर्द और बच्चों को जहन्नुमी जुल्मों से सताया था, क्योंकि उसने लूट-पाट के खाने-पाने से अपनी पेट पाला था, क्योंकि उसने लोगों का खून पीकर अपनी प्यास बुझाई थी, क्योंकि उसने गुलाम लोगों के धातुओं से अपनी छाती ठंडी की थी।

लोग कहते हैं कि तैमूर के चार पुत्र थे (शायद इतिहासकार यह भूल जाते हैं कि हरमों की बीछती-चिल्लाती और विलाप करती हजारों औरतों में पागल सांड की भांति घुसकर मध्यकालीन मुस्लिम लुटेरों ने न जाने कितनी सन्तानें पैदा की होंगी)। उसने अपने पोते (जहाँगीर मिर्जा के बेटे) पीर मुहम्मद को अपना वारिस बनाया। मगर परम्परागत मुस्लिम रिवाज के अनुसार उसके एक दूसरे पोते खलील ने पीर मुहम्मद की हत्या कर अपनी मुलतानी का दोल बजवा दिया। उसके बाद मायावी मुस्लिम राजनीति का चक्र उल्टा चला यानी उसका चाचा अर्थात् तैमूर का छोटा बेटा शाहकुस मिर्जा गद्दी पर आकर जम गया।

मशाल और चिमटे तथा तलवार और कटार लेकर इस्लाम धर्म का प्रचार करने वाले अरबणी राक्षस-संतों में तैमूर का विशिष्ट स्थान है। इसने मानवता का विनाश किया था।

पृष्ठ टी-१७२, खण्ड १५, प्रकाशन १९२५ में महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश बतलाता है कि जिस किसी भी शहर में तैमूर लंग जाता था, वहाँ के निवासियों को वह बड़ी कठोरता से अपना सामान सौंप देने की आज्ञा देता था। उसके बाद वह सभी को एक केन्द्रीय स्थान पर हाँक लाता था। उनमें से वह मजदूरों और कारीगरों को छांट लेता था। बाकी की मर्दन रेल देता था। तैमूर के १५० वर्ष के बाद प्रकबर भी बड़ी सच्चाई और निष्ठा से इन 'सम्मानित' और परम्परागत इस्लामी रिवाज का पालन करता था, क्योंकि उसकी रगों में तैमूर का खून भी बहता था।

(मदर इण्डिया, फरवरी, १९६८)

: १७ :

खिज्र खाँ

सात सौ वर्ष से तैमूर के धर्म-भाई लगातार हिन्दुस्तान में लूट मचाकर उनका खून बहाते चले आ रहे थे। मगर हत्यारों के सरताज तैमूर के संहारक टूर के तूफान ने जो तबाही और बरबादी मचाई थी उसने एक बार तो इस देश का सत्यानाश ही कर दिया था। अपने पीछे वह कटी-सड़ी लाशों की सड़ान्ध से व्याप्त और अकाल के मारे उत्तर भारत के एक विशाल भाग को छोड़ गया था, जहाँ पंगु और अपंग मानव शरीर भूत की भांति एक-एक दाने अनाज के लिए घिसट-घिसटकर जमीन पर चलते थे।

निर्जन दिल्ली भायें-भायें कर रही थी। कुछ लोग ही वहाँ जबरदस्ती चिपटे हुए थे। उनमें भी भयंकर दुर्भिक्ष और रोग फैला हुआ था।

तैमूरी आक्रमण से पहले ही बंगाल, दक्षिण भारत और विजयवाड़ा ने दिल्ली की मुस्लिम सुलतानी से अपना नाता तोड़ दिया था। अब तैमूरी-संहार के समय गुजरात, मालवा और जोधपुर ने भी दिल्ली से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया। ये राज्य शक्तिशाली और स्वतन्त्र हो गए। सिन्ध के एक भाग, दीपलपुर, मुलतान एवं लाहौर पर तैमूरी गुर्गा खिज्र खाँ आकर बैठ गया।

१३६६ ई० में जब तैमूर ने भारत का पीछा छोड़ा तो नुसरत शाह ने अपने आपको दिल्ली का सुलतान घोषित कर दिया। उधर साद नाम का सुलतान मुहम्मद शाह तुगलक अपने वजीरे-आज़म मल्लू के साथ गुजरात में छिपा हुआ था। मल्लू ने, जो अपने स्वामी से अधिक साहसी था, नुसरत पर धावा बोल दिया। नुसरत भाग गया और बाद में मर गया।

वास्तविक शासन मल्लू के हाथ में था यद्यपि वह मुहम्मद शाह तुगलक के नाम से ही राजकाज चलाता था। उसकी आज्ञा दिल्ली के आस-पास ही

बनती थी। जब ख्वाजा जहान का दत्तक पुत्र मुबारिक शाह जोनपुर की गद्दी पर बैठा, तब मल्लू ने उसपर धावा कर दिया और हार खाकर वापिस लौट आया।

घमोड़े सुलतान मुहम्मद तुगलक ने गुजरात के गवर्नर मुजफ्फर शाह के पास शरण ली थी। आज सर्वाधिक सम्भव कहलाने वाले लोगों के अच्छे दिनों में भी मुहम्मद अतिथि-सत्कार एक आफत ही है, तब मध्यकालीन मुस्लिम परम्परा में यह स्वाभाविक ही था कि मुहम्मद तुगलक की उपेक्षा और अपमान हो।

जब सुलतान की हातत ऐसी पतली थी, उसी समय उसे मालवा के मुस्लिम गवर्नर दिलावर खाँ का निमन्त्रण मिला। दिलावर खाँ दिल्ली की गद्दी पर अपना दावा ठोकने के लिए सुलतान को शिखण्डी बनाना चाहता था।

इधर मल्लू ने भी देखा कि वह अपने विरुद्ध बग़ावतों की बाढ़ को नहीं रूक सकता तो १४०१ ई० में उसने दर-दर की ठोकुरें खाने वाले सुलतान को दिल्ली जाने का न्योता भेज दिया। दिल्ली लौटकर सुलतान ने देखा कि वह एक बन्दी जैसा ही नहीं है, मल्लू की सत्ता को ललकारने वालों के लिए एक काक-भगोड़ा भी बनकर रह गया है।

कन्नौज और जोनपुर का दमन करने के लिए, शाही निशानी के बतौर मल्लू सुलतान को भी साथ रख लिया। शाही मौजूदगी के बावजूद मल्लू की हड़ना पड़ा। अब उसके लिए सुलतान का कोई महत्त्व नहीं रहा। उसने अपना काक-भगोड़ा मूल्य भी खो दिया था। सुलतान ने भी स्थानीय हिन्दू नागरिकों की सम्पत्ति लूटकर एक डाकू का जीवन व्यतीत करने के लिए अपने कुछ मुस्लिम साथियों के साथ जोनपुर में ही पड़ाव डालने का विचार कर लिया। कन्नौज और जोनपुर की हिन्दू जनता अब ही मुस्लिम सेनाओं की चक्की में फँस गई। उसका जीवन चूर-चूर होने लगा।

मल्लू सुलतान बनने को बहुत ही आतुर था। राजकाज चलाने के लिए उसे बोझी बहुत ज़मीन तो चाहिए ही। उसने खालियर और इटावा पर धावा कर दिया। हमेशा की भाँति परम्परागत नियमबद्ध मुस्लिम तरीक़ों से उसने इन्हीं दोनों दुनों के समीपवर्ती क्षेत्रों को तहस-नहस कर डाला।

फिर भी हारे-थके मल्लू को अपना पखीना सुँखाने के लिए भागकर दिल्ली आना पड़ा। दिसम्बर, १४०२ ई० में मल्लू खालियर के देशभक्त हिन्दू शासक ब्रह्मदेव से भी हारा। दूसरे वर्ष धौलपुर में भी उसे धूल फाँकनी पड़ी। खालियर और जलहर के हिन्दू राजाओं की सहायता से इटावा के बीर हिन्दू राजा राय सरवर से भी मार खाकर, मुस्लिम अत्याचारी मल्लू को साँस लेने दिल्ली लौटना पड़ा। हिन्दू क्षेत्र में लूट और बलात्कार की मुस्लिम उछल-कूद को हिन्दुओं ने एक बार फिर विफल कर दिया।

मल्लू ने अब कन्नौज पर घेरा डाल दिया। वहाँ से तुगलकी सुलतान को हटाकर, मुस्लिम जोंक के रूप में वह खुद चिपकना चाहता था। मगर यहाँ से भी उसे भागना ही पड़ा। अब वह खिज़्र खाँ पर दौड़ पड़ा। सिन्ध और पंजाब की सीमा में मुलतान-मार्ग पर एक नगर है, इसका भी नाम अयोध्या है। इसके समीप लड़ाई हुई, जिसमें खिज़्र खाँ ने मल्लू को मार दिया और लटकाने के लिए उसका सिर काटकर फ़तहपुर भेज दिया।

दिल्ली में अब कोई नाम का भी शासक नहीं बचा तो मुहम्मद तुगलक कन्नौज से दिल्ली आ गया और सुलतानी लबादा एक बार ओढ़ लिया। सुलतान के नाम पर दौलत खाँ लोदी नामक एक अफ़ग़ान राजकाज चलाने का दिखावा करने में तल्लीन हो गया।

खिज़्र खाँ भी सिर्फ़ पंजाब में ही क्यों चिपका रहता? वह भी पड़ोस के हिन्दू-क्षेत्रों पर धावा बोल सकता था। हिन्दू-महलों को छीन सकता था। हजारों हिन्दुओं का इस्लामीकरण कर उन्हें अपनी सेना में भरती कर सकता था और अपनी निशाचरी कमाई से डगमगाती तुगलकी गद्दी को उलटकर उसपर बैठ सकता था।

फलतः मुस्लिम रस्साकशी को चलना था, वह चली। खींचतान हुई। उत्तर भारत के विभिन्न भागों पर खिज़्र खाँ के दौड़ते-भागते हमले हुए। जहाँ-तहाँ टकराव भी हुआ। इस बीच दो बार दिल्ली उसके हाथ में आती-आती रह गई।

आठ वर्ष तक मात्र नाम का राज्य करने के बाद सुलतान मुहम्मद फरवरी, १४१३ ई० में मर गया। इसी बीच जान लेकर कभी वह इधर भागता था, कभी उधर। उसे कभी बज़ीरे आजम ने खदेड़ा तो कभी किसी दरबारी ने रगेदा। कई बार उसने दिल्ली भी छोड़ी।

उसकी मृत्यु के बाद प्रायः एक वर्ष तक दोलत खाँ लोदी अपना हुकम चलाता रहा। अन्त में, खिज्र ने उसे बन्दी बना लिया।

इस प्रकार दिल्ली की सुलतानी एक दूसरे मुस्लिम खानदान के हाथ में जा गई। यह सैयद खानदान था। इसका पहला सुलतान था खुद खिज्र खाँ। १४१४ ई० में वह गद्दी पर बैठा। हजार वर्ष तक इस्लामी लूट में संलग्न रहने वाले सभी मुस्लिम लुटेरों की भाँति, दिल्ली की गद्दी पर बैठने के साथ ही खिज्र खाँ ने भी हिन्दु-भक्तों पर अपनी नज़र दीड़ाई कि आसानी से अधिक मान कहाँ हाथ लग सकता है। सोच-विचारकर उसने रोहतक में तबही फैलाई और सम्बल को लूट लिया जिसे २०० वर्ष से मुस्लिम डाकू लूटते ही आ रहे थे।

मध्यकालीन भारत में राज चलाने वाले सभी मुस्लिम सुलतानों के पास अपने दलालों, चापलूसों और स्तुति-गायकों का एक गिरोह होता था। इसमें प्रत्येक सुशामदी असम्प्य मुस्लिम संरक्षकों की लम्बी-चोड़ी प्रशंसा-कर अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन धर्म-भाइयों को मात देने का जो तोड़ प्रयास करते थे। इस काम में याह्या-बिन-अहमद ने अपनी 'तारीख मुबारिक बाही' में एक कमाल कर दिखाया है। उसने खिज्र खाँ को सीधे पैगम्बर मुहम्मद का वंशज प्रमाणित कर दिया। सबूत में फकीर (सन्त) जलालुद्दीन बुखारी का बयान दे दिया। मगर अफसोस! भारतीय विद्या भवन की पुस्तक 'दिल्ली सुलतानेट' (भारतीय जनता की सभ्यता और इतिहास का ग्रन्थ ६, पृष्ठ १२५) में लिखा गया कि यह "बिना आधार का प्रमाण है।" इस प्रकार यह पुस्तक संकेत करती है कि अन्ततोगत्वा इस मध्यकालीन तथाकथित सन्तों में न तो कोई सन्तपन ही था, न कोई सच्चाई ही।

तैमूर के बेटे शाह रुख की आद में खिज्र खाँ ने दिल्ली की गद्दी संभाल ली। पर जैसी उसकी हालत थी उसको देखते हुए उसका कोई महत्त्व नहीं था। मुस्लिम साजिशें और हत्याओं के लम्बे इतिहास ने दिल्ली राज्य को दिल्ली तक ही सीमित कर दिया था। शताब्दियों के परिश्रम से हिन्दुओं ने इसे सम्पन्न और उपजाऊ बनाया था। मुसलमानों ने इसे कंगाल और बंजर बना दिया। यही दिल्ली खिज्र खाँ को मिली।

जब खिज्र खाँ को दिल्ली मिली, याह्या हमें बतलाता है कि—“पिछले कारनामों की दोर-जबर्दस्ती से दिल्ली कंगाल हो चुकी थी” (पृष्ठ ४६, ग्रन्थः

६)। इस प्रकार मुस्लिम इतिहासकार आपस में ही यह स्वीकार करते हैं कि भारत का प्रत्येक मुस्लिम शासक एक दुष्ट था। प्रत्येक मुस्लिम मालिक की प्रशंसा करता हुआ बतलाता है कि पिछले शासक ने भारत को कंगाल बनाया था।

हजार वर्ष तक लगातार पतपने वाले अनर्गल मुस्लिम इतिहासों की कतार का जोड़ संसार के साहित्य में कहीं भी नहीं खोजा जा सकता जिसमें हत्या, नरसंहार और लूट को 'महान्' ही नहीं बताया गया वरन् इन्हें 'मुस्लिम उदारता का बेजोड़ कारनामा' भी बताया गया है। यहाँ इसके शिकार 'हिन्दू' थे।

सैयद खानदान के तत्त्वावधान में हिन्दुस्तान की लूट-खसोट जारी रही। नये सुलतान खिज्र खाँ का एक गुर्गा "गंगा को पार कर कटेहर गया और उसने हिन्दुओं को लूट लिया। आतंककारी मुस्लिम कारनामों के सामने राय हरसिंह पहाड़ियों में भाग गए। ताजुल मुल्क अब दूसरी ओर मुड़ा। उसने गंगा पार कर, खुर, कम्पिला, सकिमा, और बाघम को लूटा।"

इटवा, ग्वालियर, सूरि, चन्दावर, और जलेश्वर पर दूसरे मुस्लिम गुण्डों ने हमला कर दिया। उन्होंने हजारों हिन्दुओं को इस्लाम में दीक्षित किया, औरतों पर बलात्कार किया, मन्दिरों को छीनकर मस्जिद बना दिया, मुसलमानी बाजारों में बेचने के लिए बहुत से हिन्दुओं को गुलाम बना लिया और इन लोगों की सारी सम्पत्ति छीन ली।

जलेश्वर शिव-मन्दिर के लिए विध्वस्त था। चन्दावर के राजा से इसे छीनकर हिन्दुस्तान के मूर्ति-भंजक शासन में मिला लिया गया। खिज्र खाँ ने फ़िरोज़पुर और सरहिन्द के हिन्दू नगरों की जागीर अपने पुत्र मलिक मुबारिक को दे दी। इसे चापलूस याह्या "अपने योग्य पिता का योग्य पुत्र" बतलाता है।

१४१६ ई० में खिज्र खाँ के हुकम पर ताजुल मुल्क ने बयाना और ग्वालियर पर हमला कर उन्हें लूट लिया। उस समय मुसलमानों में यह रिवाज था कि वर्ष में कम-से-कम एक बार वे हिन्दुस्तान के हिन्दुओं से जिहादी जंग छेड़ते थे। यह हमला उसी कुख्यात रिवाज के अनुसार था। यद्यपि समय के क्रमानुसार किसी भी मुसलमान का किसी भी जन-कल्याण

की बीजे बनाने का जरा-सा भी विश्वसनीय विवरण नहीं है फिर भी यह शोक की बात है कि भारतीय और यूरोपीय विद्वानों की पीढ़ियाँ इस भ्रम में पड़ जाती हैं कि अशिक्षित, आततायी, शराबी और नशेबाज मुस्लिम लुटेरों ने 'विस्मयकारी', लगान-पद्धति लागू की। मृत मगर घृणित और दृष्ट मुसलमानों के लिए मकबरा बनाया और मरणासन्न बदमाशों के लिए मस्जिदें सही कीं।

१४१७ ई० में बीर हिन्दू राजा तुघनराय ने मुस्लिम अपहर्ता को तलवारों से मारकर उसने सरहिन्द के किले को घेर लिया। वहाँ मुस्लिम कारोबार चलता था। खिज्र खाँ ने एक सेना भेज दी। इसने बाली के हिन्दुओं को लूटकर रोद डाला।

१४१८ ई० में कटेहर का बीर हिन्दू शासक हरसिंह मुस्लिम हमलावरों से हिन्दुस्तान की रक्षा करने के लिए उठ खड़ा हुआ। उधर पाँच दिन तक ताजुल-मुल्क अमुरसित हिन्दू-नागरिकों को लूटता रहा। "लूट का बहुत सा माल बटोकर वह वापिस लौट आया।" (पृष्ठ ५७, ग्रन्थ ४) हजार वर्षीय मुस्लिम रणनीति थी कि एक-एक कर हिन्दू क्षेत्रों को नष्ट कर दो, इनको छल-सम्पत्ति निचोड़ लो और असह्य जनता का कोड़ों से इस्लामीकरण कर सारी ज़ायदाद फ़सल कर लो। टिड्डी जैसी मुस्लिम सेना की इस विनाश-नीला से प्रत्येक हिन्दू सैनिक प्रभावित होता था। इसके सारे खेत और कसिहान लूट के शिकार होते थे। इसके सारे रिश्तेदार यातना भोग कर मुसलमान हो जाते थे। विनाश और विध्वंस के इस्लामी-मलबे के बीच तंगर डाले कुछ हिन्दू राजाओं और उनकी सेनाओं की हिम्मत मुसलमानी जल्पाकार देखकर टूट जाती थी। 'विनाशाय च दुष्कृताम्' के उपदेश को सुनकर वे सोम कुछ में देकर शान्ति सन्धि खरीदने का प्रयास करने लगते थे।

मनुष्य देवत्व से प्रगति करना चाहता है। हिन्दू आदर्शवाद की इस परम्परा में विश्वास करते हैं और इसकी प्राप्ति के लिए अन्य बातों की उपेक्षा भी कर देते हैं। साधारण मानव की देवता के रूप में प्रगति करने के इस आदर्श में निमग्न प्रगतिशील हिन्दू धर्म ने अपने इतने अनुयायियों की भी दिया, फिर भी अपने अपनी पसकें नहीं उठाईं। इसलिए कि हिन्दुत्व जीवन की एक पद्धति है जो अपने आप में अद्वितीय और अनुपम है। नियमों

में जकड़े एक व्यक्ति-विशेष की ही विचारधारा पर चलने वाले इस्लाम और ईसाई धर्म से हिन्दुत्व की तुलना नहीं की जा सकती क्योंकि ये दोनों धर्म सिर्फ अपनी संख्या बढ़ाने की ही चिन्ता में लगे रहते हैं। कोई आध्यात्मिक चिन्तन नहीं करते।

हिन्दुत्व क्वालिटो पर जोर देता है, क्वाण्टिटो पर नहीं। यही हिन्दुत्व की कमजोरी थी। जिसके चलते मुस्लिम आक्रमणकारियों ने यातना और पीड़ा से अपने धर्मानुयायियों की संख्या बढ़ाई। इस्लाम की धमकी का सामना हिन्दुत्व आसानी से कर सकता था अगर वह धर्मान्तरित हिन्दुओं को अपनी गोद में वापिस ले लेने के साथ ही एक धर्मान्तरित हिन्दू बना लेता और इन धर्मान्तरित मुसलमानों को उस अरब भूमि पर हमला करने के लिए प्रेरित और उत्तेजित करता जहाँ खानाबदोश मुस्लिम दुष्टों का झुण्ड अपने जालिम पंजों से सारे संसार को तबाह करने के लिए टिड्डी-दल की भाँति निकलता ही रहता था।

बदायूँ और बजलाना को लूटने, रौंदने के लिए ताजुल-मुल्क पीछे हटकर इटावा की ओर बढ़ा। इसको लूटने के बाद उसने राय सरवर को घेर लिया। मगर यहाँ से हारकर लड़खड़ाता हुआ पीछे भाग गया।

१४१९ ई० में खिज्र खाँ ने खुद हिन्दू-राज्य कटेहर पर हमला कर दिया। मार्ग में उसने कोल (आज का इस्लामीकृत अलीगढ़), राहब और सम्भल को लूटा। जिसे लोग मीठी जवान में मुस्लिम शासन कहते हैं, वह हकीकत में विदेशी मुस्लिम लुटेरों और उनके बलात् धर्मान्तरित गुर्गों की डकैतियों की एक लम्बी कहानी है।

एक मुस्लिम झुण्ड का नेता मोहबत खाँ बदायूँ का खुद-मुक्तिपार बन बैठा। उसकी इस धृष्टता से क्रुद्ध होकर खिज्र खाँ ने कूच कर दिया। मार्ग में वह पटियाला नगर को लूटता हुआ बदायूँ तक जा पहुँचा। घेरा डाले उसे छः महीने बीत गए। इधर मुस्लिम-कपट और धोखेबाजी ने उसकी गद्दी को खतरे में डाल दिया। घेरा छोड़कर उसे दिल्ली भागना पड़ा। फलतः किवाम खाँ, इक़्तियार खाँ आदि मृत सुलतान मुहम्मद के बागी सफसर पकड़े, सताए और मारे गए।

वह बगावत अभी पूरी तरह दबी भी नहीं थी कि मुसलमानों के दूसरे गुट ने बगावत कर दी। इसके नेता सारंग खाँ और क्वाजा मली इन्दराबी

वे। दिल्ली की तुल्य मुस्लिम सेना और पंजाब की बागी मुस्लिम सेना के बीच में जालन्धर, सरहिन्द, तरसरी और रोपड़ के हिन्दू क्षेत्र थे। इन दोनों के आक्रमणों एवं प्रत्याक्रमणों के बीच इनकी चटनी बन गई।

विद्रोह को दबाए बिना ही खिज खाँ को दिल्ली लौटना पड़ा। बहुत दिनों से मुस्लिम फन्दे में फँसी दिल्ली को मुक्त करने के लिए राय सरवर देशभक्त हिन्दुओं की सेना जमा कर रहा था। राय सरवर पर हमला करने के लिए उसने एक सेना के साथ ताजुल्-मुल्क को भेज दिया।

ताजुल्-मुल्क की सेना प्लेग की भाँति वारन और कोल (वर्तमान अलीगढ़) होकर गुजरी तथा "इटावा में प्रविष्ट होकर वहाँ एक गाँव को नष्ट कर दिया।" ताजुल्-मुल्क इटावा में राय सरवर की सेना को नहीं हरा सका तो परम्परागत मुस्लिम रोष और जोश में उसने गाँवों की जमीन को कुचतना-मसतना शुरू कर दिया। उसका गिरोह तब "चन्दावर देश की ओर बढ़ा और उसे लूटकर तबाह कर दिया।" (पृष्ठ ५२, ग्रन्थ ४)। उसके बाद यह मुस्लिम क्षुब्ध एक दूसरे हिन्दू क्षेत्र कटेहर में घुस गया था। इन हिन्दू घरों को लूट से ही ये मुस्लिम आक्रमणकारी अपना भरण-पोषण करते थे। यह सच्चाई है। इसे मुस्लिम इतिहासकारों ने बार-बार स्वीकार किया है।

पंजाब में एक दूसरा विद्रोह पनपा। तुघन राय ने मानसुरपुर और बाइल को अपने अधिकार में कर सरहिन्द को घेर लिया। दिल्ली की सुलतानी सेना लुधियाना और उसके पास के गाँवों को लूट रही थी। इसने राय तुघन से कोई भी खेड़छाड़ नहीं की। अपनी लूट बटोरकर मलिक खैरुद्दीन और मजलिसे अली जिरक खाँ चुपचाप दिल्ली लौट गए। सतलज पार के हिन्दू राजा जशरथ गबखर और तुघन राय की सेना का सामना करने का साहस उनमें नहीं था।

१४२१ ई० में फलते-फूलते शान्त हिन्दू राज्यों पर कुख्यात मुस्लिम परम्परा के अनुसार बाधक हमला करते हुए खिज खाँ ने मवाती जाति के नेता बहादुर नाहिर (नाहर) पर धावा बोल दिया। अपने विध्वंसात्मक इस्लामी उन्माद में खिज खाँ का मुस्लिम गुर्गा मलिक ताजुल्-मुल्क १३ जनवरी, १४२१ ई० को मर गया। खिज खाँ ने खालियर दुर्ग पर धावा कर पड़ोश के गाँवों को लूट डाला। हिन्दुओं से मुस्लिम-लगाव वसूल करने,

उनकी नारियों पर बलात्कार करने और उनके बच्चों को हथियाने के बाद खिज खाँ दिल्ली वापिस लौट आया और १५ मई, १४२१ ई० में मर गया।

मुबारिक शाह—अब खिज खाँ का बेटा मुबारिक शाह गद्दी पर बैठा। अपनी तारीखें मुबारिक-शाही में चापलूस याह्या-बिन-अहमद अपने योग्य मालिक के शासन का पिढारा खोलता है और हमेशा की भाँति, जबानी जमाखर्च में उसे "स्पष्टतः एक अच्छा और शाही वारिस" मानता है।

मुबारिक शाह को अब वीर हिन्दू नेता जशरथ गबखर से खतरा पैदा हो गया। उसने एक मुस्लिम गिरोहवाज सुलतान अली को बुरी तरह हराया था। वह अपने आपको कश्मीर का राजा ही नहीं कहता था, बरन् जिसने अपने इच्छामी अभियानों में थट्टा निवासियों की नींद भी हराम कर दी।

सुलतान अली पकड़ा गया। हिन्दुओं ने उसके गिरोह को नष्ट कर दिया। खिज खाँ की मृत्यु का समाचार पाकर वीर जशरथ ने व्यास और सतलज नदी पार की और वह उन धर्मान्तरित हिन्दुओं पर टूट पड़े, जो मुस्लिम गिरोहवाज गुर्गे बनकर सारी भूर मुस्लिम कलाएँ सीख चुके थे। राय जशरथ की चमकती तलवार को देखकर ये नये धर्मान्तरित हिन्दू तलवणजी के राय कुमालुद्दीन और राय फ़िरोज नो दो ग्यारह हो गए। लुधियाना, रोपड़ और जालन्धर के क्षेत्र को राय जशरथ ने अपने अधिकार में ले लिया। मजबूर होकर जिरक खाँ ने जालन्धर दुर्ग भी सौंप दिया।

अब नाक कैसे बचे? मुस्लिम कपट की आदत से लाचार, अपनी नाक बचाने और बन्धक रखने के लिए जिरक खाँ ने जशरथ राय के सहायक तुघन राय के एक पुत्र को उड़ाकर दिल्ली ले जाने की योजना बनाई। जालन्धर के किले से ३ मील दूर बेनी नदी के किनारे जशरथ का पड़ाव था। उन्हें इस योजना की भनक मिल गई। उन्होंने स्वयं खिज खाँ को पकड़ा, कैद किया और लुधियाना पहुँच गए।

जशरथ एक वीर हिन्दू राजा और पंजाब और सिन्ध का शेर था। प्रत्येक हिन्दू के लिए वह प्रातः स्मरणीय है। मुस्लिम लुटेरा मलिक सुलतान शाह लोदी जशरथ की विजयी तलवार के भय से लुधियाना-दुर्ग में घर-घर काँप रहा था। गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ाकर उसने दिल्ली के सुलतान मुबारिक शाह से सहायता की प्रार्थना की।

जशरथ के इस अस्ति उत्पान को मुबारिक अपनी गद्दी के लिए अंतर-नाक समझ रहा था। १४२१ ई० में उसने दिल्ली से पंजाब के लिए प्रस्थान कर दिया। मुसलाधार दर्या के बीच दोनों ओर की सेनाएँ नदी के आर-पार मुश्किलाने के समीप खड़ी थीं। उस स्थान की सारी नौकाएँ जशरथ के अधिकार में थीं। काफ़ी प्रयास के बावजूद लुटेरी मुस्लिम सेना को एक नाव भी नहीं मिली। परवर्ती सहाय्या काबुलपुर, रोपड़, जालंधर, भोवा, और टेकर की पहाड़ियों में हुई थीं। जम्मू के हिन्दू शासक राय भीम, मुस्लिम कुरताओं की प्रजा-पीड़क बबरता से घबराकर, मुस्लिम सेना का गद्द बन बैठा। जशरथ का गद्द टेकर जीता नहीं जा सका। आस-पास के शासीन-सत्तों को मजबूत बनाकर मुस्लिम सेना लाहौर लौट गई।

विध्वंसात्मक मुस्लिम आक्रमणों ने ७०० वर्षों में ही बड़ी सफलता से हिन्दुस्तान की हरी-भरी जमीन की आब उतारकर रख दी। वह न हरी रही न भरी। यह जादू-सा कारनामा कैसे हो गया? याह्या-बिन-अहमद हमें समझाता है—“१४२१ ई० के दिसम्बर में सुलतान ने बरबाद लाहौर शहर में प्रवेश किया। इसमें उल्लूकों के अलावा कोई जिन्दा नहीं था। सुलतान किले और दरवाजों की मरम्मत कराते हुए एक महीने तक यहाँ ठहरे।” (पृष्ठ १६, ग्रन्थ ५)। लाहौर-दुर्ग की इतनी साफ़ स्वीकृति होने के बावजूद याह्या के १०० वर्ष बाद, झूठ के बण्डल जहाँगीरनामा में गाल बजाया गया है कि उसने “लाहौर के किले में प्रवेश किया, जिसे उसके पिता (अकबर) ने बनवाया था।” किसे सच माना जाए? भारतीय और यूरोपीय इतिहासकारों ने अपने भोलेपन और सीधेपन की हद्द कर दी है। ऐसी झूठी बातों को जैसे-का-तैसा मान लिया है। वे अनेक मध्यकालीन महलों के बनाने का श्रेय अकबर को देते हैं। यह दूसरी बात है कि उसने एक महल भी न बनवाया हो।

लाहौर का प्राचीन हिन्दू नाम लवपुर है। इस किले का डिजाइन, कारीगरी और सामग्री सभी कुछ दिल्ली और लाल-किले जैसी है। जब हिन्दू सेना की शक्ति का स्वर्ण युग था तब हिन्दुओं ने काबुल, गजनी, केलाबर, रावमपिन्डी और लाहौर से लेकर दूर दक्षिण तक ऐसे किलों और दुर्गों की एक लाइन खड़ी कर दी थी।

इबारत के मुस्लिम शासनकाल में लुटे-पिटे और नष्ट-भ्रष्ट इन

किलों में से कुछ किलों के नामों को हिन्दू देशभक्तों ने अपने मून से लिख-कर अमर और अमिट कर दिया है। इन किलों में कुछ किले अटक, बनारस, मानकोट, कोट कछहारा, अमरकोट (दिल्ली का लाल-किला) आदि हैं।

सुलतान मुबारिक के पीछे ही पीछे जशरथ भी था। उसने लाहौर के किले को घेर लिया। लाहौर के किले में घिरे मुसलमानों पर ३५ दिन तक आक्रमण कर जशरथ उसकी सेना का सफ़ाया कर रहे थे। मुस्लिम अस्ति दिखलाता हुआ—उसकी पीठ पर मुसलमानों का पिटू भीम कलानौर में जशरथ की सेना पर हमला कर रहा था। दोनों के बीच में जशरथ अस्ति, अजेय खड़ा था। भीम पराजित हुआ। सुलतान चुपके से दिल्ली सरक गया।

अपने सूखते खजाने को भरने के लिए मुबारिक ने हिन्दू सेवकों पर वार्षिक मुस्लिम हमला करने का विचार किया। इतिहासकार याह्या हमें बतलाता है कि—“१४२३ ई० में सुलतान ने गंगा नदी पारकर राठौरों के प्रदेश पर हमला कर दिया और बहुत से हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया।” अपनी सहायता करने वाले हिन्दुओं के प्रति भी मुसलमानों का व्यवहार इतना ही धर्मान्ध, कट्टर और धोखे से भरा हुआ रहा है कि “राय सरवर का पुत्र आतंकित होकर भाग गया।” (पृष्ठ ५८, ग्रन्थ ५) राय सरवर के पुत्र को देर से अकल आई। उसने अपनी कायरता और देशद्रोह का प्रायश्चित्त किया। हिन्दू धन को छान-पीकर मोटे होने वाले कुछ मुस्लिम दुष्टों को उसने सजाएँ दीं और इटावा को अपने अधीन कर लिया। हारकर मुबारिक शाह को दिल्ली वापिस आना पड़ा। यह दूसरी बात है कि हमेशा की भाँति मुस्लिम इतिहासकार दिल्ली की ‘मुस्लिम’ सेना की ‘जीत’ का तबला बजाने में नहीं चूके।

इसके बाद ही जशरथ ने भी मुस्लिम हमलावरों के हिन्दू सहायक भीम का हिसाब बराबर कर दिया। भीम की हिन्दू सेना ने अपने हिन्दुत्व के द्रोही चीफ़ की मृत्यु से मुक्ति की साँस ली। उसने वीर हिन्दू जशरथ को अपना नेता स्वीकार कर लिया। उस काले काल में जब मुस्लिम सेनाओं के जल्ये हिन्दुत्व को निगलने की तैयारी कर रहे थे हिन्दू शौर्य से भरपूर जशरथ सूर्य की भाँति चमका था। उसकी कूटनीति एवं रण-चातुरी ने हिन्दुत्व की विजय का महान् मार्ग दिखाया है। कुतज वंशजों को उसकी याद हमेशा ताज़ी रखनी चाहिए।

में न्यायी, बुद्धिमान, रहनदिल, दयालु और उदार लिखा गया है। यह दूसरी बात है कि उनमें से हर एक ने ज़िन्दगी-भर बलात्कार, लूट, हत्या, और नरसंहार का ही धन्धा किया था। उन लोगों ने अपने बाप, भाई को भी नहीं छोड़ा। यह कहकर वे ही इतिहास पाठकों को ठगते हैं कि मुस्लिम विध्वंसकारियों ने "मन्दिरों को नष्ट किया और मस्जिदों (तथा मकबरों) को बनाया।" इसका अर्थ सिर्फ़ इतना ही है कि उन लोगों ने हिन्दू मन्दिरों का नामान्तरण कर दिया। किसी भी मध्यकालीन मुसलमान ने एक ईंट या पत्थर कहीं नहीं लगवाया। गिरोहबाजों ने रेडीमेड हिन्दू घरों, मन्दिरों, महलों, प्रासादों और किलों को अपने अधिकार में करके उनका उपयोग किया और उसे निर्माण की संज्ञा दे दी।

१४२१ ई० में मेवातियों के हाथों सुलतान की हार इस बात से साबित होती है कि अपनी वार्षिक हिन्दू-लूट यात्रा में सुलतान १२ नवम्बर, १४२६ ई० को फिर मेवात की ओर बढ़ा था। इस बार भी उसे वीर हिन्दुओं के हाथों हारना पड़ा। हताश होकर सुलतान बयाना की ओर मुड़ा। यहाँ का मुस्लिम बागी मुहम्मद ख़ाँ अपनी खिचड़ी अलग ही पका रहा था। उसके कुछ सहायकों को सुलतान ने घूस देकर मिलाया और उसके हरम की औरतों को आत्म-समर्पण करने के लिए फुसलाया। बयाना का किला उसने मुकबिल ख़ाँ को सौंप दिया तथा "सौकरी को जो अब फ़तहपुर के नाम से जाना जाता है, मलिक ख़ुद्दीन तुहफ़ा के अधिकार में दे दिया।" (पृष्ठ ६२, पन्ना ४)।

ये सभी लोगों का ध्यान ऊपर की पंक्तियों की ओर खींचना चाहता हूँ। इसमें मुस्लिम इतिहासकार याह्या-बिन-अहमद ने अकबर से १०० वर्ष पूर्व फ़तहपुर सौकरी का वर्णन किया है, जो उसके समय मौजूद था। फिर भी इतिहासकार, सरकार और संसार के छात्रों को ठगते हैं, भ्रम में डालते हैं और बतलाते हैं कि तीसरे मुग़ल बादशाह अकबर ने १५०० ई० से १८८५ ई० के बीच इसका निर्माण किया था। क्या इस इतिहास को, जो स्त्रुनों और कालिजों में पड़ाया जाता है, कोरी बकवास नहीं कहा जाएगा? ख़ालियर, अंगर, और चन्दावर के हिन्दू शासकों ने मुस्लिम लुटेरों को डाल नहीं मलसे दी। यह बात याह्या की किताब से स्पष्ट हो जाती है

क्योंकि हमेशा की भाँति मुस्लिम चापलूसी कहती है कि "रायों ने कोई विरोध नहीं किया और वे पुराने कानून के मुताबिक़ खिराज देते हैं।"

मुहम्मद ख़ाँ दिल्ली से अपनी सीमा में भाग गया और उसने खैरुद्दीन से बयाना और फ़तहपुर सीकरी छीन लिये। जगता है सारे देश ने ही सुलतान से बगावत कर दी। इब्राहीम शर्की ने कालपी कूच कर दिया। उसका भाई इटावा में लूट मचा रहा था। खुद सुलतान ने हरीली और तरौली को लूटा। गंगा-यमुना के पवित्र क्षेत्र में अराजकता फैल गई। इस खुले खूनी खेल में मुस्लिम सेनाओं, नगर-सिपाहियों, फन्देबाजों और बे-जगाम गुण्डों में होड़ मच गई थी।

हमें पुनः बड़ी सादगी से बताया जाता है कि सुलतान ने यह समझकर कि "दोनों ओर के जंगबाज मुसलमान थे" उन लोगों ने एक दूसरे का पीछा छोड़ दिया। प्रत्येक बार कई महीने के संकटों और पराजयों के बाद ही क्या मुस्लिम सुलतान को यह समझ आती है कि अन्ततः वह एक-दूसरे मुस्लिम गिरोहबाज के साथ ही लड़ाई मोल ले रहे हैं?

कंगाल सुलतान फिर हिन्दू क्षेत्र की ओर मुड़े। "उसने ख़ालियर के राय तथा अन्य रायों में पुराने रिवाज के अनुसार खिराज, कर और नज़राना वसूल किया।" इस प्रकार पाठक खुद नोट कर सकते हैं कि उनकी अपनी स्वीकृति के अनुसार हिन्दू घरों और क्षेत्रों को तबाह करना मुसलमानों का "पुराना रिवाज" था।

३० अप्रैल, १४२८ ई० को दिल्ली लौटकर सुलतान "मौज-मस्ती और रंगरेलियों में डूब गए।" इस व्यभिचारी प्याले की दो-चार चुस्कियाँ ही सुलतान ले पाए थे कि वीर जशरथ के लाहौर, कलानौर, जालन्धर और कांगड़ा के साथ सारे पंजाब को अपने अधिकार में लेने का समाचार आ पहुँचा। बयाना ने फिर बगावत कर दी। खिन्न और उद्विग्न होकर सुलतान फिर (१४२६-३० ई० में) ख़ालियर लूटने निकले। इसने हाथकन्त देश को लूट कर बरबाद कर दिया और बहुत-से (हिन्दुओं) को कैद कर लिया।" सुलतान की दिल्ली वापसी के समय एक प्रभावशाली मुस्लिम दरबारी "सईद सलीम मार्ग में ही मर गए।" इस मध्यकालीन मुस्लिम दरबार के इतिहासकार याह्या ने लिखा है कि "वह एक लालची आदमी था, जिसने इस दौरान तबरहिन्द (सरहिन्द) के किले में बहुत अधिक धन, अनाज और

शासन बना कर लिया था।" सईद के बेटे ने अब सुलतान की अवज्ञा कर दी और दोनों में लड़ाई छिड़ गयी।

१४११-१२ ई० में अहमद, अविजित अपराजित हीरो जशरथ ने दिल्ली-बाही पर बैठे विदेशी सुलतान के विरुद्ध दूसरा अभियान छेड़ दिया। बालनगर से लिया गया। इसका विरोध करने के लिए मलिक सिकन्दर आया और कैद हो गया। जब सुलतान इन सारी ललकारों के बीच दिल्ली में आराम कर रहा था, शेख अली ने सुलतान की सेना पर हमला कर दिया। शेख अली एक इस्लामान्तरित हिन्दू था, जिसके हृदय में हिन्दू देश-भक्ति की आग जल रही थी। तीव्र प्रहार से इस वीर व्यक्ति ने तुमुम्ब-दुर्ग को जीत लिया। इसके बाद उसके अनुयायियों ने इस (भूतपूर्व हिन्दू) दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया। गालियों की बोछाड़ करते हुए बड़े दुःखी दिन से इतिहासकार याह्या ने लिखा है कि—“सारे मुसलमान नापाक अलिम काफिरों (यानी हिन्दुओं) के कैदी हो गए।” उसे याद नहीं रहता कि ये सारे तथाकथित ‘मुसलमान’ वास्तव में हिन्दू ही थे, जिन्हें मारकर ‘मुसलमान’ बनाया गया था।

बगाना और ग्वालियर भी बागी ही थे, दूसरी बगावत का विस्फोट पंजाब के समाना में हुआ। मलिक बत्ताहदाद के अधीन सुलतान ने एक सेना पंजाब भेज दी। बिकट जशरथ मुस्लिम सेना पर टूट पड़ा और उसे तितर-बितर कर दिया। बोखलाकर सुलतान लूट के लिए मेवात की ओर मुड़ गया और “उस प्रदेश के एक बड़े भाग को तहस-नहस कर डाला।” तारीखे मुबारिक शाही के अनुसार इसके बाद मुबारिक गुण्डे ग्वालियर और इटावा के काफिरों (यानी हिन्दुओं) को धमकाने के लिए मुड़े। (पृष्ठ ७५, ग्रन्थ ४)।

दिल्ली की मुस्लिम-सत्ता के अधीन, एक के बाद दूसरे केन्द्र को छीनता अमान्तरित हिन्दू शेख अली पंजाब होकर आगे बढ़ता गया। तारीखे मुबारिक शाही से स्पष्ट हो जाता है कि वह अपने लूटे हिन्दू धर्म और खूनी मुसलानी तलवार के नीचे धर्म से काँपते अपने देशवासियों का बदला लेने के लिए निकला था। मुस्लिम सैनिकों के लाहोरी कमाण्डर मलिक यूसुफ और मलिक इस्माइल हिन्दू तलवार से मयभीत होकर रातों-रात लाहौर-फिरोज से भाग निकले। “उनका पीछा करने के लिए शेख अली ने एक सेना

भेज दी, पीछा करने वालों ने अनेक लोगों को घार गिराया, दूसरे दिन शेख अली ने नगर के सारे मुसलमानों को कैद कर लिया।” मुस्लिम इतिहासकार याह्या तारीखे मुबारिक शाही में लिखता है कि—“इस्लाम की गद्दी को नष्ट करने और मुसलमानों को कैद करने के अतिरिक्त शेख अली को (लगता है) और कोई काम नहीं था।” (पृष्ठ ७६, ग्रन्थ ४)। मध्यकालीन इस्लामी जीवन और करतूतों का स्वाद चखने के बाद शेख अली ने मुसलमानों की नकल की और उन लोगों को उनके कारनामों का स्वाद चखाने लगा। विदेशी मुस्लिम आक्रमणों के समय भी लाहौर वर्षों तक उसी प्रकार हिन्दू जमीन से कटकर अलग हो गया था, जिस प्रकार वह आज हो गया है। मगर जशरथ और अली शेख ने यह साबित कर दिया कि हिन्दुस्तान के लिए लाहौर सैकड़ों बार जीता जा सकता है।

कुछ दूसरे वीर हिन्दुओं ने, जिनमें कँगू एवं कजवी खत्री के पुत्र भी थे, विदेशी मुस्लिम सुलतान को पकड़कर उसकी सरकार को उलट देने की योजना बनाई। जबकि सुलतान बोखलाया हुआ, तंगहाल और अभावग्रस्त था। याह्या-बिन-अहमद ने अपनी मुस्लिम इतिहासकारों वाली परम्परागत आदत और स्वभाव का परिचय दिया है। वह लिखता है कि ३१ अक्तूबर, १४६३ ई० को इस सुलतान ने भी खैराबाद में एक नगर की नींव डाली।

यह बड़े शोक की बात है कि वे इतिहासकार जो अपने आपको विद्वान् मानते हैं ऐसे पालतू मुस्लिम लोगों की झूठी गप्पों पर विश्वास करते हुए इस बात की जरा भी खोज करने की जरूरत नहीं समझते कि इन सुलतानों और शैतानों के पास, जिनको मकबরों, मस्जिदों, नगरों, प्रासादों, किलों, और भवनों को बनाने का श्रेय दिया जाता है, एक नगर तो बूर रहा, क्या एक इमारत बनाने लायक शान्ति, सुरक्षा, सम्पत्ति, समय और प्रतिभा थी?

शहर को बनाने में उसने हाथ लगाया ही था कि उसके पास मृत सईद के बागी पुत्र पुलाद का कटा हुआ सिर आ पहुँचा। इस बार बागी पंजाब का मुकाबला करने का साहस बटोरकर सुलतान आगे बढ़ा। कुछ समय बाद ही सुलतान वापिस लौटकर आया तो खीजिए, देखिए! सुलतान अपने नवनिर्मित नगर मुबारिकबाद में प्रवेश कर रहे हैं। कुछ महीनों में

ही वह मगर सिर से लेकर पैर तक बनकर तैयार हो गया—अगर हम इतिहासकार याह्या का विश्वास कर सकें तो ?

यहसाह ने भी देखा कि यह पतित काफी दिन तक दिल्ली की गद्दी को गन्दा कर चुका है। अपनी रहमदिली से उसने सुलतान के कुख्यात शासन पर पूर्णविराम लगा दिया। १३ वर्ष, ३ महीने और १६ दिन वह गद्दी पर रहा। १६ जनवरी, १४३४ ई० को पाक सैयद सुलतान मुबारिक शाह पर रहा। १६ जनवरी, १४३४ ई० को पाक सैयद सुलतान मुबारिक शाह "नमाज की तैयारी कर रहे थे, (कि) मीरान सदर ने पहरे पर से अभीरों को हटा दिया। बिदाई लेने के बहाने कुछ हिन्दू घोड़ों पर चढ़कर आए। सुधारण कंगू अपने दल के साथ बाहर ही ठहर गया कि सुलतान की सहायता के लिए कोई भीतर न जा सके। सिन्धु पाल तेजी से भीतर गया और उसने राजा के सिर पर ऐसा वार किया कि उसकी जिन्दगी का खून जमीन पर बहने लगा।"

मुहम्मद शाह—उसके बाद खिज खाँ का पोता मुहम्मद शाह गद्दी पर बैठा। मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासकारों की आदत के अनुसार याह्या ने सुलतान को "उदार और अच्छे गुणों से भरपूर" होने का खिताब दिया है। परबती सभी इतिहासकार उन्हीं झूठी बातों में आ गए हैं, जिनमें प्रत्येक मुस्लिम सुलतान को "न्यायी, रहमदिल और बुद्धिमान" कहा गया है। यह और बात है कि उसी इतिहासकार ने उसी सुलतान के शासन का ऐसा वर्णन किया है, जिसमें से सगातार अत्याचार, कपट, धोखा, तबाही, बरबादी, डोह, जातक, साजिश, हत्या और संहार की सड़ान्ध आती है।

वर्षा नये सुलतान में सारी अच्छाइयाँ ही भरी हुई थीं। सखारुल् मुल्क "अपनी योजना पर जमा हुआ धन तथा खजाना, भण्डार, घोड़े, हाथी और इस्लाम को अपने ही कब्जे में कर रखा था।" दूसरा मुस्लिम मुसिकुल् शाक प्रचलित मध्यकालीन मुस्लिम परम्परा के अनुसार सखारुल् मुल्क बहुत ही धूर्त था। सुलतान-भक्ति की कसम खाने के बहाने उसने दरबारियों को बुलवाया। कुछ की उसने हत्या कर दी। बाकी को जेल में डाल दिया। स्पष्ट होता है कि नया सुलतान सिर्फ कठपुतली था और हमेशा की भाँति मध्यकालीन मुस्लिम हाथ-हत्या बेतगाम चलने लगी।

सिन्धुपाल ने बयाना, अमरोहा, मारनील और दोआब के कुछ क्षेत्रों को वापिस हिन्दू-ब्राह्मणों में लाने का विचार किया। जब एक हिन्दू-राणा

बयाना दुर्ग का चार्ज लेने के लिए गया तो घोसे से मारा गया। उसके सिर को काटकर दुर्ग द्वार पर लटका दिया गया तथा उसके परिवार की कुछ स्त्रियों और बच्चों को मुस्लिम-हरमों में हाँक दिया गया।

अपने खास मुस्लिम स्टाइल में याह्या-बिन-अहमद सभी हिन्दुओं को "कमीना, गन्दा, काफिर" कहता है। बिना एक भी अपवाद के दूसरे सभी मुस्लिम इतिहासकार अनिवार्य रूप से हिन्दुओं को और भी रंगीन इस्लामी गालियाँ देते हैं। यानी विदेशी गुण्डों का एक दल, जिसने व्यभिचार और कत्लेआम के अलावा और कुछ नहीं किया, हिन्दुस्तान में हिन्दुओं को "कुत्ते और चोर, डाकू और बदमाश" ही नहीं कहते वरन् अपनी पराजय को भी "इस्लाम की महान जीत" कहकर गौरवान्वित करते हैं। क्या यह धर्मान्ध-धृष्टता का बेजोड़ उदाहरण नहीं है ?

४ अगस्त, १४३४ ई० को सखारुल् मुल्क ने "अच्छे गुणों से भरपूर" सुलतान की हत्या करने का प्रयास किया, मगर पासा पलट गया। सखारुल् मुल्क और उसके साथियों के सिर भुटटे से उड़ गए। इसके बाद हमेशा की भाँति उन हिन्दुओं पर मुस्लिम अत्याचारों की वर्षा होने लगी "जिन्होंने अपने आपको अपने-अपने घरों में बन्द कर लिया था।" सखारुल् मुल्क बगदाद के दरवाजे में प्रविष्ट हो गया (बहुत खोजने पर भी पाठकों को इस नाम का कोई नगर हिन्दुस्तान में नहीं मिलेगा, हिन्दू के स्थानों का मुसलमानीकरण करने की धुन में ये लोग कहीं-में-कहाँ पहुँच गए ?) अपनी स्त्रियों एवं बच्चों को घर में बन्द कर सिन्धुपाल ने घर में आग लगा दी और वीर हिन्दू परम्परा के अनुसार लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की। कंगू तथा अन्य क्षत्रियों को पकड़कर महल में उस जगह लाया गया, जहाँ मुबारिक शाह ने दम तोड़ा था। मलिक होशियार और मुबारिक कोतवाल का सिर "पाल-दरवाजे" के सामने काट दिया गया (स्पष्ट है कि यह पाल-दरवाजा पाल किले का ही है)।

अपने आपको थोड़ा-बहुत सुरक्षित और हल्का पाकर सैयद खानदान के सुलतान मुहम्मद शाह ने वार्षिक लूट-यात्रा का उद्घाटन करते हुए सुलतान की ओर कूच करने का निर्णय किया। मगर कुछ मकबরों का ही दर्शन कर वह वापिस लौट आया।

भारतीय इतिहास के छात्र इस बात पर ध्यान दें कि एक धार्मिक

इस्लामी कर्तव्य समझकर प्रत्येक वर्ष बड़े परिश्रम से लूट और नरसंहार के अधिष्ठान में निकलने की आसुरी आदत भारत के प्रत्येक मुस्लिम शासक में थी। काश्मिर के समय से ही इस इस्लामी कर्तव्य का एक वार्षिक चार्ट इस बात को प्रमाणित करने के लिए काफ़ी है। मुसलमानों के अमीर होने और उनकी संख्या बढ़ने का यही राज है।

१४३६ ई० में सुलतान मुहम्मद शाह ने समाना के लिए कूच कर दिया। "उसके सिपहसालारों ने इस प्रदेश को बरबाद कर दिया और सुलतान दिल्ली वापिस लौट आए।" (पृष्ठ ८५, ग्रन्थ ४)।

प्रारम्भ में ही इतिहासकार याह्या-बिन-अहमद ने लिखा था कि सुलतान "अच्छे गुणों से भरा-पूरा" है। अब हमेशा की भाँति मुस्लिम कलाबाजी दिखाते हुए वही इतिहासकार हमें बतलाता है कि—“सुलतान ने सम्पत्ति की हिकाजत के लिए कोई भी कदम नहीं उठाया। वे सिर्फ़ लापरवाही और ऐशोद्भरत में ग़र्ज़ हो गए। सभी लोग पागल हो गए थे और सभी लोग चिन्तित थे।”

सुलतान को ऐशोद्भरत में ग़र्ज़ देखकर मालवा के खिल्जी सुलतान मुहम्मद दिल्ली पर काबू पाने निकले। इसका सामना दिल्ली की सेना से हो गया। इसका सेनापति बहलोल लोदी नामक एक अफ़ग़ान था। यह बाद में सैयदों को हटाकर खुद गद्दी पर बैठा था। इन दो मुहम्मदों की सेनाओं को आपस में उलझा देखकर गुजरात के सुलतान अहमद शाह ने मालवा की खिल्जी राजधानी माण्डू के लिए कूच कर दिया। मुहम्मद खिल्जी ने मटपट एक सन्धि की और वापिस भागा। सन्धि-पत्र को बगल में दबाकर बहलोल लोदी ने मालवा के मुहम्मद का पीछा किया और उसका सारा सामान लूट लिया। उसे भी तो दिल्ली के सुलतान को ललकारने के लिए धन चाहिए।

इस कपटी आक्रमण के समय दरबार में बहलोल लोदी का पक्ष ऊँचा हो गया। सुलतान ने लाहौर और दीपलपुर की जागीर बहलोल लोदी को दे दी। यह और बात थी कि उस समय सारे पंजाब पर जशरथ संस्कार का शासन था। बहलोल लोदी ने जशरथ से एक समझौता कर उस वीर योद्धा की सहायता लेने का विचार किया। जशरथ की सहायता पा जाने का आश्वासन मिलने पर बहलोल लोदी ने पास-पास के क्षेत्रों को अपने काबू में

कर सुलतान से टक्कर से ली। कुछ दूर पर उसे रोका तो गया मगर १४४५ ई० में सुलतान की मृत्यु हो गई। शायद उसे जहर दे दिया गया था। इसने १० वर्ष और कुछ महीने ही राज्य किया था।

मृत सुलतान के पुत्र अलाउद्दीन को गद्दी पर बैठाया गया। ऊपरी भक्ति का दिखावा करते हुए बहलोल लोदी ने उसे गद्दी से हटाने का पूरा विचार कर लिया। इतिहासकार याह्या को भी अब मृत सुलतान का कोई डर नहीं रहा। इसीलिए उसने साफ़-साफ़ शब्दों में लिख दिया कि तैसा सुलतान “अपने पिता से भी अधिक अयोग्य और लापरवाह था” यानी जिस मुहम्मद को उसने पहले “अच्छे गुणों से भरा पूरा” बताया था वह एक पापी और दुष्ट था।

गद्दी पर बैठने के बाद ही अलाउद्दीन सैयद अपनी पहली लूट यात्रा पर मुलतान की ओर चला। वह अभी दो-चार गाँव ही लूट गया था कि जौनपुर के मुस्लिम सुलतान का दिल्ली कूच करने का समाचार उसे मिल गया। सुलतान ताबड़-तोड़ वापिस भागा।

१४४७ ई० में वह बदायूँ और उसके आस-पास के गाँवों को लूटने निकला। वज़ीर हिसम भी साथ था। बदायूँ लूट में निकला सुलतान खुद “ऐश में डूब गया”। दामाद और साला दोनों आपस में झगड़ बैठे। एक मारा गया। दूसरे को नये वज़ीर हमीद खाँ की आज्ञा पर मार दिया गया। पदच्युत वज़ीर हिसम खाँ बहलोल लोदी से जा मिला। वह एक बड़ी फ़ौज लेकर आघमका। उसे अन्तिम सैयद सुलतान की मृत्यु की सूचना दी जाती है। अतएव इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि उसकी मौत बहलोल लोदी के हाथों हुई। अलाउद्दीन का शासन ८ वर्ष और कुछ महीने का था। उसके साथ ही सैयद खानदान का अन्त हो गया।

एक के बाद दूसरे मुस्लिम खानदान, मुसलमानी मशाल और इस्लामी तलवार से लगातार हिन्दुस्तान को तबाह और बरबाद कर रहे थे। वह मशाल और तलवार सैयदों के हाथ से ज़मीन पर गिर पड़ी। अब लोदियों ने इसे उठा लिया और इस खानदान के शैतानों ने आतंक, यातना और विध्वंस का एक नया रिकार्ड कायम कर दिखाया।

बहलोल लोदी

सम्राट्‌हरीन दिल्ली की सुलतानी गद्दी पर बैठने वाले विदेशी हमलावरों के जैतानी खानदानों के तारतम्य में लोदियों ने सैयदों के बाद दुष्टता का एक नया अभ्यास जोड़ा। बहलोल लोदी दिल्ली के क्रूर-भोगी सुलतानों में लोदी खानदान की नींव डालने वाला था। इस्लाम के नाम पर चलने वाली क्रूर अत्याचारों की चक्की को इसने चालू रखा।

बनेक साम्प्रदायिक और मायावी नेतागण ऐसे हैं जो २०वीं शताब्दी के मुसलमानों की भलाई नहीं सोचते। कुछ भलाई सोचने वाले लोग हैं भी तो वे देश-भक्त दिक्-भ्रम में पड़े हुए हैं। ये भारत के हजार वर्षीय लम्बे पुस्तिस कुशासन के काले कारनामों, यातनाओं और अत्याचारों को महान् बताते हैं।

ऐसे लोगों को हम इतिहास की परिभाषा बता देना चाहते हैं। इतिहास समय-कम के अनुसार देश के भूतकाल की वास्तविक घटनाओं का सही-सही वर्णन होता है। इसलिए किसी उद्देश्य से प्रेरित गप्पों या साम्प्रदायिक और राजनीतिक मिलावट के लिए इसमें कोई जगह नहीं है। सारे संसार के स्कूलों में पढ़ाने के लिए संक्षिप्त रूप में इतिहास एक प्राथमिक महत्त्व का विषय माना जाता है ताकि मानवता अपनी पिछली पीढ़ियों की भूलों को न दोहराकर अपना विकास कर सके। अगर साम्प्रदायिक या राजनीतिक उद्देश्य से प्रेरित गप्पों से इतिहास लिखा जाता है तो यह महत्त्वपूर्ण उद्देश्य निरर्थक हो जाएगा।

इस पर भी जो लोग इतिहास में मिलावट कर इसे झूठ करना चाहते हैं, हम उनसे पूछना चाहेंगे कि क्या ऐसी झूठी गप्पों का कोई अन्त भी है? अगर कोई विशेष सम्प्रदाय इतिहास से सिबाजी और राणा प्रताप को पूरी

तरह मिटा देना चाहे तो क्या इतिहासकर ऐसा कर सकते? इसपर भी इस बात की क्या गारंटी है कि यही माँग उन लोगों की आखिरी माँग होगी। अगर इतिहास के साथ इस प्रकार की खींच-तान की जाएगी तो फिर वह इतिहास नहीं रहेगा, चूँ-चूँ का मुरब्बा हो जाएगा। इसलिए साम्प्रदायिक या राजनीतिक मायावियों को इतिहास के साथ किसी प्रकार की खिलवाड़ करने की छूट नहीं देनी चाहिए। इतिहास एक सच्चाई है, सम्पूर्ण सच्चाई और सच्चाई के अलावा कुछ नहीं। जबकि साम्प्रदायिकता और राजनीति में सिर्फ झूठ ही भरी रहती है तथा झूठ के अलावा कुछ नहीं रहता। इसलिए इतिहास को इन दो प्रकार के व्यक्तियों से बचाकर रखना चाहिए। उसे संरक्षण मिलना चाहिए।

किस प्रकार इतिहास के साथ खिलवाड़ किया जाता है, इसकी एक सच्ची कहानी हम लोगों के सामने आई है। महाराष्ट्र प्रान्त के एक भूत-पूर्व शिक्षा-मन्त्री ने विख्यात शिक्षकों का एक सम्मेलन बुलाया तथा साम्प्रदायिक एकता बनाए रखने के लिए किस प्रकार इतिहास लिखा जाये इसकी आवश्यकता पर एक राजनीतिक उपदेश दिया। बहुत से आमन्त्रित व्यक्ति सरकारी स्कूलों तथा सरकारी सहायता प्राप्त विभागों के प्राचार्य और शिक्षक थे। मीठी भाव-भंगिमा तथा कपटी मुस्कानों से उन सभी उपस्थित लोगों ने धर्म-निरपेक्ष ज्ञान से लबालब भरे मन्त्रीजी के गम्भीर शब्दों पर अपनी-अपनी सहमति प्रकट करते हुए स्वीकारात्मक सिर हिलाया।

आमन्त्रित व्यक्तियों में कुछ ऊँचे दर्जे के निरपेक्ष इतिहासकार भी थे। उनमें से दो इतिहासकार असाधारण रूप से शान्त और मौन थे। उन दोनों की इस चुप्पी से परेशान होकर मन्त्रीजी ने पूछा कि क्या आप लोग इतिहास लेखन के इस 'विवेकपूर्ण' और 'विरोधहीन' आधार से सहमत नहीं हैं?

इन दो मौन योगियों में से एक ने मन्त्रीजी से स्पष्ट कह दिया कि इतिहास इतिहास है, इसमें गोलमाल या मिलावट नहीं की जा सकती और न राजनीति के लिए इसे तोड़ा-मरोड़ा ही जा सकता है।

मन्त्रीजी आवाकू रह गए। उसका प्रस्ताव जैसा कि उनका विचार था, सर्व-सम्मति से स्वीकृत नहीं हुआ। बोखलाकर मन्त्रीजी दूसरे असहमत इतिहासकार की ओर मुड़े। कुछ हिचकिचाते हुए दूसरे इतिहासकार ने

उत्तर दिया कि आपकी माँग एकदम असम्भव या विवेकहीन नहीं है। निश्चय ही इतिहास तत्कालीन सरकार की इच्छा के अनुसार लिखा जा सकता है। ऐसी घटना हमेशा से घटती चली आई है।

एक स्वतन्त्र इतिहासकार से, जिसका मोन खतरे की घण्टी था, अनपेक्षित सहमति पा जाने पर मन्त्रीजी गद्गद् हो गए। उन्होंने उन इतिहासकार के इतिहास के जिसकी एवं प्राचायों की सभा में इतिहास-लेखन की दिशा निर्देश के लिए कुछ कहने का आग्रह किया।

इतिहासकार ने बोलना आरम्भ किया—“बहनो और भाइयो, अगर सरकार आपसे चाहती है कि आप इतिहास इस प्रकार लिखें या इस प्रकार पढ़ाएँ, जिससे साम्प्रदायिक-एकता और मैत्री पैदा हो तो यह कोई कठिन काम नहीं है। मैं आपको इसका प्रैक्टिकल उदाहरण दूंगा। अगर आपको उस घटना का वर्णन करना है, जिसमें शिवाजी ने मूर्ख बनाकर और अपने कानू में लाकर हत्यारे अफ़जल खाँ को मारा था तो आप अपने पाठकों और छात्रों को यह घटना इस प्रकार बतलावें कि अफ़जल खाँ और शिवाजी के पिता बड़े गहरे दोस्त थे। साथ ही वे दोनों साम्प्रदायिक मैत्री के लिए बड़े उत्सुक भी थे। जब उन दोनों के पुत्र जवान हुए तो दोनों पिता जितनी बल्दी हो सके उतनी बल्दी दोनों की घेंट करा देने के लिए चिन्तित हो गए ताकि परम्परागत पारिवारिक दोस्ती आगे बढ़े। शिवाजी मेजबान बनने को तैयार हो गए। उनको यह बताया गया कि अफ़जल खाँ ज़रा भारी शरीर का सम्झा तमड़ा जादमी था। संयोग से शिवाजी ज़रा दुबले-पतले और नाटे थे। तो उन्होंने अफ़जल खाँ को गुदगुदी करने के लिए और अट्टहास तक हँसी पकाकर करने के लिए बचनस पहन लिया। वे दोनों एक सजे सजाए शांतिघर में मिले। गहरे दोस्त होने के साथ-साथ वे दोनों अपने-अपने साम्प्रदायों के नेता भी थे। इसलिए दोनों ने एक-दूसरे का आनिमन किया। शिवाजी के बचपन की चंचलता गई नहीं थी। उन्होंने अफ़जल खाँ की जो गुदगुदावा शुरू किया तो गुदगुदाते ही रहे। प्रथम मिनट की नज़रता के कारण अफ़जल हँसी से अट्टहास करता ही रहा। मगर शरीर से जारी होने के कारण, साथ ही साम्प्रदायिक मैत्री का डोख ज़रा अधिक हो जाने के कारण बेचारे अफ़जल खाँ की दिल का दौरा पड़ गया। वह वहीं ज़मीन पर डेर हो गया। शिवाजी ने उसे बड़ी धूमधाम से दफ़ना

दिया। इसलिए बहनो और भाइयो अफ़जल खाँ की कब्र तथा इसी कारण से भारत के प्रत्येक मुसलमान की कब्र साम्प्रदायिक मैत्री का नमूना है। अगर सरकार की इच्छा है तो इस प्रकार इतिहास लिखा जा सकता है और हमें लिखना ही चाहिए।”

मन्त्रीजी सुन्न हो गए। उनकी अकल गुम हो गई। उन्होंने मीटिंग बरखास्त कर दी।

आशा है पाठक इतिहास के ऐसे प्रयोग की असंगतियों को समझ ही गए होंगे, जिन्हें उक्त इतिहासकार ने संक्षिप्त रूप से व्यक्त किया था।

मेरे विचार से साम्प्रदायिक मैत्री के लिए इतिहास के व्यवहार का अधिक लाभदायक, तथ्यपूर्ण, व्यावहारिक, विवेकशील और प्रभावशाली मार्ग है जनता को कोरी सच्चाई बतला देना कि घटना कैसे घटी और क्यों घटी। अगर कोई शर्मनाक और बर्बर घटना हो गई है तो जनता को सचेत कर देना चाहिए ताकि वैसी दुखद घटना दूसरी बार न घटे। स्कूलों में इतिहास पढ़ाने का यही उद्देश्य है। अगर इसमें मिलावट की गई तो इतिहास इतिहास नहीं रहेगा वरन् अरेबियन नाइट और पंचतंत्र का किस्सा हो जाएगा।

इसी प्रकार हम बहलोल लोदी की दिल्ली-गद्दी अपहरण की कहानी पेश करेंगे। प्रारम्भ में हम पाठकों को यह सुाद दिला देना चाहते हैं कि सर्वसाधारण नियमों के अनुसार एक अपहर्ता कभी भी अच्छा शासक नहीं हो सकता। गद्दी हड़पने के लिए जो पीड़ा और यातना का उपयोग करता है वह गद्दी पर बैठने के बाद एक बेलगाम, निरंकुश और अत्याचारी शासक हो जाता है। भूली-भटकी मानवता को सही मार्ग पर लाने के लिए इतिहास की पढ़ाई के समय इन्हीं नियमों और निगमनों का पढ़ाया जाना आवश्यक है।

मलिक बहलोल लोदी सुलतानशाह लोदी उर्फ इस्लाम खाँ का भतीजा था। यह सैयद खानदान का एक प्रभावशाली विदेशी कुलीन था।

इस्लाम खाँ की मृत्यु के बाद उसकी उपाधि लेकर बहलोल सरहिन्द का गवर्नर हो गया। यह भी सम्भव है कि उसने अपने चाचा की हत्या कर गवर्नरशिप हासिल की हो क्योंकि हत्या इन विदेशी मुसलमानों का जन्म-सिद्ध अधिकार था। 'तारीखे-खान जहान लोदी' के इतिहासकार नियाम-

तुलना हमें बताते हैं कि बहलोल ने सरहिन्द के गवर्नर के रूप में अपनी पोखीजन मजबूत कर ली थी, जिसका मतलब होता है यातना और आतंक का बेधड़क प्रयोग।

बहलोल ने अपने चाचा की जागीर भी हड़पी थी, यह बात इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि इस्लाम खाँ का अपना पुत्र कुतुब खाँ मुंह ताकता ही रह गया। बहलोल को हटाकर अपने पिता की जागीर दिला देने के लिए उसने दिल्ली-दरबार से भी प्रार्थना की।

दिल्ली सुलतान मुहम्मद ने बहलोल की उद्दण्ड और चपल-चाल में उच्च महत्वाकांक्षा की झलक देखी। उसकी महत्वाकांक्षा को कुचलने के लिए उसने हिंसाम खाँ उर्फ हाजी सुदानी के अधीन एक बड़ी फौज भेज दी। करीब गीब में भयंकर युद्ध हुआ। दिल्ली सेना हारकर पीछे हट गई। बहलोल ताद गया कि दिल्ली की सुलतानी भी उसकी मुट्ठी में है।

बहलोल के पिता और दादा दोनों ही व्यापारी थे। भारत पर आक्रमण करने वाले विदेशी मुस्लिम लुटेरों के गिरोहों को गधे, घोड़े और खच्चर बेच-बेचकर उन दोनों ने दोनों हाथों से धन बटोरा था। बदले में उनको भारत की लूट से प्राप्त धन, स्त्रियाँ और गुलाम मिलते थे जिसे वे पूरा मुआफ़ा लेकर बेच देते थे। परम्परागत अश्व-व्यापारी का इस प्रवीणता ने दिल्ली गद्दी हथियाने में बहलोल की पूरी मदद की थी।

अपने शक्तिशाली शिकार के समीप होने के लिए बहलोल ने सुलतान की एक पद तिछा। इसमें उसने पराजित हिंसाम खाँ पर अनैतिकता एवं कुप्रबन्ध का आरोप लगाकर अपनी सुलतान-भक्ति की निष्ठा और लगन की सौमन्ध साई थी। इस गुप्त-वार और आत्म-प्रशंसा से ही पाठकों को संकेत हो जाना चाहिए कि बहलोल आम्लीन का साँप बनाना चाहता था। अपने पद से बहलोल ने हिंसाम खाँ को हटाकर हमीद खाँ को वजीरे आजम बना देने की माँग की। कहीं कोई बहाना बनाकर बहलोल लड़खड़ाती सुलतानी पर हाथ न साफ़ कर दे, सुलतान एक कदम और आगे बढ़ गया। बहलोल की पूरी तरह प्रसन्न करने के लिए अपनी जातिगत परम्परा के अनुसार, उसने हिंसाम खाँ की हत्या कर दी। कुछ दिन पूर्व सुलतान की मृत्यु के लिए जो अपनी जान की बाजी लगा देता था, कुतघ्न होकर धोखे

से उसी की हत्या करा देना मध्यकालीन-मुस्लिम शासन का जग विख्यात साधारण कारनामा था।

बहलोल का गुर्गा अब वजीर के पद पर बैठ गया। उसकी सहायता से बहलोल सैयद सुलतान के चारों ओर लोदी-फन्दा कसने के लिए, ऊँचे ओहदों पर लोदियों की भरती करने लगा।

अपनी सम्पत्ति, ताकत और सत्ता बढ़ाने के लिए बहलोल ने, सुलतान के नाम का बहाना बनाकर, पड़ोसी राज्यों से लड़ाई छेड़ दी ताकि ताकत-वर बनकर वह खुद एक दिन सुलतान को ललकार सके।

सबसे पहले उसने मालवा के खिलजी पर धावा बोल दिया जो हाँसी, नागौर और मुस्लिम नामान्तरित हिसारफ़िरोज पर शासन चलाते थे। खिलजी पराजित हुए। हमेशा से इन सभी लड़ाइयों में क्रूरता का अपना कोटा होता था। जिस भी मार्ग से मुस्लिम सेनाएँ जाती थीं, सारे जीवन-दीप बुझ जाते और सारा धन सूख जाता था।

बहलोल की बढ़ती ताकत से परेशान होकर कांपते सुलतान ने उसकी प्रशंसा कर उसे खुश करना चाहा ताकि वह उसका आभार माने। उसने बहलोल को खान खानान की उपाधि से विभूषित कर दिया।

लोदियों ने इस संकेत को समझने में देर नहीं लगाई। सुलतान के विरोधों की ओर से एकधम आँखें मूंदकर, वे लोग जल्दी-जल्दी लाहौर, दीपलपुर, सन्नाम, हिसारफ़िरोज आदि जगहों के मालिक बनते चले गए। जब उन लोगों ने देख लिया कि अब सुलतान उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकता तो उन लोगों ने सरे आम बसावत कर सुलतान को उसके दिल्ली महल में घेर लिया। अपनी इस योजना में उन लोगों ने ज़रा जल्दबाजी से काम ले लिया था। फलतः उनको अपना घेरा उठाना पड़ा। मगर सरहिन्द वापिस लौटकर बहलोल ने अपनी सुलतानी का ढोल बजवा दिया।

प्रायः इसी समय सुलतान मुहम्मद मर गया और उसका पुत्र अला-उद्दीन गद्दी पर आ बैठा। दिल्ली से दूर सुलतानी हुक्मनामा नहीं चलता था। विभिन्न मुस्लिम गिरोहवाज़ देश का शासन चलाते थे। भूईंगव, पटियाली और काम्पल के राय प्रताप जैसे थोड़े बहुत स्वतन्त्र हिन्दू राजा भी थे। मगर जब से मुस्लिम आक्रमणों का प्रारम्भ हुआ था, सभी का प्रजा-पालक शासन-कार्य एकदम ठप्प पड़ गया था। क्रमबद्ध साक्षिण, अबाध

कपट, लगातार हमले एवं दुर्गुणों से भरे बमनकारक वातावरण की निंदयी शक्ती में स्थिति एवं राज्य का जीवित रहना हर रोज़ की समस्या हो गई थी।

मुस्लिम सुलतानों के सामने भी यही समस्या मुंह बाएँ खड़ी थी। जिसकी साठी उसकी सैन्य वाता जंगली कानून देश में लागू था। बहलोल ने दूसरी बार दिल्ली पर कूच कर दिया। जिस प्रकार अलाउद्दीन के पिता ने बहलोल का प्रथम प्रयास असफल कर दिया था, उसी प्रकार अलाउद्दीन भी बहलोल को मार भगाने में सफल हो गए। बहलोल पुनः सरहिन्द वापिस आ गया।

अलाउद्दीन अपने को एकदम असुरक्षित अनुभव कर रहा था। गद्दी से उसको हटाने का बहलोल प्रयास उसके ताजधारी मस्तक पर नंगी तलवार-सा लटका हुआ था। अपनी शक्ति बढ़ाने के उपाय पर उसने कुतुब खाँ लोदी और राय प्रताप से विचार-विमर्श किया। सभी ने बज़ीरे आजम हमीद खाँ को हटाकर कैद कर लेने की राय दी। प्रताप ने हमीद का किस्सा सुन कर देने पर जोर दिया क्योंकि हमीद के पिता ने राय प्रताप के राज्य में लूटमार भी मचाई थी और उसकी पत्नी को भी उड़ा लिया था। हाजी हिसाम खाँ की हत्या के उपरान्त हमीद खाँ बज़ीर बना था। अब उसकी हत्या की योजना भी बन गई।

उसको कैद कर दिल्ली से बुरहानपुर भेज दिया गया था। इसी बीच उसकी हत्या का हुक्म भी आ पहुँचा। मगर उसके भाइयों ने पहरेदारों को घूस देकर उसे बचा दिया। मलिक मुहम्मद जमाल हमीद की निगरानी में था। उसने हमीद के घर तक उसका पीछा कर उसपर आक्रमण कर दिया। इस झगड़े में जमाल ही मारा गया। ऐसे समय जैसा कि हमेशा से होता आया था, उसके सहायकों ने अपनी राज-भक्ति बदल दी। वे लोग हमीद खाँ की खोज हो गए।

मुसलमान बंदायू में था। उसकी अनुपस्थिति का फ़ायदा उठाकर हमीद खाँ ने सरकारी खजाने तथा शाही मोहर के साथ ही शाही हरम को भी अपने कब्ज़े में कर लिया और उनकी पत्नियों, पुत्रों और पुत्रियों को नंगे सिर, दिल्ली के (बाग़) किस्से से बाहर हाँक दिया।

निर्दोष विचित्र सुलतान हिष्किकाता हुआ बंदायू में ही समय गुजारने

लगा। वह विचार कर रहा था कि अपने विरोधी बज़ीरे आजम से किस तरह पेश आए। हमीद खाँ का दमन करना भी आवश्यक था। सेना भेजने के लिए वह वर्षा ऋतु की समाप्ति की बाट जोहने लगा। इधर हमीद खाँ भी गद्दी पर बैठने के लिए एक नए कठपुतली सुलतान की तलाश में लग गया। इस झगड़े में बहलोल लोदी ने गद्दी हड़पने का एक नया अवसर पाया। अपनी सारी सेना लेकर उसने दिल्ली कूच कर दिया। हमीद दिल्ली में ही जमा रहा। उसे अपनी शक्ति पर विश्वास था कि बहलोल उसे जीत नहीं सकता। चूँकि बहलोल दो बार पहले भी असफल हो चुका था, इसलिए उसने सीधे लड़ाई छेड़ने की हिम्मत नहीं की। उसने कपट और माया का सहारा लिया। अपने गिने-चुने अफ़ग़ान कुलीनों के साथ उसने दिल्ली में निवास करने की अनुमति हमीद से माँगी।

लोकप्रियता से अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिए हमीद खाँ ने एक दिन शराब और साक़ी का बृहत् आयोजन कर प्रमुख कुलीनों को निमन्त्रण भेज दिया। अपनी स्वाभाविक धूर्तता से बहलोल ने मेज़बान के खर्चों से ही आयोजित दावत द्वारा अपना काम निकालने का विचार किया। उसने अपने अफ़ग़ानों को दावत में मूर्खता का अभिनय करने की राय दी जिससे हमीद खाँ और उसके सहायक उसके बारे में सलत राय कायम कर लें।

“जब अफ़ग़ान हमीद के सामने आए तो वे लोग ऊलजलूल और मजीबोगरीब ढंग से व्यवहार करने लगे। कुछ लोगों ने अपना जूता अपने कमरबन्दों में बाँध लिया। कुछ ने अपना जूता हमीद खाँ के सिर के ऊपर ताक में रख दिया। हमीद खाँ ने इसका मतलब पूछा तो उन लोगों ने जवाब दिया कि ‘कहीं चोरी न हो जाए, हम इसकी सावधानी बरत रहे हैं।’ थोड़ी देर बाद अफ़ग़ानों ने हमीद खाँ से कहा कि “आपका गलीचा बड़े नायाब ढंग से रंगा हुआ है। अगर आप हम सभी को इसका एक-एक टुकड़ा दे देने की मेहरबानी करें तो हम इसे एक नायाब तोहफ़ा समझकर अपने बच्चों की टोपियाँ बनाने के लिए अपने मुल्क भेज देंगे। इससे संसार के लोग जान जाएंगे कि हम लोग हमीद खाँ की ख़िदमत में हैं जिन्होंने हम लोगों को प्रतिष्ठा, सम्मान और इज्जत दी है।” हमीद खाँ मुस्कराया। उसने उत्तर दिया कि ‘नायाब तोहफ़ों में मैं आप लोगों को बेशक़ीमती चीज़ें दूँगा।’ जब इत्र की बोतलियाँ तपतरी में लाई जा रही थीं तो अफ़ग़ानों

ने इस की सीधी को चाटा और फूलों को खाया। इन लोगों ने मुड़ हुए पान के पत्तों को खोला। पहले घूने को चाटा और फिर पान खाए।”

हमीद ने पूछा कि वे लोग इस प्रकार का व्यवहार क्यों कर रहे हैं तो बहलोल ने उत्तर दिया कि यह जोकरों का एक दल है जो सिर्फ खाना और धरना ही जानता है।

इसके बाद बहलोल प्रायः हमीद खाँ से मिलने जाने लगा। जब वह भीतर जाता था तो उसके बहुत से अनुयायी बाहर प्रतीक्षा किया करते थे। ऐसे ही एक घण्टा पर बहलोल भीतर दाबत खा रहा था। बाहर खड़े अफगानों को पहले ही गुप्त आदेश मिल चुका था। इस योजना के अनुसार उन लोगों ने पहले पहरेदारों को पीटा। फिर यह चीखते-चिल्लाते वे लोग भीतर घुस पड़े कि बहलोल के समान हम लोग भी हमीद खाँ के खिदमत-गार हैं। हम इन्तजार में बाहर खड़े नहीं रह सकते।

हमीद खाँ ने इस हल्ले-मुल्ले के बारे में पूछा। अफगानों ने ऊपर से बहलोल की कोत्तत और माली देते हुए हमीद खाँ से कहा कि आपके खिदमतगार होने के नाते हमें भी भीतर आने का उतना ही हक हासिल है, जितना बहलोल को है। इस चापलूसी से फूलकर हमीद खाँ ने सभी अफगानों को भीतर आने की इजाजत दे दी। जब सभी लोग भीतर आ गए तो हमीद खाँ के प्रत्येक तावेदार के पास दो-दो अफगान खड़े हो गए।

यों ही मेहमानों एवं मेजबानों का खाना खत्म हुआ, हमीद खाँ के आदमी बाहर चले गए। “कुतुब खाँ ने अपनी छाती से एक जंजीर बाहर निकाली और हमीद खाँ के सामने रखते हुए कहा—“वज्रिक लाइफ से रिटायर हो जाना अब आपके लिए सबसे अच्छा रहेगा। मैंने आपका नेमक खाया है। मैं आपको खत्म करना नहीं चाहता। इसके बाद उसने हमीद खाँ को कैद कर अपने अफगानों को सौंप दिया।” (नियामतुल्ला की तारीख-खान जहान लोदी)।

इसके बाद ही बहलोल लोदी ने अपनी सुलतानी का डोल बजवा दिया और लोदी खानदान की नींव डाल दी, जिसका वह पहला सुलतान था। जातिगत परम्परा के अनुसार बहलोल की ताजपोशी की तारीख निश्चित नहीं है। इसका कारण यह है कि उनका इतिहास अफगाह, प्रशंसा, खुशामदी गान और मोहंज-कहानियों का गढ़बढ़भाला है।

इसके कुछ दिन के बाद ही बहलोल ने एक पत्र सुलतान अलाउद्दीन को बदायूँ भेजा। इसमें उसने संकेत कर दिया कि आप बदायूँ में ही आराम फरमाएँ और दिल्ली लौटने की तमन्ना न रखें। हाँ! आपके शाही जजबातों को सन्तुष्ट करने के लिए मैं शाही-फरमानों में आपका नाम जरूर रखूँगा। अपनी बेबसी में अलाउद्दीन ने इस कृपा के लिए बहलोल को घन्यवाद का एक पत्र लिखकर भेज दिया।

मगर ऐसा प्रबन्ध बहुत दिनों तक नहीं चल सकता था। हर आदमी दूसरे को गद्दी से धकेलने की ताक में ही रहता था। जिन कुलीनों को बहलोल ने निकाल दिया था। उन लोगों ने जौनपुर के महमूद को बहलोल से मिड़ने का न्यौता भेज दिया, मानो मन्त्री पद न मिलने से दल-बदलू नेताओं ने अपना दल बदलकर विश्वासघात और देशद्रोह किया हो। उस समय बहलोल दीपलपुर के निवासियों और बासियों का दमन करने में लीन था। ये लोग उसके विनाश का विरोध जो कर रहे थे।

जौनपुर का महमूद एक दूसरा सुलतान था। वह दिल्ली गद्दी हड़पने की ताक में बैठा हुआ था। बहलोल दीपलपुर से दिल्ली भाग आया। दिल्ली से २० मील दूर तुरेला में संग्राम हुआ। बहलोल का साथ छोड़कर दरिया खाँ लोदी महमूद से जा मिला। इसपर कुतुबु खाँ ने उसे धमकी दी कि यदि तुम महमूद की सहायता करना नहीं छोड़ोगे तो दिल्ली में तुम्हारी पत्नियों और पुत्रियों का शील-हरण कर लिया जाएगा। इस अनोखी धमकी से घबराकर दरिया खाँ युद्ध से पीछे हट गया। हारकर महमूद जौनपुर चला गया। उसके सिपहसालार फतह खाँ को लोदियों ने कैद कर लिया।

बहलोल को अब अपनी ताकत पर पूरा यकीन हो गया। उसने हिन्दू सेवकों को लूटना प्रारम्भ कर दिया। वह मेवात की ओर बढ़ा। वहाँ के शासक अहमद खाँ सेवाती ने आत्म-समर्पण कर दिया। उसके राज्य के सात परगनों (यानी जिलों) को बहलोल ने अपने राज्य में मिला लिया। मेवात तथा अपनी नौकरी बजाने के लिए बहलोल ने उसके चाचा को अपने दरबार में बन्धक रख लिया।

दरिया खाँ लोदी जो पहले जौनपुर सुलतान की ओर चला गया था, अब वापिस बहलोल के दरबार में दौड़ा आया। लगता है ७ की संख्या

बहलोल की कमजोरी थी। दरिया खाँ की जागीर के सात ही परगनों को उसने अपने राज्य में मिलाया। अब बहलोल कोल (जिसे हम भ्रमवश अभी तक कहते हैं) की ओर बढ़ा। अपने गुर्गे ईशा खाँ को उसने वहाँ नियुक्त कर दिया। उसने राय प्रताप को सुईगव का राजा मान लिया था। इसके बाद बहलोल कुतुब खाँ के रावड़ी दुर्ग की ओर बढ़ा। हालाँकि यहाँ भी बहलोल की विजय ही लिखी हुई है, मगर ऐसा लगता है कि बहलोल इस दुर्ग को जीत नहीं सका। कारण यह था कि यहाँ उसने कुतुब खाँ की सत्ता को अपनी मान्यता दे दी थी। नियामतुल्ला का इतिहास 'तारीखे-खान जहान लोदी' भी अन्य मुस्लिम इतिहासों की भाँति चापलूसियों और गप्पों से भरा हुआ है। अतएव सही निष्कर्ष निकालने के लिए पाठकों को काफ़ी सचेत रहना पड़ेगा। हर संशय में अपने शासकीय सुलतान की विजय का दावा ठोक देना मध्यकालीन चापलूस इतिहासकारों का बड़ा प्यारा नारा रहा है। भले ही उस लड़ाई में उसका मालिक बड़ी बुरी तरह हारकर भागा हो या उसने अपनी नाक बचाने के लिए समझौता किया हो।

सुलतान बहलोल अब इटावा के उस हिस्से को लूटने निकला, जहाँ एक दूसरे मुस्लिम शासक जौनपुरी मुहम्मद शर्की की सरकार थी। परम्परा के अनुसार मुहम्मद शर्की एक बहुत बड़ा औरतबाज था। वह खुद विलास से जर्जर हो चुका था। इसलिए उसका अभीजोनियन गुर्गा, जो उसके हरम की देखभाल करता था, बहलोल से टकराने के लिए निकला। यहाँ भी बहलोल को समझौता हो करना पड़ा। इस और की लड़ाइयों में, कोई जमीन जीतनी तो दूर रही, उल्टे उसे शम्शाबाद (इसका हिन्दू नाम जो भी रहा हो) एक हिन्दू राजा राय कर्ण को सौंप देना पड़ा।

इस लड़ाई में एक हिन्दू शासक को जो लाभ हुआ वह जौनपुर सुलतान मुहम्मद शर्की की आँखों में छटक गया। उसने शम्शाबाद की ओर कूच कर दिया। शायद अल्ताह उसकी बदमाशी में नाराज हो गए थे। अतः उसे अपने पास बुला लिया। उसका बेटा मुहम्मद शाह जौनपुर की गद्दी पर बैठा। सरकारी काम में नये होने के कारण उसने बहलोल से समझौता कर लिया। इस समझौते के अनुसार दिल्ली और जौनपुर की सुलतानी के बीच राजा कर्णसिंह का राज्य निर्धारित था। अभी इस समझौते की स्थायी पूरने की नहीं पाई थी कि अपनी कपटी जाति-परम्परा के अनुसार सुलतान

मुहम्मद शाह ने राय कर्ण पर आक्रमण कर दिया। लगता है, दिल्ली सुलतान बहलोल अपने अभियानों से एकदम थक चुके थे। एक हिन्दू राजा पर जौनपुर के मुस्लिम सुलतान की रण-भेरी सुनकर उसने अपने कान बन्द कर लिये। मगर राय प्रताप, जिनका बहलोल से राजनीतिक समझौता हो चुका था, राजा कर्ण के हिन्दू राज्य पर एक मुस्लिम लुटेरे के हमले से आतंकित और आशंकित हो उठे। वे राय कर्ण की सहायता करने निकले।

इधर अपने हरम में बहलोल पर भी एक संकट आ गया। उसकी मुख्य बेगम शम्स खातून ने उसे धमकी दी कि जबतक वह उसके भाई कुतुब खाँ को जौनपुर सुलतान के तहखाने से मुक्त नहीं करा लाता तबतक वह उसका बाइकाट करती रहेगी। लाचार होकर सुलतान को अपनी सेना लेकर मैदान में उतरना पड़ा।

कुतुब खाँ के साथ जौनपुर सुलतान का अपना भाई हसन खाँ भी बन्द था। वह मध्यकालीन मुस्लिम शासन में एक साधारण बात थी। नए जौनपुरी सुलतान मुहम्मद को एकाएक सन्देह हो गया कि दोनों गुप्त रूप में बहलोल से मिले हुए हैं। उसने जौनपुर के कोतवाल को अपने भाई की हत्या कर देने का हुक्म भेज दिया। मगर उन दोनों पर सुलतान की माँ एवं हरम की कुछ अन्य स्त्रियों की छद्मछाया थी। इसलिए कोतवाल को उनका बाल भी बाँका करने का साहस न हुआ।

अपनी माँ को बहला-फूसलाकर अपने भाई से दूर करने के लिए, जौनपुर के सुलतान मुहम्मद ने अपनी माँ को एक मायावी-पत्र लिखा, जिससे संरक्षणहीन हमीद की हत्या आसानी से हो सके। उस पत्र में उसने अपने भाई से एक समुचित समझौता करा देने की प्रार्थना की थी। अपने पुत्र के कपटी-पत्र की माया में आकर इधर उसने जौनपुर छोड़ा उधर जौनपुरी सुलतान के दरबारियों ने हसन खाँ की हत्या कर दी। उस समय उसकी माँ कन्नौज में थी। अपने कपटी और खूनी पुत्र मुहम्मद शाह से बिना मिले ही वह उलटे पैरों वापिस लौट आई। अपनी जातिगत दुष्टता के अनुसार जले परतमक छिड़कते हुए मुहम्मद शाह ने अपनी माँ को लिखा कि अपने मृत-पुत्र हसन खाँ का शोक मनाने का अभी समय नहीं आया है, क्योंकि वह अपने सभी पुत्रों का शोक एक बार ही मनाकर रोने-धोने के काम से सदा के लिए छुट्टी पा सकती है, क्योंकि आज नहीं तो कल सभी मरने ही वाले हैं।

तारीख-नाम-अहम के लेखक नियामतुल्ला जौनपुर के सुलतान मुहम्मद शाह को "हूँकार और खून का प्यासा" मानते हैं। हकीकत में यह शाह भारत के सारे पञ्चकालीन मुस्लिम शासकों पर समान रूप से ठीक बैठती है।

जौनपुर के सुलतान मुहम्मद शाह का सामना अब दिल्ली के सुलतान बहलोल लोदी से हुआ। अपने एक आकस्मिक आक्रमण में बहलोल ने जौनपुरी सुलतान के एक भाई अलाउद्दीन खाँ को कैद कर कुतुब खाँ की सुरक्षा के लिए अपने पास बन्धक रूप में रख लिया। एक भाई की कैद का समाचार सुनकर, दूसरा भाई हुसैन खाँ भयभीत हो जौनपुर भाग गया। सुलतान मुहम्मद शाह अकेला रह गया। उसने पीठ मोड़ी और नौ-दो ग्यारह हो गया। बहलोल लोदी ने उसका पीछा किया और उसका कुछ सामान लूट लिया। हिन्दुस्तान में निरंकुश शासन हड़पने के लिए, एक-दूसरे के खून के प्यासे वे मुस्लिम लूटेरे हिन्दुस्तान की जमीन की मलाई लूटकर अपनी कूली लड़ाइयों का पेट भरते थे।

जौनपुर से सुलतान मुहम्मद शाह की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर इसकी खाँ बीबी राजी ने, दरबारियों की सहायता से, उसके छोटे भाई हुसैन खाँ को जौनपुर की गद्दी पर बैठा दिया। इस नये सुलतान ने अपने भरोसे भाई सुलतान मुहम्मद का सकाया करने के लिए अपनी सेना भेज दी। गंगा के किनारे राजगढ़ में उसका घिराव हुआ। जातिगत परम्परा के अनुसार उसके असन्तुष्ट दरबारियों ने उसका साथ छोड़ दिया और वे लोग आक्रमणकारी हुसैन खाँ से आ मिले। मुहम्मद शाह मारा गया और जौनपुर सुलतान के रूप में हुसैन खाँ का खिताब पक्का हो गया। उसने दिल्ली के सुलतान बहलोल लोदी से समझौता कर लिया। बन्धक कैदियों की आपस में बदला-बदली हो गई।

इस इस्लामी हड़कम्प और उथल-पुथल में बीर राय कर्ण ने अपहर्ता कुवा खाँ की मार भगाया और अपनी राजधानी पर अधिकार कर लिया। इसे बिदेसी सुलतान शाहबाद कहते थे। दिल्ली और जौनपुर के मुस्लिम सुलतान, जिन्होंने समझौते और दोस्ती की सन्धि की थी, आपस में फिर मुसपेट और साहिब बनने लगे। इधर बहलोल लोदी के कुतुब खाँ और

दरिया खाँ जैसे गुगों ने राय प्रताप को धमकाने के लिए उसके खीर पुत्र नरसिंह की हत्या कर दी।

दिल्ली दरबार के वातावरण को कपटी और खतरनाक देखकर कुतुब खाँ, हुसैन खाँ, मुबारिक खाँ और खिन्न हिन्दू राय प्रताप सुलतान बहलोल को छोड़कर जौनपुर के शर्की सुलतान की ओर हो गए। सुलतान में एक नया बिद्रोह पतप रहा था। सुलतान बहलोल जल्दी से दिल्ली वापिस आ गया और अपने बचे-बुचे गुगों को बटोरकर सुलतान के लिए कूच कर दिया। जौनपुर के सुलतान को दिल्ली की गद्दी हथियाने का बड़ा सुनहरा अवसर मिल गया। इस नए संकट का समाचार बहलोल के पीछे-पीछे आ पहुँचा। सुलतानी बागियों का दमन करना भूलकर वह दिल्ली भागा। सात दिन तक दोनों सेनाएँ आपस में भरती-कटती रहीं। काफी खून-खराबे के बाद दोनों में युद्ध-बन्दी की एक सन्धि हो गई। इसके अनुसार दोनों सुलतानों को अपने-अपने राज्य में ३ वर्ष तक शान्त पड़े रहना था।

इस सन्धि ने, जिसपर बहलोल को विवश होकर हस्ताक्षर करने पड़े थे, बहलोल को दुष्ट आक्रामक गति को स्थिर कर दिया। इसके अनुसार बहलोल को निराशा में ३ वर्ष तक दिल्ली की गलियाँ ही नापनी थीं। मगर उसके पेट में कुलबुलाते कपट के कीड़े ने उसे शान्त नहीं बैठने दिया। जौनपुर सुलतान के सहायक अहमद खाँ मेवाती पर चढ़ाई कर उसने सन्धि के नियमों का पालन किया। बहलोल ने मेवात में प्रवेश किया और निरंकुश तबाही मचाकर वह हाथ में आए हिन्दुओं का धर्मान्तरण करने लगा।

बहलोल लोदी इधर इस अहमद खाँ को भयभीत और परेशान कर रहा था, उधर यूसुफ खाँ के पुत्र, बयाना के गवर्नर दूसरे अहमद खाँ ने उससे बिद्रोह कर अपने आपको जौनपुर-सुलतान हुसैन खाँ का भक्त घोषित कर दिया।

धुणा के पास बहलोल लोदी के विरुद्ध सामूहिक असन्तोष व्याप्त हो चुका था। इससे प्रेरित होकर तीन वर्ष की युद्ध-बन्दी के बाद जौनपुर सुलतान ने फिर दिल्ली के लिए कूच कर दिया। भटवाड़ा के पास दोनों सेनाओं में टक्कर हुई। कुछ जड़ों के बाद फिर एक सन्धि हो गई और दोनों सेनाएँ अपने-अपने ठिकाने पर लौट गईं।

दोनों सन्धियों के बाद भी बहलोल को गद्दी से गिराने का जौनपुरी-

इरादा नहीं रखना था। एक बार फिर उसने दिल्ली पर चढ़ाई की। सराय लूटकर के पास दोनों सेनाओं में कई दिन तक लड़ाई होती रही। हिन्दू-श्रेष्ठों को काफ़ी नुकसान पहुँचाने, हिन्दू घरों को जलाने और मन्दिरों को मस्जिद बनाने के बाद दोनों मुस्लिम सेनाओं में फिर एक समझौता हो गया।

कुतुब खाँ ने एक पट्टा बना। इसके अनुसार दोनों सुलतानों को फिर बाँटा गया। एक बार फिर दोनों में सिर-फुटौबल हो गया।

प्रायः इसी समय बदायूँ के एक दूसरे मुस्लिम सुलतान अलाउद्दीन का देहान्त हो गया। अलाउद्दीन की मौत में शरीक होने के बहाने जौनपुरी सुलतान भी बदायूँ आ पहुँचा। अपनी जातिगत दुष्टता के अनुसार उसका विचार उसके सारे खजानों और हरमों को हड़पने का था ताकि वह नयी शक्ति और नए उत्साह से फिर दिल्ली की गद्दी सुलतान बहलोल से छीनने का प्रयास कर सके।

प्राण पर मँडराने वाले गिद्ध की भाँति जौनपुर का सुलतान अलाउद्दीन की शव-यात्रा में गया। इसके बाद उसने अलाउद्दीन की बेगमों और खजानों के साथ उसके राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। मगर इससे बदायूँ राज्य की विशाल हिन्दू जनता को कोई फ़क़्त नहीं पड़ा। चाहे अलाउद्दीन हो या हुसैन, उन्हें तो उनकी इस्लामी धृष्टता और मुसलमानी क्रूरता का निवाला बनना था ही। सुलतान हुसैन ने अनुभव किया कि वे अब पड़ोसी क्षेत्रों पर डाका डालने योग्य हो गये हैं। दिल्ली सुलतान बहलोल से फैसला करने के लिए, पहले छोटे-मोटे सरदारों का शिकार कर हृष्ट-पुष्ट होने का जौनपुरी-विचार अच्छा था।

जौनपुर के सुलतान हुसैन ने सम्भाई को हड़प लिया। यहाँ से एक बड़ी शक्ति बटोरकर उसने एक बार फिर दिल्ली पर चढ़ाई की। उस समय बहलोल सरहिन्द मार्ग पर स्थित क्षेत्रों में डाका डाल रहा था। यह समाचार पाकर वह दिल्ली लौट आया। लड़ाई लम्बी चली। इस लड़ाई में जौनपुरी सेना ने अच्छे हाथ दिखाए। कपटों कुतुब खाँ की माया फँसी। बहलोल-सुलतान सारा माल-मत्ता उसने अपने अधिकार में कर लिया। सुलतान हुसैन कुतुब खाँ की कुरान की कपटों पर विश्वास कर, सारा सामान छोड़, मौन उड़ाने, अपने हरम जौनपुर में चला गया। इस बहलोल धोखे से उसके पड़ाव पर दूट पड़ा। सारा सामान भी वहीं था। उसने सामान

लूट लिया। रक्षकों को हलाल कर दिया। हिन्दू क्षेत्रों को लूटकर जौनपुर सुलतान ने बहुत धन, हाथी और घोड़ों को जमा किया था, इसका बहुत-सा अंश बहलोल के हाथ में पड़ गया। चालीस महत्त्वपूर्ण कुलीन भी उसके अधिकार में आए। इस धोखेबाजी का बदला कहीं जौनपुरी-सुलतान न ले इसलिए उसने इन चालीसों को गिरवी रख लिया। जौनपुरी-सुलतान के बजीर इस प्रकार जंजीरों से बाँधे गये मानो वे जंगली जानवर हों। जौनपुरी सुलतान के यात्रा हरम की स्त्रियाँ बहलोल की कामुकता का शिकार हो गईं। काम्पिल, पटियाली, साकित, कोल और जलाली, जो जौनपुर शासन के परगने थे, को घेरकर और लूटकर उनके निवासियों से एक बार फिर इस नये सुलतान ने अपना लगान वसूल किया। जगह-जगह जौनपुरी सुलतान का पीछा किया गया। रापड़ी के समीप हताश होकर उसने तलवार निकाल ली। मक्कार बहलोल उससे तलवार-टकराना नहीं चाहता था। उसने समझौते की बात चलाई। एक-दूसरे की नयी सीमाओं को उन दोनों ने स्वीकार कर लिया। इसके बाद दोनों अपनी-अपनी राजधानियों को वापिस लौट आये।

दोनों ही एक-दूसरे के राज्य, खजाने और हरम को हड़पना चाहते थे। कुरान की कसम भी उन दोनों ने तोड़ दी मानो उसका कोई महत्त्व ही न हो। वे लड़ाई की तैयारियों में लग गये। सोनहर गाँव के समीप फिर घनघोर संग्राम हुआ। सुलतान जौनपुर का पासा फिर उलटा पड़ा। उसका बहुत-सा खजाना और बहुत-सी औरतें बहलोल के हाथ लगीं। इससे बहलोल की सैनिक-शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई। अब हुसैन को खत्म करने का दृढ़ निश्चय कर बहलोल ने उसका पीछा किया। रापड़ी में भयंकर संग्राम हुआ। यथेष्ट नर-संहार तथा समीपवर्ती हिन्दू-क्षेत्रों के विध्वंस और लूट के बाद बहलोल की फिर जीत हो गई थी। प्राण लेकर भागते हुए हमीद को बड़ी घबराहट में यमुना पार करनी पड़ी। इस हड़बड़ी में उसकी बहुत-सी स्त्रियाँ और बच्चे यमुना की धारा में बह गये। इसके बाद वह ग्वालियर की ओर बढ़ा। अपने भोजन-वस्त्र के लिए उसका गिरोह अब उस हिन्दू राज्य के सम्पन्न घरों को लूटने तथा खेत-खलिहानों को रौंदने लगा। इस विध्वंसात्मक कार्य से कुपित होकर वहाँ की वीर हिन्दू जाति बहादुरिया उनपर दूट पड़ी।

निराशा, पराजय और शर्म से भगोड़े जौनपुर-सुलतान ने, जिसका पीछा एक दूसरा मुसलमान बहलोल कर रहा था, ग्वालियर के हिन्दू राजा करणसिंह से शरण माँगी। एक कूर और कपटी मुस्लिम को शरण देने के बरते राजा करणसिंह ने उसे काल्पी तक खदेड़ भगाया।

इस बीच बहलोल पराजित सुलतान के अन्य अनुयायियों का सफाया करने में लग गया। तीन दिन के घेरे के बाद हुसैन के दो भाई इब्राहीम खाँ और हैबत खाँ ने उसे इटावा सौंप दिया। इसी अभियान में एक वीर हिन्दू राजपूत दादन्द ने इटावा क्षेत्र का अपना कुछ भाग वापिस अपने अधिकार में कर लिया।

अपने छोटे राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए हुसैन काल्पी से मुड़ा। इस विपत्ति को रोकने के लिए बहलोल को रनगंव में खड़ा होना पड़ा। यमुना नदी दोनों को जलग कर रही थी। बक्सर के समीप के क्षेत्रीय शासक राय तिलकचन्द ने इस झगड़े में अपनी कुछ जमीन वापिस जीतने का एक अवसर पाया, जिसे विदेशी मुसलमानों ने छीन लिया था। वे अचानक जौनपुर-सुलतान हुसैन पर टूट पड़े। इस हिन्दू आक्रमण से घबराकर सुलतान पन्ना के हिन्दू राजा की शरण खोजने भागा। काली करतूतों से भरे अपने जीवन के पन्चात्ताप और प्रायश्चित्त में उसने दिखावटी आँसू बहाए, तनूनी कसमें खाईं। मगर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। निराश होकर वह जौनपुर की स्थानीय जनता से सहयोग की भीख माँगने जौनपुर आया। बहलोल लोदी को जब यह समाचार मिला कि हुसैन अपनी राजधानी जौनपुर में है तो वह जौनपुर के लिए रवाना हो गया। उसकी अधिकांश सम्पत्ति और बहुत-सी औरतें एक बार फिर बहलोल के हाथ पड़ीं।

बहलोल अब जौनपुर लौटा, इसपर अधिकार किया और अपना एक गुर्गा बही छोड़ दिया। जहाँ ही उसने पीठ मोड़ी सुलतान हुसैन जौनपुर पर अधिकार करने वापिस लौटा। बिना लड़े-झिड़े ही बहलोल की नगर-सेना भाग लगी हुई। उसने मनमौली तक उस सेना का पीछाकर उसे सन्धि करने पर मजबूर कर दिया। घुतं कुतुब खाँ जानता था कि साक़ी और सराब हुसैन की कमजोरी है। बहुत-सी युक्तियों से वह सुलतान का जब तक अनौरजन करवा रहा जब तक सहायता न आ पहुँची। बहलोल का बेटा बरबक साहू इस गतिहीन सेना की सहायता के लिए आ पहुँचा। उसके

पीछे-ही-पीछे खुद बहलोल भी सहायक सेना लेकर चल पड़ा। अपना सब-कुछ बहलोल की कृपा पर छोड़कर हुसैन बिहार भाग गया। बहलोल ने अपने पुत्र बरबक को जौनपुर की गद्दी पर बैठा दिया। वापिसी में बहलोल ने धौलपुर की सीमा में प्रविष्ट होकर उसे लूटना प्रारम्भ कर दिया। इस मुस्लिम विध्वंस को बन्द करने के लिए उसने धौलपुर के हिन्दू शासक से कई मन जुद्ध सोने की माँग की।

इसी प्रकार बारी जिले को भी उसने तबाह किया। यहाँ की हिन्दू जनता से कई मन सोना छीन, बटोरकर और लुटेरे बहलोल को सौंपकर यहाँ के मुस्लिम गवर्नर इकबाल खाँ ने इस भेड़िये से निजात पाई।

बारी से आगे बहलोल अल्लाहपुर (इसका हिन्दू नाम ज्ञात नहीं) की ओर बढ़ा। यह रणधम्मोर के अधीन था। बहलोल ने "इस देश को रौंद दिया तथा इसके खेतों और बगीचों को नष्ट कर दिया। इसके बाद वह दिल्ली आया जहाँ उसने ऐशो-आराम और उत्सवों में अपना समय गुजारा" — अपनी तारीखें खाँ जहान में नियामतुल्ला कहता है (इलियट एवं हाउसन, ग्रन्थ ५, पृष्ठ ६१)। मुस्लिम इतिहासकार भी यह जोड़ना नहीं भूलता कि बहलोल का ऐश, दावत और व्यभिचार का जीवन "न्याय और उदारता के कारनामों" से भरा हुआ है।

जौनपुर-सुलतान का रोड़ा राह से निकल जाने के बाद अब बहलोल हिन्दू राज्यों को बेरोक-टोक लूट सकता था। राजा मानसिंह के अधीन ग्वालियर एक सम्पन्न राज्य था। मध्यकालीन मुस्लिम लुटेरों के जातिगत कूर तरीकों से बहलोल ने ग्वालियर की सीमा पर उत्पात मचाना प्रारम्भ कर दिया। असहाय हिन्दू किसानों को सताकर उनका धर्मन्तिर कर देना, मुसलमानी बलात्कार के लिए उनकी पत्नियों और पुत्रियों को छीन लेना, गुलाम बनाकर बेच देने के लिए बच्चों को उड़ा लाना आदि अच्छे कामों की शुरुआत हो गई। हिन्दू शासक ईंट का जवाब पत्थर से न दे सके। सीमाओं के राजा, लगातार दिल्ली, जौनपुर और मालवा के सुलतानों की लूट के शिकार बनते रहते थे और अल्पकालीन शान्ति खरीदते रहते थे। "अपनी गरीब हिन्दू जनता के खेतों और घरों को मुस्लिम विनाश से बचाने के लिए ग्वालियर के हिन्दू शासक को ८० लाख टंका देने पड़े।"

सच्चाई और निष्ठा से हिन्दुओं को लूटने के लिए बहलोल अब इटावा की ओर मुड़ा। यहाँ दुदन्द सिंह के पुत्र संगत सिंह का शासन था। इस्लामी उन्माद में इटावा के छोटे राज्य से गुजरता बहलोल-गिरोहे हाहाकार और पड़ी। बहलोल के बर्बर जंगली इटावा के ग्रामों और नगरों में शैतानी नाच नाचने लगे।

इस आक्रमण से झूटकर बहलोल साकित क्षेत्र के मलावी गाँव में बीमार पड़ गया और १४८८ ई० में मर गया। उसका लोभी शासन ३८ वर्ष, ८ महीने और ८ दिन का था। यह दुष्ट दिल्ली के एक बाग में गढ़ा है।

फरिश्ता हमें बताता है कि बूढ़े होने पर बहलोल ने अपना राज्य अपने बेटों, भाइयों और दरबारियों में बाँट दिया था। करी और मानिकपुर आलम की को मिला। बह्राइच उसके भतीजे शाहजादा मुहम्मद फरमूली के अधिकार में रहा। सखनऊ और काल्पी आक्रम हुमायूँ, जिसके पिता को उसके दुर्भ्यवहार के कारण उसीके एक नौकर ने मार डाला था, के अधीन हुआ। बदायूँ की जिम्मेदारी खाँ जहान की थी। दिल्ली तथा उसके सारे पड़ोसी परगनों की निगरानी उसके पुत्र शाहजादा निजामशाह करने लगे, जिन्होंने सिकन्दर लोदी की उपाधि धारण कर हिन्दुत्व का विनाश करने वाली अपने पिता और पूर्वजों की खूनी तलवार का पूरा उपयोग किया था।

विदेशी मुस्लिम लुटेरों के बीच इस प्रकार हिन्दू-क्षेत्र के बंटवारे से यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्यकालीन भारत में जादू के बीज जैसी मुस्लिम पोढ़ी से किस प्रकार कई शासकीय शाखाएँ फूटकर निकली थीं और किस प्रकार भारत का विनाश दिन दूनी और रात चौगुनी रफ्तार से होने लगा था।

बहलोल का शासन इस बात को भी स्पष्ट करता है कि मध्ययुगीन मुस्लिम शासनकाल बलात्कार, लूट और बरबादी का लगातार चलने वाला एक खूनी बाज्र था, जिसमें न्याय और शान्ति का जीवन व्यतीत करने की इच्छा करना मग-मरीचिका ही थी। बीच-बीच में मुस्लिम इतिहासकार मदीनगोन मुस्लिम सुलतान के मुस्लिम अहं की तृप्ति के लिए उनकी प्रशंसा में उनके शासन का रोमांचकारी वर्णन करते हैं। वे उनकी बर्बर करतूतों की गन्दगी को छुब चमकाने के लिए पॉलसन-पालिश करते हैं क्योंकि इन इतिहासकारों को अपना पेट पालने के लिए उन्हीं काली-करतूतों में से मुट्ठीभर अनाज मिला करता था।

लोभी मुस्लिम चापलूसों ने किस प्रकार इन इतिहासों को लिखा है उसमें यह स्पष्ट है कि इतिहास-लेखन एक गन्दी साम्प्रदायिक-साजिश थी। इन सभी मुस्लिम ब्लैकमेलरों और बर्बरों का जीवन काली-करतूतों से एक-टम स्याह है। फिर भी इन सबको बहुत ही अधिक उदार, मानवीय, दयालु और न्यायी शासक कहकर महान् बताया गया। इस साजिश का पर्दाफाश भी हो जाता है—बहलोल लोदी का एक बहुत ही प्रशंसित वर्णन तरीख-गद्दी में है—

“बहलोल एक गुणी और नम्र शाहजादा माने जाते थे, वे अपने ज्ञान

के आधार पर पूरा-पूरा न्याय करते थे। वे अपने दरबारियों को अपनी रीयत नहीं, अपना साथी समझते थे। जब उन्होंने ताज पहना तब उन्होंने जनता के खजाने को अपने दोस्तों के बीच बाँट दिया। यह कहते हुए कि मेरे लिए यही काफ़ी है कि बिना शाही दिखावे के ही दुनिया मुझ राजा मानती है वे शायद ही कभी गद्दी पर बैठे हों। अपने खान-पान में वे बहुत ही संतुलित थे। वह शायद ही कभी अपने घर खाना खाते थे। हालाँकि वे कोई विद्वान् नहीं थे मगर विद्वानों को अपने पास रखने के बड़े इच्छुक थे। और उन्हें उनकी योग्यता के अनुसार इनाम दिया करते थे। वे एक बुद्धिमान और बहादुर शाहजादा थे तथा मुस्लिम कानून के अच्छे जानकार थे। मान और बहादुर शाहजादा के लिए वे उत्तम पारषदों की राय का अपनी सरकार में शासन चलाने के लिए वे उत्तम पारषदों की राय का अध्ययन करते थे। वे चतुर थे और सबसे बढ़कर बात यह थी कि सरकारी काम-काज में जल्दबाजी नहीं होने देते थे। उनके सारे जीवन का व्यवहार पूरी तरह से यह बताता है कि किस प्रकार वे इन गुणों का पालन करते थे।”

इस स्तुति की चीर-फाड़ करने पर हमें ज्ञात होता है कि बहलोल लोदी एक क्रूरतम अपहर्ता और राबन-कर्ता था। वह जनता के धन को अपने उन गुणों के बीच बाँटता था जिन्होंने सैन्यों को हटाकर दिल्ली की गद्दी हड़पने में उसकी सहायता की थी। अगर फरिश्ता के अनुसार वह एक विद्वान् व्यक्ति नहीं था तो योग्यता के अनुसार विद्वानों को उचित इनाम देने का निर्णय वह किस प्रकार करता था। बहलोल मुस्लिम कानून में एकदम पारंगत था। इसका सिर्फ यही मतलब है कि वह ‘काफ़िरों की गंदन काटो’ वाले नियम का पालन पूरी तरह करता था। यह एकदम सफ़ेद झूठ है कि वह सरकार चलाने के लिए परिषद् के सुझावों का अध्ययन करता था क्योंकि हमें बतलाया गया है कि वह एक अशिक्षित व्यक्ति था। जब हम यह विचार करते हैं कि उसने अपनी सारी जिन्दगी लूट और लड़ाई में ही व्यतीत की थी तो किसी कानून या नियम की स्थापना करने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस बयान का, कि वह सरकारी कामों में जल्दबाजी नहीं होने देता था, यही मतलब है कि बहलोल दिल्ली की गद्दी पर होता था तभी किसी बात पर अन्तिम फैसला किया जाता था।

‘वह शायद ही कभी अपने घर में खाना खाता था’ इसका स्पष्ट अर्थ है कि यह पेट बहलोल अपने प्रतिदिन के भोजन के मामले में भी एक ऐसा जोक था जो सदा दूसरे के माल पर ही हाथ साफ़ करता था।

(मदर इण्डिया, अप्रैल, १९६८)

१६ । सिकन्दर लोदी

हिन्दुस्तान में हजार वर्षों तक कट्टर धार्मिक उन्माद में हिन्दू-खून बहाने वाले विदेशी सुलतानों में अगर कोई तारतम्य सम्भव है तो उसमें सिकन्दर का स्थान भयंकरतम होगा ।

वर्षसंकर वह सुन्दर शतान, बहलोल का तीसरा पुत्र था । सरहिन्द के हिन्दू सुनार की अप्रहत पत्नी जीवा के साथ बलात्कार से इसका जन्म हुआ था । इसने हिन्दू-हत्याकाण्ड में अपने पूर्वजों से दूना उत्साह दिखाया था । इसका हत्या उन्माद इतना भयंकर था कि इसके दल के इसके धर्म चाई निशामतुल्ला ने अपनी "तारीखे खा जहान लोदी" में इसके हत्याकाण्ड को बार-बार एक "कसाई का काम" लिखा है ।

हिन्दू सुनार की पत्नी के इस पुत्र का चेहरा सोने की भाँति दमकता था । अगर उसका दिल अपने पिता जैसा काला था । वह दिल कत्लेआम में ठंडी तलवार से मरते लोगों की चीख और चिल्लाहट सुन-सुनकर तृप्त होता था ।

बहलोल लोदी के पुत्रों में सिकन्दर का नम्बर तीसरा था, मगर दूसरे शक्तिशाली से छुट्टी पाकर गद्दी हड़पने में उसका सफल होना यह प्रमाणित करता है कि साजिश तथा बदमाशी में उसका नम्बर पहला था । गद्दी पर उसका दावा निर्विरोध नहीं था, दरबारियों के एक दल ने उसकी गद्दी-नशीली में प्रार्थना तो जगाया, मगर बेकार ।

जहाँ तक कण्ट, व्यवहार और दुष्टता की भयंकरता का प्रश्न है, एक शक्तिशाली को दूसरे से धन्य करना भूसे के ढेर में सूई खोजना है । फिर भी कुछ दरबारी बहलोल के दूसरे पुत्र बरबक के पक्ष में थे और कुछ उसके दोस्त आदम हुसैन के पक्ष में । मगर निजाम खाँ ने सभी को उल्लू बना-

सिकन्दर लोदी

कर सभी का दमन कर दिया और हड़पकर "सुलतान सिकन्दर लोदी" की भारी-भरकम उपाधि धारण की ।

अपनी पुस्तक "क्रिसेन्ट इन इण्डिया" पृष्ठ १५४ पर श्री एस० आर० शर्मा पर्यवेक्षण प्रस्तुत करते हैं कि "फ़िरोज शाह तुग़लक और औरंगजेब की भाँति, कट्टरता सुलतान सिकन्दर लोदी की मुख्य दुर्बलता थी । हिन्दू मन्दिरों को तबाह और बरबाद करना उसके अभियान का नियमबद्ध कारनामा था । (मथुरा, धौलपुर, नागपुर आदि स्थानों की भाँति) जहाँ कहीं भी उसका हाथ पड़ा, हिन्दू मन्दिर नहीं बचे । उसने यमुना के पवित्र घाट पर हिन्दुओं का स्नान करना वर्जित कर दिया था । यहाँ तक कि नाई भी वहाँ हिन्दुओं की हजामत नहीं कर सकते थे । बंगाल के एक ब्राह्मण ने रुढ़िवादी मुसलमानों की घृणा को जनता के बीच यह कहकर भड़का दिया कि इस्लाम और हिन्दुत्व दोनों ही सच्चे धर्म हैं और ये दोनों धर्म सर्वशक्तिमान परमेश्वर तक ले जाने वाले अलग-अलग मार्ग हैं । उसने इस अपराधी (?) को दरबार में भेजने के लिए बिहार के गवर्नर को लिखा । यहाँ उसने काजियों से पूछा कि इस प्रकार का उपदेश देने की अनुमति है या नहीं । उन्होंने निर्णय दिया कि चूँकि ब्राह्मण ने सच्चाई स्वीकार की है अतएव उसे इस्लाम स्वीकार करने का अवसर मिलना चाहिए अन्यथा दूसरा विकल्प मृत्यु ही है । ब्राह्मण को मृत्यु-दंड मिला क्योंकि उसने अपना धर्म त्यागकर इस्लाम स्वीकार नहीं किया ।"

'भारतीय जनता का इतिहास और संस्कृति, दिल्ली के सुलतान' (दूसरा संस्करण, ग्रन्थ ५, सन् १९६७ ई०) में इन विचारों की विस्तृत व्याख्या की गई है । पृष्ठ १४६ पर लिखा हुआ है कि "दुर्भाग्य से इस्लाम का कट्टर भक्त सिकन्दर दूसरे धर्मों को नहीं देख सकता था । हिन्दू भाँ से उत्पन्न और हिन्दू राजकुमारी से विवाह करने को उत्सुक सिकन्दर का व्यवहार अपनी विशाल प्रजा के प्रति अविवेचनीय है । जब वे शाहजाना थे, उस समय भी उन्हें यानेश्वर के हिन्दू तालाबों पर आक्रमण करने से रोक रखा था... जैसा कि मन्दिरों, उत्तरी और नरवर के व्यवहार से प्रगट होता है, सिकन्दर प्रायः मन्दिरों को नष्ट कर देते थे और उनके स्थान पर मस्जिद तथा जन-कल्याण के भवन बना देते थे । मथुरा में उन्होंने हिन्दुओं को पवित्र घाटों पर स्नान तथा क्षौर-कर्म करने से रोक दिया था ।

उन्होंने मगरकोट से बाई हुई खंडित हिन्दू प्रतिमाओं को तोल का बट्टा बनाने के लिए कसाइयों को दे दिया था। इन सबसे बढ़कर उन्होंने जेबेनाथों से विचार-विमर्श कर बोधन ग्राहण को, जिसने अपने धर्म के साथ-साथ इस्लाम की सच्चाई भी स्वीकार की थी, मरवा डाला था।"

इसके उपरान्त भी वे ही दोनों लेखक शैक्षणिक-नटों की कलाबाजी दिखाते हैं और सिकन्दर लोदी के न्याय, उचित-व्यवहार, धार्मिकता और शासकीय सूक्ष्म दृष्टि की प्रशंसा करने लग जाते हैं। भारत की ऐतिहासिक विद्वत्ता का यह दुस्मान्त दृश्य है। वे लोग एक ही मुँह से निन्दा और प्रशंसा दोनों करते हैं। इस प्रकार साम्प्रदायिक और राजनीतिक उद्देश्य से लोगों के दिमाग की धुलाई तथा मस्तिष्क की सफाई कई पीढ़ियों से होती चली पा रही है। ऐतिहासिक विषयों के लेखकों में इस धुलाई और सफाई के शोकपूर्ण चिह्न प्रगट होने लगे हैं। इसके कारण एक ही पृष्ठ के विभिन्न अनुच्छेदों में स्वाभाविक विरोध पैदा गया है और इस विरोध को समझने को उनकी क्षमता नष्ट हो गई है।

भारतीय विद्या भवन अपने ग्रन्थ ६ के पृष्ठ १४५-४७ पर लिखता है कि "धार्मिक और परिष्कृत गुणों से सम्पन्न तुच्छ (विवादों और) बातों से घलंग रहते थे—उन्हें प्रयोग्य मनुष्यों का साथ पसन्द नहीं था। कुछ लेखकों ने लिखा है कि वे छिपकर शराब पीते थे। मगर तत्कालीन इतिहासकार मुल्ताकी के अनुसार किसी ने भी उन्हें न तो शराब पीते देखा है, न उन्हें डगमगाती हालत में देखा है। वे अत्यधिक उदार थे। उन्होंने सारे राज्य में भोजन, वस्त्र आदि आवश्यक चीजें दान करने की बड़ी व्यापक व्यवस्था की थी।" ग्राम शासन, धार्मिक उन्नति, और न्याय के मामलों में उन्होंने अपनी प्रजा में कोई भेद-भाव नहीं किया था।"

प्रारम्भिक निम्न उद्धरणों के प्रकाश में इस प्रशंसात्मक उद्धरण की संगति बिटाने पर पाठक स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं कि सिकन्दर का बहु-प्रशंसित न्याय हिन्दुओं की हत्या करना था। बड़ी दरियादिली से कसाइयों को तोलने का बट्टा बनाने के लिए हिन्दुओं की खंडित देव-प्रतिमाएँ देने में उसकी उदारता निहित थी। शराब की महकिलों में कामुक नुका-कन्दी जोड़ने तक उसका कविता और संगीत-प्रेम था। साहित्य-संरक्षण में उसने हाथ पसारे, स्तुति-गायकों की ओर कुछ सिक्के फेंके थे। प्रयोग्य

मनुष्यों को अपनी संगत से छांटने का अर्थ था—कम पापियों को अपने पास न फटकने देना।

भारतीय विद्या भवन की भांति श्री एस० प्रार० शर्मा को भी शैक्षणिक कलाबाजी का दौरा पड़ा। सिकन्दर की जन्मजात दुष्टता और नीचता के बारे में जो कुछ भी उन्होंने कहा, उसे भूलकर अपनी पुस्तक के पृष्ठ १५४ पर उन्होंने लिखा है—“अपनी कट्टरता को छोड़कर सिकन्दर एक अच्छे योग्य शासक थे। अगर उन्हें कहीं जरा-सी गड़बड़ी का आभास होता था तो वे तुरन्त उसकी खोज करवाते थे। बड़ी बारीकी से हिसाब-किताब की जाँच और परख की जाती थी तथा गरीबों का हमेशा संरक्षण होता था।”

भारतीय विद्याभवन और श्री शर्मा दोनों हमें विश्वास दिलाना चाहते हैं कि धर्मान्ध कसाई सिकन्दर लोदी का शासन इतना उचित और सही था कि हमारे २०वीं शताब्दी के रिजर्व बैंक, धर्म-निरपेक्ष शासन और सुप्रीम कोर्ट उसके आगे पानी भरते हैं। अगर ऐसी बात है तो हमारी सरकार को इस युग में कुछ नहीं करना है उसे सिर्फ नकल करनी है। सिकन्दर लोदी के मूल, कट्टर और खूनी कारनामों की नकल-रबर मोहर छाप की तरह नकल, और कुछ नहीं।

हमें हमारी बेबस पीढ़ी पर दया आती है जिन्हें इतिहास के नाम पर इस प्रकार की परस्पर विरोधी और अर्थहीन बकवास पढ़ाई-रटाई जाती है। सारे तर्क और प्रमाणों के न्याय का गला घोटने वाली ऐसी पढ़ाई के कारण ही शायद हमारा शिक्षण एवं राजनीतिक नेतृत्व इस प्रकार डगमगा रहा है। वह निबल, अंधा, दुविधापूर्ण और लचीला हो गया है। सीधे-सादे मगर अच्छे विचारों वाले उदार लोगों के चन्दों से चलने वाली भारतीय विद्याभवन जैसी संस्थाएँ भारतीय बोतल में भूठी ऐतिहासिक गप्पों की विदेशी शराब सर्व करती हैं। खतरनाक ख्याति वाले विद्वान् इसे अपनी सोल मोहर से अनुमोदित करते हैं। इसमें से सत्य को छानने की कतई जरूरत नहीं समझी जाती। क्या यह शोक और शर्म की बात नहीं है?

अगर इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों के लेखकों को लूट, बलात्कार तथा नर-संहार को धार्मिकता और न्याय कहकर चमकाने, सजाने दिया जाएगा; किसी बर्बर एकबर, बाबर या किसी तुगलक, लोदी के कल्पित सुधारों का विस्तृत वर्णन हमारे भावुक छात्रों को करने दिया जाएगा तो अब वह

समय था गया है, जब हमारे छात्र एवं उनके संरक्षक घागे घाएँ और सच्चाई की इस तोड़-मरोड़ को रोकें।

प्रत्येक मुस्लिम शासक के समान सिकन्दर के सामने भी पहला काम अपने विरोधियों को खत्म या अपंग करना था। क्रूरतम प्रवीणता के साथ उसने इस कार्य को पूर्ण किया। भाई भालम खाँ से सिकन्दर की निरंकुशता स्वीकार कराई गई। भतीजे भाजम खाँ और चाचा इशा खाँ का दमन किया गया। भाई बरबक ने सिकन्दर को दो-दो हाथ करने के लिए ललकाया। यद्यपि वह दिल्ली की गद्दी नहीं छीन सका मगर उसने जौनपुर पर अपनी सार्वभौमिकता मनवा कर ही छोड़ी। बर्बर, धर्मान्ध और असुरक्षित मुस्लिम सुलतानों के अविराम क्रूर-अत्याचारों के कारण कराहती जौनपुर की हिन्दू जनता ने अपने विदेशी और पाशाविक अत्याचारियों को भार भगाने के लिए विद्रोह खड़ा कर दिया। एक वीर राजपूत सरदार जूगा उनका नायक था। जूगा के कुशल नेतृत्व में राजपूत जाति बचगोति ने मुस्लिम गिरोह का अधिकांश भाग हाक़ कर दिया। मक्कार सिकन्दर इस अवसर से कैसे चुक सकता था। उसने अपने दुबल भाई को गद्दी से हटा कर उसके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। उसे तहखाने में फँक दिया।

जौनपुर की गद्दी पर पुनः अपना अधिकार करने के लिए अब एक तीसरा मुसलमान हुसैन शर्की सामने आया। इस जौनपुर का अपहरण कर उसके पूर्वजों ने अपना शासन चलाया था। उसने जूगा से अपना सम्पर्क बनाया। हिन्दुओं को घृणा की दृष्टि से देखने वाला सिकन्दर जूगा को जाऊँद दुर्ग से हटा नहीं सका था। उसने शर्की को समाचार भेजा कि एक मुसलमान होने के नाते यह आपका कर्तव्य है कि आप एक हिन्दू जूगा को घोषे से फन्दे में डाल दें और आप ऐसा करेंगे तो मैं सिकन्दर के जाल में फँसे हिन्दू मेजबानों का रक्त पीकर तृप्त हो जाऊँगा और आपको जौनपुर का स्वतंत्र शासक मान लूँगा। मगर हुसैन शर्की जानता था कि वह सिकन्दर लोदी जैसे दुष्ट के बदले एक हिन्दू जूगा का विश्वास कर सकता है। वह सिकन्दर लोदी के साम्प्रदायिक फन्दे में नहीं फँसा। बाद में कई लड़ाइयाँ हुई, अन्त में हुसैन शर्की को बंगाल भागना पड़ा।

हिन्दुस्तान की लूटने वाले दो विरोधी मुसलमानों के इस अभियान में उनकी सेनाओं ने कतुम्ब के शासक राजा बलभद्र राय के राज्य की भूखे

गिद्धों की तरह खा डाला। यह पन्ना राज्य के अधीन था। जातिगत और स्वाभाविक मुस्लिम रणनीति के अनुसार विदेशी मुस्लिम गिरोह के डाकुओं की भाँति, जहाँ तक हो सका वहाँ तक राज्य की सेना से बचकर, राय-बलभद्र की सीमा में निर्मम अत्याचारों की वर्षा की। खड़ी फसलें जला दीं। बेचारे गरीब किसानों की गर्दनें मार दीं। उनकी स्त्रियों और बच्चों को मुसलमान बना लिया। सारे मन्दिर मस्जिद बन गये।

इन अभियानों के वर्णनों में मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासों की स्वाभाविक और जातिगत चापलूसी, जालसाजी तथा कुतर्क के एक विचित्र नमूने से हमारा सामना हो जाता है। "तारीखे खाँ जहान लोदी" के लेखक और पालतू लिपिक नियामतुल्ला कहते हैं कि "ठीक उसी समय अपने सन्देही स्वभाव के कारण राय बलभद्र पड़ाव का सारा साजो-सामान छोड़कर भाग गये।" बड़ी धृष्टता से वे आगे लिखते हैं कि "सुलतान ने उनकी सारी सम्पत्ति एक जगह जमा करने की आज्ञा दी और उसे राजा के पास भेज दिया।" बड़े दुःख की बात है कि हमारे इतिहासकार बिना सोचे-समझे ऐसी कड़वी झूठ को भी निगल जाते हैं। अधिक व्यावहारिक और तर्क-संगत विचार सर एच० एम० इलियट, पृष्ठ ६४, ग्रन्थ ५ के पृष्ठान्त में प्रकट करते हैं कि "ठीक इसके विपरीत मरुजान-ए-अफ़गानी कहते हैं कि सुलतान ने इसे लूट लेने की आज्ञा दी जो एकदम संगत और सम्भव है।" इस कारण हमारे इतिहासकारों को सचेत हो जाना चाहिए कि प्रसंग के विरुद्ध और विपरीत जो कुछ भी भाव्यात्मक बकवास उनके सामने आती है, उसके बारे में वे तुरन्त यह समझ लें कि यह "एक धृष्ट और मजेदार धोखा" है।

वास्तविक खेल यह था कि "अरेल पहुँचने पर सुलतान ने उस परगने के नागरिकों और उद्यानों को नष्ट करने की आज्ञा दे दी।" चूँकि कासिम से लेकर बहादुरशाह जफ़र तक सारे विदेशी मुस्लिम शासक एक ही धर्मान्ध और कट्टर मार्ग पर चले हैं, सिकन्दर लोदी की यह गुण्डागर्दी इस बात को प्रमाणित करने के लिए काफी है। एक उद्यान बनाना तो दूर रहा इन विदेशी मुस्लिम गुण्डों ने भारत के बागों का सत्यानाश ही किया है। सर्व-सत्यानाशी आक्रमणों से पहले भारत एक उपवनों का देश था। इन उपवनों की यहाँ के सभ्य और सुसंस्कृत क्षत्रियों ने हजारों वर्षों से

सजाया और सेंबारा था। इन हजारों उपबनों में जो दो-चार बचे हैं, उनके निर्माण का श्रेय कभी इस सुलतान को दिया जाता है तो कभी उस शैतान को।

सिकन्दर लोदी ने करा, दलामऊ और उसके आस-पास के क्षेत्रों को लूटा। दलामऊ में गेर खाँ लोहानी की विधवा सुन्दर पत्नी को सिकन्दर अपने हरम में बसीट लाया। सिकन्दर की सर्व-भक्षी मशाल से जलने वाले दो नगर शम्शाबाद और सम्भल भी थे। "शम्शाबाद (चाहे इसका जो भी पवित्र हिन्दू नाम रहा हो) की घोर जाते हुए सिकन्दर ने परियोटकल नामक स्थान ध्वस्त कर दिया।" इस्लामी गाल बजाते हुए नियामतुल्ला जैसे पतित इतिहासकार "इसे लुटेरों की नाली और माँद" कहते हैं। (पृष्ठ ६४, शब्द ५ इलियट एवं डाउसन)। उन्होंने आगे लिखा है कि सुलतान ने "उस विद्रोही गिरोह के बहुत लोगों को तलवार के घाट उतार दिया।" इस प्रकार लोभी विदेशी मुस्लिमों से अपने ही देश में अपने भोजन, गृह और नारी-पवित्रता के लिए लड़ने वाले हिन्दुओं के सारे मुस्लिम इतिहासकारों ने "कुत्ता, चोर, डाकू, लुटेरा, नास्तिक, दस्यु, गन्दगी, मल और नाली" कहा है। पतित विदेशी चापलूसों और खुशामदी पदयात्रियों ने ऐसा ही अपमानजनक, गालीपूर्ण और मायावी इतिहास लिखा है। ये ही निन्दान्यक इतिहास हमारे पवित्र इतिहासों के उद्गम हैं, जिन्हें बड़ी उपमग और उत्साह से हमारे स्कूलों और कालिजों में पढ़ाया जाता है।

वीर हिन्दू राजा बलभद्र और उन्हीं के समान उनके वीर पुत्र वीरसिंह देव ने लालची मुसलमानों का जीना हराम कर दिया। सिकन्दर उनकी सेना ने बचता रहा और पन्ना राज्य की सीमाओं में लूट-पाट मचाकर निर्दोष नागरिकों को काट-काटकर फेंकता रहा। ब्रह्मावस्था से अशक्त और मुस्लिम शत्रुओं द्वारा अपनी प्यारी प्रजा की चमड़ी छीलने और चाबुक-प्रहार से दुःखित बलभद्र राय ने सरगुजा जाते समय अपनी अन्तिम सांस ली। मगर उनके वीर पुत्र वीरसिंह देव ने अपना नाम सार्थक किया। फर्रूद में उन्होंने सिकन्दर लोदी के सिर पर ऐसा प्रहार किया कि "सिकन्दर को जीतपुर भागने के लिए विवश होना पड़ा। (उसके पास) अनाज, अफीम (जो इन क्रूर भोगियों का टॉनिक था), नमक और तेल का एकदम अभाव हो गया। उनके सारे घोड़े नष्ट हो गए।" बिहार की सीमा पर मँडराने

वाले बिहार के पूर्ववर्ती मुस्लिम शासक हुसैन शर्की ने सिकन्दर का पीछा कर उसकी हालत और पतली कर दी। वीरसिंह देव के भाई लक्ष्मी चन्द तथा सिकन्दर की खूंखार क्रूरताओं के शिकार अनेक राजपूत सरदारों ने अपनी-अपनी सेनाएँ तैयार कीं और इस भेड़िए सिकन्दर का पीछा किया। सिकन्दर लोदी ने भागने और बचने में रिकार्ड कायम कर दिया। एक बार तो ऐसा लगा कि भाग्य इस मुस्लिम-राक्षस को दण्ड देने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हो चुका है। गंगा पारकर सिकन्दर चुनार भाग गया। मगर यहाँ से भी उसे जान ले भागना पड़ा। झुंझला और खिसियाकर वाराणसी पर भपट पड़ा। उसे विश्वास था कि यहाँ हिन्दू तीर्थ-यात्रियों के अबाध प्रवाह को लूट-मारकर वह अपनी दुष्ट सेना का पेट भरने के लिए प्रचुर खाना-दाना बटोर सकता है। बाद में यहाँ से भी उसे रगेदा गया। वह जान लेकर फिर भागा।

चारों ओर की घुड़कियों से परेशान होकर सिकन्दर ने स्व० राजा बलभद्र राय के पुत्र शालिवाहन के पास दया और शान्ति की भीख मांगने अपने दरबारी खान खानान को दूत बनाकर भेजा। अपने इस अभियान में "सिकन्दर ने बिहार को बरबाद करने के लिए देववार के पड़ाव से एक सैन्य टुकड़ी ली। उसने दरवेश पुर और तिरहुत जिला भी नष्ट कर दिया।" यहाँ की आतंकित जनता से उसने एक डकैत की भाँति लाखों टंके चूस लिये।

इस प्रकार एक वास्तविक शैतान की भाँति सिकन्दर का सारा जीवन लूट, बलात्कार, नर-संहार, विनाश, हिन्दुओं के सामूहिक इस्लामीकरण और मुस्लिम दुर्व्यवहार के लिए सारे हिन्दू मन्दिर और महलों के मस्जिद और मकबरे में रूपान्तरण की एक दुःख भरी लम्बी गाथा है। किस प्रकार मुसलमानों ने अपने सहस्रवर्षीय विनाश और लूट से भव्य-भवनों, सम्पन्न मन्दिरों और सुवासित उपबनों से भरे-पूरे और फलते-फूलते हिन्दुस्तान को ज़िखरे खंडहरों, निर्धन भोपड़ियों और उजड़े रेगिस्तान में बदल दिया है, सिकन्दर का शासन इसका एक उजलन्त उदाहरण है। मगर जले पर नमक छिड़कते और नौबू निचोड़ते हुए इन्हीं दुष्टों को बड़े भ्रम से सुन्दर वागों और भव्य यादगारों के निर्माता होने का श्रेय दिया जाता है।

दिल्ली से सिकन्दर की लम्बी अनुपस्थिति का लाभ दिल्ली के गवर्नर

घसतार ने उठाया। एक सुलतान की भाँति उसने इसपर शासन किया और सिकन्दर के हरम की स्त्रियों तथा लूटमार का मनचाहा उपयोग और उपभोग किया। अपनी राजधानी से हमेशा के लिए निर्वासित हो जाने की आशंका से आतंकित होकर सिकन्दर ने खवास खाँ को बड़ी सेना के साथ वहीं भेजा। सम्मिलित घसतार का पीछा किया और अगस्त, १५०० ई० को उसे पकड़कर तहखाने में फँक दिया गया। सईद खाँ, तातार खाँ, मुहम्मद शाह आदि असंतुष्ट मुस्लिम लुटेरों ने सुलतान के असीम लोभ और व्यभिचार से विरक्त होकर दग्वार त्याग दिया। अब वे मालवा और गुजरात के हिंदू नागरिकों तथा कृषकों का शिकार करने निकल पड़े।

ग्वालियर दूत निहाल को रोककर सिकन्दर ने अपनी स्वाभाविक इस्लामी धोखेबाजी से ग्वालियर के रावसिंह से सन्धि-वार्ता प्रारम्भ कर दी। वीर निहाल मुस्लिम धोखेबाज की घुड़कियों से उत्तेजित हो उठे। उसने कायर, कपट और नीच व्यवहार के लिए सिकन्दर को बीच दरबार में बार-बार धिक्कारा। सिकन्दर ने क्रोधित होकर गरजते हुए हिंदू राज्य ग्वालियर को नेस्तोनाबूद करने की कसम खा ली।

बयाना-दुर्ग सुलतान के असंतुष्ट दरबारियों के विरोध-प्रदर्शन का केन्द्र बन गया। जिसियाई बिल्ली के समान सिकन्दर ने अपने इस्लामी-रोष का बम धौलपुर के हिंदू राज्य पर फोड़ दिया। धौलपुर के राजा और उनकी सेना से बचकर स्वाभाविक इस्लामी रण नीति के अनुसार इस्लामी गिरोह हिंदू नागरिकों के घरों, खेतों, और खलिहानों पर झपटता था। कूटने, पीटने, लूटने तथा गारी-बलात्कार, इस्लामीकरण एवं धर्मान्तरण द्वारा गुलाम बनाने का काम चालू हो गया।

भारत में मुस्लिम-विजय का सारा इतिहास असहाय नागरिकों पर हुए क्रूर शोष-भ्रष्टों का एक घन्टहीन वर्णन है। जबतक हिंदू राजा और उनकी सेना घटना को समझें और समझें, सारे मन्दिर मस्जिदों में बंदल जाते थे। भाकू की तीक्ष्ण धार पर सारी जनता का मुसलमानीकरण ही जाता था। उस क्षेत्र के अपने परिवारों और रिश्तेदारों के इस इस्लामीकरण से हिंदू सैनिक एकदम हक्के-बक्के से रह जाते थे तथा वे अपने आपको अलग-थलग महसूस करने लगते थे। सड़ाई में उनका उत्साह नष्ट हो जाता था। तब या तो वे बेमन से विरोध करते थे या पीड़ा

और निराशा से हाथ मलते पड़ोसी हिंदू क्षेत्रों में चले जाते थे। यह एक नया शत्रु था जो एक नई रण-पद्धति से लड़ता था। रातों रात श्रद्धानु हिन्दू कट्टर विदेशी हो जाते थे। वे अपने आपको लालची अरब और विलासी तुर्क समझने लगते थे और अपने ही पूर्ववर्ती भाइयों तथा बहनों को फाड़ खाने के लिए मुँह फाड़ लेते थे।

जबकि इस्लाम की सर्व-भक्षी तलवार ने पश्चिम में अल्जीरिया से लेकर पूर्व में जावा और मलाया तक के सारे राष्ट्रों का मलबा ऐसा गिराया कि भयभीत होकर इन देशों के अन्तिम व्यक्ति ने भी काँपते हुए इस्लाम स्वीकार कर लिया, तब अन्त में हिन्दू और हिन्दुस्तान के गौरव, साहस और शौर्य को यह श्रेय मिलना ही चाहिए कि इन लोगों ने हजार वर्षों तक अटल और अडिग होकर इस्लामी दुष्टता का सामना अन्त तक किया है। इस पर भी हिन्दुत्व इस पेशाचिक यातना, नारकीय अत्याचार और क्रूर अपमान से साफ़ बच सकता था अगर वह जीवन-मरण के इस संघाम से स्वयं शत्रु की कुछ सीख सीख लेता।

हमें इन नये मुसलमानों को वापिस हिन्दुत्व में दीक्षित ही नहीं करना था वरन् एक हिन्दू धर्मान्तरण के लिए कम-से-कम १० अरबी, तुर्क, अफ़गान और अबीसीनियों को हिन्दुत्व में दीक्षा देकर पूर्ण प्रतिशोध भी लेना था। इससे इस्लाम का यह आतंककारी और चूर्ण-कर्त्री चक्की उल्टी और पूर्व की ओर बढ़ने की बजाय लाहौर तथा पेशावर से चलकर काबुल, समरकन्द, तेहरान, बग़दाद, मक्का, कैरो और मोरक्को होकर अल्जीरिया तक पहुँच जाती।

इससे हिन्दुत्व और हिन्दुस्तान को ही लाभ नहीं होता वरन् इस्लाम के नाम पर संसार में आतंक और विनाश मचाने वाले बर्बर जंगली गिरोह के क्रूर-क्रूरों से पीड़ा और यातना पाने वाली नारियों और बालकों को बचाया भी जा सकता था। मगर शोक ! हिन्दुओं ने इतिहास के प्रति लापरवाही बरती है। शत्रु की कार्य-प्रणाली से कुछ सीखना तो दूर रहा, मित्रों की सलाह सुनकर कानों में रूई ठूस ली है।

धौलपुर इन्हीं कार्य-प्रणालियों का शिकार हो गया। नियामतुल्ला हमें बताते हैं कि "सारी मुस्लिम सेना को लूट-मार में लगा दिया गया था और बयाना के चारों ओर सात कोस तक फैली भाड़ियों और वृक्षों को जड़ से

उठाड़कर फेंक दिया गया था।" अब हमें मालूम हुआ कि राजस्थान रीगस्तान क्यों है? बने छायादार वृक्षों से आवेष्टित चार सौ मील लम्बा लाहौर-आगरा का प्राचीन हिन्दू राजपथ सुखद छाया से हीन, विधवा जैसा उजड़ा क्यों है? एक महीने तक सिकन्दर धौलपुर में हिन्दू विनाश का मत्तबा बिखेरता रहा। अगर एक सिकन्दर अपने लूट और विनाश के उन्माद में धौलपुर को एक महीने में ही फकीर बना सकता था तो हजार वर्षों तक बार-बार चलने वाले इन म्लेच्छों के लूट-अभियानों ने भारत में प्रलय की कैसी आंधी चलाई होगी, कोई भी समझदार व्यक्ति आसानी से इसका अनुमान लगा सकता है। इसपर भी हमारे इतिहासकार बड़ी उमंग और उत्साह से लोगों को बतलाते हैं कि प्रत्येक विदेशी मुस्लिम शासक ने अपने-अपने शासनकाल में भारत पर दोस्ती, सम्पन्नता, खुशहाली, गौरव और महानता की वर्षा की है। क्या ऐसा लिखने वाले इतिहास और सच्चाई के दुश्मन नहीं हैं?

एक के बाद दूसरे हिन्दू क्षेत्रों को निगलने वाला सिकन्दर सचमुच एक नर-सली था। वह प्लेग की भांति ग्वालियर पर बरस पड़ा। ग्वालियर गढ़ की पहाड़ियों के नीचे भव्य भवनों का समूह है। ग्वालियर दुर्ग द्वार के घोर घनेक महल लड़े हैं। वहीं वे महल भी हैं, जिन्हें हम आज भ्रम और भुल से मुहम्मद गौस और तानसेन का मकबरा मानते हैं। ये सभी प्राचीन हिन्दू महल और मन्दिर हैं। सिकन्दर लोदी जैसे विदेशी मुसलमानों के परिवारम चील-भपट्टों में ये बरबाद हुए, इनपर अधिकार हुआ और दुर्ग-प्रयोग हुआ। इतिहास से अनजान हमारे शिल्पियों, वास्तुकारों और इन्जीनियरों को रटा-रटाकर यह यकीन दिलाया जाता है कि ये मन्दिर, जिन की पावन-प्रतिमाओं को फेंककर इन्हें आक्रमणकारियों की कब्रों से सजाया गया है, सेरामेनिक कला के नमूने हैं।

राजा भानसिंह और उनके वीर पुत्र विक्रमादित्य ने सिकन्दर लोदी को मार भगाया। इसी बीच राजा विनायक देव ने धौलपुर पर फिर अपना अधिकार कर लिया। भारतीय इतिहास के छात्रों को सच्चाई छानने के लिए मायावी मुस्लिम इतिहासों की पकितियाँ ध्यान से पढ़नी चाहिए। भारत में हजार वर्षों तक चलने वाली अपनी लालची लूट में सभी मुस्लिम इतिहासकारों ने हिन्दुओं से हुई प्रत्येक लड़ाई में एक स्वर से "इस्लामी-

सेना की विजय" का डंका बजाया है। शायद ही कभी उन लोगों ने परा-जय या पलायन स्वीकार किया हो। अतएव जहाँ कहीं भी यह वर्णन है कि मुस्लिम सुलतान ने हिन्दू शासक का "समर्पण स्वीकार कर लिया" या "उन्हें अपना शासन चलाने की अनुमति दे दी" और सुलतान अपनी राज-धानी वापिस लौट गये तो बिना झिझके और अटकें यह समझ लेना चाहिए कि मुस्लिम शांतान सुलतान या उसके गुर्गों को पीठ दिखाकर, दम दबाकर, घोर सिर पर पैर रखकर भागना पड़ा था।

जहाँ कहीं भी मुस्लिम इतिहासकार यह लिखते हैं कि आक्रमणकारी मुस्लिम शांतान ने मन्दिर नष्ट कर मस्जिद बना दी, तो इस लेख से यही समझना चाहिए कि उसने मन्दिर से प्रतिमा उठाकर फेंक दी, मन्दिर के भवन में नमाज़ पढ़ ली और मस्जिद तैयार हो गई।

मध्यकालीन मुस्लिम शब्दों के प्रयोग, अलंकार और मुहावरों के उपयुक्त अर्थ की व्याख्या, समझ और गम्भीरता के अभाव में भारतीय इतिहास विषाक्त हो गया है। इस इतिहास के द्वारा संगीत और वास्तु-कला भी विषाक्त हो गई है। भारतीय विद्या भवन जैसी संस्थाएँ सारे संसार में बिखरी हुई हैं। इसके संचालक विख्यात और धुरंधर विद्वान् हैं। ऐसे दिग्गज विद्वान् भी एक भोले-भोले मासूम व्यक्ति की भांति मुस्लिम इतिहास-लेखन षड्यन्त्र के कपट और कुतर्क के जाल में फँसकर धोखा खा गए हैं। इसी कारण सारे संसार के स्कूलों और कालिजों में पढ़ाया जाने वाला हिन्दुस्तान का इतिहास शैक्षणिक-सादगी और विरोधी बयानों का एक गड़बड़भाला बन गया है। उदाहरण के लिए बड़े विद्वत्तापूर्ण तरीकों से पाठकों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह विश्वास दिलाया जा रहा है कि सारे शहर के नागरिकों को काटकर कीमा और खिचड़ी बनाने वाले, उस कीमे और खिचड़ी में गोमांस, बोटियाँ और देव-प्रतिमाओं का चूरन मिलाने वाले बड़े धुरंधर-विद्वान्, न्यायी शासक और सभ्य इन्सान थे। ऐसी असंगति, कुतर्क और जालसाजी मानव-साहित्य के किसी भी विभाग में तथा संसार के किसी भी भाग में बेजोड़ है, अद्वितीय है, अकेली है। एकोऽहम् द्वितीयो नास्ति है। 'सत्यमेव जयते' के इस देश भारत में सच्चाई की तोड़-मरोड़ व सिर्फ बरदाश्त की जा रही है, वरन् धर्म-निरपेक्षता, साम्प्रदायिक मैत्री और पारस्परिक-प्रेम के नाम पर इसे महान् बताकर जहराया, फहराया भी जाता है।

अपने प्रारम्भिक विनाश के बाद ग्वालियर और घोंसपुर से भगाये जाने पर सिकन्दर को सारी वर्षा ऋतु बयाना दुर्ग के समीपवर्ती जंगल में छिपकर गुजारनी पड़ी।

१५०४ ई० में भूसे भेड़िए की भाँति सिकन्दर मन्दरल दुर्ग के पास पास रहने वाली हिन्दू जनता का शिकार करने के लिए टूट पड़ा। दुर्ग पर अधिकार करने के बाद "सुलतान ने मन्दिर को नष्ट करने और उन के स्थान पर मस्जिद बनाने की आज्ञा दी। दुर्ग की रक्षा के लिए मियाँ माकन और मुजाहिद खाँ को छोड़कर वे खुद पासपास की जमीन को लूटने निकले जहाँ उन्होंने बहुत से लोगों को कसाई की भाँति काट डाला, बहुतों को बन्दी बना लिया तथा सारी भाड़-भाड़ियों और निवास-स्थानों को उखाड़ कर नष्ट कर डाला एवं अपनी प्रतिभा (?) के इस प्रदर्शन से अपने को तुष्ट और गौरवान्वित (?) कर वे अपनी राजधानी बयाना लौट आए।" (पृष्ठ ८, ग्रन्थ ५, इतिहास एवं डाउसन)। इस प्रकार उन्हीं की पार्टी के मुसलमान नियामतुल्ला प्रमाणित करते हैं कि सिकन्दर वृक्षों, प्रतिमाओं और मनुष्यों को सत्त्व करने वाला एक कसाई था, एक जल्लाद था। मगर श्री धार० सी० मजूमदार एवं श्री एस० भार० शर्मा जैसे विद्वान् सटीकई करते हैं कि वह कसाई एक बहुत योग्य और न्यायी शासक था। क्या इस बेवकूफी का कोई जवाब है ?

नियामतुल्ला कहते हैं कि "उस साल हवा की गर्मी इतनी तेज हो गई कि शायद सभी आदमी बुखार में छटपटाने लगे। इस बार बहुत दिन व्यतीत हो जाने के बाद सुलतान को यमुना नदी के किनारे एक शहर बनाने का ध्यान आया जो सुलतान का मुख्यालय और सेना का निवास-स्थान दोनों होता। साथ ही उस हिस्से के बागियों के दिल में डर भी पैदा करता।" इस विचार से उन्होंने १५०५ में कुछ काजियों और बुद्धिमानों को यमुना तट का निरीक्षण कर उपयुक्त स्थान की रिपोर्ट देने के लिए नियुक्त किया। तदनुसार निरीक्षण दल के लोग, नावों पर बैठ, दिल्ली से चले और सावधानी से दोनों किनारों (की जमीन) को देखते-भालते आगे बढ़े। अन्त में वे लोग उस स्थान पर आ गए जहाँ अब आगरा खड़ा है। इनको उपयुक्त समझकर उन लोगों ने अपना चुनाव सुलतान को सूचित कर दिया। इस पर उन्होंने दिल्ली छोड़ी और मथुरा चले गए। यहाँ उन्होंने नाव से और सारे रास्ते तरह-तरह की कीड़ाओं से अपना दिल

बहुलाते रहे। जब वे निश्चित स्थान पर पहुँचे तो उन्होंने दो ऊँचे स्थान देखे जो भवन निर्माण के उपयुक्त प्रतीत होते थे। सुलतान ने मुल्लाखाँ से पूछा कि इन दो ऊँचे स्थानों में तुम्हें कौन-सा स्थान अधिक उपयुक्त नजर आता है। उन्होंने उत्तर दिया कि वह जो अग्र है (यानी आगे है) अधिक उपयुक्त है। सुलतान मुस्कराए और कहा कि तब इस शहर का नाम अग्र ही होगा।"

इस प्रकार नियामतुल्ला जैसे गुलाम की कलम के एक झटके ने न सिर्फ आगरा के प्राचीन हिन्दू नगर पर अपना दावा पेश कर दिया बरन् इसके संस्कृत नाम को भी पशुतुल्य सिकन्दर का निर्माण बता दिया।

मुस्लिम कुतर्क का यह एक जाना-पहचाना नमूना है। मुस्लिम इतिहासों में कदम-कदम पर इससे भेंट होती है। प्रत्येक मुस्लिम इतिहास में सुलतानों और शैतानों का कुछ ऐसा चित्र पेश किया जाता है कि वे सवारी या नाव पर बैठे एक महल की ओर जा रहे हैं, वे मुस्कराते हैं और एक शहर बनाने की आज्ञा देते हैं, इधर उनके मुँह से शब्द पूरी तरह से निकल भी नहीं पाता कि चिराग़े अलादीन के जादू से शहर बनकर तैयार है। इस प्रकार हुमायूँ, अकबर, शाहजहाँ, सिकन्दर लोदी, फिरोजशाह तुगलक़, अहमदशाह और मुहम्मद जैसे लुटेरों को इलाहाबाद, अहमदाबाद, आगरा, दिल्ली, फतहपुर सीकरी, फिरोजाबाद, फ़तहबाद, आदि न जाने कितने नगरों के बनाने और बसाने का श्रेय दिया। एक दूसरी जालसाजी है जिस में भारतीय इतिहास के विद्वान् बड़ी आसानी से फँस गए हैं। सिकन्दर लोदी को आगरा-निर्माण का श्रेय देने वाले नियामतुल्ला के वर्णन से हमें ठीक इसका उलटा समझना चाहिए यानी आगरा बनाना तो दूर रहा, इस शैतानराज ने उसे सैकड़ों बार लूटा है। यह हमारी दूसरी खोज है। जहाँ कहीं भी किसी सुलतान या शैतान का नाम किसी महल या नगर से सम्बद्ध हुआ है, वह उसका निर्माता नहीं विध्वंसक है।

आगरा से छः मील उत्तर में एक नगर है। इसे आज सिकन्दरा कहते हैं। यहाँ प्राचीन हिन्दू महलों के मलबे बिखरे हुए हैं। इस नगर में चतुर्भुज आकार के अनेक कुएँ और बावड़ियाँ हैं। अनेक नगरों की भाँति इस प्राचीन हिन्दू नगर को सिकन्दर ने नष्ट कर दिया था और नष्ट करने के बाद इसे अपना मुख्यालय भी बनाया था। जिस हिन्दू महल का

घरहर्न कर इस मुस्लिम सुलतान ने अपना डेरा डाला। उसे अकबर के अकबर के बुर्ज उड़ाकर बैठा दिया गया है। उसके बारे में हमें बताया जाता है कि उसका निर्माण या तो अकबर ने किया था, या जहाँगीर ने या फिर दोनों ने मिलकर। यह एक दूसरी जानसाजी है। जिस महल पर सिकन्दर लोदी ने पहले अपना कब्जा जमाया था, बाद में अकबर उसी महल में बसा था। उनमें बिकोणों का गुप्त हिन्दूशक्ति-चक्र तथा अन्य अनेक हिन्दू-प्रतीक एवं चिह्न सभी भी इस महल में जगह-जगह पर देखे जा सकते हैं।

हमें बताया जाता है कि सिकन्दर लोदी ने न सिर्फ आगरा का निर्माण किया है बरन उसी में इसका दुर्ग भी बनाया है। कुछ वर्षों के बाद हमें यह सुनाई देता है कि अकबर ने एक बार फिर इस निमित्त दुर्ग का निर्माण किया। इस प्रकार प्रत्येक मुस्लिम शासक को आगरा, दिल्ली आदि नगरों और उनके दुर्गों को बार-बार बनाने का बार-बार श्रेय दिया जाता है जबकि वे सभी प्राचीन हिन्दुस्तान के बचे हुए चिह्न हैं। उनके झूठे और चापलूस दरबारी इतिहासकारों ने अपने मालिकों के नाम से इन नगरों और दुर्गों का निर्माण कामजों पर न जाने कितनी बार किया है।

बिनायक देव के हाथों मिली पराजय सिकन्दर के मुस्लिम-दल में काँटे की तरह चुन रही थी। अपने इस जाली नगर-निर्माण के उत्सव के बाद सिकन्दर ने एक बार फिर धौलपुर पर छावा कर दिया। उसके बारे में हमें बताया जाता है कि उसने इस बार हिन्दू शासक को गद्दी से उखाड़ फेंका और वहाँ बलिक मुद्दज्जोत विराजमान हो गए। मध्यकालीन भारत में जब कभी और जहाँ कहीं भी इस प्रकार का परिवर्तन होता था तब लूट, बलात्कार, लोच-झोच, धर्मान्तरण, नर-संहार और मस्जिदों का उत्सुक अविनाश रूप में मनाया जाता था।

जति सिकन्दर के बिनाश से क्रोधित होकर अल्लाह ने ६ जुलाई, १५०५ ई० रविवार को भूकम्प से आगरा हिलाकर रख दिया। जैसा कि एक प्रसिद्ध खबर से प्रपञ्चित है, तत्कालीन मुस्लिम इतिहासकारों ने आद-तस इस भूकम्प का बड़ा-बड़ाकर प्रतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। मगर ऐसा प्रतीत होता है कि इस भूकम्प से आगरा के प्राचीन जाल दुर्ग (जिस का निर्माण श्रेय कपट से अकबर को दिया जाता है) का जाल भी बाँका

नहीं हुआ। वह घटल और घटल रहा। यह बात इस तथ्य से पूर्णरूपेण प्रमाणित हो जाती है कि सिकन्दर और उसके दुष्ट विदेशी वारिसों ने इस प्राचीन हिन्दू जाल दुर्ग में रहना नहीं छोड़ा।

वर्षा ऋतु के बाद सिकन्दर एक बार फिर हिन्दू क्षेत्रों को लूटने के अपने इस्लामी अभियान पर निकला। इस अभियान में "उसने डेढ़ महीना अपने इस्लामी अभियान पर निकला। इसके बाद वे चम्बल चले गए। वहाँ पर वे गौर-धौलपुर में बिताया। इसके बाद वे चम्बल चले गए। वहाँ पर वे गौर-घाट के समीप कई महीने तम्बू लगाए पड़े रहे। (इसके बाद हिन्दुओं का रस निकालने) वहाँ शाहजादे जलाल खाँ और अन्य खानों को छोड़कर खुद सिकन्दर जिहाद छोड़ने तथा काफ़िरों की जमीन लूटने आगे बढ़े। उन्होंने जंगलों में भाग जाने वाले बहुत से (हिन्दू) लोगों को एक कसाई की भाँति कटवा डाला। बाकी लोगों को लूटकर वेड़ियों में जकड़ दिया गया।" (पृष्ठ १००, ग्रन्थ ५, इलियट एवं डाउसन)।

इस विनाश से क्रोधित होकर वीर पिता और पुत्र मानसिंह तथा विक्रमादित्य ने मुस्लिम गिरोह का आपूर्ति-मार्ग बन्द कर दिया। वे लोग भूखे मरने लगे। सिकन्दर पर आकस्मिक आक्रमण कर उसकी अधिकांश सेना नष्ट कर दी गई। सिकन्दर भी मरने से बाल-बाल बचा। बचाने वाले दो मुस्लिम गुर्गे दाउद खाँ और अहमद खाँ थे। सिकन्दर की अकल गुम हो गई। भय से काँपते हुए सिकन्दर ने आनन्द और मनोरंजन में अपना समय व्यतीत करने का विचार कर लिया। यानी शराब और व्यभिचार में गक होने के तुरन्त आगरा लौट गए।

मुहम्मद बिन कासिम और महमूद गजनवी ने बिना एक भी अपवाद के जिस हिन्दू-हत्या, हिन्दू नारी-हरण, हिन्दू बाल-वरण, गुलामीकरण मन्दिरों और महलों के इस्लामीकरण आदि हिन्दू लूट के वार्षिक अभियानों की "विवेकपूर्ण" नींव डाली थी, सिकन्दर लोदी ने बड़े परिश्रम से इस मध्यकालीन मुस्लिम-प्रथा का पालन किया था। तदनुसार वे १५०६ ई० में अवन्त गढ़ की ओर बढ़े। दुर्ग पर घेरा पड़ गया। राजपूत सैनिकों ने कई बार मुस्लिम सेना को बड़ी दूरी तरह हराया। अन्त में "रक्त-पिपासु (मुस्लिम) सैनिक चींटियों की भाँति दीवारों पर चिपक गए। राजपूतों ने अपने अपने घरों में घुसकर अपना विरोध जारी रखा और जोहर के रिवाज के अनुसार अपने-अपने परिवारों को मार डाला।" (ताकि वे व्यभिचारी और खबर विदेशी मुसलमानों के हाथ न पड़ जाएँ)। दुर्ग का वासित्व सुलतान ने माकोन और मुजाहिद खाँ को दे

दिया। उन्हें इस बात की खास ताक़ीद की गई कि वे मन्दिरों की मूर्तियों को नष्ट कर उसके बदले वहाँ पर मस्जिद बना दें।"

(पृष्ठ १०१, ग्रन्थ ५, इलियट एवं हाउसन)। सुलतान की उद्दंडता, कपट, धोखेबाजी और पाशविकता से भिन्नाकर इसी मुजाहिद खाँ ने सिकन्दर से विद्रोह कर दिया। संगठित अदम्य हिन्दू सेना ने भी भागती मुस्लिम सेना का पीछा किया। मुस्लिम सेना एक संकीर्ण घाटी में फँस गई। "सारी (मुस्लिम) सेना बड़ी आफत में पड़ गई। पानी का पूर्ण अभाव था। बहुत लोग प्यास से मर गए। पीठ पर बोझ लादे जानवरों को एक स्थान पर जमा किया गया था। उन्होंने बहुतों को कुचल दिया।" इस हिन्दू आक्रमण से घाठ सौ मुसलमान नष्ट हो गए।

पाशविक मनोरंजनों से आगरा में वर्षा ऋतु व्यतीत कर सिकन्दर अगले सालाना-बिनाश के लिए नरवर की ओर मुड़े। यह मालवा राज्य के अधीन था। "लाहौर में एक महीना रहने के बाद सिकन्दर ने १५०६ ई० में हाथकन्द का मार्ग पकड़ा। उन्होंने इसको मूर्ति-पूजकों और डाकुओं (यानी हिन्दुओं) से साफ कर दिया। जब उन्होंने उस स्थान के बागियों (यानी हिन्दुओं) को मौत के घाट उतार दिया और प्रत्येक स्थान पर छोटी (मुस्लिम) चौकियाँ स्थापित कर दीं तब वे अपनी राजधानी वापिस आ गए।" यहाँ उन्हें सूचना मिली कि मुस्लिम व्यवहार से ऊबकर अहमद खाँ (जो सम्भवतः तलवार की नोक पर मुस्लिम बना था) पुनः हिन्दुओं से अपना सम्पर्क बना रहा है और वापिस हिन्दू बनना चाहता है। तब सिकन्दर ने उसे बेड़ियों में जकड़कर शाही दरबार में भेज देने की आज्ञा दी।

सिकन्दर एक बार फिर अवन्तगढ़ और सुइसपुर की ओर बढ़े। राय इंगर भी साथ थे। इन्हें भीति-भीति की पीड़ाएँ देकर मुसलमान बनाया गया था और नाम दिया था हुसन, एक विदेशी नाम। जब सिकन्दर इन बिनाशों में संलग्न थे तब २१ नवम्बर, १५१७ ई० को गले के कैंसर से उसकी मृत्यु हो गई।

मध्यकालीन भारत के प्रवीण और क्रूर भरती आफिस के इस्लामी एजेंटों में शैतानी दिम और दैवी चेहरे वाले सिकन्दर को प्रथम पुरस्कार मिलना ही चाहिए। इस दुष्ट सिकन्दर को एक महान् लोदी शासक के रूप में चित्रित करना मध्यकालीन इतिहास के विद्यार्थियों के विवेक का अपमान है। दिल्ली के राजसिंहासन को नापाक और अपवित्र करने वाले विदेशी दुष्टों और बदमाशों में यह कस्ट बनास दुष्ट और हाईक्लास बदमाश था।

(मदर इण्डिया, मई, १९६५)

धुरंधरात्म नागेश ओक

जन्म 2 मार्च 1919 इन्दौर (म० प्र०)
शिक्षा बम्बई विश्वविद्यालय से एम० ए०, एल०एल० बी०
जीवन कार्य एक वर्ष तक अध्यापन कर सेना में बर्ती।

द्वितीय विश्व युद्ध में सिगापुर में नियुक्त। अंगरेजी सेना द्वारा समर्पण के उपरान्त आजाद हिन्द फौज के स्थापन में भाग लिया। लोगों में आजाद हिन्द रेडियो में निदेशक के रूप में कार्य किया।

विश्व युद्ध की समाप्ति पर कई देशों के जंगलों में घूमते हुए कलकत्ता पहुँचे। 1946 से 1948 तक पत्रिकारिता के क्षेत्र में (हिन्दुस्तान टाइम्स तथा स्टेट्समैन में) कार्य किया तथा भारत सरकार के सूचना प्रसारण मंत्रालय में अधिकारी रहे। फिर अमरीकी दूतावास की सूचना सेवा विभाग में कार्य किया।

देश-विदेश में भ्रमण करते हुए तथा ऐतिहासिक स्थलों का निरीक्षण करते हुए उन्होंने कई खोजें कीं। उन खोजों का परिणाम उनकी रचनाओं के रूप में हमें मिलता है। उनकी कुछ रचनाएँ हैं - ताजमहल मन्दिर भवन है, भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें, विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय, क्या विश्व राष्ट्र का इतिहास, कौन कहता है अकबर महान था।

उनकी मान्यता है कि भारतीय इतिहासकारों ने इतिहास को भ्रष्ट करने का जो कुप्रथा किया है, वह वैदिक धर्म को नष्ट करने के लिए जानबूझकर किया है और दुर्भाग्यवश हमारे स्वामी इतिहासकार इसमें उनकी सहायता कर रहे हैं।



हिन्दी साहित्य सदन

18/28 (भाग 28), गान्धी बाग पूर्वी
नई दिल्ली - 110 025

